नायर सान

लेखक

ए० एम० नायर

अनुवाद

निशा कुकरेजा

भाषा-संपादन लक्ष्मण चतुर्वेदी

प्रकाशक शब्दकार
2203 गली डकौतान
तुर्कमान गेट दिल्ली 110006
मूल्य एक सौ पच्चीस रुपये (125/)
प्रथम संस्करण सितम्बर 1985
मुद्रक भारती प्रिंटर्स
दिल्ली 110032
आवरण चेतनदास
आवरण मुद्रक विमल ऑफसेट
ए 26 पंचशील गार्डन
नवीन शाहदरा दिल्ली 32
पुस्तक बंध खुराना बुक बाइंडिंग हाउस दिल्ली 110006

घटनाओ के काल क्रमवद्ध अभिलेख एव उसकी व्याख्या को इतिहास कहा जाता है। और इन घटनाओ को यदि उपयुक्त समय पर लिपिबद्ध न कर लिया जाए तो समय की धूल इन पर इस कदर चढती चली जाती है कि बाद मे तथ्यो का ठीक ठीक पता लगाना अनुसधान का विषय बन जाता है और कौन जाने इन अनुसधानो के परिणाम सत्य के कितने करीब होते हैं।

किसी घटनाक्रम का जो व्यक्ति अग रहा हो उस सच्चाई का जिसने भोगा हो, जिया हो उस घटनाक्रम विशेष पर उसका कथन, उसका अभिमत ही उसका प्रामाणिक इतिहास होता है। इतिहास की इस परिभाषा की कसौटी पर कसकर देखें तो श्री ए० एम० नायर के प्रस्तुत सस्मरण एक एतिहासिक दस्तावेज है जिसे सीमित किन्तु अत्यत महत्वपूर्ण विषय पर लिखी गयी अनेक पुस्तको से कही अधिक प्रामाणिक माना जाना चाहिए।

भारत की आजादी की लडाई भारत भूमि पर ही नही लडी गयी बल्कि भारत से बाहर भी इस सघर्ष को तेज करने मे अनेक स्वतन्त्रता सेनानियो ने भारी बलिदान दिया था। रासबिहारी बोस, नेताजी सुभाष बोस राजा महेन्द्र प्रताप जैसे भारत के न जाने कितने बहादुरो ने इस देश को विदेशी दासता से मुक्त कराने के लिए विदेशो मे रहकर असह्य कष्ट सहे और भारी त्याग-बलिदान दिये हैं।

श्री नायर भी उन्ही स्वतन्त्रता सेनानियो की श्रेणी मे आते हैं। दक्षिण-पूर्व एशिया मे भारत की आजादी के लिए किये गये सघर्ष को उन्होने अपने जीवन के हर पल मे, हर क्षण मे जिया है। एक छात्र के नाते अध्ययन के लिए वे जापान चले गये और जिस उद्देश्य से वे वहा गये थे वह भी उन्होने शानदार तरीके से पूरा किया किन्तु ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध विद्रोह और भारत को आजाद देखने की जो प्रबल आकाक्षा बचपन मे ही उनके मन मे अकुरित हुई थी वह निरतर अधिकाधिक बलवती होती गयी और सिविल इजीनियरी मे डिग्री हासिल करने के बाद भी श्री नायर भारत को आजाद कराने के लिए ही कृतसकल्प रहे उसी मे आकण्ठ निमग्न रहे।

श्री नायर का प्रारम्भिक जीवन भारत मे बीता और स्कूली शिक्षा भी

उ होने यही पायी। दश की राजनीतिक परिस्थितियो म उनकी शुरू से ही रुचि थी इस बात का सकेत देते हुए उ होने लिखा है—"अध्यापक आमतौर पर शिक्षा और सामाजिक विषयो पर तो बहस को प्रोत्साहन देते थ लकिन राजनीतिक विषयो पर बहस की इजाजत नही थी। मगर मैं और मेरे कुछ साथी इस प्रतिबध के बावजूद ऐसे राजनीतिक विषय छाट ही लेते थे और भारत पर विदेशी शासन पर बाला करते थे। हम इसके लिए किसी-न किसी अध्यापक की डाँट भी सहनी पडती थी। लेकिन हमारे शिक्षको म कुछ एस भी थे जो हमारी बहस को अनसुना करके हम परोक्ष रूप स प्रोत्साहन दिया करते थे ।

श्री नायर 1928 म जापान चले गय और वहाँ के क्योतो विश्वविद्यालय से इजीनियरी मे स्नातक की उपाधि प्राप्त की। जापान पहुँचने के तुरन्त बाद श्री नायर की मुलाकात महान देशप्रेमी और क्रातिकारी श्री रासबिहारी बोस से हुई जि होने एक सशक्त क्रातिकारी स्वतत्रता अभियान का नेतत्व किया था और उसकी वजह से ब्रिटिश प्राधिकारीगण उनसे बहुत परेशान थे। ब्रिटिश गिरफ्तारी से बचने के लिए श्री रासबिहारी बोस 1915 म भारत से निकलकर जापान पहुचने मे सफल हो गये थे। श्री नायर श्री रासबिहारी बोस के 13 वष बाद जापान पहुँचे और तत्काल उनके सम्पक म उ होने भारत से बाहर रहकर भारत की आजादी की लडाई के अभियान म हिस्सा लेना शुरू कर दिया। इस सिलसिले मे श्री नायर कभी बौद्ध बनकर जापान के अ य शहरो और आसपास के दशो मे गये तो कभी मुसलमान बनकर। 1928 से लेकर 1947 मे भारत के आजाद होने तक श्री नायर निर तर भारत की आजादी के लिए सघष करते रहे। उनका रोम रोम भारत का आजाद देखने के लिए व्याकुल रहा।

दक्षिण पूव एशिया म भारत की आजादी के लिए इन स्वतत्रता सेनानियो ने जो कुछ किया उसका एक सीधा-सच्चा विवरण श्री नायर ने अपने इन सस्मरणो म दिया है। इसके बारे मे श्री नायर ने लिखा है कि यह सकलन एक दुघटना का परिणाम है। एक बार पैर फिसल जाने से उ हे इतनी चोट लगी कि वे चल फिर नही सकते थे और उ ह मजबूरी मे बिस्तर पर ही रहना पडता था। इसी अवधि मे उ होने एक टेपरिकाडर मँगाकर अपनी बाल्यकाल की घटनाओ का और बाद मे भारत की आजादी से जुडी अपनी यादो को इस टेपरिकाडर पर अकित कर दिया। इसके बाद फिर समय निकालकर उन्होने इसका सम्पादन किया और अपनी बात को तथ्यो से मिलाया। इस तरह उनके सस्मरणो ने पुस्तक का रूप लिया। एक दुघटना का कैसा सुखद परिणाम है यह।

अपने सस्मरणो मे श्री नायर न आजाद हि द फौज और भारतीय स्वतत्रता लीग आदि की स्थापना के सम्ब ध म भी लिखा है। इस स दभ म वे लिखते हैं 'भारतीय स्वतत्रा लीग और आजाद हिंद फौज तथा सुभाषच द्र बोस की दक्षिण

पूव एशिया मे भूमिका के विषय म बहुत कुछ लिखा गया है किन्तु खेद की बात है कि इनमे अधिकाश लाग ऐसे है जो घटना-स्थलो के कही आस-पास भी नही थे। लेकिन उन्होने बहुत विस्तारपूवक इनकी चर्चा की है और प्रामाणिकता का दावा किया है। उनके सन्दर्भो म या तो अज्ञान के कारण अथवा निहित हिता के कारण इन तथ्यो को तोड मरोडकर प्रस्तुत किया गया है"।

श्री नायर को इस बात मे बहुत सदेह है कि श्री सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु ताईपेह म एक जापानी विमान मे हुई थी, जो दुघटनाग्रस्त हो गया था। सुभाष चन्द्र बोस की मृत्यु को लेकर कही जाने वाली तमाम बातो के प्रति वे आश्वस्त नही है। उनका यह भी मत है कि सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु का पता लगाने के सिलसिले म जो प्रयत्न किये गये हैं व कारगर प्रयत्न नही थे और इनकी रिपार्टे अटकलबाजी पर ज्यादा आधारित है।

श्री नायर पिछले 60 वर्षो से जापान मे रह रहे है और अब अपनी आजीविका के लिए वहाँ अपना व्यापार चलाते ह, इसके बावजूद श्री नायर पूरी तरह भारतीय हैं, भारत प्रेमी हैं। यही वजह है कि वे जापान मे अपने व्यस्त जीवन मे समय निकालकर हर वष अपने देश आते है और यहा कुछ दिन ठहरते है। इस सिलसिले मे 1980 मे भारत यात्रा के सम्बन्ध मे उन्होने लिखा है कि जब मैं तिरुअनतपुरम आया तो एक समाचार पत्र के सवाददाता ने केरल म गुजर मेरे यौवनकाल की स्मृतियो के बारे मे जानना चाहा, साथ-साथ वतमान केरल के बार मे मेरे विचार भी। वे कहते हैं "एक क्षण के लिए मैंने सोचा कि काश यह प्रश्न मुझसे न किया गया होता।" फिर भी मैंने ईमानदारी से उत्तर देना ठीक समझा। मैंने कहा मुझे बडी निराशा हुई है कि बहुतो ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए कडा श्रम किया था और बलिदान दिया था। इन सबके बाद हमने अपनी मातभूमि का एक ऐसे महान एव समृद्ध राष्ट्र के रूप मे निर्माण करने की कल्पना की थी जो बाकी विश्व के लिए एक नमूना हो, लेकिन वास्तविकता क्या है? इसी क्रम मे वे आगे लिखते है "1920 के दशक म तिरुअनतपुरम् मे एक आम सभा मे गाधीजी ने कहा था कि वे हमारे राज्य की स्वच्छता स अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। अब कभी सोचता हूँ कि गाधीजी यदि अब हमारे बीच होते तो वे क्या सोचते?" अपनी मातर्भूमि के प्रति श्री नायर का यह लगाव इस बात का सूचक है कि वे तन से भले ही जापान म रहते हो, मन उनका भारत म ही बसता है।

श्री नायर के सस्मरण अग्रेजी जापानी और मलयालम, तमिल, तेलगु बगला आदि भारतीय भाषाओ म पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं। लेकिन श्री नायर का यह कहना है कि जब तक उनकी यह पुस्तक हिन्दी मे नही छपती तब तक इसकी उपादेयता अधूरी रहगी। खुशी की बात है कि श्री नायर की यह मनोकामना पूरी हो रही है। इनके सस्मरणा का हिन्दी म प्रकाशन एक और दृष्टि से भी बहुत

महत्वपूर्ण है। भारत की आज़ादी की लड़ाई लड़ने वाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अब अपनी स्थापना के 100 वर्ष पूरे कर रही है और कांग्रेस के 100वें वर्ष में आजादी के एक विशिष्ट दस्तावेज़ के रूप में श्री नायर के संस्मरणों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

मुझे विश्वास है कि श्री नायर के इन संस्मरणों में सभी पाठकों को दक्षिण पूर्व एशिया के भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की एक अनकही या अधकही कहानी को पढ़ने जानने का मौका मिलेगा और वे इसका पूरा लाभ उठायेंगे।

4 सफदरजंग लेन
नयी दिल्ली
13 जून 1985

एक परिचय

विम्पेई शिवा*

ए० एम० नायर, जिन्हे जापान के आदर-सूचक ढग से नायर सान (श्री नायर) कहा जाता है कदाचित जापान मे सर्वाधिक विख्यात और सर्वाधिक लोकप्रिय भारतीय है, जिसे उन्होने अपना दूसरा घर बना लिया है। वे 76 वष के है और 54 वर्षों से जापान म रह रहे है।

उनका आवषक व्यक्तित्व और लोगो का अभिवादन करते समय उनके मुख पर खिलने वाली मनोहर मुस्कान बादलो के बीच से झांकते प्रकाश की किरण के समान है।

---

* विम्पेई शिवा ने अपने व्यस्त जीवन का बहुत बडा भाग विश्व के विभिन्न देशों म जिनमे जापान, अमरीका यूरोप तथा चीन शामिल हैं एक पत्रकार की हैसियत से गुजारा है। उन्होने विश्व भर मे दूर-दूर तक यात्राए की हैं। सन 1951 मे उन्होने भारत सरकार के औपचारिक अतिथि के रूप म भारत-यात्रा की थी और पडित जवाहरलाल नेहरू के साथ जो स्नेहपूर्वक उन्हें अपना निकट का मित्र मानत थे अनेक बार दीघ और गहन विचार विमश किया था। वे हवाई मे जन्मे थे और अपने जीवन के आरभिक वर्षों मे भी वे काफी समय तक जापान मे थे और जापान टाइम्स के लिए काय करते रहे थे जिसका प्रकाशन उनके पिता किया करते थे।

सन 1977 मे जापान मे अग्रेजी भाषा मे पत्रकारिता के प्रवतन के प्रयासो मे उनकी असाधारण योग्यता के पुरस्कार स्वरूप उन्हे वष क जापानी पत्रकार के सम्मान से विभूषित किया गया था। वे जापान क अनुभवी पत्रकारो के समुदाय के वरिष्ठ सदस्य हैं और साहित्य तथा पत्रकारिता जगत म अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के सम्मानित व्यक्ति हैं। उन्होंने अनेक अमूल्य पुस्तकें लिखी हैं। अभी हाल तक वे आसाही ईवनिंग यूज के बोड ऑफ डाइरेक्टस क चेयरमन थे और अब उसके वरिष्ठ परामर्शदाता हैं।

आज जापान में उनका नाम उनकी कंपनी 'युगन काइषा नायर' (नायर कार्पोरेशन लि०) का पर्याय बन गया है जो अनेक भारतीय उत्पादनों का विक्रय करती है, भारतीय मसाले का एक कारखाना चलाती है और एकदम भारतीय शैली के कुछ रेस्तरां चलाती है। किन्तु मुझ जैसे उम्रदराज लोग, उनके बारे में कहीं अधिक जानते हैं।

वे एक अत्यन्त उत्साही स्वदेश प्रेमी हैं और सन 1947 में, भारत के आजाद होने तक, सुदूर पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया में, भारतीय स्वतंत्रता अभियान की अग्रिम पंक्ति में रहे हैं।

उनके संस्मरणों की 460 पृष्ठों की पाडुलिपि की एक प्रति पाकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ था। मैंने पूरे मनोयोग से इसे पढ़ा है। यह बड़ी आकर्षक है और काफी हद तक एक असाधारण व उल्लेखनीय जीवन चरित है एक जीवन चर्चा है जो मार्मिक विवरण प्रस्तुत करती है।

नायर सान एक प्रतिष्ठित परिवार से हैं। अपने भाई की सलाह पर, जिन्होंने सप्पोरो स्थित रायल यूनिवर्सिटी में अध्ययन किया था सन 1928 में वे जापान आये और क्योतो विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और इंजीनियरी में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने जापानी भाषा का भी अध्ययन किया, जो उन्होंने बहुत जल्दी सीख ली और इतनी अच्छी सीख ली कि धारा प्रवाह भाषण करने की दक्षता प्राप्त कर ली। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान और उसके बाद, वे एन० एच० के० (यानी जापान रेडियो) से भारत के सम्बन्ध में जापानी भाषा में वार्ताएँ प्रसारित किया करते थे। एन० एच० के० में उन्हें बहुत सम्मान प्राप्त है।

जापान पहुँचने के शीघ्र बाद ही, श्री नायर महान भारतीय देशप्रेमी रास बिहारी बोस से मिलने गये जो उनसे कोई तेरह वर्ष पूर्व जापान आये थे। श्री बोस ने उनका हार्दिक स्वागत किया और तत्काल उन दोनों में एक निकट का नाता स्थापित हो गया।

मेरा रासबिहारी से भी अच्छा परिचय था। दोनों में अद्भुत सादृश्यता के कारण श्री नायर को गलती से रासबिहारी का जुड़वाँ भाई भी माना जा सकता था। श्री बोस का स्वभाव भी श्री नायर की ही भाँति मैत्रीपूर्ण था। मुझे ये देखकर अचरज हुआ था कि ऐसा मासूम लगनेवाला और दयावान व्यक्ति एक क्रांतिकारी हो सकता है। यही बात श्री नायर पर भी लागू होती थी जिनकी आत्मकथा एक साहसी स्वतंत्रता सेनानी का आकर्षक आख्यान है।

अपने देश की स्वतंत्रता के अथक सेनानी रासबिहारी बोस ने भारत में एक सशक्त क्रांतिकारी स्वतंत्रता अभियान का नेतृत्व किया था, जिससे ब्रिटिश अधिकारीगण बहुत परेशान थे। अधिकारियों ने उनकी गिरफ्तारी के लिए इनाम रखा

था। किन्तु किसी तरह वे वहा से भाग निकलने मे सफल हुए और सन 1915 म जापान आ गये। ब्रिटिश अधिकारिया ने जापान के विदेश मत्रालय से अनुरोध किया कि एग्लो जापानी मैत्री को ध्यान मे रखते हुए उन्हे गिरफ्तार करके भारत प्रत्यर्पित कर दिया जाय।

हालांकि जापान सरकार ने उन्हे ढूढकर गिरफ्तार करना चाहा किन्तु उसे सफलता नही मिली क्योकि रासबिहारी बोस न स्वय को अति शक्तिवान, महान देशभक्त मित्सुरु तोयामा के आश्रय मे समर्पित कर दिया था जिनके सनातत्र के साथ निकट सम्बन्ध थे।

उन्हे शिंजुकु म एक अति सफल समृद्ध नानबाई की दुकान, नकमुरा बेकरी के पर्याप्त समद्ध स्वामी ऐज़ो सोमा के मकान मे छिपाकर रखा गया था। सोमा श्री तोयामा के हमख्याल और समथक थे। श्री बोस न नानबाई श्री सोमा को, जिनके मकान की दूसरी मजिल पर एक रेस्तरॉ भी था भारतीय शली की शोरबेदार सब्जी तथा चावल पकाना सिखाया जो तुरन्त बहुत लोकप्रिय हो गया।

श्री बोस न सोमा परिवार की पुत्री से विवाह कर लिया। यह भी एक सयोग ही था कि श्री ए० एम० नायर ने भी, एक अभिजात परिवार की जापानी महिला स ही विवाह किया। लेकिन दोनो म एक अति रोचक अन्तर भी है।

हालांकि रासबिहारी मत्यु पयत भारत की स्वतन्त्रता के लिए सघपशील रह, किन्तु, बचन के लिए ही, तकनीकी दष्टि से उन्होने जापान की नागरिकता ग्रहण कर ली थी। श्री ए० एम० नायर की पत्नी न अपने माता-पिता की अनुमति प्राप्त कर, भारत के स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने के काल तक, भारतीय नागरिक बनन की प्रतीक्षा की। नायर दम्पति के दो पुत्र है, जिन्होन अपने पिता की राष्ट्रीयता स्वीकार की है। उनका बडा पुत्र, मत्स्य विज्ञान मे पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त है और एशियाई विकास बैंक म एक ऊँचे ओहदे पर कायरत है जबकि छोटा पुत्र, 'पुगन कईपा नायर' कपनी मे डाइरेक्टर है।

श्री नायर अपन यौवन काल मे भारत के ब्रिटिश शासका के कोपभाजन थ और क्योतो मे अपना अध्ययन समाप्त करके यदि व भारत लौट जात तो उनकी गिरफ्तारी का खतरा था। इसलिए वे जापान मे ही रहत रह और भारत के स्वतन्त्रता सघप की दिशा म कायरत रह।

उसी सिलसिले म जापानी राजनीतिज्ञो तथा उच्च वग क अन्य गणमान्य व्यक्तियो के साथ उनका निकट सपक था। उनमे कोकरयुकाई यानी काला अजगर मासायटी के मित्सुरु तोयामा, कुजु सेनसई, डॉ० सुमेइ ओकावा और अन्य लोग उल्लेखनीय हैं। उनका जापानी सैनिक वग म भी काफी उठना-बैठना था।

मचूरिया पर विजय के बाद, सन् 1931 म जापान न मचुको की स्थापना की। श्री नायर मचुको सरकार के एक प्रमुख अधिकारी गुंता नगाओ क निमत्रण

पर जो क्याती विश्वविद्यालय म उनके सहपाठी थ, एक राजकीय अतिथि के रूप मे वहा गये। श्री नायर ने अवसर का लाभ उठाकर वहाँ एक भारतीय स्वतन्त्रता अभियान केन्द्र का स्थापना की और वहीं एक एशियाई सम्मलन का भी आयोजन किया। उस क्षेत्र म उनकी बहुमुखी गतिविधिया के परिणामस्वरूप उन्हे मचुका नायर का उपनाम दिया गया, उनके कुछ मित्र, अभी भी मजाक म उन्ह इस नाम से बुलात हैं।

उन्होन ब्रिटन विरोधी कायकलाप सम्पन्न करत हुए, मगोलिया तथा चीन की विस्तत यात्राए की। उनकी कुछेक यात्राएँ उन्ह भयानक रगिस्तानी क्षेत्रा और उच्च पवतीय इलाका म ले गयीं'। स्थानिक राजा व सरदार आदि उनके साहस का दखकर आश्चयचकित रह जाते थे और उनके व्यक्तित्व को साहस की प्रतिमा मानत थे।

उन घटनाओ का विवरण बहुत ही रोचक है जब मगोलिया तथा सिंग कियाग (सिगक्यिाग म उन्हे एक डाकू का सामना करना पडा था) मे अपन मिशन की सफलता के लिये पहले तो उन्ह एक जीवित बुद्ध और फिर एक मुस्लिम पुजारी की भूमिका निभानी पडी थी।

द्वितीय विश्व युद्ध आरभ होन से पूव, रासबिहारी बोस तथा नायर ने मिल कर जापान तथा दक्षिण-पूव एशिया म भारतीय स्वतन्त्रता लीग की स्थापना की और उसका विकास किया। श्री नायर लीग तथा जापान सरकार के बीच की प्रमुख कडी थे। श्री नायर तथा श्री बोस दोना का यह विश्वास था कि जापान अधिकृत या जापान नियन्त्रित क्षत्रो म, भारतीय स्वतन्त्रता के सघष को तोक्यो स्थित सैनिक अधिकारियो और उनकी क्षेत्रीय कमानो के सहयोग के बल पर ही बढाया जा सकता है।

किन्तु श्री नायर के दिमाग म यह बात स्पष्ट थी कि जापान की सहायता वांछनीय तो है किन्तु भारतीय स्वतन्त्रता अभियान को मूलत स्वय भारतीयो द्वारा ही पोपित और सुदृढ किया जाना चाहिए। वे चर्चा करते हैं 'कुछ लोगो का विचार यह था कि वे (श्री नायर) जापान के लाभ के लिए ही उसके साथ मिलकर कायशील थे। मगर श्री नायर का कहना है कि यह सब अज्ञानता के कारण बनाई गयी पूर्णतया गलत धारणा ही थी। व अपनी पुस्तक म बल देकर लिखत हैं— यह कहना या इसका आभास तक दिलाना कि मैं कभी भारतीय स्वतन्त्रता सघष का अग्रसर करने के अपने मूल लक्ष्य से लेशमात्र भी भटक गया, ईशनिंदा के समान होगा। सच बात तो यह है कि मैं बडी सख्या म उच्चतम स्तर के जापानियो को अपने साथ मिलाकर भारतीय अभियान के लिए काय करने के लिए राजी करवा सका"।

सन 1943 क आरम्भ म रासबिहारी बोस का जो भारतीय स्वतन्त्रता लीग

के अध्यक्ष थे और भारतीय राष्ट्रीय सेना के अध्यक्ष भी थे, स्वास्थ्य बहुत गिर गया। इसलिए श्री नायर ने एक आकस्मिकता-सभाव्यता योजना लागू किय जान की दिशा मे सक्रियता दिखाई। वह योजना यह थी कि सुभाष च द्र बोस को दक्षिण पूव एशिया लाया जाए। सुभाष सन् 1941 मे भारत से चले गय थे और विदेश म रहकर भारत के मुक्ति सघष को अग्रसर करन के लिए बर्लिन मे रह रहे थे। उ ह ऐसा सर्वाधिक योग्य व्यक्ति माना गया, जि हे अपने स्वास्थ्य के कारण अवकाश ग्रहण के पूव रासबिहारी बोस भारतीय सस्थाओ की बागडोर सौप सकते थे।

जमनी से सुमात्रा तक की सुभाष की ऐतिहासिक व साहसिक यात्रा, जमनी तथा जापान की नौसेनाओ के बीच काय-समजन का एक अभूतपूव और अद्वितीय नमूना थी। सुमात्रा से वे विमान द्वारा तोक्यो आये। वहा जनरल तोजो मे मिले और उसके कुछ समय बाद रासबिहारी के साथ सिंगापुर पहुचे। जिस आयोजन मे रासबिहारी ने प्रस नतापूवक भारतीय सस्थाओ का नेतत्व अपने चुने हुए उत्तराधिकारी सुभाष को सौंपा, उसका श्री नायर द्वारा किया गया वणन बडा सजीव है।

सुभाष का लक्ष्य शस्त्रास्त्र के बल पर भारत को आजादी दिलाना था। उ हाने जनरल तोजो को इस बात के लिए राजी कर लिया कि जापानी सेना द्वारा जिसकी सहायता आई० एन० ए० यानी आजाद हिंद फौज कर रही थी बर्मा की सीमा के पार भारत पर आक्रमण किया जाए। सुभाष का दुर्भाग्य ही कहगे कि उस समय जापानी सेना हर मोर्चे पर कठिनाई मे फँसी थी। इम्फाल अभियान मे तो उसे बहुत बुरी मार खानी पडी जो एक भीषण हानिकर दुघटना सिद्ध हुई।

सुभाष ने भारत पर एक बार फिर आक्रमण करने का प्रयास किया और आई० एन० ए० के लिए और अधिक शस्त्रास्त्र व गोला बारूद आदि की माँग की, किन्तु जापान स्वय शक्ति-क्षय के कगार पर खडा था। बर्मा क्षेत्र म जापानी सना के पाँव, दक्षिण-पूव एशिया कमान की मित्र राष्ट्र मनाआ न उखाड दिये थे। उसके बाद शीघ्र ही जापान न बिना शत आत्मसमपण कर दिया और भारतीय स्वतत्रता लीग तथा आई० एन० ए० के विघटन के साथ युद्ध समाप्त हो गया।

श्री नायर ने इन घटनाओ और उनकी त्रासदियो का बडे मर्मान्तक ढग से खेदपूवक वणन किया है। उ होने जापान की पराजय और उसके आत्मसमपण की भी सक्षिप्त चर्चा की है।

श्री नायर को इस आम विश्वास के प्रति भारी स देह है कि दक्षिण-पूव एशिया मे एक सोवियत नियत्रित क्षेत्र की ओर भागत हुए ताइपेह म एक जापानी विमान के दुघटनाग्रस्त हो जाने म सुभाष की मृत्यु हुई। उ ह तो इस बारे मे भी स देह है कि उनकी मत्यु हुई थी या नही जैसाकि बहुत स लोगा न कहा है। व इस

चर्चित घटना का लेकर किय जान वाले विभिन्न अनुमाना के बारे म भी पूणतया सतुष्ट नही है। साथ ही, इस अफवाह के बार मे भी सदिग्ध हैं कि सुभाष के पास स्वण तथा हीरे जवाहरात का खजाना भी था। उनका विचार है कि सत्य का उदघाटन नही हो पाया है और अब इसके जाहिर हाने की काई आशा भी नहीं है। इसलिए इस मामले पर और अधिक अटकलबाजी निरथक सिद्ध होगी। ' मेरा विचार है कि दक्षिण पूव एशिया म, सुभाष चन्द्र बोस से सबद्ध दु खद युग को भुला दना ही बेहतर होगा' ।

श्री नायर, प्रतिवष कुछ समय के लिए भारत अवश्य जाते हैं। उन्हान, भारतीय उपमहाद्वीप के दक्षिण पश्चिमी छोर पर स्थित अपन प्रान्त 'केरल का अति सुन्दर वणन किया है जो एक रमणीक स्थल है और जहाँ शान्त समुद्र-ताल व लहलहात हरे भरे धान के खेतो के साथ-साथ अतिभव्य ताड वन भी हैं और जिसकी स्वर्णिम आभा वाली सुन्दर समुद्र तटो से सज्जित तट रखा है। उनके जन्म स्थान तिरुवनतपुरम के निकट ही, कोवलम तट की सुन्दर सैरगाह है जिसे विश्व की सर्वाधिक सुन्दर स्नानयाग्य समुद्री खाडियो मे से एक होने का गौरव प्राप्त है।

श्री नायर कुछ खेद के साथ अपने जन्म प्रान्त की दशा का वणन करते हैं। पच्चीस वष पूव केरल राज्य के लोग इतने अधिक कुठाग्रस्त हो गये कि उन्होन इस सिद्धान्त पर दाव लगाने का निणय किया कि चूकि उसस बदतर तो कुछ हो नही सकता था इसलिए क्यो न अपनी आथिक कठिनाइयो से मुक्ति पाने के लिए उग्रवाद का दामन थाम लिया जाए। इस प्रकार, सन 1957 मे, वह राज्य, विश्व का एसा प्रथम खड बन गया जहा ससदीय चुनाव की लाकतन्त्री प्रक्रिया के माध्यम से कम्युनिस्ट पार्टी को अपनी सरकार बनाने के लिए मत दिये गये।

लकिन लोगो को यह निष्कष निकालने म बहुत समय नही लगा कि उन्हान गलत निणय लिया था। लगभग दो वष के भीतर ही कम्युनिस्ट उद्देश्यो के प्रति मोहभग होने से उस सरकार का हटा दिया गया। तब से अब तक कोई कम्युनिस्ट बहुमत विद्यमान नहीं है और प्रान्त की सरकार मिली जुली पार्टिया स बने सरकार तत्र के हाथो म है।

अति प्रतिकूल व कठिन आर्थिक स्थिति तथा राज्य सरकार की अन्य अनेक समस्याआ की ओर किसी कडवाहट या निराशावाद की भावना के बिना, केवल एक प्रकार की व्यग्यात्मक विनोदप्रियता के साथ सकेत किया गया है। श्री नायर का विश्वास है कि जहाँ भी वाँछित इच्छा भावना होती है वहाँ स्थिति को निश्चय ही ज्यादा अच्छी तरह सुधारा जा सकता है। उनका यह भी विश्वास है कि उनके जन्म प्रान्त को एक स्वर्गिक रूप दिए जाने की बहुत अधिक सभावनाएँ हैं।

सुधार की दिशा मे उन्होने अति प्रशसनीय कुछ मोटी माटी सलाह भी दी है। इस सबध मे, उन्होंने जापान व अन्य देशा के अपने अनुभवा को आधार बनाया है। उनका रुख बहुत नया और सकारात्मक है।

भारत व जापान के बीच विभिन्न क्षेत्रा मे और निकट की सहभागिता की भारी सम्भावना सम्बन्धी उनके विचार व टिप्पणिया विशेष रूप स उल्लेखनीय है। तत्सबधी चिंतन और सकारात्मक कारवाई के लिए रूपात्मक कल्पना के सन्दभ मे, वे सर्वाधिक योग्य व्यक्तिया मे से एक है। कारण यह कि भारत व जापान के बीच, शाति व मैत्री की द्विपक्षीय सधि सबधी वार्ता आदि के दौरान वे भारतीय राजदूत के परामशदाता थे। शाति सधि के बाद वे दोना देशो के बीच सदभाव मैत्री व सहयोग को अमल म लाने के लिए विभिन्न सस्थाआ से निकट सम्पक बनाय हुए है।

उनकी यह सलाह कि भारत व जापान के बीच के सबधो म क्या कुछ हा रहा है और क्या कुछ अपेक्षित है, वाकई विचारणीय है। यह आशा की जानी चाहिए कि दोनो पक्षो के सगत अधिकारीगण इस बात को उचित महत्व देंगे। य विचार एक अनुभवी और ऐसे वरिष्ठ व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं जिनके लिए दोनो देशो के बीच आपसी लाभ के लिए निकट सबधो की स्थापना व पोषण आधी शताब्दी से भी अधिक समय स एक सक्रिय उद्देश्य रहा है।

अपनी पुस्तक मे, श्री नायर न द्वितीय विश्व युद्ध से पहले व बाद की अनक महत्वपूण (और दु खपूण भी) घटनाओ का रोचक और विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। उन्होंने सन 1945 मे राख के एक ढेर की स्थिति को प्राप्त जापान की आश्चयजनक पुन स्थापना की भी चर्चा की है। उन्हान अत्यधिक ईमानदारी के साथ एक अति महत्वपूण काल की महान घटनाओ के कथापात्र अथवा चश्मदीद गवाह के रूप मे इस पुस्तक की सामग्री प्रस्तुत की है।

उनकी पुस्तक से हम जापान और दक्षिण-पूव एशिया के भारतीय समूह के अपने देश को स्वतन्त्रता दिलान की प्रक्रिया को गति प्रदान करने के अति साहस पूण किन्तु बहुत कम विदित प्रयासो की दुलभ और गहन जानकारी मिलती है, जिनके बारे म, खेद की बात है कि उनके देश द्वारा उन्हे कदाचित वाछित और उचित मान्यता नही दी गयी है।

यह एक अति रोचक और चित्ताकषक पुस्तक है। आत्मकथा जसी होत हुए भी एतिहासिक रूप मे भी यह अमूल्य और विचारोत्तेजक कृति है। इसम बहुत सी ऐसी सामग्री है जो विद्वानो को वतमान शताब्दी के इतिहास के उथल पुथल भरे काल के अति महत्वपूण सन्दभ मे प्रकटत एक नयी दृष्टि प्रतीत हो सकती है।

मेरी आशा है कि अन्य लोग भी, इस पुस्तक का आनन्द व लाभ उठाएँगे।

उतना ही, जितना मैंने उठाया है, और यह पुस्तक, भारत-जापान मैत्री व सहयोग के लक्ष्यों के लिए जिनकी दिशा मे श्री नायर ने अपने असाधारण जीवन का सर्वोत्तम भाग समर्पित कर दिया है, एक अमूल्य योगदान सिद्ध हो।

उनको व उनके पाठको को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ!

असाहि ईवनिंग न्यूज
तोक्यो

किम्पेई शिबा

1

प्रस्तावना

आधुनिक युग के इतिहास म बोसवी सदी का पूर्वाध सर्वाधिक महत्वपूण सैनिक तथा राजनीतिक घटनाओ का साक्षी रहा है। एक पीढी से भी कम समय म दो विश्व युद्ध हुए। दूसर विश्व युद्ध म अमरीका ने जापान के विरुद्ध अणु बम का उपयोग किया जो 1945 तक की विज्ञान की सर्वाधिक घातक इजाद थी। दो वडी राजनीतिक क्रातियाँ हुई। परमाणु शस्त्रास्त्र की होड म लगी दो बडी सैनिक शक्तियो के उभरने से न सिफ उन दोना के अपने विनाश का वल्कि समूचे विश्व के विनाश का खतरा उत्पन्न हो गया।

इसी अवधि मे जापान सर्वाधिक शक्तिशाली एशियाई दश के रूप मे उभरा। कुछ हद तक उपनिवेशवादी पश्चिमी देशो के रास्ते पर चलते हुए जापान भी विस्तारवाद की ओर बढा। सन 1941 म अपनी सीमाआ को लाधकर जापान ने अमरीका तथा ब्रिटेन की सयुक्त शक्ति को चुनौती दी, च्याग काई शेक के चीन के साथ पहले से ही उसकी लडाई चल रही थी। आरभ मे कुछ शानदार विजय के बाद जापान को पहली वार मात खानी पडी और एक विदेशी शक्ति ने उसकी जमीन पर कब्जा कर लिया। लेकिन एक दशक स भी कम समय मे जापान फिर अविश्वसनीय ढग से उभरकर ऊपर उठा, ससार मे ऐसा कोई और उदाहरण नही है जबकि कोई दश इतनी जल्दी और इतने कम समय म दुबारा उभरकर ऊपर उठा हो। दस वप से भी कम अवधि मे वह न सिफ एशिया का एक महान देश बल्कि विश्व की एक महान आर्थिक शक्ति भी बन गया।

जापान का उत्थान और पतन लगभग उसी समय म हुआ जबकि इतिहास का सर्वाधिक शक्तिशाली और सबस बडा औपनिवेशिक साम्राज्य यानी ब्रिटिश राज का पतन शुरु हुआ। दो सदियो तक ब्रिटिश सत्ता की गुलामी के बाद अतत अगस्त 1947 मे भारत दासता की वेडियो से मुक्त हुआ। सन 1931 मे विन्स्टन चर्चिल की यह भविष्यवाणी प्राय सच सिद्ध हुई कि भारत को खोकर ब्रिटेन एक छोटी शक्ति रह जायगा। भारत की स्वतन्त्रता के बाद एशिया तथा अफ्रीका के अन्य उपनिवेश भी एक-एक करके स्वतन्त्र होते गये।

मेरा जन्म इस शताब्दी क पहले दशक म हुआ था। अपनी पीढी के अन्य लोगो

की तरह मैंने भी इन घटनाओं को और विश्व स्तरीय महत्व की बहुत-सी अन्य घटनाओं को या तो भोगा है या फिर बहुत निकट से उन्हें महसूस किया है। एक स्वतन्त्र देश के रूप में भारत का अभ्युदय मेरे लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना थी, खास तौर पर इसलिए भी कि वैसे तो आजादी की यह कशमकश दो सौ वर्ष तक चलती रही थी लेकिन इसका चर्मोत्कर्ष उन्हीं दिनों हुआ जबकि मैं स्वयं आजादी के आंदोलन में पूरी तरह सक्रिय था। राजनीतिक जीवन का वह सर्वाधिक सक्रिय युग था।

उस युग की कहानी एक ओर जहां दारुण दुःख और विपदाओं की कहानी है, वहीं दूसरी ओर असाधारण शौर्य तथा बलिदान की भी कहानी है। अधिकांश देश प्रेमी स्वदेश में ही संघर्ष कर रहे थे किंतु बहुतों ने देश के बाहर से यह लड़ाई लड़ी। मैं प्रमुख रूप से दूसरी श्रेणी का सिपाही रहा हूँ।

भारत में अपने जीवन के आरंभिक वर्षों की संक्षिप्त चर्चा के बाद, इस पुस्तक के प्रारंभिक अध्यायों में जापान, चीन, भीतरी मंगोलिया और प्रशांत क्षेत्र में तथा मंचुको क्षेत्र में, जिसे तथाकथित वृहत्तर पूर्व एशिया युद्ध में जापान के प्रवेश से पूर्व यह नाम दिया गया था, एक भारतीय स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में मैंने अपने कार्यकलापों का जिक्र किया है। बाद के अंशों में मूलतः पूर्व तथा सुदूर पूर्व में भारतीय स्वतन्त्रता लीग में मेरी गतिविधियों की चर्चा है, जिसकी स्थापना महान भारतीय क्रांतिकारी देशभक्त रासबिहारी बोस और मैंने मिलकर की थी। जब, सन् 1943 के आरंभ में रासबिहारी बोस गंभीर रूप से बीमार हो गये तो उन्होंने ऐसा प्रबंध किया कि उनके उत्तराधिकारी की हैसियत से सुभाषचन्द्र बोस को जर्मनी से बुलाया जाये जिससे कि वे भारतीय स्वतन्त्रता लीग के अभियान का नेतृत्व संभाल लें। मैंने इस काम में उनकी पूरी पूरी मदद की।

जापान पर मित्र देशों की सेनाओं के आधिपत्य के अंतिम वर्षों में मुझे जापान में भारतीय राजदूत के परामर्शदाता के रूप में काम करने का अवसर मिला था, मेरे इस दायित्व का संबंध प्रमुखतः जापान तथा भारत के बीच द्विपक्षीय संधि के संबंध में बातचीत कराने से था। वैसे सन् 1952 के बाद बहुत से परिवर्तन हुए। स्वयं जापान के इतिहास की धारा भी बदली। परिवर्तन के इस क्रम में मैंने भी एक व्यापारी के रूप में एक नया मार्ग अपनाया। इसके लिए मैंने अपने मित्रों की मजाक में कही गयी लेकिन निष्कपट बातें भी सुनी कि मैंने अपनी स्थिति या मर्यादा को एक सीढ़ी नीचे गिरा लिया है यानी समुराई अथवा 'रौनिन' के पद के स्थान पर मात्र एक व्यापारी बन गया हूँ।

इन पुरानी बातों का केन्द्र या कहूँ कि मुख्य सम्बन्ध मूलतः मेरे राजनीतिक जीवन से ही है। भारत जापान शांति-संधि सम्पन्न किये जाने के बाद मैंने दोनों देशों के बीच सद्भाव तथा मैत्री बढ़ाने की दिशा में कार्यरत अनेक संस्थाओं को

सक्रिय समर्थन देना आरम्भ कर दिया (जो मैं अब भी करता हूँ)। विशेषकर, तोक्यो स्थित भारतीय संस्था के प्रेसिडेंट के रूप मे। लेकिन एक व्यापारी के रूप म अपनी गतिविधियो को मैंने इस काबिल नही समझा कि उनकी विस्तृत चर्चा की जाय।

मेरे बहुत से मित्रो ने बार बार मुझ से यह आग्रह किया कि मैं अपने संस्मरण लिखू। उनकी दलील यह थी कि सुदूर पूर्व तथा दक्षिण पूर्व एशिया म भारत के स्वतन्त्रता संग्राम से सर्वाधिक अभिन्न रूप से जुडा मैं ही सबसे पुराना वयोवद्ध भारतीय हूँ। मुझे चाहिए कि अपने पीछे इस अभियान के इतिहास के सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल के तमाम उतारो और चढावो की सच्ची कहानी की वसीयत आने वाली पीढियो के लिए छोड जाऊँ। किन्तु इसका अवसर मुझे अभी हाल ही मे मिल सका है और वह भी सही अर्थो मे एक दुर्घटना के परिणामस्वरूप ही।

सन् 1980 म मैं अपने एक मित्र से मिलने तिरुवनन्तपुरम गया था। उस समय दुर्भाग्य से उनके घर के चिकने फर्श पर मैं फिसल गया और मेरी पीठ म गभीर चोट आई और वहा स लौटकर तोक्यो के एक अस्पताल म मुझे कई सप्ताह बिस्तर पर लेटे रहना पडा। उस अनचाहे विश्राम-काल म मैंने एक टेप रिकार्डर मँगवाया और अपने विगत जीवन और कार्यकलापो की जो भी बातें मुझे याद थी उन्ह बोलना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार मानसिक तनाव को समाप्त करने के उद्देश्य मे मन की बात कहने का जो सिलसिला शुरू हुआ वही इस पुस्तक के लिए आधारभूत सामग्री सिद्ध हुई।

अस्पताल से लौटने के बाद मैं जल्दी ही अपनी सामान्य दिनचर्या म व्यस्त हो गया और अगले एक वर्ष तक ये टेप एक सुरक्षित स्थान पर यू ही रखे रहे। सन 1981 के मध्य म छुट्टी के विचार से कुछ समय के लिए जब मैं केरल म आया हुआ था, उस समय मैंने उन्ह निकाला और उनके सम्पादन तथा उनकी प्रामाणिकता क उद्देश्य से अपनी कुछ यादो को ऐतिहासिक तथ्यो से मिलान का कार्य किया। ये सब उसी कार्य का परिणाम है कि मेरे संस्मरणो ने इस पुस्तक का रूप लिया जो मैं विनम्रतापूर्वक अब अपने सुधी पाठको के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ।

अनेक लेखको द्वारा जिनमे भारतीय लेखक भी शामिल हैं जापान तथा द्वितीय विश्व युद्ध के विषय म बहुत कुछ लिखा जा चुका है। भारतीय लेखको ने भारतीय स्वतन्त्रता लीग और आई० एन० ए० की तथा सुभाषचन्द्र बोस की दक्षिण पूर्व एशिया मे भूमिका के विषय म बहुत लिखा है। किन्तु खेद की बात है कि इनमे अधिकाश ऐसे लोग हैं जो घटनास्थलो के कहीं आसपास भी नही थे लेकिन उन्होंने विस्तारपूर्वक इनकी चर्चा की है और प्रामाणिकता का दावा किया है। अनेक सन्दर्भो म या तो वास्तविक अज्ञान के कारण अथवा निहित हितो के कारण

इन तथ्या का तोड मरोड कर निरुपित किया गया है।

इस पुस्तक के उद्देश्यो म एक उद्देश्य यह भी है कि भारत के स्वतन्त्रता सग्राम के अति महत्वपूण काल की घटनाआ को उनके सही परिप्रेक्ष्य म प्रस्तुत किया जाए। मने अपन विश्लेपण या मूल्याकन मे पूणतया वस्तुपरक और ईमान दार रहन का प्रयास किया है। जो कुछ भी मैंन कहा है, मैं उसकी पूरी जिम्मदारी लेता हूँ क्याकि पुस्तक मे वणित प्रत्येक अनुभव के पीछे या तो एक पात्र के समान मेरी निजी जानकारी का आधार है या फिर एक ऐसे चश्मदीद व्यक्ति की आँखो देखी पक्षपातहीन गवाही है जो घटनास्थल के बहुत करीब रहा हो। मुझे महान भारतीय रासबिहारी बोस के साथ मिलकर भारतीय स्वतन्त्रता लीग की स्थापना करन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। साथ ही मुझे लीग तथा जापान सरकार के बीच एक निकट सम्पक सूत्र की भाँति काय करन का अवसर भी मिला था। सुभाप युग मे स्थिति मे थोडा परिवतन आया था कि तु जो भी हुआ हो इस घटना क्रम के अ त तक मैं हमेशा इससे जुडा रहा था।

मेरे विवरणों मे पाठका को, उ होने अ यत्र जा कुछ पढा होगा उससे कदाचित भि न सामग्री मिलेगी। मेरी टिप्पणिया या मूल्याकन आदि से उन लोगो को कुछ परेशानी भी हो सकती है जो पक्षपातपूण राजनीतिक प्रचार पर विश्वास करते रहे हैं। उदाहरण के लिए मेरी यह मा यता है कि सुभापच द्र बोस यद्यपि निश्चय ही एक महान नता और परम उत्साही स्वत त्रता सेनानी और देशभक्त थे किन्तु भारतीय स्वत त्रता की प्राप्ति के लिए सघप करने वाला की सूची मे रासबिहारी बोस का स्थान उनसे सदा ऊँचा रहेगा। इन सस्मरणो के सुधी पाठको का आह्वान करता हूँ कि व सवेदना और भावुकता मे न बहकर ठडे दिमाग से सोच विचार करन के बाद ही अपनी राय कायम करें।

कुछ अ य बातें भी है जि हे सही रूप म प्रस्तुत करने का प्रयास मैंने किया है। यह धारणा पूणतया गलत है कि आजाद हि द फौज का गठन कप्तान मोहनसिंह द्वारा किया गया था। उ हाने स्पष्टतया अत्यधिक आत्म प्रचार किया है किन्तु मेरे विचार मे सत्य यह है कि 'स्वप्रतिष्ठित जनरल' मोहनसिंह को एक जापानी मेजर के अलावा अ य किसी ने मा यता नही दी थी। वस्तुत उ होने उस सगठन को तबाह कर दिया और रासबिहारी के साथ पूणतया आधारहीन मुद्दे पर झगडा किया और अ तत उससे हानि उठाकर भारतीय युद्धबदियो के बीच नितान्त अस्तव्यस्तता फैला दी थी।

व्यापक रूप से प्रचलित एक अ य गलत धारणा यह है कि मोहनसिंह द्वारा आई० एन० ए० का विघटन कर दिय जाने के बाद सुभाप ने उसे पुनगठित किया था। यह एक भ्रान्त धारणा है। तथ्य यह है कि पुनगठन का काय रासबिहारी बोस द्वारा किया गया था जि होंने सुभाष का एक कायक्रम और साधक सस्था के रूप

मे एक समूची सही व्यवस्था सौपी थी। हालाकि स्वय सुभाष की नीयत पूरी तरह पाक और साफ थी किन्तु अतत उन्होंने आई० एन० ए० को जापानी सेना की एक छोटी सी अतिरिक्त उपशाखा की भाति भारतीय युद्ध की दिशा मे झाक दिया था जिसका विनाशकारी परिणाम हुआ था। उस समस्त घटनाचक्र के इतिहास को जानने की कोशिश करने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस बात को अच्छी तरह जानता है।

मेरी कही बातो मे ऐसी और अन्य भिन्नताएँ इस नीयत स नही लिखी गयी हैं कि किसी बात को नकारा जाए या उस काल मे सुभाष अथवा आई०एन०ए० द्वारा किये गए महान देशभक्तिपूण सघष के महत्व का अवमूल्यन किया जाए। मैं तो केवल यह कहना चाहता हूँ कि घटनाओ को उनके सही परिप्रेक्ष्य मे देखा जाना चाहिए और अन्य तथ्यो पर विशेष रूप से रासबिहारी बोस व उनके देशवासियो के अथक व अग्रगामी कायकलाप से हटकर विचार नही किया जाना चाहिए। उन्ह कभी भी भुलाया नही जाना चाहिए, वस्तुत उन्हे ऐतिहासिक स्तर की मान्यता मिलनी ही चाहिए जिसके वे नि सदेह हकदार हैं। भारत की आजादी किसी एक या दो चार व्यक्तियो की या किन्ही सस्थाओ की उपलब्धि नही है बल्कि बहुत सी महान विभूतियो के नेतत्व और विभिन्न परिस्थितियो का सबल पाकर असख्य लोगो द्वारा किये गये महान प्रयासो का फल है।

वास्तव मे अतिम श्रेणी में जापान द्वारा आरभ किये गये वहत्तर पूव एशिया युद्ध को भी लिया जाना चाहिए। यह बात अलग है कि स्वय जापान के लिए इस युद्ध का क्या नतीजा रहा था। निश्चय ही जापान को भारी पराजय उठानी पडी किन्तु इसके बारे मे सर आरनाल्ड टोयनोई-जैसे विख्यात ब्रिटिश इतिहासज्ञ ने कहा है कि पश्चिम के विरुद्ध जापान ने जो युद्ध छेडा था, उसके ऐसे व्यापक प्रभाव हुए जिन्होंने विश्व के समस्त इतिहास के, विशेषकर पूव तथा पश्चिम के बीच के, सबधो के प्रभाव को ही बदल दिया। उसके बाद से पश्चिम के देश पूव के देशो के प्रति मनमाना रुख नही अपना सके।

मैं यह मानता हूँ कि उपनिवेशवादी ब्रिटिश शासको के विरुद्ध सघष मे मुझे *किसी ब्रिटिश के प्रति व्यक्ति के स्तर पर नही उस वग के प्रति रोष था।* अब मेरे देश के आजाद होने के बाद मेरे मन मे किसी समूह या किसी व्यक्ति के प्रति, चाहे वह किसी भी जाति या रग का क्या न हो, कोई दुर्भाव नही है। मेरे मित्रो मे न केवल भारतीय और जापानी हैं बल्कि अमरीकी, अग्रेज व अन्य देशो के निवासी लगभग सभी राष्ट्रीयताओ के व्यक्ति हैं। अपने अनुभवो को याद करके इन सस्मरणो को लिपिबद्ध करके उन्ह प्रस्तुत करते समय मेरे मन म किसी के प्रति कोई दुर्भावना नही है।

जिन लोगो ने अपने अनुभव मुझे बताकर और इतिहास के इस महान युग के

बारे म अपने विचार बताकर तथा अति उपयोगी परामर्श देकर मेरी सहायता की है, उनके प्रति मैं आभारी हूँ।

मैं श्री चिम्पेई शिबा का विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने अत्यधिक व्यस्तता के बावजूद, समस्त पाडुलिपि पढी और उदारतापूर्वक (इस पुस्तक में शामिल किए जाने के लिए) 'परिचय' लिख भेजा। उनके शब्दों को इस पुस्तक म सम्मानित स्थान देकर मैं अपना विनम्र आभार अवश्य प्रदर्शित करना चाहूँगा।

मै ओरियन्ट लौगमन, मद्रास के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करना चाहूगा कि उन्होंने इस पुस्तक के सपादन का निरीक्षण किया और बहुत कम समय म यह पुस्तक तैयार कर दी।

तोक्यो

ए. एम. नायर

युगा से भूगोल न हम एक महान देश बनाया है, इतिहास न हम एक देश बनाया है, एक समान सस्कृति ने हम एक देश बनाया है और हमारी एक समान आकाक्षाओ, एक-समान आशाओ-आशकाओ विजय-पराजय ने हमे एक बनाया है। यह हमारा अतीत है। वतमान मे, हमारी सामूहिक मेहनत, सामूहिक बलिदान और सामूहिक सघप के बल पर हम स्वतत्रता मिली। अतीत और वतमान न हम एक समान आधार दिया है। उसी प्रकार हमारा भविष्य भी एक-समान हो— एक एसा भविष्य जिस पान के लिए हम प्रयासरत हैं हमारे लाखा-करोडो लागा का भविष्य, उनका कल्याण। हम किसी भी क्षेत्र मे हो उद्देश्य की एकता, प्रयास और बलिदान की एकता हमार लिए हमेशा वाछनीय होगी।

—जवाहरलाल नेहरू

विपय-सूची

भूमिका 5
श्रीकात वर्मा

एक परिचय 9
किम्पेई शिबा

प्रस्तावना 17

1 मेरा ज म स्थान 27
2 मेरा शैशव 33
3 एक नया मोड 39
4 सामाजिक सुधार आ दालन 46
5 चौराहे पर 52
6 जापान की आर 62
7 क्योतो विश्वविद्यालय म 69
8 रासबिहारी वोस स भेंट 77
9 जापान के सम्राट का राज्याभिपेक 85
10 क्योता का छात्र-जीवन 92
11 अध्ययन के साथ थाडी राजनीति भी 96
12 एक और मोड 104
13 मचुका म 114
14 मगोलिया और सिंकियांग म 128
15 तोक्या यात्रा एक चर्चा 145
16 ब्रिटन के साथ ' आर्थिक युद्ध 151
17 पुन मचूको म 162
18 मेरा विवाह 169
19 मचुको म जासूसी 174

20 द्वितीय विश्वयुद्ध तथा दक्षिण पूव एशिया म भारतीय स्वतन्त्रता लीग 186
21 भारतीय स्वतन्त्रता लीग का तोक्यो सम्मेलन 201
22 बगकाक सम्मलन 209
23 आजाद हिन्द फौज 223
24 भारतीय स्वतन्तता लीग का स्थानातरण सिंगापुर को 234
25 सुभाषचन्द्र बोस का आगमन 241
26 इम्फाल का मोर्चा 265
27 आजाद हिन्द फौज का विघटन 273
28 जापान द्वारा आत्मसमपण 286
29 सुभाषचन्द्र बोस का अतर्धान 294
30 जस्टिस आर० बी० पाल का युद्ध अपराधो पर विसम्मत निणय 307
31 भारत जापान शाति सधि 317
उपसहार 331

परिशिष्ट

1 न्याख्यात्मक विवरण (1) बुशिदा, (2) रोणिन
2 बैंगकाक सम्मेलन (15 जून 1942) के उदघाटन के अवसर पर का सभापति पद से रासबिहारी बोस भाषण 342
3 जस्टिस डा० राधा विनोद पाल तथा श्री यासाबुरो शिमोनाका के सक्षिप्त जीवन वत्त 345
4 भारत-जापान के बीच, चिरस्थायी शाति व मैत्री की सधि—9 जून 1952 356

लेखक

मेरा जन्म-स्थान

मेरा जन्म स्थान तिरुवनतपुरम है जो स्वतन्त्र भारत के एक छोटे राज्य केरल की राजधानी है। ब्रिटिश शासन काल म, यह तिरुविताकूर रियासत का मुख्य केन्द्र था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद, तिरुविताकूर को उसके उत्तर मे स्थित पडोसी रियासत, कोचीन के साथ मिला दिया गया। सन् 1956 म भाषा के आधार पर जब भारत की रियासतो का पुनगठन किया गया तब तिरुविताकूर कोचीन और पूवकालीन मद्रास प्रात के मलबार क्षेत्र को मिलाकर, केरल नाम दिया गया। इस क्षेत्र की भाषा मलयालम है।

भारत के दक्षिण पश्चिमी छोर मे स्थित केरल एक सँकरा भू क्षत्र है जिसका क्षेत्रफल भारत के कुल क्षेत्रफल के एक प्रतिशत से कुछ ही अधिक है। किन्तु जन सख्या घनेपन के लिहाज से (प्रति वग मील मे, 550 व्यक्ति से भी अधिक) इस क्षेत्र का स्थान भारत म पहला है। इसके पश्चिम म, स्वच्छ चमचमाता अरब सागर है, हरियाले वना से आच्छादित घाटिया वाले पश्चिमी घाट की ऊँची नीची पहाडिया हैं। केरल भारतीय उपमहाद्वीप के सर्वाधिक मनोरम क्षेत्रो मे से एक है। सुनहरा सागर तट, शात झीलें, धान के हरे भरे खेत और नारियल के घने उपवन इसकी शोभा बढाते हैं। देशी नौकायें, पश्चजल के वक्ष पर, मनोहारी ढग से मन्द मन्द तरती है, मानो वना से ढँके किनारो पर धीरे धीरे स्केटिंग कर रही हो। तिरुवनन्तपुरम के निकट का समुद्र तट कोवलम विश्व की एक सुन्दरतम तटवर्ती सरगाह है। इसकी धनुषाकार खाडी की स्फटिक-स्वच्छ जल-तरगे हरीतिमा से आच्छादित सुन्दर तटो के चरण पखारती हैं। इसके स्नान घाट एक असाधारण सौन्दय की सृष्टि करते हैं। इसके निकट की एक पहाडी पर, एक अति कलात्मक भवन के निकट 'कोवलम अशोक होटल' बना है। यह कलात्मक इमारत भूतपूव महाराजा न अपनी छुट्टियाँ बिताने के लिए बनवायी थी।

केरल ने सन् 1957 म विश्व का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया जबकि यहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी ने आम चुनाव मे अधिकाश सीटें जीत कर अपनी

सरकार स्थापित कर ली थी। यह प्रथम अवसर था जबकि विश्व में किसी भाग में लोकतंत्री तथा संसदीय प्रक्रिया के माध्यम से निर्वाचित कम्युनिस्टों ने सत्ता अपने हाथ में ली थी। इस शनिक प्रगति में समरूप आर्थिक प्रगति की भीषण अपर्याप्तता से उत्पन्न निराशा का अनिवार्य परिणाम यह सकते हैं। जनता ने इस सिद्धान्त पर दाँव लगाया कि चकि इससे बदतर कुछ नहीं हो सकता इसलिए अतिवाद को ही क्यों न आजमाया जाय। किन्तु लोग शीघ्र ही कम्युनिस्टों के उद्देश्यों के मोह के चंगुल से निकल आये और दो वर्ष के भीतर ही यह सरकार सत्ता खो बैठी। सन् 1959 के बाद में राष्ट्रपति शासन की अल्प कालावधि को छोड़ इस राज्य का प्रशासन गैर-कम्युनिस्ट दलों की सहभागिता में मिली-जुली सरकार चलाती रही।

इस क्षेत्र के उद्भव की एक दंत-कथा है। कहा जाता है कि इसके सृजन का श्रेय अवतार पुरुष परशुराम को है। उस समय के क्षत्रीय सामंतों से उन्होंने अनेक युद्ध करके उन पर विजय प्राप्त की। किन्तु बाद में उन्हें इस नर-संहार के कारण बड़ा क्षोभ हुआ। इसके प्रायश्चित के लिए उन्होंने कठिन तपस्या की और अंत में उन्होंने गोकर्ण से अपना फरसा सागर में फेंक दिया। जहाँ फरसा गिरा, वहाँ तक जल उतर गया और वहीं केरल की धरती उभर आई। ये सब विशुद्ध काल्पनिक कथा के समान लग सकते हैं, तो भी इस बात के पर्याप्त वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध हैं कि भारत का दक्षिण पश्चिमी भाग कभी सागर की सतह से नीचे डूबा हुआ था। जो भी हो यह धारणा कि केरल की धरती समुद्र का वरदान है हिन्दुओं में आम तौर पर प्रचलित है। उनमें से कुछ की, जो जीवन की वर्तमान विषम स्थिति से निराश हैं, हार्दिक इच्छा है कि परशुराम, चाहे अब वे कहीं भी हों, एक बार पुनः अवतरित हों और अपने फरसा प्रयोग से समस्त केरल राज्य को पुनः सागर के गर्भ में पहुंचा दें ताकि उनकी समस्त पीड़ाएँ मिट जायें।

केरल का समुद्री इतिहास कोई 30 शताब्दी पुराना बताया जाता है जिसका आरंभ फिनीशियनों के आगमन से हुआ। ईसा से पूर्व 10वीं शताब्दी में, राजा सोलोमन ने अपने व्यापारिक पोत भारत भेजे थे जिन्होंने आफिर में लंगर डाला था, अब यह स्थान पूवार कहलाता है और त्रिवेन्द्रम के निकट स्थित है। सिकन्दर की मिस्र विजय के बाद भारत के साथ ग्रीस निवासियों के व्यापार संपर्क का केन्द्र केरल था। कालान्तर में अरब व्यापारियों ने भी इस क्षेत्र के व्यापार में प्रमुख स्थान ले लिया। उनका तब तक बोलबाला रहा जब तक कि पाश्चात्य उपनिवेशी शक्तियों का भारत में पदार्पण नहीं हुआ जिसका आरंभ पुर्तगाली अन्वेषक व साहसी यात्री वास्को डि गामा के आगमन से हुआ। वह यहाँ के मसाले आदि की खोज में आया था और सन् 1498 में कालीकट में उतरा था। उसके और कालीकट के राजा जामूरी के बीच एक व्यापार समझौता हुआ था।

पुर्तगालिया के बाद, बहुत से अन्य विदेशी भी आये, जिनमे ब्रिटेन वासी भी थे, जिन्हान अन्तत समस्त भारत पर कब्जा जमा करके उसे अपने साम्राज्य मे मिला लिया।

यहाँ के लोग अधिकाशत हिन्दू धर्मावलबी हैं। गौतम बुद्ध के बाद सर्वाधिक सम्मानित भारतीय मनीषी शकराचाय का जन्म केरल मे हुआ जो अद्वैतवाद के सर्वोच्च व्याख्याता रहे हैं, जिसे मानव विचारधारा और दशन मे महती योगदान देने की मान्यता प्राप्त है। किन्तु यहा हिन्दू धम के साथ-साथ मसीही धम तथा इस्लाम धम भी बन रहे। भारतीया का मसीही धम मे सवप्रथम धर्मान्तर ईसा पश्चात् प्रथम शताब्दी मे सत थोमस द्वारा केरल ही मे किया गया था जिन्हे सीरियाई मसीही समुदाय का पूवज माना जा सकता है। आजकल यह समुदाय इस राज्य का प्रबुद्ध तथा महत्वपूण अग है। भारत मे पहले से आबाद मुस्लिम भी, जो मलबार क्षेत्र के माप्पळा कहलाते हैं, उन अरब व्यापारियो के वशज बताये जात हैं जिन्होंने केरल की नारियो से विवाह किया था। और तो और, कोचीन मे एक यहूदी समुदाय भी है जिनके पूवज कुछ तो, कदाचित विश्व म सवप्रथम हिब्रू समुदाय के यहूदी रहे होगे। बताया जाता है कि वे राजा सोलोमन के जहाजो मे भारत आये थे। इस प्रकार अनेक विदेशी सम्पर्कों के बावजूद, केरल का एक अपना रूप बना रहा है। उसने विदेशी प्रभावा को आत्म सात तो कर लिया किन्तु अपनी दशीय सस्कृति पर आँच नही आन दी। भारत की सास्कृतिक परम्पराओ म अनेकता देखने मे आती है। तो भी उन सबके भीतर एक समानता की धारा बहती है जिसमे केरल का अशदान अन्य राज्या के अशदान से कही बढकर है। यहाँ के धार्मिक तथा सास्कृतिक तान-बाने म हिन्दू धम मसीही धम, इस्लामधम, बौद्ध धम और यहाँ तक कि जन धम के भी रग मिलत हैं, हालांकि, बौद्ध तथा जैन धम की यहाँ कोई स्थायी छाप नही रह सकी है। लेकिन यहाँ के सामाजिक रूप मे, जिसका अपना एक निराला रग है, आय और द्रविड, उत्तर और दक्षिण दोनो का सुन्दर सम्मिलित रूप परिलक्षित होता है। प्रत्यक सस्कृति के निजत्व को ज्या-का-त्या बनाये रखने के बावजूद, उन सब मे एकता को भी स्थापित किया गया है जिसने भारतीय सभ्यता की आवृद्धि म योग दिया है।

इस राज्य ने आठवी सदी के आसपास से, भारतीय आय भाषाआ म से प्राचीनतम भाषा सस्कृत और उसके महान बहुमुखी साहित्य के विकास म भी महत्वपूण भूमिका निभाई है। न केवल दशनशास्त्र को बल्कि खगोल विज्ञान, गणित शास्त्र तथा ज्योतिष विज्ञान को भी इस क्षेत्र का योगदान उच्चकोटि का रहा है। केरल के भास्कर न, छठी शताब्दी ही म आयभट्ट की खगोल शास्त्र सबधी प्रसिद्ध कृतिया का सरल सक्षिप्त रूपान्तर तैयार कर दिया था। केरल म 'सस्कृत साहित्य का इतिहास नामक कटवकुरूर राजराज वर्मा लिखित ए ग्रन्थ

वाला ग्रन्थ स्थायी महत्व की कृति है। शशिय क्षेत्रों के विभिन्न साहित्यकारों के अलावा शासक परिवारों के अनेक सदस्य भी ज्ञान व विद्वत्ता को प्रश्रय देते थे। उनमें से कुछ तो स्वयं भी बड़े विद्वान थे, जैसा कि तिरुवितांकूर के राम वर्मा (1758 1798) और स्वाति तिरुनाळ (1529 1847) तथा कोचीन के राम वर्मा (1895 1914) राजा श्रीमूलम तिरुनाळ (1884-1924) के काल में तिरुवनन्तपुरम में स्थापित संस्कृत कॉलिज" और कोचीन के तृप्पूणित्तरा में राजा राम वर्मा द्वारा स्थापित एवं अन्य कालिज भारत के सर्वश्रेष्ठ संस्कृत कालिजों में है। कोचीन के अंतिम शासक राम वर्मा परीक्षित तंपुरान आधुनिक भारत के श्रेष्ठ संस्कृत विद्वानों में एक थे।

संस्कृत लेखन में, केरल का अपूर्व योगदान रहा है और यह एक ऐसा तथ्य है जिसकी अवहेलना की जाती रही है क्योंकि इस क्षेत्र की संस्कृत का अधिकांश अध्यापन पठन, लेखन और उसकी शिक्षा देवनागरी लिपि के स्थान पर मलया लम लिपि में की जाती रही है।

केरल के नायर, परम्परा से योद्धा-वर्ग के रहे हैं। वे शासकों की शक्ति एवं सत्ता का परोक्ष बल माने जाते थे। अपने साहस के लिए विख्यात, वे नाग शौर्य वान तथा आत्म-सम्मानी रहे हैं। अपने शासकों के साथ उनके सम्बन्ध कुछ वैसे ही थे जैसे जापान में दामिम्यो या शोगुन के साथ सामुराय' के थे। केरल के गाथा गीतों में दबंग और भावुक नायर-नायकों की कहानियाँ भरी पड़ी हैं, जिनकी आचार-संहिता, जापान के बुशिदो यानी 'एक योद्धा के आचरण' के समान ही हुआ करती थी। शरीर को सुदृढ़ रखने की कलरी विद्या, जो कि उन्हें प्रतिरक्षा तथा आक्रमण दोनों के लिए तैयार किया करती थी, जापान के जुजित्सु की भाँति एक अति परिष्कृत कला थी। यह भी बताया गया है कि चोल राजाओं के साथ की लड़ाइयों में, वळ्ळुवनाड़ु जागीर के शासक ने अपनी 'चावेर' (जान पर खेल जानेवाले) नायरों की टुकड़ियाँ तैयार की थी जिनकी तुलना द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हवाई लड़ाई में जापान के 'कामिकाज' हवाबाजों से की जा सकती है।

केरल के राजाओं की शक्ति उनकी नायर सेनाओं की संख्या से आँकी जाती थी। कालीकट के जामोरी के पास एक लाख साठ हजार सैनिक थे और कोचीन के राजा के पास एक लाख चालीस हजार। तिरुवितांकूर रियासत की नायर सेना और भी बड़ी थी। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के शुरू में इन सेनाओं को भंग कर दिया गया था। किन्तु तिरुवितांकूर और कोचीन में भारत की स्वतंत्रता के समय तक ब्रिटिश ढंग पर प्रशिक्षित सेना कायम थी।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी नायर सैनिक ही हुआ करते थे। वे अन्य विभिन्न क्षेत्रों में भी प्रमुख स्थान रखते थे। हाल के इतिहास में, सार्वजनिक

क्षेत्र की लब्ध प्रतिष्ठ विभूतियो मे प्रसिद्ध विधि शास्त्री सर चेट्टूर सकरन नायर का नाम उल्लेखनीय है, जो सन 1817 मे इडियन नेशनल काग्रेस' के अध्यक्ष रहे थे। 1915 म हालाँकि उन्हे वायसराय की प्रशासन समिति मे नियुक्त किया गया था, किन्तु हृदय से वे सच्चे राष्ट्रवादी थे और अमतसर के हत्याकाड के बाद पजाव मे ब्रिटिश दमन के विरोध मे उन्होने अपना पद त्याग दिया था।

सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा भारत के अन्तिम वायसराय और गवनर जनरल, लार्ड माउण्टबेटन के निकटतम विश्वास पात्र, श्री वी० पी० मेनन ने बहुतो की दृष्टि मे एक असभव काय करके दिखाया था यानी भारत के विभाजन के बाद, करीब 560 रियासतो को मिलाकर भारतीय सघ म शामिल कर लिया था। श्री वी० के० कृष्णमेनन को तो कोई नही भुला सकता, जो सन् 1947 तक यानी लम्बे अरसे तक इग्लैण्ड मे भारतीय स्वतत्रता अभियान के नेता तथा 'पेलिकन बुक्स' के सपादक रहे थे। स्वतन्त्र भारत म वे ब्रिटेन मे भारत के प्रथम हाई कमिश्नर नियुक्त किए गए थे। उन्होंने करीब पन्द्रह वष तक राष्ट्र सघ म भारतीय प्रतिनिधिमडल का नेतृत्व किया। वे तीसर विश्व यानी अविकसित देशो के हितो के बहुत बडे हिमायती थे। वे जवाहरलाल नेहरू के घनिष्ठ मित्र थे और सन् 1957 से 1962 तक, नेहरू मत्रिमडल मे रक्षा मत्री भी रहे थे। उस काल मे, उन्हे भारत का शक्तिमान व्यक्ति माना जाता था। हालाकि सन 1962 मे चीनी आक्रमण के अवसर पर भारत के तात्कालिक पराभव के परिणामस्वरूप उन्हे इस्तीफा देना पडा था तो भी व्यक्तिगत स्तर पर वे नेहरू के बहुत करीब बने रहे थे। सन् 1974 मे उनकी मृत्यु हो गयी, मृत्यु स पूव उन्हाने समस्त सम्पत्ति देश के नाम कर दी थी। ततीय विश्व के देश, दीघ काल तक उन्हे अपने सच्चे समथक के रूप म याद रखेंगे।

नायर समुदाय की पुरानी सामाजिक सरचना ने विदेशी पयवेक्षको मे विशेषकर समाजशास्त्रियो और मानव विज्ञानियो म काफी कौतूहल जगाया है। इस समाज को तरवाड कहलाने वाली सयुक्त पारिवारिक इकाइयों म गठित किया गया था, जिनमे मातृ-सत्तात्मक व्यवस्था थी। मूलत इसका अथ यह था कि वशगत परम्परा पिता की ओर से नही बल्कि माता की ओर से प्रमाणित की जाती थी। प्रत्येक तरवाड का नियत्रण यद्यपि कारनवन (मुखिया) कहलाने वाले परिवार के वरिष्ठतम पुरुष सदस्य के हाथो म होता था, किन्तु स्त्रियो को सदा महत्वपूण स्थान प्राप्त था। एक कुटुम्ब की सम्पत्ति, एक माता या किसी अन्य नारी (पूर्वाधिकारिणी) के वशज सदस्यो की सयुक्त सम्पत्ति हुआ करती थी। पिता की सम्पत्ति, उसके अपने पुत्र-पुत्रियो को नही बल्कि उसकी बहन की सन्तान को मिला करती थी। यदि उसके कोई बहन न हो तो, वह साधारणत एक दो स्त्रियो को बहन बना लेता था, जिसस कि उस भान्जे मिल जाएँ, जिन्हे

धिकार मे उसकी सम्पत्ति मिल सके। तिरुवितांकूर तथा कोचीन रियासतों म, सिंहासन के अधिकारी व शासको के अपने पुत्र नही बल्कि उनके ज्यष्ठतम भांज हुआ करत थ।

विचित्र लगने वाली नायरो की इस परपरा के पीछे निहित कारण यह था कि उस समुदाय क पुरुषा का प्राय सैनिक कतव्य निभाने के लिए लबे अरस तक अपन घर-परिवार स दूर रहना होता था और गृहस्थी की दखभाल का काम परिवार की नारियो पर रहना था। इस प्रथा के कारण महिलाओ के महत्व व प्रतिष्ठा म वृद्धि हुई। मानव विज्ञानियो न पुराने नायर समाज म स्त्री पुरुष की समानता का प्रमाण खोज निकाला है।

जापान का जरा परिवार सूय देवी का वशज माना जाता है। इसलिए जापान की मूल सामाजिक रूप रखा भी मात सत्तात्मक थी, जिसम महिलाओ को महत्वपूण स्थान प्राप्त था। बहुत बाद म बाहरी प्रभावो के कारण ही जापानी समाज म पुरुष प्रधान परम्परा का विकास हुआ होगा।

इस मात सत्तात्मक परम्परा के कारण बहुपति प्रथा नायर परिवारों की एक अन्य विशेषता थी। किन्तु समय के साथ-साथ, दोनो ही प्रथाएँ अब समाप्त हो चुकी है। वतमान सदी के आरम्भ मे ही परिवतन होने लग थे। सन् 1925 तक, तिरुवितांकूर और कुछ समय बाद तत्कालीन ब्रिटिश मलबार मे भी कानूनन मात सत्तात्मक प्रथा का उन्मूलन किया गया। इसके साथ ही बहुमात-बहुपति प्रथा को भी गर-कानूनी करार द दिया गया।

2

मेरा शैशव

मेरा पुश्तैनी घर, तिरुवनन्तपुरम से कोई बीस किलोमीटर दूर एक छोटे से कस्बे नय्याटिनकरा में था और मेरा परिवार ऊट्टि चाक्कोणत्तु वलिय वीडु नामक एक सयुक्त परिवार था। मेरा परिवार उस क्षेत्र के अभिजात परिवारों में से एक था और यथानाम काफी बड़े आकार का था। मेरी मा, लक्ष्मी अम्मा करीब 17 वर्ष की आयु तक वहीं रही। सन 1874 में उन्होंने मेरे पिता से विवाह किया। वह एक अतर्जातीय विवाह था। मेरे पिता अरवामुद अय्यगार तमिलनाडु के अन्तर्गत कुम्भकोणम नगर के कुलीन ब्राह्मण थे।

नायर जाति की सयुक्त परिवार प्रथा के अतर्गत, परिवार के मुखिया द्वारा आमतौर पर लडकियो के बाल विवाह पर बल दिया जाता था। इतना ही नही, वर का चयन लडकी के माता पिता या उसके मामा आदि करते थे और इस मामले मे कन्या का मुश्किल से ही कोई दखल हुआ करता था। जहा तक अन्तर्जातीय विवाह का प्रश्न था, यदि एक नायर कन्या अपने मे निम्न जाति के वर से विवाह करती थी तो इसे प्रथा का उल्लघन माना जाता था। किन्तु यदि उसका विवाह किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय से होता तो वह घटना कन्या तथा उसके परिवार के लिए सम्मान की सूचक मानी जाती थी। मेरी माता के विवाह की घटना से न केवल परिवार किंतु समस्त कस्बे ने गर्व का अनुभव किया क्योकि मेरे पिता न केवल एक उच्च वर्गीय ब्राह्मण ही थे बल्कि इजीनियरी के क्षेत्र मे अति प्रतिभावान माने जाते थे। वे तत्कालीन शासक आयिल्यम् तिरुनाळ और उनके दीवान सर टी० माधव राव के सयुक्त निमत्रण पर तिरुविताकूर आये थे। शासक तथा उनके दीवान दोनो ही राज्य की प्रगति तथा प्रजा के कल्याण के प्रति समर्पित थे। सार्वजनिक कार्यों को सदा ही उच्च प्राथमिकता दी जाती थी। मेरे पिता अल्पकाल मे ही प्रमुख इजीनियर की पदवी पर आसीन हुए तथा रियासत के तमाम निर्माण कार्यों के केन्द्र बने।

आयिल्यम तिरुनाळ तथा सर टी० माधव राव की प्रगतिशील नीतियो का

उनके उत्तराधिकारियों[1] ने भी पालन किया। उन दोनों ने मेरे पिता को काफी आजादी दी जिससे बहुत ही कम समय में बहुत-सी परियोजनाएँ सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई। उनके सक्षम नेतृत्व का प्रमाण प्रस्तुत करने वाले बहुत से भवनों में तिरुवनन्तपुरम का बडा संग्रहालय, ललित कला संग्रहालय, नगर का सार्वजनिक पुस्तकालय प्रमुख है। राज्य भर मे सडकों का व्यापक जाल, केन्द्रीय बंदीगृह तथा प्रसिद्ध वकला की आग्रवाही नहर का स्थापत्य शिल्प भी उल्लेखनीय है।

विवाह के शीघ्र बाद मेरे माता पिता तिरुवनन्तपुरम के उस मकान मे चले गये जो मेरे पिता ने बनवाया था। वह एक विशाल भवन था किन्तु उसका नाम कुजु वीडु रखा गया था जिसका अर्थ है 'नन्हा घर'। इस विरोधाभास को क्या कहें। खैर! मेरे पिता ने अनेक एकड क्षेत्र के धान के खेत और नारियल के बगीचे भी खरीद लिये। इससे हमारे परिवार को काफी अच्छी आय हो जाती थी। अपने माता पिता की 10 संतानों में मैं सबसे छोटा हूँ। अंग्रेजी कलेण्डर के हिसाब से मेरा जन्मदिन 18 सितम्बर 1905 को पडता है। पडोस मे मेरे जन्म के ग्रह को लेकर बडी चर्चा रही। मेरा जन्म 'रोहिणी' नक्षत्र मे हुआ था, जिसमें भगवान कृष्ण का भी जन्म हुआ था। उस घटना का कोई विशेष महत्व था या नही, यह मैं कभी नही जान सका। लेकिन बडे दुःख के साथ कहना पडता है कि मेरे चार बहन भाई मेरे जन्म से पूर्व ही भगवान को प्यारे हो चुके थे। इसलिए मुझे केवल अपने दो भाइयों और तीन बहनों की ही याद है।

जहा तक मैंने सुना है, मेरे पिता बडे दयालु प्रकृति के थे, किन्तु काम लेने में वे बडे सख्त थे और हर कार्य की परिपूर्णता के कायल थे। किसी भी कार्य की चूली दुरुस्ती की जाँच का उनका अपना निराला तरीका होता था। उदाहरण के लिए, सडकों के निर्माण के बाद परीक्षण के लिए नव निर्मित मिट्टी की सडक पर उन्हें अपनी घोडागाडी को बार बार चलाते-घुमाते मैंने देखा है। यदि गाडी के पहिये किसी स्थान पर जरा गहरा धँस जाते तो वे उस भाग के पुनः निर्माण का आदेश देते। मुझे अपने पिता के जमाने मे निर्मित बहुत सी सडकों की खूब याद है। वे आजकल की सडकों से निश्चय ही बेहतर थीं। ऐसा नही कि हमारे इंजीनियर अब कुछ कम कुशल होते है। वास्तव में आजकल तो हमारे पास कहीं अधिक उच्चतर शिल्प शिक्षा प्राप्त पुरुष और महिला इंजीनियर हैं। हमारे पास अति उन्नत मशीनें भी हैं, जिनके बारे मे मेरे यौवन काल मे भारत मे कोई जानता तक न था। लेकिन कार्य का स्तर गिर गया प्रतीत होता है क्योंकि देखरेख कुछ ढीली होने लगी है और अपने काम के प्रति निष्ठा का स्तर भी गिर गया है।

सन 1980 के अप्रैल मास में जब मैं तिरुवनन्तपुरम आया तो एक समाचार

---

1 क्रमशः विशाखम तिरुनाल और श्री मूलम तिरुनाल।

पत्र के सवाददाता न केरल के सबध मे मेरे यौवन काल की स्मृतिया के बारे म जानना चाहा और वतमान स्थिति के बारे मे भी मेरे विचार पूछे। एक क्षण को मैंन सोचा कि काश ! मुझ से यह प्रश्न न किया गया होता, क्योकि इस प्रश्न ने जो विचार जगाये वे बहुत सुखद न थे। किन्तु पूछे जाने पर मैंने ईमानदारी से उत्तर देना ही ठीक समझा।

मैंन कहा कि मुझे बडी निराशा हुई है। हममे से बहुतो ने स्वतत्रता प्राप्ति के लिए कडा श्रम किया था और बलिदान दिये थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमन अपनी मातभूमि के एक ऐसे महान एव समद्ध राष्ट्र के रूप मे निर्माण की कल्पना की थी, जो बाकी विश्व के लिए एक नमूना हो। किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तीन दशक बीत जाने पर भी वास्तविकता क्या है ? माना कि प्रगति हुई किन्तु इतनी कम और इतनी धीमी क्यो ? ऐसा लगता है कि हमने अपनी प्रतिभा का सर्वोत्तम उद्देश्य के लिए सदुपयोग न करके तरह तरह स अपने आपको ही निराश किया है। राजनीतिज्ञ देश की प्रगति की दिशा मे कायशील होन के बजाय, आपस की कहा सुनी मे अधिक समय बिताते हैं और नौकरशाही अपने राजनीतिक स्वामियो के विरुद्ध स्वय को अक्षम बताती है।

हमारी नागरिक भावनाएँ तो लगभग लुप्त ही हो गयी है। वायुप्रदूषण को बर्दाश्त करने के साथ-साथ हम ध्वनि प्रदूषण फलाने के लिए भी कृतसकल्प लगते है। लगातार व्यस्त क्षेत्रो मे लाउडस्पीकर अथक शोर मचाते रहत हैं जिससे सभी के कामकाज और विश्राम आदि मे बाधा आती है। बहुत से लोग तो शायद अपनी श्रवण शक्ति भी खो बैठे है और अय कदाचित शीघ्र ही, यदि इस मुसीबत को टाला नही जायेगा तो बहरे हो जाएँगे। हमारे मदिरा मे भी हमारे देवी-देवताओ को ऐसी ही सजा भुगतनी पडती है। उन्ह अपित किये जानेवाले भक्ति गीतो म राक एण्ड रोल' की धुने मिलाकर हम विषाक्त कर दना चाहत है। हमारी सावजनिक स्वास्थ्य सेवा की हालत भी बहुत दयनीय है। जो नही किया जाना चाहिए उसकी सूची यदि मैं गिनवाने लगू तो बहुत लम्बी हो जायगी।

सन उन्नीस सौ बीस के दशक म तिरुवनन्तपुरम म एक आम सभा मे गाधी जी न कहा था कि वे हमारे राज्य की स्वच्छता स अत्यधिक प्रभावित हैं। उन्होने यह भी कहा था कि हम लोगो का श्वेत परिधान और वातावरण की स्वच्छता हमारे दिला की पवित्रता और सादा जीवन तथा उच्च विचारो की द्योतक है। मैं कभी-कभी सोचता हूँ यदि गाधीजी आज हमारे बीच होते तो हमारे नगरो म आज की स्थिति को देखकर क्या कहते ! स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद क्या हमारे मस्तिष्क ही गदे हा गय हैं। हमारे राज्य और समस्त देश को स्वच्छ, स्वस्थ तथा सुन्दर बनाये रखने के लिए किसी को काई भारी बलिदान तो नही करना होगा। हमारी

नगरपालिकाओ को काम करना चाहिए। अधिकारीगणो को चाहिए कि देश के बाहर सिंगापुर जैसे विदेशा को देखे जा भीड भरा है किन्तु उसे स्वच्छ तथा निमल रखा जाता है। आखिर हमारे प्रशासको को इस गदगी की चिता क्यों नही सताती ?

मैंने अपन भेंटकर्ता स कहा कि 'ये है मेरे विचार। मुझे अपन नगर पर गव का अनुभव नही हो पा रहा है। विदेश म बसे एक भारतीय के नाते, मैंने यह भी प्रस्ताव रखा कि यदि सरकार तथा प्रवासी भारतीयो के सयुक्त प्रयास की कोई योजना हो तो अपने नगरा की स्वच्छता के लिए यथासभव योगदान के लिए मैं भी तयार हू। यदि सरकारी एजेंसियो म कडे श्रम की भावना हो और हम म से सहायता पाने की योग्यता हो तो अपने देश को हम 'धरती का स्वग' अवश्य बना सकते हैं।'

अपने जीवन के आरभिक काल की चर्चा पर फिर स लौटता हूँ—मेरे पिता ने तिरुविताकूर सरकार की नौकरी स अवधि पूव ही अवकाश ग्रहण कर लिया और विभिन्न अन्य स्थानो पर काय करते रहे। अनेक वर्षों तक वे बडौदा रियासत क प्रमुख इजीनियर रहे। जहा भी वे जाते, पूरा परिवार साथ ले जाते। इसके साथ साथ मरे कई मामा और अन्य सम्बन्धी भी उनके साथ ही रहते। इसलिए लगभग प्रत्येक स्थान पर ही उन्हे एक पूरे कुनबे का पालन करना होता था। इस प्रकार उनका घर एक विशाल ऊटटुपुरा (धमशाला) के समान होता था। मेरे सबसे बडे भाई डा० कुमारन नायर मेरे पिता के लिए एक समस्या थे। वे बढिया खिलाडी थे साथ ही अनियन्त्रित शरारती भी और अपनी आयु के या अपने से बडे लडको को परेशान करने और अपने सगी साथिया को विभिन्न प्रकार की मुसीवतो म फँसाने म बडे माहिर थे। उन्हे मुसीवत से बचाये रखने के लिए मेरे पिता जहा तक बन पडता सभी जगह उन्हे अपने साथ ले जाते थे। उनकी बहुत सी यात्राएँ घोडे पर होती थी। मेरे पिता के बडे घाडे के साथ साथ मेरे बडे भाई का जिनका लाड का नाम चेल्लप्पन था एक छोटा सा घोडा भी चला करता था। इससे बडे भाई मेर पिता की दृष्टि के दायरे म ही बने रहत थ।

मेरा शशव पूरी तरह तिरुवनन्तपुरम म ही बीता। नौकरी के सिलसिल मे बार-बार यात्रा आदि के कारण मरे पिता मुझे इतना समय कभी नही दे पाये जितना सौभाग्य उनके साथ रहनेवाले मेरे बडे भाई बहन पा सके थे। इसलिए मेरा आरम्भिक जीवन मुख्यत मरी माता पर ही केंद्रित रहा। मुझ पर उनका सर्वाधिक प्रभाव रहा और मरा मन मस्तिष्क तथा आचरण पूणत उन्ही के प्रभाव म विकसित हुआ। मुझ याद है, वे असाधारण माहस और सतुलन की स्वामिनी थी। उनका अपना लालन-पालन हिन्दू परम्परा के अनुसार हुआ था जिसके अनुसार शिक्षा धार्मिक दाशनिक और नतिक मूल्या को उच्चतम स्थान प्राप्त होता रहा।

वे सस्कृत तथा मलयालम साहित्य के पुराणा के अलावा दो महान महाकाव्या रामायण तथा महाभारत मे भी प्रवीण थी। अपनी पारिवारिक जिम्मेवारियो के बावजूद, अपनी सतान मे ज्ञान के प्रति गहन रुचि जगान म वे कभी पीछे न रही। मेरी माता परम्परावादी थी किन्तु सदा ही अपन समय म आग की सोचती और तदनुसार ही आचरण भी करती थी।

हमारे घर मे प्राय दार्शनिक तथा धार्मिक विचार विमश और बहसे हुआ करती थी। इसमे भाग लेनेवालो की सख्या हर बार पचास साठ हुआ करती थी और बहस के बाद उपस्थित सभी लोगो का बढिया प्रीतिभोज देने का भी नियम था। सभी हिन्दू पर्व मनाये जाते थे और उतने ही नियमपूवक मसीही मठवासिनें भजन गाने तथा पुनीत बाइबल के अशा की व्याख्या करने के लिए आया करती थी। साथ ही इस्लाम धम के ज्ञाता भी कुरान का पाठ करने और कुरान की आयतो म निहित शिक्षा का अथ समझान आया करत थे। मैं इस मिली जुली धम गोष्ठियो से विशेषकर उनम उपस्थित जनसमूह स बहुत आनन्दित हुआ करता था। उनम बहुत से ऐसे होत थे जो वास्तव म विभिन्न प्रवचनो के प्रति आकृष्ट होकर आत थे किन्तु कुछ के लिए विशेष आकषण स्वादिष्ट पकवानो मे रही मेज हुआ करती थी।

कुछ अतिथि हमारे घर की साज-सज्जा तथा गरिमा की प्रशसा करते कुछ उस मुफ्त ठहरने-खाने आदि का एक सुविधाजनक स्थान मानते थ। हमारे पडोसियो मे कुछेक ऐसे भी थे जो मेरी माता की रूढि विरोधी काय प्रणाली को शत्रुता और नाराजगी से दखते थे। उनका विचार था कि अय धर्मों के गुरुओ का स्वागत करके हम अपनी जाति की मर्यादा को ठेस पहुचा रहे हैं। किन्तु मेरी माता प्रशसा या निन्दा की परवाह किये बिना सदा वही करती थी जिस व सही समझती थी। उनकी दढ धारणा और साहस कभी भी नही डगमगाया। मेरा विश्वास है कि उन दिनो की मेरे मानस पर गहन और अमिट छाप आज भी बनी हुई है। यह बात उल्लेखनीय है कि कालातर मे अपने जीवन म अनेक अवसरो पर मुझे भीषण खतरो का सामना करना पडा लेकिन कभी भी मुझे भय का अनुभव नही हुआ। यह सद गुण निश्चय ही मुझे अपनी माँ से वरदानस्वरूप मिला है।

मेरे स्कूल का आरभिक काल उस समय के तिरुविताकूर के उच्च मध्य वर्गीय किसी अन्य परिवार के लडके के जीवन से भिन्न न था। लगभग दो वष की मेरी प्रारभिक शिक्षा कुछ तो घर पर हुई और कुछ निकट के बाल विद्यालय मे। सन 1913 मे जब मेरी आयु कोई आठ वष की थी मैंने त्रिवनन्तपुरम के मॉडल स्कूल मे प्रवेश किया। महाराजा श्रीमूलम तिरुनाळ राम वर्मा की सरपरस्ती म सन् 1911 मे स्थापित यह स्कूल राज्य के सवश्रेष्ठ स्कूलो म स था। इस स्कूल को पूरे भारत मे ख्याति प्राप्त थी। स्कॉटलैंड निवासी श्री सी० एफ० क्लार्क इस

हेड के प्रथम हेड मास्टर थ।

मेरे अध्यापकगण अनिवार्य और पूर्णतया समर्पित व्यक्ति थ। व कड़े अनुशासन म विश्वास रखत थ साथ ही विद्यार्थियों को अपने परिवार के सदस्यों क समान मानत थ। यह पारम्परिक गुरु शिष्य सम्बन्ध क गुरुकुल रूप का युग था। स्कूली जीवन क मेरे प्रथम छः वर्षों म कोई विशेष घटना नहीं हुई। मैंने पढ़ाई म मन लगाया और अच्छे बालक व विद्यार्थी की भाँति काम करता रहा। खेल क क्षेत्र म मुझे फुटबाल का शौक था और जूनियर लड़कों की टीम का मुख कप्तान बनाया गया था। 14 वर्ष की आयु म हाई स्कूल म प्रवेश करने के बाद पढ़ाई लिखाई क अलावा मैं डिबेटिंग सोसाइटी म भी सक्रिय भाग लेने लगा। कुछ अन्य अपने मित्रों क साथ मैं विभिन्न विषयों पर बहस करता। अध्यापकगण आम तौर पर शिक्षा और सामाजिक विषयों पर बहस करने को तो प्रोत्साहन देते थ किन्तु राजनीतिक मामलों पर बहस की इजाजत नहीं थी। मगर मैं और मेरे कुछ अन्य साथी छात्र इस प्रतिबन्ध के बावजूद इस विषय की छूट ही लेते थ और भारत म विदेशी शासन के अन्याय पर बोला करते थ। हम इसके लिए प्राय किसी-न किसी अध्यापक की डाँट भी सहनी पड़ती थी। लेकिन हमारे शिक्षकों म ऐसे भी थ जो हमारी बहस को अनसुना करके हमें परोक्ष रूप से प्रोत्साहन दिया करते थ।

अब माडल स्कूल सत्तर वर्ष पुराना हो चुका है। उस समय ग्यारह कक्षाओं म प्रविष्ट कुल लगभग आठ सौ विद्यार्थियों म से मैं दूसरे या तीसरे वर्ष का छात्र था। अप्रैल 1981 म जब तिरुवनन्तपुरम म मैं छुट्टी मनाने आया था उस समय मुझे अपने स्कूल जाने और वर्तमान हेड मास्टर श्री माधवन पिल्लै तथा उनके कुछ सहकर्मियों से भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने बड़े प्रेम से मुझे स्कूल की सभी इमारतें दिखायी जिनमें हॉस्टल भी था जो हाल ही म बनाया गया था। भवन आदि म कोई विशेष वृद्धि न किये जाने पर भी उस स्कूल म इस समय कोई 2800 विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। यह आश्चर्य की बात थी कि इतनी अधिक कठिनाई के बावजूद प्रबन्धकगण स्कूल की श्रेष्ठ परम्परा को कैसे बनाये रहे हैं? हर साल विविध प्रतियोगिताओं म इस स्कूल को प्राप्त अनेक पुरस्कार वहाँ के छात्रों की उच्च उपलब्धियों का प्रमाण हैं।

13 वर्ष की आयु मे मैं लोअर सैकेंडरी शिक्षा संपन्न करके सन् 1919 म वहीं मैट्रिक के प्रथम वर्ष म दाखिल हुआ। लेकिन वह वर्ष तिरुवितांकूर के इतिहास की तरह मेरे जीवन म भी परिवर्तन का वर्ष था।

3

एक नया मोड

ब्रिटिश शासन से भारत की स्वतन्त्रता के लिए सघष 18वी शताब्दी के मध्य से ही भारत के विभिन्न भागो मे आरभ हो गया था, किन्तु विरोध की कुछेक छिट पुट घटनाओ के अलावा तिरुवितांकूर वतमान शताब्दी के आरभ तक स्वतन्त्रता अभियान से कुछ तटस्थ और अलग थलग बना रहा था। यह बात आम तौर पर सामूहिक रूप से सभी राजे-रजवाडो के सदभ मे सही थी क्योकि बहुत स राजे-नवाब स्पष्ट कारणो से, आम देशवासियो की आकाक्षाओ तथा अपन हितो को एक अलग नजर से देखते थे। इन राज्यो के नाममात्र के शासक और उनकी प्रजा भी आमतौर पर ब्रिटिश साम्राज्य को सहज स्वीकाय मान बैठे थे। उनमे स बहुत से तो एक सीमा तक औपनिवेशिक शासन के समयक थे क्योकि इस विचारधारा से उनके निजी हितो व आमोद-प्रमोद को पोषण मिलता था और ब्रिटिश शासक भी उनकी नब्ज पहचानकर अनुकूल लाड-दुलार दिखाया करत थे। इन देशी रियासतो मे जो लोग ब्रिटिश स्वाथ साधन के खिलाफ बोलत भी थे उनकी बातो म ज्यादातर कोई दम खम न होता था। तिरुवितांकूर की भी स्थिति कोई विशेष भिन्न न थी।

किन्तु प्रथम विश्व युद्ध के अन्त म देश के अधिकाश भागो मे राष्ट्रीय जागरण की जिस भावना ने जोर पकडा और 1915 म दक्षिण अफ्रीका से लौटने क बाद गाधीजी के नेतृत्व मे आम जनता मे जो देश प्रेम की भावना जागी उसका प्रभाव तिरुवितांकूर राज्य पर भी पडे बिना न रह सका। इस अभियान को प्रमुख प्रेरणा सन् 1919 मे, तिरुवनन्तपुरम मे इण्डियन नशनल काग्रेस की एक शाखा की स्थापना से मिली जिसका उद्देश्य राजनीतिक उद्धार और सामाजिक सुधार था। सामाजिक सुधार को प्राथमिकता दी जाती थी क्योकि पहले अपन घर की सफाई या उसमे सुचारुता लाकर ही राजनीतिक उद्धार के लिए प्रभावकारी कदम उठाया जा सकता था।

इस नव सगठन के तत्वावधान मे सामाजिक अन्याय के विरुद्ध कायक्रम

निर्धारण के उद्देश्य म एक काय-समिति का गठन किया गया। सामाजिक सुधारो मे सबस पहला वाछनीय सुधार था अस्पृश्यता की बुराई को मिटाना जो तथाकथित निम्न जातिवालो के प्रति उच्च जाति के हिंदू बरतत आ रहे थे। अन्य सामाजिक तथा आर्थिक अन्याय वस्तुत इसी बुराई के परिणाम थ। हिंदुओ के बीच जाति व्यवस्था दश भर म एक शाप के समान था, केरल म तो यह समस्या सबस अधिक जटिल थी। किसी सवण जाति के व्यक्ति का निम्न वर्गीय व्यक्ति के साथ सपर्क होने पर, उच्च वग के हिन्दू का 'दूषित' हो जाना जसी बेहूदी बात तो सभी जगह थी किन्तु केरल राज्य म एक विशेष प्रकार की घिनौनी अस्पृश्यता प्रचलित थी। कुछ मानव विज्ञानिया न इसे दूरी की छूत कहा है। मसलन एक पुलयन (पासी) यदि किसी उच्च जातिवाले के निकट एक निश्चित दूरी तक भी आ जाये तो उच्च जातिवाले को छूत लग जाती है। इसस अधिक हेय परम्परा की कल्पना नही की जा सकती।

श्री नारायण गुरु, कवि कुमारन आशान जसे अनेक प्रतिष्ठित सज्जनो की शिक्षाओ तथा नायर सेवा सोसाइटी जसी सस्थाओ के काय कलापो ने लोगो की चेतना का झकझोरना आरम्भ कर दिया था, किन्तु जाति प्रथा की इन बुराइयो के विरुद्ध एक सगठित आदोलन मुख्यत इण्डियन नेशनल काग्रेस के जन्म के बाद प्रारम्भ हुआ। इसमे रुचि लेनेवालो मे अग्रणी थे—मितभाषी, 'देशाभिमानी' के सपादक क्रमश सी० कृष्णन और टी० के० माधवन, गाधीजी के पट्ट शिष्य, जाज जोसफ, मन्नत्तु पद्मनाभन पिल्लै चगनाश्शेरी परमेश्वरन पिल्लै, के० पी० केशव मेनोन एम० एन० नायर सी० वी० कुजुरामन, आलुम्मूट्टिल गोविन्दन चान्नार, के० केलप्पन, टी० आर० कृष्णस्वामी अय्यर और अन्य बहुत स लाग।

इन घटनाओ का मेरे मानस पर बहुत प्रभाव पडा। अपनी माता की प्रेरणा के फलस्वरूप तथा स्वय अपने परिवार म धार्मिक उदारता के वातावरण का आदी होने के कारण मुझ जाति सम्बन्धी पूर्वाग्रहो स बडी घृणा होती थी। मेरे अनेक मित्रो की भी यही विचारधारा थी। हालांकि सावजनिक रूप म किसी प्रकार की नेतागिरी के लिए हम अभी आयु मे छोटे थे तो भी, हम काफी बेचन रहते थे और यथाशक्ति सुधार आदोलनो म सहायता करने को तत्पर रहा करते। हम प्राय इन नेताओ के सेवा-सत्कार सार्वजनिक सभाओ के आयोजन आदि अनेकानेक कार्यों मे सहायता देने के लिए स्वेच्छा स सदैव सन्नद्ध रहते थे। जहा गर ब्राह्मण लोग हम विशेष प्रोत्साहित किया करते ब्राह्मण प्रभाव सपन्न सस्थाएँ, जिनमे आमतौर पर प्रतिष्ठित सस्थाएँ थी हमारी गतिविधियो के प्रति स्पष्ट नाराजगी जाहिर करती।

शिक्षा स इतर, अपनी गतिविधियों के लिए मुझे अप्रत्याशित कीमत चुकानी पडी। सामाजिक गतिविधियो म मेरी व्यस्तता पढाई लिखाई मे बाधक सिद्ध हुई।

हाई स्कूल के प्रथम वर्ष की परीक्षा म मैं कुछ विषय
एक अच्छे छात्र होन की मेरी साख को जो अचान
रूप स मेर लिए एक सदमा थी। किंतु मुझे सबस अ
स्कूली शिक्षा म मेरी पराजय के कारण मेरी माँ का
अपन कार्यों के लिए तो मुझे वास्तव म कोई खेद
मुझ लज्जा का अनुभव अवश्य हुआ। इस स्थिति
माडल स्कूल छोडकर किसी अय शिक्षा सस्था म
वचियूर म श्री मूलविलासम स्कूल म दाखिला ले लि

अपनी असफलता के लिए कोई बहाना ढूढकर
और मेरी ऐसा कुछ करन की मशा भी नहीं है। फिर १
हूँ तो लगता है कि मिडल स्कूल के बाद माडल स्कूल
सा गया था। इसका एकमात्र कारण था हैडमास्टर
मरे मन की सहज प्रतिक्रिया, जो मौन भले ही रही
श्री क्लाक म उसी प्रकार का दभ विद्यमान था, ज
तौर पर भारतीयो के प्रति दर्शाता था। वह उपेक्षा
प्रति कहा जा सकता है, और न ही वहाँ कोई विशे
बल्कि वह एक आम व्यक्त उपेक्षा और जाति सम्बधि
श्री क्लाक, स्कूल को भी औपनिवेशिक साम्राज्य के अ
मुझम सहज ही इस स्थिति के प्रति विरोधपूर्ण प्रतिक्रि

इसके विपरीत, वचियूर का वातावरण, काफी उ
तथा मैत्रीपूर्ण था। इससे मरे दमित मनोबल को पुन :
मैं यह सोचकर अपन मन को धय बँधाता रहा कि क
निर्देश था कि मैं स्कूल बदल लू। मरी आरभिक घबराह
मरा उत्साह पुन जाग उठा। मैं स्वय को कक्षा के कार्यों
साथ ही सामाजिक कार्यों म सलग्न होन की पहले से
भीतर पनपने लगी।

काग्रेस के नतत्व म धीरे धीरे व्यापक आधार पर ज
जा रह थे, वहीं दूसरी तरफ तिरुवनन्तपुरम के युवा वग
ल रही थी। वह थी स्कूली शिक्षा का बहिष्कार। य
जिसम अपने निकट सहयोगियो के साथ मैंने भी प्रमुख भू

वर्तमान शताब्दी के प्रथम दो दशको म निरकुश
विचित्र असगति के दर्शन हुए। एक ओर थे महाराजा
वर्मा जो अधिकाधिक सुधारो के पक्ष मे थे दूसरी ओर
मना और प्रतिक्रियावादी नीम तानाशाह बन हुए थ। इ

ो मे उत्तीर्ण न हो सका। इसस
क चोट पहुँची, वह स्वाभाविक
धिक दु ख इस बात का था कि
बहुत निराशा हुई। पाठ्येतर
। था, फिर भी कुल मिलाकर
स मुक्ति पाने क लिए, मैंन
जान का निणय किया और
या।
उस दोषी ठहराना बेकार है
गी, उस अतीत को जब देखता
के वातावरण स मैं कुछ कट-
का आचरण और उसके प्रति
हो किन्तु तीव्र अवश्य थी।
। कोई भी श्वेत व्यक्ति आम
भाव न तो व्यक्ति विशेष के
र उकसान वाली स्थिति थी
त श्रेष्ठता का-सा रख था।
ग की भाँति चलाते थ और
या जागत हो गई थी।
नौपचारिक और आत्मीय
थापना म सहायता मिली।
दाचित यह विधि का ही
ट शीघ्र ही मिट गयी और
के योग्य तो पाने ही लगा
ी अधिक उत्सुकता मेरे
हाँ सामाजिक दबाव बढ़त
म एक नयी भावना जन्म
ह घटना 1922 की थी
मिका निभाई।
कूर के प्रशासन म एक
ी मूलम तिरुनाल राम
उनके दो दीवान मवीण
नम्म द—पी० राज

गोपालाचारी जो सत्ता पिपासु थ। वे किसी भी आर स कोई भी आलोचना सहन नही कर सकते थ। उनके कुछेक काय, उसी प्रवृत्ति के द्योतक थ जो औपनिवेशिक शासकगण, भारत के मूल निवासियो के प्रति बरता करत थ। राष्ट्रभक्ति की अभिव्यक्ति का आभास देनेवाली कोई भी बात वे बर्दाश्त नही कर सकते थ। राष्ट्रवादी समाचार पत्र स्वदशाभिमानी' के सपादक के० रामकृष्ण पिल्लै न दीवान की नीतियो की आलोचना करते हुए एक लेख लिखा। राजगोपालाचारी न तुरत श्री पिल्लै को तिरुवितांकूर स निष्कासित कर दिया और उस समाचार पत्र के कार्यालय की तालाबदी का आदेश दे दिया।

इस मनमानी स हतोत्साहित हुए बिना लम्बी बीमारी क बावजद श्री राम कृष्ण पिल्लै सन् 1916 म उत्तरी मलबार स्थित कण्णर म रहकर मत्यु पयन्त दीवान क स्वेच्छाचारी कार्यों का विरोध करत रह। मैं इस दु खद घटना को एक निजी कारण स भी याद करता हूँ, क्योकि कालान्तर म रामकृष्ण पिल्लै के निकट तम सहयोगी और विश्वासपात्र सी० पी० गोविन्द पिल्ल का विवाह मरी एक बहन क साथ हुआ। हालाकि उन्ह निष्कासन की जहमत तो नही सहनी पडी तो भी अपने मित्र के साथ किए गये व्यवहार स वे बहुत क्षुब्ध थ। गोविन्द पिल्ल वचियूर स्कूल के मलयालम अध्यापक थे और अनक पुस्तको के रचयिता भी, जिनम प्राचीन मलयालम गीतो का एक सकलन भी था। रामकृष्ण पिल्ल के निष्कासन काल म 'स्वदेशाभिमानी' के सपादकीय विभाग म भी व कायरत थे।

भीतर-ही भीतर दबा जन असतोष दीवान राघवय्या के अधकचर प्रशासन स और भी भडक उठा। विद्यार्थी समुदाय शिक्षा शुल्क म कटौती और शक्षिक सुविधाओ के विस्तार की माँग कर रहा था। इस माग क प्रति कोई सहानुभूति दिखाने क बजाय राघवय्या ने सन् 1922 म कालिज की फीस म भी वद्धि की घोषणा कर दी। हम म स बहुतो न इस समस्त छात्र समुदाय का अपमान माना और इसका विरोध करन का निणय किया। फीस म वद्धि क निर्धारित दिन की पूव सध्या को मरे चार छात्र मित्र और मैं, पत्तानूर रोड के मजालिककुलम पोखर पर एकत्र हुए। हम वहाँ प्राय ताश खलन अथवा मनोविनोद क लिए एकत्र होत थ। (कालान्तर म इस पोखर को पाट दिया गया और अब वहाँ एक मेल का मकान बना है।) हमने फ़ीस की वद्धि के विषय म परस्पर चर्चा की और यह निणय किया कि राघवय्या की योजना को किसी भी कीमत पर सफल न होन दिया जाएगा।

पूव निश्चित योजना क अनुसार हम अगली सुबह निर्धारित समय स एक घटा पूव ही स्कूल पहुच गय। चपरासियो को स्कूल म बाहर निकालने के बाद हमने प्रवश द्वार बद कर दिया और समूचे अहात पर कब्जा कर लिया। धरना दनवालो का एक घरा बनाकर हमन आनवाले छात्रो को समझाना आरभ किया

कि हम क्यो कक्षाओ का बॉयकाट कर रहे है। हमने उन्हे भी आन्दोलन मे भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। प्रतिक्रिया पूर्णतया हमारे पक्ष मे रही। स्कूल से समस्त छात्र अनुपस्थित रहे। इस घटना को भारत मे प्रथम छात्र हडताल का नाम दिया गया। कुछ पर्यवेक्षको का कहना था कि कदाचित यह अपनी किस्म की विश्व की प्रथम छात्र-हडताल भी थी।

वचियूर स्कूल के लगभग सभी छात्र एक जुलूस के रूप मे सट जोसफ स्कूल पहुँचे। कुछ कमजोर प्रतिरोध के बाद वहा के अधिकारीगण भी मान गए और शीघ्र ही दोनो स्कूलो के छात्रो का एक बडा सा जुलूस महाराजास कॉलिज की ओर अग्रसर हुआ। वहा हमे तुरन्त सहयोग मिला। उस समय तक जुलूस बहुत बडा बन चुका था। जुलूस का अगला गतव्य था मॉडल स्कूल जहा से एक वर्ष पूर्व हटकर मैं अन्यत्र पढने चला गया था। जैसाकि हमारा अनुमान था वहा गडबड शुरू हुई और वहाँ के अहकारी हैडमास्टर, श्री क्लाक ने जुलूस तथा प्रवेश द्वार के बीच खडे होकर जुलूस को रोकने का प्रयास किया। ये सब उनके अक्खड पन का एक बेहूदा और शेखी भरा प्रदर्शन था और उन्हे इसकी भारी कीमत भी चुकानी पडी। मेरे और मेरे साथियो के प्रयासो के बावजूद श्री क्लाक को कुछ छात्रो द्वारा गहरी चोट पहुँचायी गयी। सौभाग्य से स्कूल का एक चपरासी उन्हे सुरक्षित स्थान पर ले जाने मे सफल हो गया।

तिरुवनतपुरम के इस आदोलन का समाचार बडी तेजी के साथ दूर-दूर तक फैल गया और समस्त तिरुवितांकूर की शैक्षिक संस्थाओ ने सहानुभूति मे हडताले की। परस्पर चर्चा अथवा समझौते की बातचीत के स्थान पर राघवय्या ने दमन कारी कदम उठाए। परिणामस्वरूप छात्रो तथा पुलिस के बीच अनेक मुठभेडे हुइ और दोनो ही पक्षो के लोग हताहत हुए। सडको पर अँग्रेजो पर छिट पुट हमलो के कारण इस आदोलन को ब्रिटेन विरोधी रग दिया जाने लगा। एक अवसर पर तो डिप्टी रेसिडेंट ने, जो श्री क्लाक के ही समान दभी अग्रेज थे, सोचा कि वे अकेले ही छात्रो को अच्छा सबक सिखा सकते है। वे एक चाबुक लेकर माडल स्कूल के अहाते मे आये और प्रदर्शनकारियो पर चाबुक बरसाने लगे। पलक झपकते ही आदोलनकारियो के पत्थरो की मार से वे गिर पडे। उसके बाद उनकी बेतहाशा पिटाइ शुरू हुई जिससे उनकी मृत्यु भी हो जाती लेकिन सौभाग्य से मेरे कहने पर कुछ छात्रो ने उन्हे वहाँ से हटा दिया। कई दिनो तक तिरुवनन्तपुरम व अन्य अनेक नगरो मे हिंसा की घटनाएँ होती रही। अन्तत क्रूर दमनकारी शक्ति मे सरकार आदोलन को कुचलने मे सफल हो गयी।

राघवय्या चाहते थे कि पुलिस मुझे पकड ले किन्तु वे असफल रहे क्योकि अपने परिवार की सलाह पर मैं अपने बडे भाई कुमारन नायर के घर रहने लगा था। मेरे बडे भाई सेना मे चिकित्सा-अधिकारी थे और उनका निवास स्थान हड-

दिल्ली के राजनीति विभाग न इसकी भी अनुमति नही दी। इसलिए तिरुवनतपुरम की सरकार ने चुपचाप कारवाई बन्द कर दी।

इस बीच, उप रेसिडेंट का बेहूदा तथा शेखी भरा काय, जिसने अपन चाबुक के जरिये छात्र प्रदशन को रोकने का प्रयास किया था, बहुत हद तक जन मानस मे ब्रिटिश विरोधी भावना जगाने मे सफल हुआ। दश मे अन्य स्थानो पर अपनाये गय विभिन्न क्रूर प्रयासो के समाचारो ने, जिनके बल पर औपनिवशिक शासका न राष्ट्रवादी आदोलन के दमन की कोशिश की थी, साम्राज्य के एजेंटो के विरुद्ध सतत विरोध भावना को भडकाया।

4

सामाजिक सुधार आंदोलन

ज्यों-ज्यों छात्र हड़तालों का ज़ोर धीरे-धीरे कम होता गया और शिक्षण संस्थाओं ने सामान्य रूप लेना आरम्भ किया, अस्पृश्यता के विरुद्ध कांग्रेस समर्थित अभियान ज़ोर पकड़ने लगा। 1924 में तिरुविताकूर का आंदोलन इस प्रकार के शक्तिशाली आंदोलनों में से एक था— 'वक्कम सत्याग्रह' जिसमें मेरे युवा काल की कुछ स्पष्ट स्मृतियाँ जुड़ी हैं।

मध्य तिरुविताकूर में एक छोटा-सा कस्बा वक्कम वहाँ के शिव मन्दिर के लिए विख्यात है। स्थानीय ब्राह्मण समुदाय द्वारा प्रचलित और नायर समुदाय का मौन स्वीकृति प्राप्त एक अति घिनौनी परम्परा के अनुसार इस मन्दिर को जानेवाली तमाम सड़कें निम्न जाति वालों के लिए बन्द कर दी गयी थीं। मेरे कुछ छात्र मित्रों ने और मैंने यहाँ के अनेक प्रमुख ब्राह्मण सज्जनों से बारम्बार इस समस्या पर चर्चा की किन्तु हमें कोई सफलता न मिली। हमें यह लगा कि एक संगठित आंदोलन ही कदाचित इस घिनौनी परम्परा का मार्जन कर सकता है।

आखिर कांग्रेस ने अस्पृश्यता के इस मामले को अपने हाथ में लिया और एक व्यापक अभियान चलाने का निर्णय किया गया। एक विशेष समिति का गठन किया गया जिसमें ए॰के॰ पिल्ले, टी॰ हस्सन कोया, मुल्ला कुरूर, नीलकंठ नम्पूतिरिप्पाड और के॰ पी॰ केशव मेनन जैसे नेता शामिल थे। ये लोग फरवरी 1924 में वक्कम आये और शीघ्र आरम्भ किये जाने वाले आंदोलन के पक्ष में जनमत जगाने के लिए सभाएँ आदि की गयीं। इन अवसरों पर प्रमुख वक्ता केशव मेनन हुआ करते थे। मेरे कुछेक सहपाठी और मैं अपनी कक्षाओं में न जाकर इन सभाओं में अवश्य उपस्थित होते। इन सभाओं में जितने लोग जाते थे उतने तिरुविताकूर में आयोजित किसी सभा में पहले कभी नहीं आये थे। ऐसी ही एक सभा में खुले रूप से यह निर्णय लिया गया कि मन्दिर के अधिकारीगणों पर यह दबाव डालने के लिए एक सत्याग्रह आंदोलन चलाया जाय कि किसी की कोई भी जाति या गोत्र क्यों न हो प्रत्येक हिन्दू को न केवल मन्दिर तक जाने वाली सड़कों के उपयोग

की वल्कि मन्दिर म पूजा आदि की भी स्वतत्रता होनी चाहिए।

अगले मास (माच 1924) तीन सत्याग्रहिया ने, कुजिप जो पुलयन (पासी) था, वाहुलेयन जो ईयव समुदाय का था और गोवि द पणिक्कर जो नायर था, म दिर की दिशा म एक वडे जुलूस का नेतत्व किया। रास्ते मे भारी भीड जमा थी और सरकार न भीड के नियत्रण के लिए एक सशक्त पुलिस-टुकडी तैनात कर रखी थी। जुलूस 'नियन्त्रित क्षेत्र'' मे पहुचने से पूर्व ही रुक गया। तीनो सत्याग्रही म दिर प्रवेश के लिए आगे वढे। पुलिस ने घोषणा की कि नायर को छोड अ य दो का प्रवश निषिद्ध है। पणिक्कर न विरोध किया और कहा कि वे तीनो एक साथ जायेग, अलग नही होगे। इसका अथ था—झगडा। तनाव वढा किन्तु भीड पूणतया अहिंसक रही। शीघ्र ही तीनो सत्याग्रहियो को शान्ति भग करने के अपराध म गिरफ्तार कर लिया गया और एक मुकदमे के दिखावे के बाद उ ह जेल मे डाल दिया गया।

आम जनता मे क्रोध था कि तु अभियान के आयोजको के धय और विवेक की वजह स उक्त आ दोलन शान्तिपूण ही रहा। करीब दो सप्ताह वाद टी० के० माधवन और के० पी० केशव मनन को म दिर को जानेवाली सडको पर प्रवेश निषेध के विरुद्ध अछूता को उकसाने के आरोप मे गिरफ्तार कर लिया गया। उ ह तिरुवनन्तपुरम ले जाया गया और के द्रीय कारावास मे छ मास के लिए ब द कर दिया गया। इस सिलसिले मे अ य अनेक व्यक्तियो को भी जेल म डाल दिया गया। उन घटनाओ की तीव्र और कटु स्मतिया मेरे मानस म सदा ताज़ा रही है और जव कभी मैं तिरुवन तपुरम जाता हूँ, यह कटुता और भी तीव्र हो उठती है क्याकि मेरा मकान जानकी विलास (नाम मेरी पत्नी के ही नाम पर रखा गया है) उस पहाडी टीले स वहुत दूर नही था जहा वह जेल स्थित था जिसम केशव मेनन और अ य महान राष्ट्र प्रेमिया ने अपने साथियो के लिए मूल मानव अधिकारो की माँग करत हुए इतना कष्ट भोगा था। यह विचित्र विडम्वना ही थी कि यह जेल उन इमारता म से एक थी जो मेरे पिता न ही उस समय वनवाई थी जव वे मुख्य इजीनियर थे।

नेताओ को दी गयी सज़ा स आ दोलन शान्त होने के वजाय और अधिक भडक उठा। सत्याग्रह अभियान के पीछे जनमत अप्रत्याशित जोर पकडता जा रहा था। इस बीच श्रीमूलम तिरुनाळ का निधन हो गया और राणी सेतुलक्ष्मी बाई रीजेंट के पद पर आसीन हुइ। दिवगत शासक की स्मृति के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए समस्त राजनीतिक व दी रिहा कर दिए गये जिनम माधवन और केशव मनन भी थे। सतु लक्ष्मी बाई का अस्पश्यता के विरुद्ध आन्दोलन के प्रति सहानुभूतिपूण रुख था।

लेकिन इस आन्दोलन का सर्वाधिक वल उसी वष गाधीजी की वक्कम

यात्रा स मिला। मतुलक्ष्मी बाई क अनुरोध पर गाधीजी का राजकीय अतिथि की भाँति सत्कार किया गया। ब्रिटिश शासक अचम्भे म आ गय थ। किन्तु आम जनता बहुत खुश थी। गाधीजी तथा समाज के भिन्न समुदाया के लोगा क बीच विचार विमश आदि के बाद यह समझौता हुआ कि फिलहाल मन्दिर को जाने वाली सडको के उपयोग स सम्बद्ध जातिगत पक्षपात समाप्त कर दिया जाय किन्तु मन्दिरो मे हर जाति क श्रद्धालुओ को प्रवेश के अधिकार की माँग को अभी स्थगित रखा जाय। यह मुद्दा सभी मन्दिरो के सन्दभ म एक राज्य-व्यापी अभियान का अग माना जाय।

आखिरकार चगनाश्शरी परमश्वरन पिल्ल मन्नत्तु पद्मनाभन पिल्ल जस अनेक नेताओ के दीघकालीन सघष के बाद महाराजा श्री चित्तिरा तिरुनाळ न 12 नवम्बर 1936 का एक घोषणा की जिसके अनुसार हिन्दू धम के प्रत्यक अनुयायी को जाति या वण के पक्षपात के बिना तिरुवितांकूर स्थित समस्त हिन्दू मन्दिरो म पूजा करन की पूण स्वतत्रता थी। गाधीजी न इस घोषणा को एक 'आधुनिक चमत्कार' कहकर इसका स्वागत किया।

किन्तु यह एक विचित्र बात है कि प्रत्येक अच्छी बात के साथ प्राय कुछ ऐसी बात भी होती हैं जो उससे मेल नही खाती। मुझे बताया गया है कि आज भी सरकार द्वारा नौकरी आदि के आरक्षण के उद्देश्य से अनगिनत वर्गीकरण किए गये है और कुछेक अन्य भौतिक लाभो के सन्दभ म ईषवा लोगो को अब भी पिछडा माना जाता है। यह वस्तुत किन्ही खुदगर्जों की निहित योजना का ही परिणाम है। हिन्दू जाति के अनेक ऐसे अग हैं जिन्हें विशष सरक्षण की आवश्यकता है ताकि उन्हे सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से उभरने क पूरे अवसर हासिल हो। किन्तु ईषवा पिछड नही रह गये है। ऐसा लगता है कि विशेष सुविधा मात्र के लिए ही उन लोगो ने यह अवनति स्वीकार कर ली है। यह उन्हे शोभा नही देता है क्योकि आज वे अन्य किसी भी आधुनिक समुदाय के समान ही प्रगतिशील हैं।

छुआछूत की प्रथा तो दीघ काल मे ही करल के हिन्दू समाज का सबस भयानक अभिशाप रही ही थी नायर समाज म प्रचलित मात सत्तात्मक वश परम्परा और सयुक्त परिवार व्यवस्था भी सामाजिक सरचना का एक ऐसा पहलू थी जिसम सुधार अपेक्षित था। यह व्यवस्था समय के साथ साथ इतनी बिगड चुकी थी कि एक घोर अव्यवस्था का रूप ले चुकी थी। कारनवर (मुखिया) परिवार क मामलो का नियत्रण खात जा रह थ और अनुशासन के अभाव म धोखाधडी आदि के फलस्वरूप सयुक्त सम्पत्ति म ह्रास एक आम बात थी। बहुत स सयुक्त परिवार खडित होन लग थ किन्तु मातक वश-परम्परा की विसगतियो और उसस उत्पन्न उपप्रश्नो को कानूनन इस प्रथा की समाप्ति करके

ही पूरी तरह दूर किया जा सकता था।

इस व्यवस्था की विषम असगति विशेष रूप स, उच्च जातीय ब्राह्मणा और नायर वग के बीच के सम्बन्धा के सन्दभ म ता और भी स्पष्ट थी। उच्च जाति क ब्राह्मण और विशेषतया नबूदिरी ज्येष्ठाधिकार की परम्परा का पालन किया करत थ जिसके अनुसार उनके परिवार के ज्यष्ठ पुत्र ही स्वय अपनी जाति की कन्या से विवाह किया करत थे और बाकी पुत्र नायर महिलाआ के साथ या ता विवाह कर लेते थे या केवल 'सम्बन्धम' का रिश्ता कायम कर लेत थे। मगर उनके तथा उनकी सततिया के भरण-पोषण आदि की काई कानूनी वदिश उनके लिए नही थी। यह स्पष्टतया एक असह्य तथा अन्यायपूण प्रथा थी। मैंने और मरे हमख्याल कुछ साथियो ने इस सामाजिक समस्या पर भी ध्यान दिया और मातक वश परम्परा की समाप्ति करक उसे पैतक वश-परम्परा के अनुकूल बनाने के उद्देश्य स मत एकत्र करने के लिए सभाआ के माध्यम स एक प्रचार-अभियान चलाया।

इस परिवतन की स्वीकृति दिलान के माग म शासक परिवारा का विरोध एक बडी बाधा थी। मरे कुछ पाठका ने एट्टिवीट्टिल पिल्लमार यानी आठ नायर सनिका की कथा अवश्य सुनी होगी जो कोई ढाइ सौ वष पूव तिरुविताकूर की सना का गौरव थे। तत्कालीन शासक राम वर्मा (1721 29) के जो मातण्ड वर्मा क मामा थ, एक नायर कन्या से दो पुत्र थे। राजा रवि वर्मा के निधन के बाद इन दोना पुत्रा न, जिनके नाम पद्मनाभन तपि और रामन तपि थ मातण्ड वमा क स्थान पर गद्दी पर अपना दावा किया। आठा नायर नेता इस दावे के समथक थ और इस प्रकार मातक वश परम्परा के विरोध म विद्रोह करने-वाले प्रथम महत्वपूण दल के सदस्य बन। उन्ह कइ ओर से समथन मिला किन्तु मातण्ड वर्मा और उनके हिमायतियो की बराबरी वे नही कर सके। उन्होने एट्टिवीट्टिल पिळ्ळमार पर राजद्रोह का अभियोग लगाया और सभी को मौत के घाट उतार दिया। इन आठ वीरा की आत्माएँ सत्तारूढ परिवारो के पीछे पडी रही और ब्राह्मण पुजारिया की सहायता से उन्ह तावे के कलशो म आवाहित करके चगनाश्शेरी यानी नायर समुदाय के एक गढ म स्थापित किया गया जो सन् 1980 म स्मारक घोषित किया गया।

मेरे किशोर काल म एट्टिवीट्टिल पिळ्ळमार के समथन म कुछ कहना वर्जित था किन्तु धीरे धीरे ज्यो ज्यो अधिकाधिक नायर परिवार स्वच्छा से पतक वश परम्परा का पालन करन लग समाज का मनोभाव बदलन लगा। सन् 1920 क दशक म इस परिवतन को काननी मान्यता दिलाने के लिए सावजनिक अनुरोध बल पकडता गया। मुझ जस छात्रा की युवा पीढी के नतत्व म सपन्न अभियान भी उसका एक समथक तत्व था जिसने मातृक वश-परम्परा की समाप्ति कर

सन् 1925 म श्रावूनम अगस्ती म नायर अधिनियम की स्थापना की गति प्रदान की। इस प्रकार पुरानी सामती प्रथाओ के समस्त अवशेष मिट गए। यह बात भी मनोरंजक ही कही जाएगी कि अक्तूबर 1980 म केरल सरकार द्वारा एटिंग वीट्टिल पिळ्ळमार को जिन्ह मातण्ड वर्मा न देशद्रोही घोषित किया था, सम्मानित करके उन्ह साहसी क्रान्तिकारी वीर घोषित किया गया और उन ताम्रपत्रो को जिनम उनकी आत्माएँ आवाहित मानी गयी थी पुरातत्वीय स्मारक का सम्मान प्रदान किया गया।

यहाँ उस समय की सक्षिप्त चर्चा अनुचित न होगी जबकि नायर अधिनियम लागू किया गया था। उन दिनो राज्य का प्रबन्धकार्य रानी सेतु लक्ष्मीबाई के हाथ म था जो एक प्रबुद्ध महिला थी और जिनम प्रशासन की श्रेष्ठ योग्यता थी और सामाजिक सुधारो के लिए भारी उत्साह भी।

जब नायर अधिनियम लागू किया गया तब मरी आयु केवल बीस वर्ष की थी। मैं जिस बात का उपदेश देता रहा था उसे स्वय कार्य रूप देने के उद्देश्य से मैंने नय्याट्टिकरा म अपने सयुक्त परिवार म विभाजन की माँग की। मरी माँ आरम्भ म तो बहुत परेशान हुई क्योंकि परिवार की सबसे बुजुर्ग सदस्या होने के नाते व तरवाड (कुटुम्ब) की परम्परा की समाप्ति की कारवाई की अध्यक्षता करने म प्रसन्नता का अनुभव नही कर सकती थी। किन्तु शीघ्र ही परिवर्तित समय की धारा के कारण व इस बात पर सहमत हो गयी कि सयुक्त परिवार परम्परा म अब कुछ सार्थकता नही रह गयी है। इसलिए हम दोनो नय्याट्टिकरा गए और सम्पत्ति के विभाजन आदि की औपचारिकता सम्पन्न की। सयुक्त परिवार की सम्पत्ति का बँटवारा सदा ही एक भारी सिर दर्द हुआ करता था। बहुत-सी शिकायत हुआ करती थी क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को सतुष्ट कर पाना असभव था। आपसी आदान प्रदान की सदभावना के माध्यम से ही मुकदमबाजी को रोका जा सकता था। मने विभाजन की जिम्मेदारी सँभाली और मुझ याद पडता है कि किंचित भी कडवाहट या रुखाई के बिना जब मैं यह काम सम्पन्न कर पाया तो मुझ बहुत राहत मिली थी। मुझे लगा कि श्रेष्ठ प्रशासन के प्रशिक्षण से ही यह कार्य मैं कर सका।

लेकिन मुझ एक बात का भारी खेद रहा। दो पुलयन (पासी) परिवार हमारे तरवाड (कुटुम्ब) पर एक अर्से से आश्रित थे। मैं अपने परिवार के अन्य सदस्यो के समान ही उन दोनो को भी भूमि का एक टुकडा दिलाना चाहता था। मगर मेरे मामा आदि ने विरोध किया और चूंकि कानून मरी मदद नही कर सकता था अत मै बहुत निरुत्साहित हुआ और मुझ यह विचार त्याग देना पडा। किन्तु अपनी असफलता की क्षतिपूर्ति के रूप म मैंने नेय्याट्टिकरा म पुलय सगम की स्थापना की। इससे उस क्षेत्र के वृद्धजनो म बडा विस्मय और सन्त्रास फैला क्योंकि

वे मुझे खुराफाती समझत थ, किन्तु मेरी माता न कोई आपत्ति नही की। जसाकि मैं पहले कह चुका हूँ, वे सदा अपने समय से आगे की सोचती थी और मेरी प्रगतिशील सामाजिक गतिविधिया को सदा प्रोत्साहन दिया करती थी। इस 'सगम' की वठकें प्राय हुआ करती थी। एसी ही एक वैठक के वाद, मैन एक मिश्र भोज का आयोजन किया जिसम पुलय (पासी) जन के साथ वठकर मैने भी भोजन किया। यह घटना कस्बे भर म चचा का विपय वनी। इसस मुझे रूढिवादी बुजुर्गों का और अधिक श्रोध सहना पडा किन्तु मुझे इस वात की प्रसन्नता थी कि अय कई लोग मेरे इस काम के प्रशसक थे।

घटना का उत्सव मनाने के उद्देश्य से एक बहुत बडा तिरगा झडा थामकर एक विशाल जुलूस के आगे-आगे दूर तक चले। घर लौटते ही उनके प्राण पखेरू उड गये। उस समय उनकी आयु 98 वर्ष की थी। ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे इस धरती को त्यागने से पूर्व भारत की स्वाधीनता की प्रतीक्षा में ही थे।

सन् 1924 में ही मैंने हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त की। कुछ समय तक तो विश्वविद्यालय में भर्ती होने की बात पर विचार करता रहा लेकिन देश के विभिन्न भागों में सशक्त हो रही राजनीतिक और सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए कहीं अधिक लालायित अनुभव करता रहा। मैंने निर्णय किया कि मुझे कॉलिज की चारदीवारी से बाहर निकलना होगा जिससे कि मैं राष्ट्रीय अभियानों में स्वयं को उचित ढग से व्यस्त कर सकू। इन अभियानों में नेता की भूमिका भी अपनाना चाहता था, लेकिन अभी भी ऐसे साधनों की खोज कर रहा था जिनसे कि यह सब सभव हो सकता था।

सन् 1925 में हमारे सयुक्त परिवार के विभाजन के बाद कुछ समय तक मैंने कृषि-कार्य किया, लेकिन शीघ्र ही मैंने यह जान लिया कि भू सम्पत्ति को टुकडों में बाँट दिये जाने के कारण जो कुछ मेरे हिस्से में सभाव्य था, वह आर्थिक दृष्टि से मेरे लिए काफी नहीं था। एक सलाह यह भी मिली कि मैं पहाडी क्षेत्रों में चला जाऊँ, अछूते वनों के कुछ विस्तृत क्षेत्र खरीदकर उन्हें काटकर बडे पैमाने पर चाय इलायची, रबड और ऐसी चीजों की खेती करूँ। ऐसे अधिकाश बागान अग्रेजों की सपत्ति थे जिन्होंने भारतीय श्रम शक्ति के बल पर स्वार्थ साधन किया था और बहुत भारी मुनाफा कमाया था। मैंने तकनीकी जानकारी पाने के लिए ऐसी अनेक सस्थाओं में जाकर देखा किंतु सामान्यत वे भारतीयों के साथ अपने ज्ञान की साझेदारी के अनिच्छुक थे।

हालाँकि ऐसे बागान के प्रबन्ध सम्बन्धी मेरे विचार अग्रेजों से भिन्न थे तो भी यदि मैं अपनी योजना पर बल देता तो कुछ सफलता प्राप्त हो सकती थी। किंतु अपनी माँ के कडे विरोध के कारण मुझे यह विचार त्याग देना पडा। उनके अनुसार मेरे लिए पहाडी इलाके में रहना और सदा ही मलेरिया जहरीले साँपों और जगली जानवरों के खतरे में जीना अविवेकपूर्ण था। मुझे खुद तो इन सबकी कोई चिन्ता न थी किंतु अपनी माँ की इच्छा के विरुद्ध कुछ करने की विशेषकर तब जबकि अप्रिय सम्बन्ध विच्छेद की घटना के बाद उन्हें अपनी सतान से समस्त सुख-सहायता की वाछना थी मेरी इच्छा न थी और मैंने उसी के अनुरूप निर्णय लिया। इस प्रकार मानसिक रूप से मैं पुन उसी चौराहे पर खडा था जहाँ से चला था।

एक बार फिर स्वयं को राजनीति के क्षेत्र के प्रति आकृष्ट पाया और साथ ही यह बात अतीत से कहीं अधिक स्पष्ट थी कि इस क्षेत्र में कोई प्रभावकारी भूमिका

निभान के लिए मुझ अपेक्षतया अधिक अनुभव प्राप्त करना था। पहली बात तो यह थी कि मुझ स्वय मुक्ति अभियान के इतिहास की जो जानकारी थी, उससे अधिक जानना था विशषकर दश के अन्य भागो की घटनाओ क बारे म जहाँ असहयोग आदोलन और अन्य मुक्ति सघष रजवाडा की तुलना म कही अधिक प्रबल हो चुक थ।

कांग्रेस के नताओ के साथ मेर सपक तथा अपन पाठयक्रम क अलावा जो पढाई आदि मैं करता रहा था उसस मुझे उन विसगतियो का कुछ आभास हो चुका था, जो ब्रिटिश शिक्षा शास्त्री स्कूली पाठयक्रम म बडा श्रम करके समाविष्ट करत रह थ। भारतीय इतिहास की पुस्तका म शामिल बहुत सी सामग्री अविश्वसनीय तथा गलत थी और उस साम्राज्य के उद्देश्यो क रग म रँगा गया था। बहुत स महत्व पूण तथ्यो को दवा दिया गया था और बहुतो को बहुत ही गलत अथ दिया गया था। कक्षाओ म छात्रो को भारत पर ब्रिटिश शासन की गरिमा आदि का सशक्त पाठ पढाया जाता था किन्तु बार बार भिन्न भिन्न रूपो म लोगो द्वारा उस शासन क प्रति विरोध दर्शाये जाने की कही कोई चर्चा नही थी और न ही उस विरोध प्रदशन का ही कोई उल्लेख था जो निश्चित रूप स लगातार पूरे दश म बल पकडता जा रहा था।

हम स्वय करल क अपने उन वीरो क बारे म कुछ भी नहीं बताया गया था जिन्होन साम्राज्यवाद क विरुद्ध लडाई लडी थी। उदाहरण के लिये, निर्धारित पाठय-पुस्तको म से किसी म भी ब्रिटिश शासन क विरुद्ध केरल वर्मा पपशि राजा द्वारा सचालित उस एतिहासिक सघष की जिसम सन् 1805 म उन्होंने अपनी जान की बाजी लगा दी थी कोई चचा नही थी। लगभग उसी काल म दीवान वलु तपी क नतृत्व म तिरुविताकूर की नायर टुकडियो ने ब्रिटिश रेसिडेंट की दमनकारी नीतियो क विरुद्ध विद्रोह किया था। किन्तु विनसट स्मिथ लिखित आक्सफोर्ड हिस्टरी आफ इण्डिया म जो भारतीय इतिहास की पाठय पुस्तक थी, इस घटना को सनिक अधिकारियो की 'बगावत' कहा गया। वास्तविकता यह थी कि यह घटना तिरुविताकूर राज्य पर ब्रिटिश शासको द्वारा नियन्ति सहवध की नव सधि थोपे जान क विरोध म हुई। दशभक्त दीवान वलुतपी न इसका डटकर विरोध किया। उनकी पराजय सिर्फ इसलिए हुई कि ब्रिटिश शासको क पास बहतर अस्त्र शस्त्र थ किंतु व आम जनता की दशभक्ति की भावना को प्रज्ज्वलित करा पान म सफल हुए। अपनी पराजय क प्रायश्चित्त क रूप म वलुतपी ने सन् 1809 म आत्महत्या कर ली जिसस उनक बाकी सभी समथको को बहुत दुख पहुँचा। विन्सेंट स्मिथ की पुस्तक म इन समस्त घटनाओ को एक पक्षपाती वाक्याश म बाँधकर कहा गया कि यह एक 'पागलपन भरी बगावत' थी।

यह था स्कूलो म प्रचलित इतिहास की स्थिति। मुझ यह स्पष्टतया ज्ञात हो

चुका था कि स्थिति की वास्तविकता को जानने के लिए मुझे पहले का सीखा बहुत कुछ भुलाकर भिन्न भिन्न माध्यमो से नया सीखना चाहिए।

भारत मे ब्रिटिश उपनिवेशवाद का भारतीयो द्वारा विरोध वास्तव म साम्राज्य मे भारत को जबरन मिलाये जान के साथ ही साथ आरभ हो गया था जब सन् 1757 मे प्लासी के युद्ध के बाद रावट क्लाइव ने देश हथिया लिया था। कोई डेढ सौ वप तक बगाल, बिहार, उडीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, दक्षिण आदि विभिन्न क्षेत्रा म क्रातिया होती रही थी। स्वय केरल के सदभ मे मैंने दो महत्व पूण घटनाआ का उल्लेख किया है। सन 1857 म, भारतीय सनिको द्वारा बहु सख्या म की गयी बगावत लगभग समस्त दश मे फैली उग्र ब्रिटिश विरोधी भाव नाओ की स्पष्ट अभिव्यक्ति थी, हालाकि पक्षपातपूण अग्रेज इतिहासकारो ने इसे मात्र सिपाही बगावत' का नाम दिया।

आगामी दशको म स्वतत्रता सग्राम न ज़ोर पकटा और इसकी अग्रिम पक्ति म बहुत से यशस्वी नेता उभरकर सामने आये जिनम शामिल थे—गोपालकृष्ण गोखले, बाल गगाधर तिलक, अरविंद घोष, लाला लाजपत राय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और मदनमोहन मालवीय आदि। उन्होने राष्ट्रीयता की भावना स ओत प्रोत ज्योति प्रज्वलित कर दी जो अधिकाश भारतीयो के हृदया म सुलगने लगी। सन 1906 म तिलक ने अपने प्रसिद्ध वाक्य 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' से राष्ट्र की आत्मा को झकझोर दिया था। श्री अरविंद का सदेश भी कुछ कम हलचलकारी न था। बहुमुखी प्रतिभा के धनी रवीन्द्रनाथ टगोर न अपनी असाधा रण गद्य व पद्य रचनाआ के माध्यम से भारत म राष्ट्रीयता की भावना को अत्य धिक उत्तेजित कर दिया। बकिमचन्द्र चटर्जी न अपन उपन्यास आनन्द मठ' म सम्मोहनकारी वाक्याश 'वदे मातरम' वाली कविता स भारतवासियो की आत्मा को हिलाकर रख दिया, जिसके समथन म या या कह जिसके आह्वान पर लाखा लोग ब्रिटिश शासका के प्रतिबध के विरोध म सगठित हो गय।

सन 1915 म अफ्रीका स वापसी के बाद जब गाधी जी का नाम राष्ट्रीय राजनीति क मच पर उभरा तो राष्ट्रीयता की भावना के प्रवाह न अप्रतिरोध्य बल पकड लिया। ब्रिटिश शासका का दमन-चक्र कठार होता गया और भारत को स्वतत्रता दिलाने को कृतसकल्प धम-योद्धाआ को, भारतीय स्वतत्रता की बलिवदी पर अपना सवस्व निछावर करते हुए असीम यातनाएँ भोगनी पडी। आत्म-बलिदानी असख्य निष्ठावान राजपुरुषो म थ—मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू सी० आर० दास, वल्लभ भाई पटल सी० राजगोपालाचारी, श्रीनिवास अय्यगार सुभाषचन्द्र बोस और अन्य अनक। इनम स कुछ के विचार स्वतत्रता प्राप्ति की दिशा म अपनाई जानेवाली कायप्रणाली क सदभ म गाधीजी स कुछ भिन्न थ किन्तु लक्ष्य सबका एक था—आज़ादी। इस काम म मुस्लिम समुदाय भी पीछे न था।

उसम थ अदम्य साहसी अली बधु यानी मुहम्मद अली और शौकत अली, अबुल कलाम आजाद अब्दुल गफ्फार खाँ (जिन्ह स्नेहवश 'सरहदी गाधी' क नाम स जाना जाता है) और अन्य अनेक। आरम्भ म मुहम्मद अली जिन्ना भी काग्रेस म ही शामिल थे किन्तु दुर्भाग्यवश उसस अलग होकर उन्होंने मुस्लिम लीग नामक सस्था का नेतृत्व सँभाला और अतत सासिता म फूट डाला और राज कर की ब्रिटिश नीति की पराकाष्ठा क रूप म भारत का विभाजन करवान म सहायक हुए।

कर्जन क वायसराय काल (सन् 1899 1905) म और इसक बाद बगाल तथा पूर्वी भारत क अन्य भागो तथा उत्तर व पश्चिम भारत क अनक भागो म ब्रिटिश विरोधी अभियान आतककारी गतिविधियो क माध्यम स चलाय जाने लग। सार्वजनिक प्रदर्शनो आदि क विरुद्ध दमन क कारण इनम म अधिकाश गतिविधिया गुप्त भूमिगत अड्डो स सचालित की जाती थी। सम्भवत राष्ट्रीयता भरे विचारो वाले अनेक समाचार पत्र आदि वितरित किय जान लग थ। बहुत स देशप्रेमियो क लखो की ओजस्विता नौकरशाही तन्त्र की प्रकोपकारी गतिविधियो का मुहतोड जवाब हुआ करती थी। उनम स कुछ तो अपन छापेखाने स ऐसी उग्र सामग्री प्रस्तुत करत थ मानो ज्वालामुखी स फूटा लावा हो। मजिस्ट्रेट आदि ने वदे मातरम वाक्याश क उपयोग पर प्रतिबध लगा दिया था जो बगाल व अन्य स्थानो पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद क मरण घट की ध्वनि क समान था किन्तु बकिमचन्द्र न लोगो म जिस देशप्रेम की ओजपूर्ण भावना को जागत किया था ब्रिटिश शासक उसे दबा पाने म सफल नही हो सका।

ब्रिटिश शासको क विरुद्ध हिसा के उपयोग का प्रतिपादन आतककारियो की एक गुप्त सस्था द्वारा किया जा रहा था जिनम स कुछ बम बनाने की विधि आदि सीखने का दुष्कर काय कर रहे थे। इस अभियान क सचालको म स अनेक को गिरफ्तार किया गया और सरकारी अधिकारियो ने उन पर जुल्म ढाय। ब्रिटिश शासको ने उन्हें खोज निकालन क अथक प्रयास किये। फिर भी जिन्हें नही पकडा जा सका उन कुछेक लोगो म स एक थे—रासबिहारी बोस। किन्तु अतत उन्होंने जान लिया कि उनका वहाँ बने रहना खतरे स खाली न था और इसलिए भारत को स्वतन्त्रता दिलाने के अपने अभियान को जारी रखने की चाह स वे जापान चले गय। कालातर म नियति ने हमारे समान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मुझे उनके बहुत निकट आने का अवसर प्रदान किया जिसकी चर्चा मैंने इस पुस्तक म अन्यत्र की है।

वर्तमान शताब्दी क पहले दो दशको म अनेक दुस्साहसी भारतीय युवको द्वारा भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए विदेशो म स्थित अड्डो से अनेक अग्रणी प्रयास किये गये। इनक केन्द्र अमरीका यूरोप चीन बर्मा दक्षिण पूर्व एशिया

और जापान म थ। विदेशा मे स्थित विशेष रूप से उल्लेखनीय सस्थाओ म थी, अमरीका ग़दर पार्टी, जिसका गठन सन् 1907 म केलिफानिया वकले विश्व विद्यालय के भारतीय छात्रो ने किया था। इसका शुभारम्भ बगाल के दुस्साहसी युवक तारकनाथ दास न किया था और पजाब के आजस्वी हरदयाल न इसे सशक्त बनाया था। अमरीका तथा कनाडा म वसे, सिख आप्रवासियो की भारत स्वतन्त्रता प्राप्ति के अभियान म विशेष महत्वपूर्ण भूमिका थी।

सन 1909 के एशियाई आप्रवास कानून के पक्षपातपूर्ण स्वरूप स अमरीका के भारतीय समुदाय का बहुत क्लेष पहुँचा और उनमे से बहुतो ने इसके उत्तर म अपन क्रातिकारी अभियाना को और उग्र कर दिया। उनके प्रयासा स धीरे धीरे 'प्रशात तटवर्ती भारतीय सघ' अमरीका मे 'भारतीय स्वतन्त्रता लीग', जमनी मे भारतीय स्वतन्त्रता समिति' व अय ऐसी ही सस्थाओ का जन्म हुआ जिन्हान अनक देशा म कायकलाप आरम्भ किया और परस्पर सम्पक बनाये रखा। इन सस्थाओ ने स्वय भारत म विशेष कर बगाल और पजाब म भूमिगत क्रातिकारी गतिविधियो को प्रेरणा दिलाने का काम किया। विदेशा म भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सघपरत प्रमुख नेताओ म थे—यूरोप म श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय (जो सरोजिनी नायडू के भाई थे) डा० चपक रामन पिल्ल और वरक्कतुल्ला, तुर्की म मोहम्मद-अल हसन, और अफगानिस्तान मे उबैदुल्ला सिंधी और महेन्द्र प्रताप।

अमरीका और कनाडा म स्वतन्त्रता सनानियो को ब्रिटेन क उकसाने पर बहुत-सी कठिनाई और कष्ट का सामना करना पडता था। कनाडा क इतिहास म एक अति अशुभ अध्याय है 'कोमागाता मारू' नामक सन 1914 की एक दुर्भाग्य-पूर्ण घटना। हांगकाग स्थित एक एजेन्ट के माध्यम से वेकूवर के सिख समुदाय ने पजाब से कनाडा म अपन कुछ देशी भाइयो को लाने के लिए एक जापानी पोत 'कोमागाता मारू' का प्रबन्ध किया। किन्तु कनाडा के आप्रवास-तत्र ने इस पोत का, अपन किसी भी बदरगाह पर रुकन की अनुमति नही दी और अनक अप्रिय घटनाओ के बाद इस पोत को सिंगापुर होते हुए वापस कलकत्ता भेज दिया गया। इस पर सवार लोगो के लिए यह एक नारकीय यात्रा थी। ब्रिटिश अधिकारीगणा ने इन यात्रियो की यातना का बढान मे कोई कसर बाकी नही रखी। सिंगापुर स्थित ब्रिटिश एजेन्टा म स कुछ न तो उन अभागा क उतरन की प्रक्रिया का तज करने की आड म उन्ह गोलियों से भून दिया। ब्रिटिश शासका की निदयता अत्य धिक जघन्य स्तर की थी।

प्रथम विश्व युद्ध म भारत ब्रिटेन के युद्ध प्रयासा का सक्रिय समथक रहा था। भारतीय सनिक अपने औपनिवशिक स्वामियो को विजय दिलाने के लिए विभिन्न युद्धस्थला पर लड-लडकर मर रहे थे। विभिन्न मोर्चों पर कोई आठ लाख भारतीय

तैनात थे। उनमें से कोई सत्तर हजार युद्ध में मारे गये जो एक साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी सत्ता द्वारा अपने शासित देश में उठायी गयी बहुत बड़ी क्षति थी। इसके एवज में भारतीयों की प्रत्याशा थी कि उनका समर्थन पाने के लिए ब्रिटेन द्वारा आरम्भ में दर्शायी गयी आशा की किरण अनपहचानी न रहेगी। किन्तु उक्त प्रथम विश्वयुद्ध के उत्तरार्द्ध में जब ब्रिटेन को अपनी विजय का आभास मिलने लगा तो वह अपना वादा भूल गया और भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लक्ष्य के प्रति अवहेलना व उदासीनता का रुख अपनाता गया। इस विश्वासघात के विरुद्ध तीव्र निराशा उभर उठी जिसने भारत भर में ब्रिटेन विरोधी भावनाओं को भड़का दिया। देश के विभिन्न भागों में क्रान्तिकारी दलों ने ब्रिटिश सत्ता को पुनः सक्रिय चुनौतियाँ देना आरम्भ कर दिया।

मोटे तौर पर लोगों की माँगें कांग्रेस की आवाज के अनुरूप शांतिपूर्ण थीं। वे सहयोग तथा बातचीत के माध्यम से एक समाधान चाहते थे किन्तु उपनिवेशवादी शासकों ने बढ़ते हुए आन्दोलनों को कुचल देने के प्रयास में अनेक दमनकारी कार्रवाइयाँ कीं। सर्वप्रथम रौलट बिल पास हुआ जिसके अनुसार संदिग्ध राजनीतिक कार्यकर्ताओं को हिरासत में लेने का अधिकारियों को पूरा-पूरा अधिकार दिया गया। इसका उद्देश्य सरासर यह था कि पंजाब में प्रदर्शनों के विरुद्ध उसका इस्तेमाल किया जाय। गांधीजी ने 'काला कानून' कहते हुए इस बिल को चुनौती दी और वायसराय से अनुरोध किया कि वे इस बिल को अपनी अनुमति प्रदान न करें। जब उनके इस अनुरोध पर ध्यान न दिया गया तो उन्होंने 6 अप्रैल 1919 को एक हड़ताल (काम-काज में रोक) की घोषणा करके इस बिल का प्रतिरोध किया और जन समर्थन प्राप्त किया।

इसके शीघ्र बाद (यानी दस अप्रैल को) 'अमृतसर की त्रासदी' नामक दुर्घटना हुई। कांग्रेस के दो अति सम्मानित नेता डाक्टर किचलू और डॉक्टर सत्यपाल बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के अमृतसर के जिला मजिस्ट्रेट द्वारा हिरासत में ले लिये गये। जब उनकी गिरफ्तारी का समाचार फैला तो उनकी रिहाई की माँग करती भीड़ पुलिस व जिलाधीश के कार्यालयों की ओर रवाना हुई। जब पुलिस ने उनके मार्ग में बाधाएं डालीं तो छिटपुट मुठभेड़ें हुईं और दोनों ही पक्षों के लोग हताहत हुए। पाँच अंग्रेज मारे गये। इसके तत्काल बाद ही अन्य स्थानों पर भी इसी प्रकार की घटनाएँ हुईं जिसके परिणामस्वरूप अमृतसर के कुछ भागों में कर्फ्यू लगा दिया गया। सिख समुदाय जल भुन उठा। इस दुखद घटनाक्रम की पराकाष्ठा हुई उस वर्ष बैशाखी के दिन यानी 13 अप्रैल को। पंजाब और लगभग समस्त भारत के लोगों के अनुसार यह ब्रिटिश क्रूरता के इतिहास की कदाचित क्रूरतम घटना भी थी जो 'जलियाँवाला बाग हत्याकांड' के नाम से प्रसिद्ध है।

कोई 20 हजार व्यक्ति जलियाँवाला बाग नामक एक सार्वजनिक स्थान पर

एकत्र हुए थे, जिसमें आने और जाने का एक ही रास्ता था, वह भी इतना तंग कि एक समय में कुछेक लोग ही वहां से आ जा सकते थे। उस तंग मुहाने पर जनरल डायर की कमान में कोई दो सौ सैनिक वहां आ पहुंचे, डायर ने वहाँ उपस्थित भीड़ पर, उन्हें वहाँ से हटने की कोई चेतावनी अथवा पूर्व सूचना दिये बिना, गोली चलाने का हुक्म दे दिया। गोलियों की बौछार ने कोई 400 निर्दोष निहत्ये भारतीयों को मौत के घाट उतार दिया और अन्य 1200 को गंभीर रूप से जख्मी कर दिया। खून के प्यासे डायर के कथनानुसार वह पंजाब भर को एक सबक सिखाना चाहता था। हताहतों की संख्या न बढ़ने का एकमात्र कारण यह था कि उसका गोला-बारूद समाप्त हो गया था। उक्त हत्याकांड एक अवर्णनीय क्रूरता का नमूना था। विंसटन चर्चिल ने भी, जिसे भारत से कतई कोई लगाव न था जलियाँवाला बाग हत्याकांड की भर्त्सना करते हुए इस एक भयंकर घटना कहा था। उन्होंने कहा था कि जोन ऑफ़ आर्क को अग्नि में भस्म करने के बाद यह दूसरी राक्षसी घटना है जो अंग्रेजों के इतिहास पर एक अमिट धब्बा है।

अमृतसर के इस त्रासदी-पूर्ण कांड ने भारत भर में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध बेहद तीखे विरोध को जन्म दिया। जवाहरलाल नेहरू क्रोध से बिफर उठे। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ब्रिटिश शासकों द्वारा प्रदत्त 'नाइट' की उपाधि का त्याग कर दिया। जनरल डायर को कड़ी सजा देने की ही नहीं बल्कि पंजाब के लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर माइकल ओडायर तथा वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड की वापसी की भी जोरदार माँग की गयी। विट्ठल भाई पटेल, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, श्रीनिवास शास्त्री तेजबहादुर सप्रू, श्रीमती एनी बेसेंट जैसे प्रमुख नेताओं ने तत्काल जाँच-पड़ताल की माँग की। किन्तु सरकार ने सार्वजनिक क्षोभ और संताप की कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई। पूर्व घोषित मार्शल लॉ प्रशासन जारी रहा। ऐसी क्रूर नीति के विरोध में सर सी० शंकरन नायर ने, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, वायसराय की प्रबन्ध परिषद से त्याग पत्र दे दिया।

जलियाँवाला बाग हत्याकांड के कारण भड़की भावनात्मक तनाव की स्थिति अभी पूरी तरह विद्यमान थी कि एक अन्य अप्रत्याशित घटना हो गयी। वह थी— सन 1921 की 'खिलाफत आन्दोलन' की घटना। यह घटना प्रथम विश्व युद्ध में, तुर्की की हार के बाद भारतीय मुस्लिमों द्वारा एक धार्मिक विरोध के रूप में जन्मी। इसके परिणाम में ब्रिटिश शासकों ने मुस्लिम समुदाय के सर्वोच्च धार्मिक पद 'खलीफा' का रद्द करने और आटोमन साम्राज्य को नष्ट करने का निर्णय लिया। इस बात को सभी मुस्लिम राष्ट्रों ने अपना अपमान माना और भारतीय मुस्लिम नेताओं ने ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध एक सशक्त अभियान आरम्भ कर दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने तो इस अभियान का समर्थन किया ही हिन्दू समुदाय ने भी इसका समर्थन किया। इसके फलस्वरूप ब्रिटिश शासकों के खिलाफ़

एक सयुक्त हिन्दू मुस्लिम आन्दोलन चल पड़ा।

किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि इस घटना की खुशी अल्पजीवी थी। साम्प्रदायिक मैत्री बहुत नाजुक और अस्वाभाविक सिद्ध हुई। जब कमाल अतातुर्क ने इस्तांबूल म नियन्त्रण संभाला और यह समाचार फैला कि एक नवीन धर्म निरपेक्ष विधान के अन्तर्गत खिलाफत व्यवस्था समाप्त कर दी जायगी तो भारत के आन्दोलन के सन्दर्भ म गड़बड़ी फल गई। भारत के मुसलमानों ने अचानक यह निष्कर्ष निकाला कि हिन्दुओं के साथ नव-स्थापित मैत्री आदि का अब कोई मतलब नहीं रह गया है। अत साम्प्रदायिक मतभेद पुन सिर उठाने लगे।

मलबार क्षेत्र म बहुत सी मुठभेड़ों ने उग्र रूप धारण कर लिया और इन्हीं घटनाओं ने अन्तत माप्पला विद्रोह (1921) का रूप ले लिया। वहाँ किये गये अत्याचारों म से कुछ तो इतने बीभत्स थे कि दोनों ही पक्षों का सिर शर्म से झुक जाना चाहिए था। मद्रास सरकार ने साम्प्रदायिक दंगों को दबाने के लिए हजारों सनिकों को मलबार भेजा जिनम गुर्खा सनिक भी शामिल थे। दोनों पक्षों म कुल मिलाकर हताहतों की आधिकारिक अनुमानित सख्या दिल दहला देने वाली थी यानी लगभग 2400 मृत और 1600 घायल। 39000 व्यक्तियों को बंदी बनाया गया जिनम से 24000 को विभिन्न अपराधों के लिए दंडित किया गया। यह दुर्भाग्यपूर्ण घटना एक पूर्ण-स्तरीय सनिक गतिविधि के समान थी और इसकी कड़वाहट दीर्घ काल तक बनी रही और काफी अरसे के बाद ही मिट सकी।

सौभाग्यवश खिलाफत अभियान का त्रासदीपूर्ण प्रभाव केरल के तिरुविताकूर-कोच्चि क्षेत्र म बिल्कुल नहीं पड़ा। उस क्षेत्र मे सामाजिक-आर्थिक सुधार काम धार्मिक और साम्प्रदायिक पक्षपात के बिना चलता रहा। वास्तव म समस्त धर्मों व मतों का पालन करनेवालों के बीच एकता की एक असाधारण भावना विद्यमान थी। एक प्रमुख युवक नेता के नाते मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि सामजस्य की उक्त स्थिति बनाये रखने म विद्यार्थी समुदाय ने रचनात्मक भूमिका निभाई थी। न तो सन 1922 की छात्र हड़ताल म किसी प्रकार की साप्रदायिक भावना थी और न ही सन 1924 के वक्कम सत्याग्रह म। मलबार क्षेत्र जब माप्पला विद्रोह की गिरफ्त म था उस समय तिरुविताकूर म विदेशी शासन के विरुद्ध नागरिक अवज्ञा और ब्रिटिश वस्तुओं के बॉयकाट के सशक्त अभियानों की तैयारी चल रही थी। दोनों ही सन्दर्भों म छात्र नेता वरिष्ठ जन-नेताओं के साथ कधे से-कधा मिलाकर चल रहे थे।

ब्रिटिश माल बेचनेवाली दुकानों पर धरना आदि देने की कारवाई मे मेरी और अन्य अनेक सहपाठियों की विशेष भूमिका रही थी। गांधीजी की तिरुविताकूर यात्रा के शीघ्र बाद सन 1924 म तिरुवनन्तपुरम के समुद्र तट पर विदेशी वस्तुओं

की होली जलाने में वस्तुतः छात्र नेताओं की सक्रिय भूमिका रही थी और यह उनकी उपलब्धि थी। विलायत में बने वस्त्रों की एक के बाद एक गठरियाँ आती रही जिन्हें हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, युवा, वृद्ध, पुरुष, नारी बालक आदि सब लाद लादकर ला रहे थे और देवदास गांधी द्वारा प्रज्वलित होली पर विदेशी वस्त्रों का होम करने के लिए परस्पर होड़ ले रहे थे। यह इस बात का ज्वलन्त उदाहरण था कि यदि उचित ढंग से प्रेरित हो तो लोग जाति और धर्म की परवाह किये बिना बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हैं।

6

जापान की ओर

मेरे सबस बड़े भाई डाक्टर कुमारन नायर मुझस चौन्ह वष बडे थ। हमारे परिवार म उनका बहुत सम्मान था। सना की नौकरी के अलावा गरसरकारी चिकित्सालयों और अस्पताला म भी व बहुत व्यस्त रहत थ। उन्ह बहुत ख्याति प्राप्त थी। किन्तु अपन व्यावसायिक कायकलापा की व्यस्तता क कारण अपन निजी मामलो के लिए उन्ह समय नही मिल पाता था। यद्यपि उन्ह हम लागा स स्नेह था किन्तु पत्नी तथा तीन बच्चा की दखभाल की जिम्मदारी की वजह स स्वाभाविक रूप स वे हम बहुत समय नही दे पात थ।

परिणामत नारायणन नायर के साथ मेरी घनिष्ठता ज्यादा थी। व मुझसे पाच वष बडे थे। नारायणन बहुत मेधावी छात्र थे और विज्ञान के विषयो म उनकी विशेष रुचि थी। सन 1920 म जब उन्होने मट्रिक की परीक्षा पास की तो मेरे पिताजी ने निणय किया कि उन्ह तक्नीकी विज्ञान की किसी शाखा म अध्ययन के लिए भेजा जाना चाहिए जोकि उस समय भारत म लगभग एक नयी बात थी। उनके बहुत से मित्रा को उस समय बडा अचरज हुआ जब उन्ह यह मालूम हुआ कि वे मत्स्य विज्ञान म रुचि रखत हैं। आश्चय इसलिए कि एक उच्च वर्गीय शाकाहारी ब्राह्मण के बारे मे यह कल्पना भी दूभर थी कि चाहे दूसरा के लिए ही सही क्या वह मत्स्य का विकास करेगा अथवा मास को चीज़ा का समाधन करगा, उनके लिए यह कोई सामान्य बात नही थी। किन्तु मरे पिता केरल के मत्स्य उद्योग के सदभ म प्रबल सम्भावनाओ को पहचानत थे इसलिए उन्होने इस क्षेत्र का ही सर्वोत्तम माना। अत निणय हुआ कि मेरे भाई मत्स्य क्षेत्र के विशषज्ञ का प्रशिक्षण ग्रहण करे। मुझे स्मरण है उन्हान मुझस कहा था कि उन दिनो विज्ञान मत्स्य विज्ञान म स्नातक स्तर की शिक्षा देने वाली सर्वोत्तम सस्था जापान के होक्काइदो म स्थित इपीरियल यूनिवर्सिटी आफ सापारो' थी। उन्होने इस विश्वविद्यालय के प्रधानाचाय स पत्राचार किया और मेरे भाई को सन 1921 म आरम्भ होन वाले बी० एस-सी० डिग्री पाठ्यक्रम क लिए प्रवेश

की अनुमति मिल गई।

यह वह समय था जबकि मेरे माता पिता का घर ससार सुखमय था। मेरे पिताजी ने मेरे भाई का जापान भेजन का प्रबन्ध किया और उन्ह डिग्री दिलाने के समय तक का उनका सारा खर्च उठाया। दुर्भाग्य से शिक्षा समाप्त होने के समय तक मेरी मा और मेरे पिता के सम्बन्धो म दरार आ गयी थी। अत मेरे पिता ने वापसी यात्रा के लिए मेरे भाई को कोई धन न भेजा। इसलिए यह खर्च यानी कोई दो हजार रुपये मेरे सबसे बडे भाई कुमारन नायर ने दिये। किन्तु जिन परिस्थितियो मे उन्होने ऐसा किया उसकी वजह से उन्हे कटु आलोचना का शिकार बनना पडा। बाद मे पता चला कि उन्होने यह धन अपने एक मित्र से इस शर्त पर लिया था कि नारायणन नायर जापान से लौटते ही उस मित्र की बेटी से विवाह कर लेंगे।

हालाकि मैं अपने बडे भाई का सम्मान करता था किन्तु इस मामले म उनका आचरण मुझे नैतिकतापूर्ण नही लगा क्योकि उन्होने उक्त सौदा करने से पूर्व मेरे भाई से कोई सलाह मशविरा नही किया था। ऐसे रिश्ते यद्यपि उन दिनो कोई असाधारण बात न थी आर्थिक दृष्टिकोण से भी कुमारन नायर को अपने भाई को इस तरह गिरवी रखने की कोई आवश्यकता न थी। स्नातक बनने के बाद नारायणन नायर स्वय अपने ही विश्वविद्यालय मे अशकालिक शोधकर्ता के रूप मे काफी धन कमा रहे थे जो उनकी वापसी यात्रा के लिए पर्याप्त था। खैर हमारे सबसे बडे भाई ने जो कुछ किया उससे नारायणन को कोई प्रसन्नता तो नही हुई थी फिर भी बडी भद्रता का परिचय देते हुए उन्होने भाई के वचन का सम्मान किया ताकि परिवार की प्रतिष्ठा बनी रहे। स्थिति का सामना करने और इस लादे गये रिश्ते को सफल बनाने के लिए उनमे काफी दार्शनिक और चारित्रिक बल था।

वापस आने पर उन्होने तिरुविताकूर सरकार के कृषि विभाग म मत्स्य पालन के इस्पेक्टर का पद सभाला। कालान्तर मे जब स्वतन्त्र मत्स्य विभाग स्थापित हुआ तो उन्हे उसका निदेशक बनाया गया। कुछ समय बाद वे कनाडा चले गये और वहाँ के मत्स्य सवर्धन से सम्बद्ध जीवाणु विज्ञान मे एम० ए० की डिग्री लेकर लौटे। बाद म उन्होने अपने कार्य क्षेत्र म विश्व के उच्चतम वैज्ञानिकों की ख्याति प्राप्त की।

उधर मेरा परिवार स्वय मेरे भविष्य के प्रति चिंतित था। स्कूल म मेरे कार्य-कलापो के कारण अधिकारीगण पहले ही मुझसे नाराज थे और यदि मैं पूरी तरह से राजनीतिक गतिविधियो को समर्पित हो जाता, जैसाकि बहुत से लोग सोच रहे थे तो एक ब्रिटिश विरोधी आन्दोलनकारी के रूप म तुरन्त जेल म ठूस दिया गया होता। इसलिए मेरे भाई नारायणन नायर ने मुझे राजनीतिक क्षेत्र म बहक जाने की स्थिति से बचाने का जिम्मा लिया और वे मेरी पढाई आगे जारी रखने

के प्रब ध म लग गय। उन्होने मेरे लिए इजीनियरी विषय चुना जिसमे मैं डिग्री प्राप्त कर सकता था साथ ही इस क्षेत्र म मेरे लिए एक अच्छी नौकरी की भी गुजाइश हो सकती थी। जापान म उनके सम्पर्कों तथा वहा उपलब्ध शिक्षा के उच्च स्तर के कारण उन्होने सोचा कि मेरे लिए वहाँ जाकर अध्ययन करना ही सर्वोत्तम होगा। मेरे दूर के एक रिश्तेदार श्री नीलकठ पिल्ल जापान के क्योता विश्वविद्यालय स इजीनियरी म स्नातक की उपाधि प्राप्त करके तिरुविताकूर सरकार म उच्च पद पर आसीन थे। उनकी मिसाल पेश की गई। मेरे भाई न क्योता विश्वविद्यालय को लिखा और सन् 1928 मे आरम्भ होने वाले इजीनियरी के डिग्री कोर्स मे मेरे लिए स्थान प्राप्त कर लिया।

मेरी उत्कट अभिलाषा थी कि कांग्रेस के तिरंगे झण्डे की छाया म भारत क स्वतत्रता आन्दोलन मे जमकर भाग लू। इसलिए इस प्रस्ताव के प्रति काफी हद तक मानसिक सकोच का अनुभव किया। अन्त मे अपने भाई के प्रति स्नेह और उनकी इच्छाओ के प्रति मेरे मन क सम्मान भाव की मरी निजी पसन्द पर विजय हुई। मैंन जीवन म पहली बार बलात लादे गये निर्णय के साथ समझौता कर लिया और मानसिक स्तर पर अपने आपको तकनीकी पेशे के लिए तैयार कर लिया।

मुझे हाई स्कूल स उच्चतर स्तर के गणित का अध्ययन करना था। इसलिए मैंन एक विख्यात शिक्षक स गणित की विशेष शिक्षा प्राप्त की। गणित मे वांछित स्तर का ज्ञान प्राप्त करन के बाद मेरे भाई ने मेरी जापान यात्रा की तैयारियाँ पूरी कर ली। मुझे 18 फरवरी, 1928 को कोलम्बो स जापानी पोत मुव मारू म अपनी यात्रा आरम्भ करनी थी। फरवरी मास के दूसर सप्ताह मे मैं श्रीलका क लिए रवाना हो गया। मरे साथ बड़े भाई नारायणन नायर भी आये।

वहाँ मरे भाई न पोत के कप्तान स मेरा परिचय करवाया। उन दोनो ने जापानी भाषा म बहुत देर तक बातचीत की। वह भाषा मेरे लिए बिल्कुल अजनबी थी किन्तु कप्तान का सम्मान जनक रुख देखकर यह स्पष्ट था कि मेरे भाई को जापानी भाषा का उच्चस्तरीय ज्ञान प्राप्त था। उन्होने कप्तान स कहा था, यह मरा प्यारा भाई है। जापान म अध्ययन के लिए जा रहा है। आप कृपया ध्यान रखें कि यात्रा के दौरान इसे केवल जापानी ढंग का भोजन ही दिया जाये, जिसस कि यह उसका आदी हो जाये ताकि बाद म इसे खान की परेशानी न हो जो मुझ आरम्भ म हुई थी। उन्होने कप्तान स यह अनुरोध भी किया था कि आवश्यकता पड़न पर व मरा निजी रूप स ध्यान रखें।

कप्तान न दोनो ही अनुरोधो को स्वीकार करके उन्हे आश्वस्त किया और वस्तुत वसा ही किया भी। उनकी निजी देख रेख म, मुझे और किसी प्रकार

का भोजन नही दिया गया, बल्कि जापानी खाना ही दिया गया। व जापानी रीति रिवाजो और जीवन-शली क बारे म भी मुझ समय-समय पर काफी बतात रहे। मैंने जापानी भाषा क कुछेक काम चलाऊ शब्द बोलना भी सीख लिया जिसस कि पोत स उतरत ही रास्ता आदि ठीक स खोज सकूँ और आ जा सकू।

पात पर प्रथम श्रेणी के एक यात्री थे, जापान क विख्यात चिकित्सक प्रोफेसर डाक्टर फुकुदा। वे कलकत्ता म एक अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सक सम्मेलन म भाग लेन के बाद स्वदेश लौट रहे थे। मरे भाई न उनसे भी मरे बारे म कहा था और वे भी अपन छोटे भाई का-सा स्नह दत रह थ ताकि मुझ घर की बहुत अधिक याद न सताय। जहाँ तक मेरे भोजन का प्रश्न है मुझे चावल, 'मिसो यानी सोयाबीन का सूप, और अन्य विशेष जापानी व्यजन दिए जाते रह जो आरम्भ म मुझे बहुत बेस्वाद लगत। मुझे जहाजी मितली के कारण भी परशानी हो रही थी और बार-बार कै हो रही थी। ऐस क्षण भी आये जबकि मैंने सोचा कि भारत लौट जाना बेहतर रहगा किन्तु यह सम्भव न था और मुझे अनिवायत अपनी समस्याओ स जूझना पडा। साथ ही मैं स्वय को यही समझाता रहा यदि लौट पाना सम्भव होता तो भी, एसा करना कायरता होगी। इतना ही नही, यह बात मैं सोच भी नही सकता था कि मैं अपने भाई को निराश करूँ जिन्होने मेरे लिए इतना कष्ट उठाया था।

यात्रा के दौरान, मरे पास भारत के समाचार पाने का कोइ साधन नही था। विश्व-स्तरीय प्रसारण व्यवस्था का अभी पूरी तरह विकास नही हुआ था और फिर शुरू मारू पोत के वायरलस सट भी इतन सक्षम नही थे कि दूर दराज के देशो द्वारा शाट वेव पर प्रसारित कायक्रम ग्रहण कर सके।

भारत म मरे चलन से कुछ ही पूव बगाल तथा उत्तर भारत के कुछ प्रान्तो म बहुत-सी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ हो चुकी थी जिसम हिन्दू मुस्लिम झगडे भी थ जो ब्रिटिश शासको द्वारा बोय गय साम्प्रदायिक मनमुटाव के बीजो के ही दुष्फल थ। राष्ट्रीय मोर्चे पर काग्रेस, वायसराय और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक अन्य बल परीक्षण की तयारी कर रही थी। दिसम्बर 1927 मे मद्रास के काग्रेस अधिवेशन म जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव कि 'पूर्ण स्वराज्य' यानी पूण स्वतन्त्रता ही भारतीयो का लक्ष्य है' पारित किया गया। लोगो मे क्रोध की बढती मन स्थिति का आभास पाकर, ब्रिटेन द्वारा नवम्बर, 1927 मे घोषणा की गई थी कि सभावित सुधारो के प्रस्ताव के लिए एक आयोग नियुक्त किया जायगा। यह घोषणा दश भर मे विदेशियो के दमनकारी शासन के विरुद्ध जनता की ऊँची होती आवाज को दबान का महज बहाना था। इस आयोग के नियुक्त चेयरमन सर जोन साइमन के नाम पर साइमन कमीशन का नाम दिया गया जो हाउस आफ कामन्स मे ब्रिटिश लिबरल पार्टी के एक सदस्य थे।

लेकिन जिस ढंग से इस आयोग का गठन किया गया उससे ब्रिटिश शासकों की ऐसी किसी असली इच्छा का आभास न मिलता था कि वे कोई वास्तविक अधिकार देने के इरादे रखते हैं। इस आयोग के सभी सदस्य ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य थे। भारतीय नेताओं ने तुरन्त ही कड़ी प्रतिक्रिया दिखाई कि इस आयोग में किसी भी भारतीय को नहीं लिया गया है। भारतीय नेतागण इस स्थिति को स्वीकार नहीं कर सकते थे कि लन्दन की पार्लियामेंट को ही भारतीय जनता के भाग्य का निर्णय करने का अधिकार हो। 18 फरवरी, 1928 को साइमन आयोग के बहिष्कार का एक प्रस्ताव दिल्ली की असेम्बली में लाला लाजपतराय ने प्रस्तुत किया और अति उग्रता और जोश खरोश के साथ इसका समर्थन किया गया। विचित्र विडम्बना ही कहिए कि उसी दिन मेरा पोत कोलम्बो से रवाना हुआ।

जैसाकि मुझे बाद में पता चला इस आयोग के सदस्यों ने भारत की व्यापक यात्राएं की किन्तु वे जहाँ कहीं गये विरोधी प्रदर्शनकारियों ने काले झंडों के साथ उनका स्वागत किया। उनके पर्यालोचन का कोई ठोस परिणाम निकल पाने में आठ वर्ष का समय लगा। अन्ततः जब उन परिणामों को सन् 1935 के भारत सरकार के कानून का रूप दिया गया तो पता चला कि यह प्रान्तीय स्वायत्तता का अधिकार दिलाने के वे कुछेक अधकचरे प्रयास भर थे। इसमें भी बहुत-सी कठिनाइयाँ सामने आई और अन्तर साम्प्रदायिक सम्बन्धों में अधिक गंभीर बिगाड़ उत्पन्न हुआ। जब सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ा तब ब्रिटिश शासकों के लिए भारत में संवैधानिक सुधारों को उठा रखना और मुस्लिम लीग की विभाजनकारी गतिविधियों को प्रोत्साहन दिलाना अधिक सुविधाजनक लगा। इसके बाद के आठ वर्षों के दुःख और संघर्ष भरे काल के बाद ही भारत स्वतन्त्र हो सका और वह घटना भी उपमहाद्वीप के विभाजन और पाकिस्तान के उद्भव की त्रासदी से रँगी थी।

मेरे पोत सुवमारू ने 12 मार्च, 1928 को कोबे बंदरगाह में लंगर डाला। वहाँ के आप्रवास अधिकारी मेरे पास पत्र में 'राष्ट्रीयता की स्थिति' नामक स्थान पर लिखे गये शब्दों से कुछ कुछ अचरज में पड़ गये। वहाँ मुझे ट्रावनकोर का निवासी—ब्रिटेन द्वारा परिरक्षित व्यक्ति कहा गया था। वहाँ के अधिकारियों के बीच तुरन्त विचार विमर्श हुआ। मेरे जापानी सहयात्रियों में से एक ने जो अँग्रेजी भाषा जानता था मुझे धीमे से बताया कि आप्रवास विभाग के अधिकारियों को तिरुविताकूर (ट्रावनकोर) नामक किसी देश की जानकारी नहीं है। उनमें से एक काफी होशियार था और उसे स्मरण हो आया कि तिरुविताकूर भारत में किसी स्थान का नाम है किन्तु इस बात पर वह चकित अवश्य था कि मैं 'भारत' का न होकर भारत के एक स्थान विशेष' का नागरिक कैसे कहला सकता था। यह तो ऐसा होगा कि एक 'जापानी' नागरिक को सतामा या गुम्मा प्रिफेक्चर

(जिला) का नागरिक कहा जाय।

प्रत्यक्षत आप्रवास विभाग के कमचारियो म से किसी न भी इतिहास का इतना गहन अध्ययन नही किया था कि यह पता चलता कि ब्रिटिश शासकों ने भारत की मीमा के भीतर ही 601 छोटे छोटे भारत बना दिय थे। वह उन्ह रज वाडे या देशी रियासते कहा करते थे और उन्होने विशेष सधियाँ कर ली थी, जिनके अतगत स्वामिभक्ति के वचन के एवज म वहाँ के शासको को विशेष अधिकार प्राप्त थे। इस सबके लिए एक विशेष प्रकार की मानसिकता वाधित थी जो कावे के आप्रवास अधिकारियो के पास न थी जिसके सहारे वे समझ पात कि भारत पर अपना औपनिवेशिक शिकजा कायम रखने के उद्देश्य म ब्रिटिश शासक छल-कपट के कितने ही कुटिल तरीके अपना रहे थे। खर अन्तत आप्रवास विभाग के अध्यक्ष न फसला किया कि चूंकि मैं पूरी तरह से भारतीय दिखाई देता था, इसलिए मैं भारतीय ही था और मेर पार पत्र म लिखी गयी सूचना अवश्य ही एक त्रुटि का परिणाम थी। इस समस्त वातचीत के दौरान मैं चुपचाप खडा रहा और सोचा कि एस मौको पर चुप रहना ही श्रेयस्कर है, वहुत अक्लमदी झाडना मूखता भी सिद्ध हो सकती है। या मुझे जापान मे उतरन की अनुमति द दी गयी। अग्रजी जानकार मेरे जापानी सहयानी ने मुझे वताया कि अधिकारीगणो ने उस त्रुटि का नजर अदाज करने का फसला इसलिए किया कि मेरे पास, मुझे प्रवेश की अनुमतिदनेवाला क्योतो विश्वविद्यालय का पत्र था जिस वे मरे पार-पत्र से भी अधिक महत्वपूण तथा विश्वासजनक मानते थे।

वाद के वर्षों मे मरे एक मित्र ने मुझे वताया कि यदि अव मेरे पास वह पार-पत्र होता तो मैं एक खासा 'महत्वपूण' व्यक्ति होता। शायद म पुरावस्तुए एकत्र करनेवाले व्यक्ति को भारी कीमत पर उसे यानी उस असाधारण दस्तावेज को वेच भी सकता था। खद की वात है कि गत विश्व युद्ध के दौरान या तो जापान म या फिर दक्षिण पूव एशिया म कही वह पार पत्र खो गया। दीघकालिक सदभ म उसका महत्व न मानन के कारण मन उसे सभाल रखने की जरूरत भी महसूस नही की थी। और सच वात ता यह है कि उसके खोन का मुझे कोई खेद भी नही।

मैं उसी दिन रलगाडी द्वारा क्योतो के लिए रवाना हो गया। जब मैं एक जापानी सराय म जाकर ठहरा तव अनुभव हुआ कि यात्रा के दौरान अर्जित मेरा जापानी ज्ञान पर्याप्त न था। कुछ समय तक म इशारो स वात करने का प्रयास करता रहा। इसस मरे सपक म आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति का खूब मनोरजन होता था। जो भी हो मैं शीघ्र ही समझ गया कि जिस देश के लोग केवल अपनी ही भाषा जानत हैं वहाँ जापानी भाषा का उचित अध्ययन किय विना मैं न तो पढाई

पूरी कर सकूंगा और न किसी अ य क्षत्र म कुछ कर पाऊँगा।

उस सराय म प्रथम बार जो भोजन मैंने किया, वह था चावल और जाली म भूनी 'ग्रीम मछली'। स्पष्ट कहूँ तो पहली बार जब मैंने उस खाया तो मुझे वह बिलकुल पस द नहीं आयी। लकिन मैं शालीनता बरतना चाहता था। अत मैंने जताया कि वह बहुत स्वादिष्ट है और उसका मैं खूब आनन्द उठा रहा हूँ। लकिन शीघ्र ही मैं चुपचाप सराय स बाहर निकल गया, निकट की एक दूकान पर पहुँचा और कुछ अम्पान (जापानी फली के जाम स भरी रोटी) खरीदी और आन जानेवालो की परवाह किय बिना वहीं खुल म खूब छककर खायी। दशकों को अत्यधिक अचम्भा हुआ होगा क्योंकि व किसी व्यक्ति को सडक पर खडे होकर इतने भुक्खड की भाति कुछ खाते देखन के आदी न थ। लकिन यह कहना भी न्याय-सगत ही होगा कि समय के साथ-साथ मुझे जापानी भोजन का स्वाद आने लगा और 'जाली म भूनी ग्रीम मछली' तो मुझे विशष रूप स रुचिकर लगने लगी। बाद म य मेरा प्रिय व्यजन बन गई।

जापानी हमारी तरह हाथ या उगली आदी स नहीं खाते। वे 'हषी' अथात 'चाप स्टिक' का उपयोग करते है। मैंने अपनी यात्रा के दौरान उनके उपयोग का अभ्यास करना आरभ कर दिया था। आरभ म मुझे बहुत कठिनाई हुई। जहाज पर एक जापानी वेटर ने दया कर भोजन के समय मेरे लिए अग्रेजो द्वारा प्रयुक्त छुरी काटा चम्मच आदि का प्रबध कर दिया था। लकिन चूंकि मैं उस सब का भी आदी नहीं था इसलिए मैंने सोचा कि क्यों न हषी का उपयोग कर देखा जाय। आखिरकार मुझे इसका आदी होना ही था। अत कुछ समय बाद, मैंने पाया कि उनका उपयोग काफी सरल था और हाथ की उँगलियों या छुरी-काटे की भांति ही उनस भी आसानी स खाया जा सकता था। 'हषी' यदि दक्षतापूवक उपयोग म लायी जाय तो उसमे हड्डी स गोश्त अलग करने म या गोश्त के टुकडो को उठा कर सहज ही मुह तक ल जाने म बखूबी उस काम म ल सकते है। हा, उस स्तर की दक्षता प्राप्त करने म मुझे बहुत समय लगा लकिन यह देखते हुए आरभिक काल म मुझे हषी स उत्पन्न यानी काफी मोटी सिवया और अड उठाने म भी परेशानी हुआ करती थी बाद म मेरी मेहनत काफी साथक सिद्ध हुई।

7

क्योतो विश्वविद्यालय मे

सराय म रात भर ठहरन के वाद, अगली सुवह मै क्याता विश्वविद्यालय मे गया। सवप्रथम मेरा परिचय पुल निर्माण की इजीनियरी के प्रोफेसर डाक्टर ताकाहाशी मे हुआ जिनकी अतिरिक्त जिम्मेदारी थी, विदेशी छात्रा के दाखिने आदि का काम करना। मैं उन महानुभाव के गरिमामय व्यक्तित्व से ठगा सा रह गया। उनका मुखमडल अति शात था किन्तु उनकी गहरी आखें वहुत पैनी और कातिमय थी। व मेरे भीतर पैठती प्रतीत होती थी मानो पता लगाना चाहती हो कि मेरे भीतर क्या है। मैंने उनकी एक दयावान सज्जन जैसी धारणा वनाई साथ ही एक ऐसे सज्जन की भी जिनका सम्मान किया जाना था। मैन सुन रखा था कि उन्होने जमनी के एक विश्वविद्यालय से पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी और वे एक अति कुशल अध्यापक थे और अपने क्षेत्र म विश्वविद्यालय के विश्वविख्यात वज्ञानिको म से एक थे।

दाखिल से सम्वद्ध आरभिक कारवाई के पश्चात मैने डाक्टर ताकाहाशी से पूछा कि आगे मुझे क्या करना चाहिए। उन्होने कहा कि सबस पहले तो मुझे अध्ययन के लिए अनुकूल वातावरण म रहने का स्थान प्राप्त करना होगा और फिर तुरन्त ही जापानी भाषा सीखन का प्रबन्ध। उन्हान अपने सहायक प्रोफेसर तगुची स कुछ वातचीत की। तुरत ही यह निणय किया गया कि मैं तगुची परिवार क साथ ही रहूँ। इस उदार व्यवहार स मैं अभिभूत हो उठा और उन महानुभावा को धन्यवाद दिया।

उसी दिन दोपहर को मुझे एक भिन्न प्रकार का अनुभव हुआ जो उसी दिन सवरे के मेरे अनुभवो से पूणत भिन्न था। डाक्टर ताकाहाशी म विदा लेकर मैंने प्रोफेसर तगुची के घर जाकर रहन के उद्देश्य स सराय जाकर वहाँ मे छुट्टी लेने का निणय किया। हालांकि वह वसत काल था तो भी प्रान बफ गिरी थी और वहुत सर्दी थी। इसलिए मैंन ताकाहाशी के कमरे के वाहर खडे होकर अपना ओवर कोट पहना और निकटस्थ उस स्थान के लिए रवाना हुआ जहाँ से मुझे

अपनी सराय तक पहुचने के वास्ते ट्राम पकडनी थी। अभी मैं विश्वविद्यालय के अहाते में ही था कि अचानक मेरे कधे पर किसी ने धीरे से थपथपाया। मुडने पर मैंने देखा ओवर कोट तथा छाताधारी एक ऊँचे लबे वृद्ध सज्जन खडे थे। बढ़िया अग्रेजी में उन्होंने कहा 'मेरे साथ आओ।' उनके स्वर में अधिकार की सुस्पष्ट छाप थी। अचानक मिले इस आदेश से मैं कुछ परेशान हुआ किन्तु निर्णय किया कि कम से कम अभी तो विवाद खडा करना अक्लमदी न होगी। वे लबे से सज्जन मुझे विश्वविद्यालय के ही एक निकट के भवन के एक बडे से कमरे में ले गये। एक बडे प्रभावोत्पादक डेस्क के पीछे बैठकर अपने ठीक सामने की कुर्सी पर बैठने का आदेश मुझे दिया। दो या तीन मिनट तक बिना पलक झपकाये वे मेरी ओर घूरते ही रहे। फिर अचानक ही अपना दाया हाथ उठाकर उन्होंने मेरी ओर उँगली से सकेत किया और पूछा 'क्या तुम गुप्तचर हो?'

इस प्रकार के प्रश्न के लिए तो मैं बिलकुल तैयार न था। किन्तु किसी प्रकार इस अप्रत्याशित प्रश्न को सुनकर मै शात बना रहा और शातिपूर्वक ही उत्तर दिया 'जी नही मैं कोई जासूस नही हूँ। मैं यहाँ पर अध्ययन करने वाला एक छात्र हू।'

उन्होंने मेरे उत्तर देने के ढग में न जाने क्या देखा, मुझे इसका कोई ज्ञान नही था। लेकिन उनकी कठोरता अचानक ही पिघलती प्रतीत हुई और उनके मुख पर मृदु मुस्कान छा गयी। पूर्णतया भिन्न और बहुत ही नम्र स्वर में उन्होंने लगभग यो कहा 'तुम भारत से हो किन्तु भारत के किस भाग से हो?' अपने भीतर उमडते रोष को जिसे उस समय प्रकट करना अक्लमदी न होती, दबाने का प्रयास करते हुए बिना नज़रें झुकाये उनकी ओर घूरकर मैंने इतना ही कहा 'तिरुवनन्तपुरम'। तभी तीर के समान एक और प्रश्न मेरी ओर आया जिसकी मैंने कल्पना भी न की थी। 'गणपति शास्त्री कुशल से तो हैं।'

मेरी समझ में कुछ नही आ रहा था कि मैं उन वृद्ध सज्जन के विषय में क्या सोचू जिन्होंने पहले तो मुझसे पूछा था कि क्या मैं एक जासूस हू और अब गणपति शास्त्री का कुशल क्षेम जानना चाहते थे। मैं जानता था कि गणपति शास्त्री कौन थे। वे तिरुवनन्तपुरम के महाराजा कालिज में सस्कृत के प्रोफेसर थे। मैं कालिज जानेवाली सडक पर उन्हें कभी-कभार देखा करता था किन्तु मैंने कभी उनमें विशेष रुचि नही ली थी। वास्तव में निजी रूप से मेरे मन में उनके विरुद्ध एक अस्पष्ट-सी शिकायत का भाव था। अब सोचता हूँ तो लगता है कि यह बात बहुत तर्कसगत नही थी किन्तु साथ ही यह भी सही है कि मेरी यह भावना कदाचित इस कारण से ठीक थी कि मैं उन्हें अपनी बहन के पति श्री सी० पी गोविन्द पिल्ले का प्रतिद्वन्द्वी मानता था जो मलयालम के प्रोफेसर थे। किन्तु ये दोनो अध्यापक विख्यात विद्वान तथा लेखक थे। इस बात का कोई प्रत्यक्ष कारण न था

कि मैं श्री शास्त्री के प्रति रुखाई दर्शाता कि‍न्तु पूवग्रह कभी-कभी अवोधगम्य और तर्कहीन हुआ करत हैं। मैं साचता हूँ कि मेरी वह धारणा इसीलिए थी कि मैं अपने वहनोई से स्नेह करता था और इसीलिए मन ही मन उनके प्रतिद्वद्वियो के प्रति ईर्ष्या का भाव रखता था। इस प्रकार के विचारो म उलझा मैं उत्तर खाजन की चेष्टा कर ही रहा था कि तभी डेस्क के पीछे वठे सज्जन न कुछ नाराजगी के स्वर म वही प्रश्न दोहराया ' वे कैसे है ?"

एक वार फिर मैं हिचकिचाया और कदाचित उस प्रश्न को टालने के प्रयास म मैंन धीम स कहा, "वे कसे है ?" इस पर उन सज्जन ने आश्चर्य और हताशा म अपने हाथ हवा मे उछालकर कहा, 'क्या तुम यह नही जानत कि गणपति शास्त्री कुशलपूवक है या नही ? क्या तुम यह नही जानत कि वे भारत मे सस्कृत के महानतम और विश्व के तीन महानतम विद्वानो म से एक है ?"

कहने की आवश्यकता नही कि मुझे वडी लज्जा का अनुभव हुआ। यह सही है कि मुझे गणपति शास्त्री के विषय म कुछ तो मालूम था किन्तु मैंने यह न सोचा था कि वे इतनी वडी हस्ती थे जसाकि मेरे सामन वठे सज्जन न अभी कहा था। यह जानकर वडा सुख मिला कि यहाँ क्योतो विश्वविद्यालय म एक ऐसा व्यक्ति भी था जो गणपति शास्त्री का प्रशसक था और एक क्षण के लिए मैं ईर्ष्या की अपनी सकीण भावना का भूल गया और उल्टे मुझे गव का अनुभव हुआ। कालान्तर म मुझे ज्ञात हुआ कि अन्य दो महान विद्वानो मे से एक थे एक यूरोपीय व्यक्ति (मुझे ठीक से याद नही कि वे जमन थे या फ्रासीसी और उनका नाम भी मुझे ठीक याद नही है) और तीसरे व्यक्ति और कोई नहीं साक्षात मेरे सामने वठे प्रश्नकर्त्ता—डाक्टर साकाकिवारा थे जो क्योतो विश्वविद्यालय म सस्कृत और भारत विद्या के प्रोफेसर तथा भारतीय दशन के प्रकाण्ड विद्वान थे।

वाद म मुझे पता चला कि प्रा० साकाकिवारा वडे दयालु तथा उदारमना हैं और वे केवल मरी मनोवज्ञानिक परीक्षा ले रहे थे और केवल यही जानना चाहत थ कि मैं कैसा व्यक्ति हूँ। मुझे उनस यह पूछने का भी अवसर नही मिला कि मैं उनकी परीक्षा म कैसा उतरा। कि‍न्तु उसके वाद की घटनाएँ इसका प्रमाण थी कि मैं पास हो गया था। प्रोफेसर शीघ्र ही वदल गय और देखते देखते दया की मूर्ति वन गय। उन्होंने पूछा 'तुम यहाँ किसलिए आय हो ?' मैंने उत्तर दिया ' मैं सिविल इजीनियरी की शिक्षा प्राप्त करन के उद्देश्य स एक छात्र की हैसियत स आया हूँ।" वे मृदु मुस्कान विखरकर वोले— विना जापानी भाषा सीखे तुम इजीनियरी की शिक्षा कसे प्राप्त कर सकाग ? रोज शाम को मेरे पास आया करो। मैं तुम्हे जापानी भाषा पढाऊँगा"।

एक क्षण के लिए मैं आश्चयचकित रह गया। मैं सोचता रह गया कि उक्त घटना क्या वास्तविक थी या कोई स्वप्न था। एक दिन की अवधि म ही इतना

चमत्कार। एक सहायक प्रोफसर क घर अतिथि बनकर ठहरना फिर मुझस पूछा जाना कि क्या मैं कोई जासूस हूँ। फिर मरी अल्प मनावज्ञानिक जाच-पड़ताल वह भी इस उद्देश्य स कि म कसा व्यक्ति हूँ और य परीक्षा लेन वाले प्रसिद्ध सस्कृत विद्वान और भारतविद प्रोफेसर साकाकिबारा थे। अन्तत उन्ही प्रोफेसर महोदय द्वारा मुझे जापानी भाषा पढाने का प्रस्ताव—आरभ म मुझ य सब काफी उलझन भरा प्रतीत हुआ किन्तु जो कुछ मेरे सामने प्रत्यक्ष था, शायद मै उसी की खोज म भटक रहा था। खर मैंने स्वय अनुभव किया कि कुल मिलाकर मैं काफी सौभाग्य शाली था।

उसी शाम मैं प्रोफेसर तथा श्रीमती तगुची क यहा रहन चला गया। वहाँ मेरा हार्दिक स्वागत किया गया। उन्होने मेरे साथ परिवार के सदस्य का-सा व्यवहार किया। व अति दयालु और भल लाग थ जिनकी कृपा मैं कभी भूल नही सकता।

प्रोफेसर साकाकिबारा द्वारा मेरा जापानी भाषा का अध्ययन अविलम्ब आरम्भ हो गया। वे एक बहुत अच्छे अध्यापक थे। मुझे पढाकर व मुझ बडा मान प्रदान कर रहे थे, न केवल इसलिए कि मैं क्योतो विश्वविद्यालय का छात्र था बल्कि इसीलिए भी कि उनक मन म भारत के प्रति अत्यधिक सम्मान था, साथ ही वे गणपति शास्त्री को भी बहुत मानते थ जिनक नगर का मै भी निवासी था। यह मेरा प्रथम वास्तविक अनुभव था उस प्रकार की मान्यता का जो एक जापानी प्रोफसर अन्यत्र अपन सह विद्वाना को प्रदान करन की क्षमता रखत थ।

जहाँ प्रोफसर साकाकिबारा मेरे जापानी भाषा के प्रमुख अध्यापक थे वही मेरे मेजबान तगुची दम्पति भी मुझ अतिरिक्त जानकारी दन का प्रयास किया करते थे और उनका एसा करने का तरीका भी बहुत ही बढिया था। प्रोफसर तगुची तथा उनकी पत्नी दोना ही क्योतो निवासी थ। वे यहाँ की कानसाय शली की जापानी क अभ्यस्त थ जो ताक्यो म प्रचलित कान्तो शली स कुछ भिन्न थी। तोक्यो चूकि राजधानी-नगर था और वहाँ शाही परिवार का निवास था इसलिए वहाँ प्रयुक्त जापानी भाषा की शली को मानक जापानी भाषा समझा जाता था। कुछ हद तक इसकी तुलना आक्सफोड की अग्रजी को महारानी की अंग्रेजी मानन की प्रथा से की जा सकती है। तगुची दम्पति चाहत थ कि एक विदेशी छात्र के नाते मुझ ताक्या की कान्तो शली की जापानी भाषा सीखनी चाहिए। कानसाय शली की भाषा क अभ्यस्त एक व्यक्ति क लिए अचानक अपनी आदत को छोडकर कान्तो शली म बालना काफी परशानी की बात थी। किन्तु मेरे मेजबान दम्पति ने मरी खातिर आवश्यक परशानी उठाना स्वीकार किया। उन्हान निणय किया कि मेरी उपस्थिति म व कवल कान्तो शली का ही उपयाग करग। उनकी यह बात काफी ममस्पर्शी थी।

लेखक की माँ, लक्ष्मी अम्मा, 80 वर्ष की आयु में

श्री ए० एम० नायर— आर्डर आफ द मैरिट आफ सक्रेड ट्रेजर की उपाधि ग्रहण करते हुए।

तोक्यो मे प्रधानमत्री श्रीमती इदिरा गाधी के साथ लेखक (6 अगस्त, 1982)

रासबिहारी बोस (1942)

ब्लैक ड्रैगन सोसाइटी के,
मित्सुरू तोयामा

सिगकिंग (मचूको) के यामातो होटल में, 1933। चीनी वेशभूषा पहने। बीच में हैं, श्री चाग। उनके बाईं ओर हैं—राजा महेन्द्रप्रताप, दाईं ओर लेखक। दायें से (पहली पंक्ति) राजा महेन्द्रप्रताप के मंगोलियाई क्रांतिकारी सहयोगी।

मचूको सरकार के अधिकारियो के साथ सिगकिग मे (1933)। बीच मे राजा महेन्द्रप्रताप। उनकी दाईं ओर नरेश पू ई के प्रमुख सहायक और मचूको सेना के स्थानीय कमाडर श्री चो। उनके बाइ ओर गुन्टा नागाओ (जिन्होंने लेखक को मचूको आमन्त्रित किया) और लेखक, साथ मे—याग लामा और मचूको समाचार एजेंसी के एक सवाददाता।
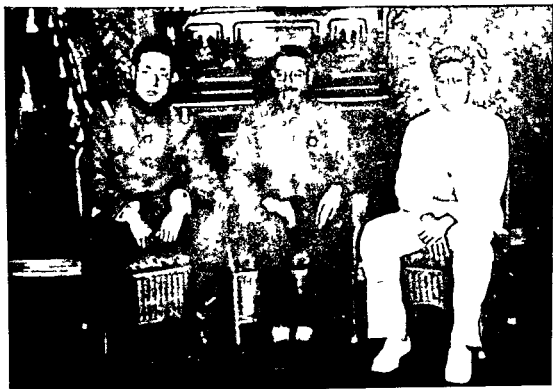
बायें से दायें—मचूको सेना से सम्बद्ध कोरिया के कनल ली, राजा महेन्द्रप्रताप और लेखक, हरबिन (मचूको) मे (1933)।

बाइ स दाइ आर—निचिरेन मदिर के मुख्य पुजारी रेव काकेई, रासबिहारी बोस और लेखक (मचूको) म, 1934।

रासबिहारी बोस तोक्यो म अपने परिवार के एक मित्र के साथ (1930 के पूर्वार्ध मे)

कलगन (उत्तर-पश्चिमी चीन) म, (1935)। बठे हुए—बौद्ध लामा के रूप मे लेखक (बाये) और श्री कुरोकी (खडे हुए) श्री टोकोटो (बाईं ओर) और श्री ओजेकी। दोना मचूको सरकार से सम्बद्ध।

मितसुरू तोयामा इम्पीरियल कमान के जनरल काडा और आठवे सेक्शन की दूसरी डिवीजन के प्रमुख, कनल (बाद म जनरल) क्वामाता द्वारा सयुक्त रूप से आयोजित विदाई समारोह (1933 म), (दायें से बाये) लेखक (दायें से दूसरे) जनरल काडा। तोयामा और कनल क्वामाता, उसके आगे बाइ ओर है—कोरी, होसोकवा और यामामोतो, तीनो नेता एक मुस्लिम आदोलन का सचालन और सहयोग कर रहे थे।

मेरे मज़बान मर भाजन के प्रति भी उतने ही चिंतित थ। मुझे मेरी पसन्द का भाजन उपलब्ध कराने का व यथासम्भव प्रयास किया करत थ। स्थिति काफी विचित्र थी। मैं तो जापाना खाद्यादि का आदी बनने का प्रयास किया करता था, किन्तु तगुची दम्पति, मेरे लिए भारतीय शैली का भाजन तयार करने की कोशिश म काफी परशानी उठाया करत थ। परिणामत इस प्रकार का खाना न तो जापानी होता था और न भारतीय। उदाहरण के लिए मेरे मज़बान अधिक मात्रा म लाल अदरक मिश्रित चावल का बडा-सा प्याला जिसम खूब सारा पोयु अथात् सोयाबीन की पतली चटनी मिलाकर खान को देत। जापान म पोयु का चावल क साथ मिलाकर खाना अच्छा नही समझा जाता। भारत म चावल के साथ दाल या शोरबा वाली तरकारी मिलाकर खात है। जापान म चावल और ऐसी दूसरी चीजा को अलग-अलग खाया जाता है। श्रीमती तगुची प्राय ओया-कोदावरी चीनी, मुर्गा व अडा मिश्रित चावल बनाया करती जा मेरे लिए एक खास व्यजन था। व उसम थाडी चीनी और कुछ पायु डालकर, विशष ढग स उस स्वादिष्ट बना देती और हँसी म उस श्री ए० एम० नायर पेटेंट कहा करती।

हम कभी कभी शोरबेदार सब्जी या गोश्त आदि पकाने के लिए मसालो की उपयागिता के विषय म बातचीत और प्रयाग आदि भी किया करत जो आम तौर पर काफी सतोषजनक परिणाम दिया करत थ। भारत म, जसाकि सभी जानत है, सब्जी व गोश्त के सालन म मसाला भिन्न प्रकार से मिलाया जाता है। इस मिलान का ढग भी विभिन्न व्यक्तियो की रुचि के अनुरूप होता है। भारत के विभिन्न भागा के लागा की खान-पान की आदते बहुत भिन्न होती है। उदाहरण क लिए, दक्षिण भारत के निवासी उत्तर भारतीया की तुलना म अधिक मसालो का उपयोग करते हैं और उत्तर भारतीय दक्षिण वाला की तुलना म घी का अधिक उपयोग करत ह। इसके विपरीत, जापानी भोजन बहुत सादा किन्तु बहुत पौष्टिक हाता है और विभिन्न स्थाना म खाद्य म बहुत अधिक भिन्नता हो ऐसी बात भी नही है। हालाकि जापानी भोजन म बहुत मसाले आदि नही होत तो भी जापानी विशिष्ट शली के शारबेदार भारतीय व्यजन का स्वाद बहुत पसन्द करत हैं। काफी परिश्रम क बाद तगुची परिवार में हम अन्तत पूणतया जापानी शली का भाजन खान लग। जब कभी परिवतन की इच्छा होती तो हमे कोई परेशानी न होती थी क्योकि भारतीय शली का या उससे कुछ मिलता-जुलता शोरबेदार सालन तथा चावल और चावल की पापडी तथा टमाटर की चटनी जसे कुछ पाश्चात्य शैली के खाद्य पदाथ भी सन 1920 के दशक म जापान के अनेक नगरा के होटला व रेस्तराओ मे लोकप्रिय हो गये है। वास्तव म शोरबेदार सब्जी या सालन मिला चावल का व्यजन जापानी भाषा म करेराइसू के नाम स प्रसिद्धि पा चुका है।

मेरे छात्र जीवन मे, क्योतो विश्वविद्यालय के पास 'चेरी' नामक एक विख्यात रेस्तराँ था। मैं नही जानता कि यह रेस्तराँ अब भी वहाँ है या नही। विश्वविद्यालय के अहाते की कैंटीन म करेराइसू से मिलता जुलता एक खाद्य पदार्थ मिलता था किन्तु 'चेरी' नामक रेस्तराँ म उपलब्ध करेराइसू अधिक स्वादिष्ट हुआ करता था। मेरे अध्यापको म स एक, जो बहुत शिष्ट और सुसस्कृत थ मुझे वहाँ कभी-कभी लच के लिए ले जाया करत थे। अपनी पसन्द की चीजें वे अपने लिए मँगाया करते थे किन्तु वेटर स बडी अदा और गम्भीरतापूर्वक कहा करत, 'श्री नायर के लिए करेराइसू लाओ'। एक अन्य प्रोफेसर, डाक्टर कोबायाशी, जो बहुत ही दयालु थ, मुझे जापानी भाषा सिखाने मे बडी मेहनत किया करत थ। वे भी एक अन्य स्थान पर मध्यम स्तर के एक भोजनालय म कभी-कभी मुझे करेराइसू खिलाया करत थे परन्तु मुझे वह बिल्कुल पसन्द न था। कदाचित, मेरी परेशानी को भापकर व मुझे बाद म वहाँ नही ले गये और अच्छे रेस्तराओ म जाने लगे जो मुझे बहुत अटपटा लगता था क्योकि वे बहुत महँगे थे। धीरे धीरे मैंने ऐसे कुछ स्थान खोज निकाले जो भारतीय ढग के स्वादिष्ट सालन और चावल देते थे। उन दिनो कही भी भोजन महँगा नही होता था। मेरे छात्र-जीवन म विश्वविद्यालय की हमारी कैंटीन म चावल और सालन की एक प्लेट के दाम पाँच 'सेन' यानी कोई दस पैसे हुआ करता था जो आज अविश्वसनीय प्रतीत होता है।

मैं मन लगाकर पढता और खूब श्रम करता था। मैं एक नये देश म था और अपने परिवार का धन व्यय कर रहा था और इसलिए यथाशक्ति अच्छा परिणाम प्राप्त करने का इच्छुक था। जापान एक विश्व शक्ति बन चुका था और यहाँ की शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा था। क्योतो के लिए रवाना होने से पूर्व मैंने गणित शास्त्र की जो विशेष पढाई की थी उसकी वजह से मुझे विश्वविद्यालय मे इजीनियरी की शिक्षा प्राप्त करने म कोई विशेष कठिनाई नही हुई। इसलिए जापानी भाषा मे उच्च स्तरीय प्रवीणता पाने की शिक्षा मे ध्यान व समय भी दे सका। विशेष रूप से तकनीकी विषयो के छात्रो के लिए भाषा ज्ञान मानविकी के विषय के छात्रो की तुलना म कही अधिक व्यापक तथा वाछित था।

मेरे अध्यापकगण जापानी भाषा मे मेरी तीव्र प्रगति से अति प्रभावित और प्रसन्न थे। अपने इन अध्यापको की चर्चा मैं पहले कर चुका हूँ। इन महानुभावो के अलावा भी अन्य अनेक अध्यापक समय समय पर मेरी कठिनाइयो को दूर करते रहे। इस दिशा मे मेरे सहपाठी भी सहायक सिद्ध हुए। मैं स्वय अपने विश्वविद्यालय के अन्य छात्रो के साथ मिलना बहुत पसन्द करता था जो मेरे लिए बडा सतोषप्रद अनुभव था। साथ ही उस वातावरण मे निरन्तर बने रहने के कारण भाषासबधी मेरा ज्ञान तेजी से बढता गया। सामाजिक स्तर पर मेल-जोल आदि म भी आसानी हुई। जापानी लोग हालाँकि स्वभाव मे ही सकोची और अल्पभाषी

होते है किन्तु जान-पहचान अच्छी तरह हो जाने पर बहुत ही मैत्रीपूण हो जाते है और अगर उनकी भाषा पर सरल व सुरुचिपूण ढग स अधिकार हा ता घनिष्ठता तीव्र से तीव्रतर हो जाती है।

लगभग सभी जगहो पर विदेशी छात्रा मे यह प्रवृत्ति देखने म आती है कि वे स्वय को अपने ही दश के छात्रा के समूह मे बाँध लेते है। मैंने सदा सोचा है कि एसा करना अच्छा नही हाता है। जब हम विदश मे रहत है तब हम चाह तो अपनी सास्कृतिक मा यताआ को बनाये रखकर भी स्थानीय सस्था के छात्र-समूह के साथ सामजस्य स्थापित कर सकत है। मेरे सदभ मे तो सौभाग्यपूण बात यह रही थी कि उस समय क्योतो क्या जापान के अन्य विश्वविद्यालया मे भी एकमात्र भारतीय छात्र म ही था। इसीलिए जापानी सहपाठियो के अलावा अ य किसी समूह म शामिल होने का प्रश्न ही नही था।

मै क्योतो स बहुत प्रेम करने लगा था। यह जापान क सु दरतम नगरा मे स एक है और राष्ट्र की सास्कृतिक राजधानी के रूप म आज भी लाकप्रिय है। इस नगर का निर्माण सन 1794 म हुआ था। बाद म शाही परिवार ने निकट-वर्ती नगर नारा के स्थान पर क्योतो को अपना निवास बनाया। इतिहास के उतार चढाव के साथ साथ अ दरूनी लडाइया, अग्नि-दुघटनाआ और भूकम्पा आदि के कारण क्योतो को समय समय पर हानि भी उठानी पडी। प द्रहवी शताब्दी के उत्तराध के आरम्भ म ओनिन-नो-रान नामक युद्ध के परिणामस्वरूप समूचा नगर प्राय नष्ट हो गया था। किन्तु सोलहवी शताब्दी के अत म तोयोतोमी हिदयोषी द्वारा इसका पुन निर्माण किया गया था। हिदयोषी सनिक कमाण्डर थे और लगभग एक सौ वष के सतत गह युद्धा के बाद, उनके नेतृत्व म देश मे राज नीतिक और प्रशासनिक एकता स्थापित हो पायी थी। सम्राट कोई ग्यारह शताब्दिया तक क्योतो म निवास करते रहे। सन 1868 मे मइजी पुनजागरण के पश्चात राजधानी को औपचारिक रूप से तोक्यो लाया गया था। किसी समय क्योतो को प्राप्त हइयान-क्यो यानी शान्ति का के द्र' विशेषण आज भी सवथा साथक है।

परम्परा स क्योतो धम शिक्षा और कलाआ का मूल स्रोत था। करीब तीन हजार बौद्ध तथा शितो मदिर यहाँ हैं। यहाँ के आलीशान भवना और असख्य दुर्गों म 'स्वण मडप' योपिमित्सु योगुण का निवास स्थान था जो उनकी मृत्यु के बाद बौद्ध मदिर म परिवर्तित कर दिया गया था।

क्योतो विश्वविद्यालय की स्थापना सन् 1897 म हुई थी जा जापान की सर्वोत्कृष्ट शिक्षा सस्थाआ म म एक है। क्योतो के राष्ट्रीय सग्रहालय की गिनती विश्व के सर्वोत्तम सग्रहालया मे होती है। कुल मिलाकर क्योता नगर का एक असाधारण व्यक्तित्व है और परिष्कृत सौन्दय-बोध का अति उच्च व सूक्ष्मतम

आभास यहाँ मिलता है। यहाँ का परिदश्य अनत प्राकृतिक सौदय का विपुल भण्डार है। यह नगर सुदर, लहराती ऊँचाइया वाली चीड, दवदार, सरु, मिसा और अय अनेक सुदर वक्षा स आच्छादित पहाडिया की पृष्ठभूमि म बसा है। जापान के उद्यान सौदय का भडार होत है, किन्तु क्याता म व जापानिया की विश्व विख्यात कलात्मक सुरुचि का सर्वोत्तम रूप प्रस्तुत करत हैं। वसन्त ऋतु म प्रसिद्ध चेरी पुष्पा की घनीभूत आभा म वह समूचा प्रदश एक स्वप्न लोक का रूप धारण कर लता है।

अनक सवेदनशील कविया व गद्य लखको न जापान के ग्रामीण क्षेत्रो के सौदय के बारे म बहुत लिखा है और यहाँ के प्रत्यक क्षत्र का अपना ही सौन्दय है। 19वी शताब्दी के प्रसिद्ध जापानी साहित्यकार हिरातोरी मकाजिमा की एक पद्यात्मक गद्य रचना का अनुवाद कुछ या किया जायगा —

यत्र-तत्र वक्षा की पत्तिया, गहरे पीले और लाल रगा म स्नात सी लगती हैं पपास तण ऐसे लहरा रहे हैं मानो आजानबाहु किसी को बुला रह हा। सौदय से लथपथ पहाडी माग पर धीरे धीरे मुरझात पुष्पो और ऑकिड के बीच गुलदाऊदी अब फूटन लगे है, उनकी टहनिया जो ओस स बोझिल है, लहराती है और सबसे बढकर अपने मनोहारी सौन्दय स मन को गुदगुदा जाती हैं।

मैं कह नही सकता कि हिरातारी कौन स परिदश्य का वणन कर रहे थ, किन्तु मेरा विचार है कि उनकी लखनी से लिपिबद्ध यह शब्द चित्र, क्याती पर भी सटीक बठता है।

जापान के लिए यह सौभाग्य की बात थी कि पिछन विश्व युद्ध म क्योतो नगर बम-वर्षा स बचा रहा जबकि अधिकाश अन्य जापानी नगर अमरीकी वायु सना की मार स नष्ट भ्रष्ट हो गय थ।

8

रासबिहारी बोस से भेंट

अप्रैल 1928 के आरम्भ म मैं कुछ समय के लिए तोक्यो गया था। मै वहा का विश्वविद्यालय देखना चाहता था, किन्तु मेरी तोक्यो यात्रा का उद्देश्य भिन्न था और वह कम महत्वपूण नही था। प्रसिद्ध भारतीय क्रातिकारी रासबिहारी बोस तोक्यो म स्वय निवासित रूप म रह रहे थे। मैंन भारत मे उनके काय कलापो के विषय म और जापान म भारतीय लक्ष्य के लिए किए जान वाले उनके कार्यो के बार म सुन रखा था। मैं उनसे यथाशीघ्र भेंट करन का इच्छुक था। अत शिजुकु म उनके और उनके परिवार द्वारा चलायी जानेवाली नकामुराया नामक दुकान म उनसे मिलन गया।

बडी गमजोशी के साथ मरा स्वागत करते हुए रासबिहारी बोस ने मुझे बढिया चावल और सालन खिलाया। मैं उनके व्यक्तित्व से अति प्रभावित हुआ था जिसमे दया और दढता दोना की झलक थी। हालाकि आयु म व मुझस कोई पच्चीस वप बडे थे, तो भी मैं आसानी से उनके व्यक्तित्व की चुम्बकीय शक्ति को पहचान गया। व मुझसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए विशेषकर उन्हे जब ज्ञात हुआ कि उस समय जापान भर म मैं ही एकमात्र भारतीय छात्र था।

मैं इसी पुस्तक म पहले ही सक्षेप मे, इस शताब्दी के आरभिक काल मे भारत म ब्रिटेन विरोधी अभियाना की चर्चा कर चुका हूँ और यह भी कह चुका हू कि राजनीतिक उबाल कभी कभी क्राति और आतककारी रूप ले लिया करता था। जो लोग यह सोचते थे कि साम्राज्यवादी जुए से स्वतत्रता प्राप्ति के लिए हिंसा के माग से लक्ष्य सिद्ध हो सकता है, वे पुलिस के हाथो क्रूर दमन के शिकार हुआ करत थ। अदालतो मे नाममात्र के मुकदमे के बाद बहुत स क्रातिकारी या तो मौत के घाट उतार दिए गये थ या जेल म ठूस दिए गये थे, उनम से अधिकाश का छूटने की कोई प्रयास न था, वे आत्म-रक्षा के बदले अडिग रहकर अपनी सजाएँ भुगतते रहे। रासबिहारी बोस इसके अपवाद थ। वे अपना सघप त्यागने को तैयार न थे और उस जारी रखने के लिए उनका जीवित रहना जरूरी था। वे मात्र ऐसे

असाधारण व्यक्ति थे जो ब्रिटेन के जाल से बच निकले थे और इस तरह उन्होंने ब्रिटेन की सरकार को पूर्णत अक्षम सिद्ध कर दिया था। वे सफलतापूर्वक भारत से बाहर निकल आये और अन्तत भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लक्ष्य की दिशा में अपनी गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए जापान आ गये।

रासबिहारी बोस ने देहरादून स्थित वन शोध संस्थान में एक क्लर्क के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया था। किन्तु वे अपना अधिकांश समय गुप्त राजनीतिक क्रान्तिकारी कार्य-कलापों में देने में सफल रहे थे। वे बंगाल के वामपंथी नेताओं के साथ सतत सम्पर्क बनाये रहे और बम बनाने की विधि भी सीखी। उत्तर भारत के विशेषकर पंजाब तथा बंगाल के क्रान्तिकारियों के बीच सम्पर्क स्थापित करने में भी वे सहायक रहे थे। अन्तत देश की क्रांतिकारी गतिविधियों के केन्द्र बन गये थे। उनका विश्वास था कि क्रांति के माध्यम से ही भारत की जनता को इस ओर से सचेत किया जा सकता है कि वह गुलामी का जीवन जी रही है। उनका विश्वास था कि एक बार जागृत कर दिए जाने पर जनता स्वयं बगावत के लिए उठ खड़ी होगी।

उन्होंने अपने साथियों का एक समूह बनाया जो साहस और देशभक्ति की सुलगती भावना से ओतप्रोत थे, यहाँ तक कि अपनी जान पर भी खेल जाने को तत्पर थे। इस समूह ने और दूसरे लोगों को प्रभावित किया। इस प्रकार हिंसा के बल पर भारत से ब्रिटिश सत्ता को निष्कासित करने का लक्ष्य अपनाने वाले क्रांतिकारियों की संख्या, बंगाल, पंजाब और उत्तर भारत के अन्य प्रांतों में बहुत अधिक बढ़ गयी। अनेक स्थानों पर अंग्रेजों पर बम फेंके गये। गुप्त तरीके से क्रान्तिकारी साहित्य व समाचार पत्रों के वितरण का एक खुफिया अभियान भी सफलतापूर्वक चलाया गया। इस प्रकार उल्लेखनीय कार्यक्षमता के साथ क्रांतिकारी आन्दोलन चलता रहा। उधर सरकार ने भी तुरन्त प्रतिक्रिया दिखाई। सरकार ने न केवल उन लोगों को कड़ी सजाएँ दीं जिन पर हिंसात्मक कार्रवाई का सन्देह था बल्कि उन्हें भी जिनके पास राजद्रोही पठन-सामग्री मिली। उनके साथ भी दुर्व्यवहार किया गया। बहुतों को लम्बी-लम्बी सजाएँ हुईं। पुलिस का सर्वाधिक महत्वपूर्ण निशाना उस व्यक्ति पर लगा था जिस वह क्रान्ति की भावना फैलाने के लिए जिम्मेदार समझती थी। वह व्यक्ति था रास बिहारी बोस! किन्तु उन्हें पकड़ने के पुलिस के सभी प्रयत्न असफल रहे।

सन् 1912 में ब्रिटिश सरकार ने वायसराय का निवास स्थान कलकत्ते से हटाकर नया दिल्ली ले जाने का फैसला किया जिसे देश की नई राजधानी बनाया जा रहा था। वायसराय लार्ड हार्डिंग, 23 दिसम्बर को दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर उतरे। गज ध्वज हाथी पर सवार हो कर वे कोई छ मील दूर स्थित वायसराय निवास-स्थान की ओर शानदार और रंगारंग जुलूस के साथ आगे चले। रेलवे

स्टेशन स कोई एक मील पर जबकि भारी भीड उनका जय-जयकार कर रही थी हाथी पर वायसराय के आसन के पीछे एक बम फटा जिससे उनके पीछे बैठा एक सनिक अधिकारी गभीर रूप से घायल हो गया और स्वय वायसराय को बहुत चोट आयी।

यह बम किसने फेंका, इस विषय म बहुत स मत है, कुछ ता इस घटना के लिए स्वय रासबिहारी बोस को ही उत्तरदायी मानत है, किन्तु इसमे स देह है। इस बात की सम्भावना कम ही थी कि रासबिहारी बोस, जिनके पकडे जाने की आशका थी, खुले रूप से यह काम करते। उ होन स्वय इस बात की सच्चाई किसी पर जाहिर की है या नही यह ज्ञात भी नही, कि तु अब तक प्राप्त सर्वाधिक मान्य प्रमाण यही आभास देता है कि उन्होने यह काम अपन निकट के साथी बसत कुमार विश्वास को सौपा था। बताया जाता है कि विश्वास एक लडकी के वेष म जुलूस देखने वाली महिलाओ के झुण्ड म जा मिला था। मौका पाकर उसने बम फेंका और चुपचाप उसी भीड मे गुम हो गया था।

इस दुस्साहसी हमले ने समस्त जाचकर्ताओ को महीनो तक पशोपेश म डाले रखा जब तक कि पुलिस न क्रा तिकारी साहित्य आदि बाटने वाले खुफिया सगठन का पता न लगा लिया। अन्तत दिल्ली षड्य त्र केस कहलाने वाली इस घटना मे विश्वास सहित ग्यारह व्यक्तियो को हिरासत म ले लिया गया और उन पर आरोप लगाया गया कि उनके पास गोला बारूद आदि विस्फोटक पदाथ हैं और उ होंने हत्याएँ की है। विश्वास व तीन अ य लोगो को 11 मई, 1914 को फासी दे दी गयी। किन्तु रासबिहारी बोस, जो आरोपित व्यक्तियो की सूची मे प्रथम नम्बर पर थे, लापता थे।

सरकार ने उनकी गिरफ्तारी म सहायक सूचना आदि देने वाले को पाच हजार रुपये का इनाम घोषित किया। कि तु यह चाल भी बेअसर रही। रास बिहारी बहुत से वेष बदला करते थे। और जब पुलिस अनुमानत उनकी खोज म, छिपन के अड्डो की तलाश म व्यस्त रहती, वे कुछ समय तक काफी खुले घूमते रहते थे। उनकी दुलभ गुण शृखला की एक कडी थी, बहुभाषा प्रयोग की उनकी योग्यता। साथ ही वे किसी भी स्थिति को उसके सही परिप्रेक्ष्य म तुर त समझ लेते थ। सबसे बढकर प्रबल साहस और किसी भी कीमत पर भारत को ब्रिटिश शासन स मुक्त देखने का अटूट सकल्प उनम था। उनके साथी प्राय उ हे सतीश च द्र या फिर केवल 'मोटे बाबू' कहा करते थे। उनम से केवल कुछेक ही को उनका असली नाम ज्ञात था।

उ होने 21 फरवरी, 1915 को बडे पैमाने पर आम बगावत की योजना बनायी थी, कि तु कुछ पचमागियो ने यह रहस्य खोल दिया और वह योजना असफल रह गयी। उनके अनेक सगी-साथी गिरफ्तार कर लिये गये, लेकिन उनका

का सर्वोत्तम सार प्रस्तुत करता है। वे जहाँ भी जाते उनके पास गीता की एक प्रति अवश्य रहती थी। उनके लिए महत्वपूर्ण था उनकी आत्मा द्वारा अनुभूत कर्म न कि उसका परिणाम। शब्दों में वे निष्काम अथवा अनासक्त कार्य सिद्धांत के अटल पालक थे।

"तुम्हारा कर्तव्य है—'कर्म करना' और परिणाम की चिंता न करना। कर्म के फल को अपना उद्देश्य न बनाओ, स्वयं को अकर्म के मार्ग पर जाने से रोको।" संक्षेप में, इसी आदर्श में उनकी गहन आस्था थी।

गांधीजी के बाद मैं एक ही भारतीय व्यक्ति को जानता हूँ जिसका कार्य उसके उपदेश के अनुरूप होता था वे थे रासबिहारी बोस।

रासबिहारी जून 1915 में जापान पहुँचे और शीघ्र ही उन्होंने जापान में शरण पाने वाले दो अन्य प्रसिद्ध क्रांतिकारियों के साथ सम्पर्क स्थापित किया। इनमें एक थे, भारत के लाला लाजपतराय (जो बाद में अमरीका चले गये) और दूसरे चीन के सन-यात सेन। किन्तु भारत व पूर्व एशिया और विशेषकर जापान का ब्रिटिश गुप्तचर विभाग हाथ पर-हाथ रखकर नहीं बैठा था। जापान में उसका जाल सशक्त और सक्षम था और शीघ्र ही उसे खबर लग गयी कि रासबिहारी जापान में है, हालांकि उनके सही सही ठिकाने की जानकारी उसे नहीं थी। रास-बिहारी बहुत होशियार सिद्ध हुए और जल्दी जल्दी बार-बार अपना ठिकाना बदलते रहे। इस सबसे इस बात का खटका रहता था कि पुलिस किसी भी समय आकर उन्हें गिरफ्तार कर लेगी। जापान में, ब्रिटिश राजदूतावास ने जापान सरकार से अनुरोध किया कि राष्ट्रव्यापी खोज द्वारा उन्हें ढूंढ निकाला जाय और भारत सरकार के हवाले कर दिया जाय।

जापानी सरकार के उच्च स्तरीय राजपुरुषों तथा प्रतिष्ठित जापानियों में ऐसे भी थे जो श्री बोस के प्रति कम सहानुभूति नहीं रखते थे। उनमें से एक थे स्वयं जापान के तत्कालीन प्रधानमंत्री काउंट शिगेनोबु ओकुमा। किंतु सन 1902 में हुई एंग्लो जापानी संधि अभी लागू थी। इसलिए ब्रिटेन, जापानी विदेश मंत्रालय पर भारी दबाव डालने की स्थिति में था। श्री बोस का प्रत्यर्पण सम्बन्धी आदेश वास्तव में जारी भी हो गया था और शंघाई होते हुए उन्हें भारत वापस भेजे जाने की तिथि भी निश्चित की जा चुकी थी। ब्रिटिश सरकार की मंशा यह थी कि एक बार शंघाई पहुँच जाने पर उन्हें गिरफ्तार कराया जा सकेगा क्योंकि शंघाई में उन्हें कुछ अतिरिक्त क्षेत्रीय अधिकार प्राप्त थे। किन्तु प्रत्यर्पण संबंधी इस आदेश के कार्यान्वयन से पूर्व ही रासबिहारी बोस का परिचय सौभाग्यवश सन-यात-सेन द्वारा मित्सुरू तोयामा से करवाया गया, जो जापान के दक्षिणपंथी राष्ट्रवादी समूह के नेता थे।

श्री तोयामा अत्यधिक प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। उनकी पहुँच बहुत

दूर-दूर तक थी। राजमहल से लेकर आम किसानो तक उनका दबदबा था। व रासबिहारी बोस की उत्कट देशभक्ति से अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्ह जापान म निरापद शरणदान दन का निणय किया। एक दिन जब रासबिहारी श्री तोयामा के घर पर थ, तब रिपाट मिली कि जापानी पुलिस बाहर फाटक पर उनक निकलने की प्रतीक्षा कर रही है। (श्री तोयामा के प्रभाव के कारण पुलिस अन्दर प्रवश का दुस्साहस नही कर पा रही थी।) श्री तोयामा न पिछले दरवाजे स श्री बोस के बाहर निकल जाने का प्रबन्ध किया और किसी को भी यह ज्ञात न हो सका कि रासबिहारी कहाँ चले गये। असल मे हुआ यो कि श्री तोयामा की सलाह के अनुसार एक असाधारण साहसी दम्पति श्री एजो सोमा तथा उनकी पत्नी कोक्को न, जो कि शिंजुकु म नका मुराया नामक दुकान के मालिक थे, अपने घर म रास बिहारी को शरण देना स्वीकार कर लिया था। उन्होन बडा जोखिम उठाया था। यदि ब्रिटिश एजटो को उसकी भनक मिल जाती तो न केवल रासबिहारी को बल्कि उनक उपकारी सरक्षको को भी भारी मुसीबत का सामना करना पडता।

इस बीच मे तोयामा ने जापान सरकार को यह परामश दिया कि चर्चित भारतीय दशप्रमी को खाजने के प्रयास म वह ब्रिटिश सरकार की बात न माने क्योकि उस यदि ढूढनवालो के हाथ मे सौपा गया तो निश्चित रूप से उसे फासी दे दी जायगी। सयोगवश हुआ यह कि यूरापीय युद्ध के फलस्वरूप चीन तथा ब्रिटेन दोनो की जापान विषयक नीति म परिवतन आरम्भ हो गया था। चीन म, जापान तथा ब्रिटेन के हितो के बीच दरार उत्पन्न हो गयी थी और जापान तथा इग्लड के सबध भी बहुत अच्छे नही रह गय थे। इसालिए हालाँकि जापान सरकार को अतत यह पता चल गया था कि रासबिहारी कहाँ है उसने उन्ह परेशान नही किया। सरकार न ब्रिटिश अधिकारियो का अटकलें लगाते रहने दिया, और श्री बोस को पकडवान के खोखले वायदो द्वारा स्वय ब्रिटिश सरकार को उल्लू बनाती रही। वास्तव म जसा कि मैंन बाद म सुना, जिस पुलिस अधिकारी को उन्ह गिरफ्तार करन का आदेश दिया गया था, वह चिबा क सागर तट पर अनेक बार श्री बास के साथ तरन जाया करत थ। श्री मितसुरु तोयामा ने पक्का प्रबन्ध कर रखा था कि श्री रासबिहारी पर कोई आँच न आन पावे।

ब्रिटिश सरकार न एक वरिष्ठ अंग्रेज पुलिस अधिकारी को रासबिहारी को खोज निकालने म जापानी अधिकारियो की सहायता के लिए भारत स जापान भेजा था। काफी प्रयासो के बाद उस अधिकारी से भारत सरकार को जो रिपोट मिली उसक अनुसार श्री रासबिहारी सम्राट के महाप्रबन्धक के निवास स्थान के अहाते के भीतर ही रहत थ। ब्रिटेन की खुफिया पुलिस के लिए यह एक अति अविश्वसनीय बचकानापन ही था। इतना ही नही, जापान म, ब्रिटेन के कूटनीति चक्र के प्रभाव को घटान क लिए ही मानो दक्षिण चीन सागर म एक घटना हुई।

जहा एक ब्रिटिश गश्ती दल न एक जापानी पोत पर हमला किया और उस पर सवार कमचारियो को गिरफ्तार कर लिया जिनमे कई भारतीय भी थे। इससे जापान म रोष भडक उठा तथा तोक्यो स्थित विदेश मत्रालय द्वारा अप्रेल 1916 म श्री रासबिहारी बोस के प्रत्यपण सवधी आदेश को रद्द कर दिया गया। श्री बोस हालाकि अब कानूनी दृष्टि स एक स्वतत्र व्यक्ति थे पर उनके लिए खतरा अब भी बना हुआ था क्याकि ब्रिटिश गुप्तचर अब भी समस्त जापान म कायरत थे और वे श्री बोस को अपहृत कर सकते थे।

इसलिए रासबिहारी सदा सतक रहत थे और अपना घर बार-बार बदलते रहे। लेकिन वे गुप्त रूप से सोमा दम्पति के साथ सम्पक बनाये रहे जिनकी सहायता की उन्ह भिन्न-भिन्न सन्दर्भों म आवश्यकता रहती थी। तोपिको इस सम्पक की कडी थी जो सोमा दम्पतियो की सबसे बडी बेटी थी। वह असाधारण लडकी स्वय को इतने बडे खतरे म डालने पर भी घबराती नही थी। इस स्थिति पर विचार करते हुए श्री मितसूरु तोमाया को विचार आया कि यदि दोनो पक्षो को कोई आपत्ति न हो तो सोमा दम्पति के लिए तोपिको और रासबिहारी का विवाह करा देना ही उचित था जिसस कि रासबिहारी का जीवन कुछ आसान हो सकता था। सोमा दम्पति ने यह निणय अपनी पुत्री पर छोड दिया। तोपिको ने एक मास तक इस प्रस्ताव पर विचार किया और फिर निणय किया कि उसे इस विवाह स प्रसन्नता होगी। रासबिहारी तोपिको स प्रेम करते थे, और वे उनके माता पिता को अपने माता पिता के समान मानत थे और उन्ह इसी रूप म सबोधित करत थे। तोपिको ने भी अपना निणय सुनाकर समस्या का अत कर दिया। तोपिको तथा रासबिहारी का विवाह 1917 म सम्पन्न हुआ।

यह एक असाधारण घटना थी। जापानी कन्याओ के विदेशियो स विवाह की घटनाएँ तब तक बहुत नही हुइ थी और इस घटना म तो विदेशी वर ऐसा था जो अपने सिर पर बडा इनाम लिये था। जो भी हो, यह विवाह अत्यन्त सफल सिद्ध हुआ। विशालहृदया तोपिको ने अदम्य साहस का परिचय दिया। रासबिहारी तथा तोपिका के बीच जो अनुरक्ति विद्यमान थी वह मानवीय सबधो की सुन्दरतम मिसाल थी।

उनके दो बच्चे हुए। बडा पुत्र था और छोटी पुत्री। पुत्र मसाहिदे बोस जिसका भारतीय नाम 'अशोक' था दुर्भाग्यवश द्वितीय विश्वयुद्ध के समय आकिनावा म मर गया। पुत्री तत्सुको जिसकी आयु इस समय लगभग उनसठ वप की है एक सफल इजीनियर श्री हिगुचि की पत्नी है। वे स्वय तो कभी भारत नही गई हैं किन्तु उनकी सबसे बडी पुत्री न सन 1969 मे भारत यात्रा की थी। उन्होने दिल्ली म शिक्षा ग्रहण करन का भी विचार किया था किन्तु अन्तत भाषा की बाधा और

पूणतया भिन्न वातावरण म समजन की कठिनाइया क कारण वह विचार त्याग दिया ।

दुभाग्यवश, विवाह क आठ वष बाद सन 192९ म तोपिको वास का देहात हो गया। उस समय उनकी आयु क्वल 28 वष की थी। इसस रासबिहारी का क्रांतिकारी तथा साहसी दिल टूट गया। फिर भी वे भारत की स्वतत्रता क लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा म विभिन्न कठिन कार्यों म अपना ध्यान लगाए रहे। उधर एक बार फिर श्री मितसूरु तोमाया के परामश पर ही जापान सरकार न उन्ह 1923 म जापान की नागरिकता प्रदान कर दी जिसस उन्ह एक स्वतत्र व्यक्ति की भाँति अपनी गतिविधिया को और अधिक ओजस्विता स सफल करने की प्रेरणा मिली। वे जानी मानी हस्तिया से मिलन तथा अपन भाषणा द्वारा भारत के पक्ष म लागा क मत प्राप्त करन क लिए जापान और समस्त दक्षिण-पूव एशिया म भारत समथक सस्थाओ के सगठन म अत्यधिक व्यस्त रहे। उन्हान जापानी भाषा का इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि वे न केवल इस भाषा म भाषण कर सकत थ, बल्कि अंग्रेजी बगला और हिन्दी पुस्तका का आसानी स जापानी म अनुवाद भी कर सकत थे। जापानी म अनूदित उनकी कृतिया म सन्दरलड लिखित 'पराधीन भारत' उल्लेखनीय है। उन्होंने जापान म भारत की मुक्ति के सघप के प्रवतन को एक सुव्यवस्थित अभियान का स्वरूप प्रदान किया था।

मुझे नकामुराया दुकान के स्वामी सोमा दम्पति स परिचय प्राप्त करन का जो सौभाग्य मिला था वह आज हमारे परिवारा के बीच बहुत घनिष्ठ हो गया है। जब मैं क्योतो म पढता था, उस समय रासबिहारी के साथ मरा सम्पक छिटपुट भेटा तक सीमित था किन्तु जब स जापान विश्वयुद्ध मे शामिल हुआ (उस समय मैं मचूक्वो म था) हमारा सम्बन्ध निरन्तर प्रगाढ होता गया। इस विषय की मैं इस पुस्तक मे अन्यत्र चर्चा करूगा, किन्तु इस अध्याय म उसके सन्दभ मे इतना कहना चाहूँगा कि हालांकि, कानूनी रूप से तो वे एक जापानी नागरिक जीवन शैली से पूरी तरह सामजस्य बठाए हुए थ तो भी मन से वे उतने ही भारतीय दश भक्त थ जितन कि जापान आने स पहले थे। अपनी अतिम साँस तक वे भारत की स्वतत्रता के लिए जूझते रहे। हिन्दू दशन अथवा गीता पर उनके भाषण के दौरान वे प्राय कहत थे कि भारत की स्वतत्रता प्राप्ति के बाद उनकी मात्र इच्छा यही है कि फुजि या हिमालय पवत पर जाकर रहे।

श्री रासबिहारी के साथ भेट करने के बाद मैं इस भावना को लकर क्योतो लौटा कि मैं एक तीथ यात्रा करन गया था और एक पावन विभूति के दशन करके आया हू। यह भावना सदा ही मुझे प्रेरणा देती रही है।

9

जापान के सम्राट का राज्याभिषेक

अपन विश्वविद्यालय के जीवन मे मुझे एक अप्रिय झटका लगा और विडबना ही कहूँगा कि यह घटना सम्राट हिरोहितो के राज्याभिषेक के अवसर पर क्योतो म शानदार राष्ट्र स्तरीय समारोह के समय हुई।

मेइजी के समय म देश की राजधानी क्योतो से तोक्यो को स्थानातरित किए जाने के बाद भी, परम्परा की माँग थी (और अब भी है) कि प्रत्यक नवीन सम्राट के सिंहासनारूढ होने की रस्म क्योतो के शाही महल म अदा की जाय। जब 25 दिसम्बर 1927 को सम्राट ताइशो दिवगत हुए तो रीजेंट (जो युवराज भी थे) हिरोहितो न अविलब गद्दी का भार सँभाल लिया, किन्तु उनके औपचारिक राज्याभिषेक का समारोह क्योतो म मनाया जाना अभी शेष था जिसकी तयारियाँ इस प्रकार की जानी थी जो जापान की शान के अनुरूप हो। उनके लिए बहुत समय चाहिए था। समस्त विश्व के राजनेताओ व शासको को आमन्त्रित किया जाना था और इस अवसर के लिए उचित सभार तत्र का गठन किया जाना था। इस घटना की गरिमा के अनुरूप सब कुछ श्रष्ठ स्तर का होना चाहिए था। सबसे बढकर, सुरक्षा प्रयास पूणतया सतोषजनक होने चाहिए। तोक्यो मे महल के निकट, तोरानोमोन स्थान पर दायिसुके नबा द्वारा, दिसम्बर 1923 मे रीजेंट पर किये गये हमले की याद अभी ताजा थी। सौभाग्यवश, हत्यारे की गोली का निशाना चूक गया था।

अतत इस शुभ काय का आयोजन, 10 नवम्बर, 1928 को साय चार बजे निर्धारित किया गया। पिछली शाम से ही महल की ओर जानेवाली सडको पर लोगो की भारी भीड एकत्र होने लगी थी। लोग अपने सम्राट को देखना चाहते थे जो जुलूस के आगे-आगे अश्वचालित रथ मे जानेवाले थे और उनके पीछे मोटर गाडियो की एक लबी कतार चलनी थी।

इस प्रकार के आयाजनो म सदा ही कुछ कठिनाइयाँ सामने आती हैं जिनको हल करने मे चतुर अधिकारीगण भी शायद ही पूणतया सफल हो पाते हैं।

उदाहरण के लिए जब हजारो-लाखो की भीड सडक के किनारे एकत्र हो और लगभग दिन भर वही जमी रहे ता प्राकृतिक आवश्यकताओ के लिए सामान्यत स्थापित व्यवस्थाए काफ़ी नही रहती। उस अवसर पर सडास तथा मूत्रालय आदि का प्रबध कसे किया जाय ? यानी बिना सडको को गदा किये या स्वास्थ्य के लिए खतरा उत्पन्न किये बिना इन आवश्यकताओ की पूर्ति कसे की जाय ?

लागो के पास समाधान तयार थे। सडास की आवश्यकता पर काबू रखा जायगा। कि तु जहाँ तक गुर्दों का सवाल था इतनी लबी अवधि तक सयम बनाये रखना कठिन था खासकर तब जबकि महीना नवम्बर का था और खूब ठड पड रही थी। इसके लिए भी रास्ता खोजा गया। प्रत्येक व्यक्ति या तो रबड की एक थैली या एक खाली बोतल अपने साथ रखेगा। जब आवश्यकता होगी उनका उपयोग करेगा फिर ढक्कन से उन्ह बन्द कर समारोह क अन्त तक उन्ह थामे रहेगा। बाद म उन पात्रो को निर्धारित स्थलो पर रख दिया जाएगा। चाह हो तो राह अवश्य ही निकल आती है।

उत्सव का आनन्द उठाने की इच्छा स मैंने भी एक खाली बोतल का प्रबन्ध किया और 8 नवम्बर की शाम को दर्शको की कतार म शामिल हो गया। किन्तु तुरन्त ही मैं एक अजीब स्थिति म पड गया। मैं सडक के किनारे एक ओर खडा हुआ ही था कि सुरक्षा गार्ड मरी ओर बढे। उन्होंने जापानी शली के अनुसार अनेक बार झुककर मेरा अभिवादन किया। साथ ही एक ने बार-बार मरी तलाशी ली मानो इसकी पुष्टि करना चाहता हो कि मरे पास कोई घातक वस्तु तो नही है। उन्ह कुछ भी न मिला। मूत्र की मरी बोतल भी अन्य लोगो जैसी ही थी। इसलिए किसी भी तरह अवांछित नही कहा जा सकता था। तो भी कुछ गार्ड बराबर मरे निकट ही खडे रहे। किसी और पर इतना ध्यान नही रखा जा रहा था। मुझे यह बात बडी अजीब लगी कि मुझ ही दूसरो स क्यो अलग किया जाय। मैं मानसिक रूप से कुछ अशात हुआ और परेशान भी। मैंने कुछ तो स्वय स और कुछ उन्हे सुनाकर कहा कि मैं सडक से जुलूस नही देखना चाहता। शायद कुछ समय बाद मैं किसी सिनेमा घर म वह जुलूस देख पाऊँगा। निराश मन स मैं घर जाकर सो गया।

लकिन बात वही खत्म नही हुई। अगले दिन मुझे पता चला कि पुलिस की साधारण कपडो वाली टुकडी ने विश्वविद्यालय के अधिकारियो स अनुमति माँगी थी कि मरी गतिविधियो पर नजर रख सकें। विश्वविद्यालय क अधिकारीगणो ने अपने अहाते म एस किसी काम की अनुमति नही दी। किन्तु पुलिस द्वारा अहाते क बाहर की जानेवाली कारवाई के विषय म व कुछ कह नही सकते थ। क्योकि मैं प्रोफ़सर तगुची क घर म रहता था इसलिए एक पुलिस अधिकारी उनक पास गया

और मुझ पर नजर रखने की अनुमति मागी। इस बात से चकित प्रोफेसर तगुची को बताया गया कि खुफिया पुलिस विभाग को मुझ पर नजर रखने का आदेश मिला है क्योकि मैं ड्यूक आफ ग्लौसेस्टर के लिए खतरा हो सकता था जो राज्याभिषेक समारोह मे ब्रिटिश शाही परिवार का प्रतिनिधित्व करने के लिए उस समय क्योतो म आये हुए थे।

मेरे मेजवान बहुत परेशान हुए। उन्हे आश्वस्त करने के उद्देश्य से निगरानी दल के कप्तान ने उन्हे बताया कि वह और उसके अन्य साथी उनके लिए कोई शर्मिदगी पैदा नही करेग। सिफ मकान की छत से बिना किसी व्यवधान के मुझ पर नजर रखेंगे। प्रोफसर तगुची इसस नाखुश थे किन्तु एतराज करन की स्थिति म भी नही थे। अत उन्होने खुफियो को सलाह दी कि मुझे इसकी जानकारी देना उचित होगा।

पुलिस अधिकारी मेरे पास आया और विनम्रतापूवक झुकन के बाद मुझे अपना पहचान पत्र दिखाया। वह मरे प्रति आदर दिखा रहा था जिसकी मुझे कतई प्रत्याशा न थी क्योकि मै केवल छात्र ही था। वह बोला, "श्री नायर, आइये, हम मित्र बन जाएँ, हम आपको सिनेमा या जहा भी आप जाना चाहते हो ले जाएँगे। किन्तु हम आपके साथ ही रहेगे।" जब मैने पूछा कि कारण क्या है ?" तो उसने उत्तर दिया, "डयूक ऑफ ग्लौमेस्टर यहा से होकर गुजरेंगे हम बताया गया है कि आप एक खतरनाक व्यक्ति है और उन्हे हानि पहुँचाने का प्रयास कर सकते है। यदि ऐसा हुआ तो हम सब बडी मुसीबत म फँस जाएँग, इसलिए हमे आप पर नजर रखनी ही होगी।"

मेरे समक्ष यह एक आश्चयजनक खुली घोपणा थी, एक ऐसी घोपणा जो सामान्यत कोई भी पुलिस, इसम कोई सच्चाई हो या न हो एकदम गुप्त रखा करती है। लेकिन पुलिस के इस समाधान से मैं शात नही हो सका। मैने काफी क्रोध से उत्तर दिया आप ऐसा क्यो सोचते है ?' हिमशैल की-सी शात मुखमुद्रा मे उसने उत्तर दिया, 'क्याकि हम भारत से सूचना मिली है। ब्रिटिश पुलिस की इच्छा है कि हम आप पर कडी नजर रखे। इसलिए आप अवश्य ही एक खतरनाक व्यक्ति होगे।"

हालांकि मैं क्रोध से पागल सा हो गया था, तो भी अपना मानसिक सतुलन कायम रखत हुए मैने उत्तर दिया 'मै खतरनाक व्यक्ति नही हूँ। यहाँ क्योतो विश्वविद्यालय का एक छात्र मात्र हू'। किन्तु वह अधिकारी मुझे छोडन को तैयार न था। वह बोला, "जी नही, ब्रिटिश सरकार की मूचना के अनुसार आप खतरनाक व्यक्ति है"। आखिरकार अपन क्रोध पर काबू खाकर मैं काफी अशिष्टता से बोल उठा, 'देखिए मित्र, यह आपका देश है आप अपना कतव्य निभाइये, किन्तु मुझे अकेला छोड दीजिए। मै आपके इस विश्वविद्यालय म विधिवत दाखिला

प्राप्त एक छात्र हूँ और मरी समझ म यह कतई नही आ रहा है कि आप या आपके साथी मुझे क्या परेशान कर रहे है"। वह अधिकारी जितना अधिक शात बना हुआ था, उतना ही अधिक मेरा गुस्सा भी बढ रहा था। उसन पूववत शात लहजे म मुझसे कहा, "हम आपका कोई हानि नही पहुँचाएँगे। आप चाह तो हम छात्रो की-सी वेश भूषा धारण करग, किन्तु आप जहा कही जाएँ हम आपक साथ ही होगे"।

"आप सब ठहर पुलिस कमचारी आर आपको अपनी ही वर्दी पहननी होती है तो आप छात्रो की यूनिफाम कसे पहन सक्त है'?

"ओह, वह कोई परशानी की बात नही है। हम साधारण पुलिस के नही वल्कि विशेष पुलिस के आदमी है। इसलिए हम काइ भी वेष धारण कर सक्त है'।

मुझे उस अफसर के दावे पर कोई सदह न था कि वह विशेष आदेश क अधीन काम कर रहा था। स्पष्ट था कि जापान के ब्रिटिश गुप्तचर विभाग और भारत की पुलिस के अनुरोध के अनुसार जापान की पुलिस कारवाई कर रही थी। मने सुन रखा था कि ब्रिटिश गुप्तचर विभाग का एक बहुत व्यापक जाल है और जाहिर है कि उसका भारत तथा अन्य देशो के साथ सपक होगा। तिरुविताकूर की पुलिस की दृष्टि मे तो म निश्चित रूप स विद्रोही आदमी था, किन्तु य समाचार मरे लिए बिलकुल ही नया था कि किसी ने जापानी पुलिस को समझाया कि मै एक इतना खतरनाक आदमी हूँ कि ड्यूक आफ ग्लौसेस्टर को भी मुझसे खतरा हो सकता है और उनकी मुझसे रक्षा की जानी चाहिए। कहा कुछ गडबडी थी किन्तु मुझ ज्ञात न था कि असली बात क्या थी। इस मामले म कटुता और परेशानी का अनुभव करने के सिवाय मैं इस बारे म कुछ कर भी नही सकता था।

ड्यूक ऑफ ग्लौसेस्टर एक सप्ताह तक क्योतो मे रहे उस समस्त अवधि म पुलिस अधिकारी सडास अथवा स्नान गह तक मे छाया की तरह मरे साथ साथ बने रहे। लकिन एक बात मैं अवश्य कहूँगा कि उनका बर्ताव सदा ही बेहद शिष्ट और आदरपूण था। उन अधिकारियो म स एक न मुझे बताया कि उसे बहुत खेद है कि मुझ जसे छात्र के साथ उस एसा बर्ताव करना पड रहा था। उसन कहा कि मैं ड्यूक के आवास क इद गिद क अलावा कही भी आ जा सकता हूँ और बाकी उसके साथियो की उपस्थिति मुझे बर्दाश्त करनी ही होगी। एक दिन ड्यूक नगर दशन के लिए मियाको होटल के अपने कमरे से निकलन वाल थ। पुलिस अधिकारी न निणय किया कि उस समय मैं एक चलचित्र देखूगा। इसलिए मुझ सिनेमाघर मे ले गय। बाद मे एक मित्र स मिलने काबे जाना चाहता था। वे मुझे वहाँ भी ले गय। जब मैं अपना टिकट खरीद रहा था तो उस अधिकारी ने कहा "इसकी कोई आवश्यकता नही है आप मुफ्त यात्रा कर सक्त है"। उस क्षण

मैंने अपमानित अनुभव किया और अपनी मनोभावना उसे जतायी। उसने उत्तर दिया कि उसकी मंशा मेरा अपमान करने की न थी, वह केवल मेरी यात्रा का खर्च बचाना चाहता था। मैंने उत्तर दिया कि मुझे दान नहीं चाहिए। किन्तु पुलिस की यह संगति एक ऐसी स्थिति थी जिससे मैं बच नहीं सकता था। बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के बलपूर्वक मुझे निगरानी में रखा जा रहा था। यह स्थिति मेरे लिए असहनीय थी। मगर मेरे प्रति जापान पुलिस का व्यवहार अत्यधिक सौहार्दपूर्ण था।

ड्यूक आफ ग्लौसेस्टर और अन्य मुख्य विदेशी अतिथियों के लौटने के तुरन्त ही बाद वे पुलिस अधिकारी मेरे लिए केक का डिब्बा लाये। उन्होंने गत सप्ताह के अपने व्यवहार के लिए क्षमा याचना की। वे चाहते थे कि मैं उनके कर्तव्य पालन के प्रति कोई गलतफहमी न रखूं। हालांकि इस मामले में मैं अपने को अपमानित ही महसूस कर रहा था और इस कारण मैं शर्म और रोष दोनों से सुलग रहा था तो भी मैंने उन्हें बताया कि 'मेरे मन में निजी तौर से उनके प्रति कोई दुर्भाव नहीं हैं, उल्टे मैं उनके शिष्ट व्यवहार का प्रशंसक हूँ। मेरा रोष तो किसी अन्य शक्ति के प्रति है"। वे खुशी-खुशी लौट गये।

किन्तु मैं संतुष्ट न था। मैंने क्योतो के गवर्नर को कड़े शब्दों में एक पत्र लिखा, जिसमें यह कटु शिकायत की कि मुझे अपमानित किया गया है। मैंने लिखा—जापान के प्रति सद्भावना रखनेवाला एक एशियाई छात्र जो क्योतो विश्वविद्यालय में अध्ययनरत है, अपमानित किया गया है। एशिया के सर्वाधिक विकसित देश के लिए एशिया के अन्य भागों से आये व्यक्तियों के साथ ऐसा वर्ताव क्या उचित है? मैंने अपने पत्र में वाकई अपनी तमाम भड़ास निकाल ली और गवर्नर से यहाँ तक पूछा कि क्या जापान ब्रिटेन के हाथों की कठपुतली है?

गवर्नर महोदय को निश्चय ही आश्चर्य हुआ होगा। अगर चाहते तो वे मेरे पत्र को नजरंदाज कर सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। मुझे पता चला कि उन्होंने अपने सबसे उच्च सहायक सुपरिंटेंडेंट को बुलाया और कहा "हमें अवश्य कुछ करना चाहिए"। सुपरिंटेंडेंट मेरे घर आये, मुझे अपने घर ले गये। मुझे बढ़िया भोजन कराया और कहा, 'हमें खेद है, किन्तु कृपया हमें गलत न समझें। हम जानते हैं कि आप भले आदमी हैं। हम जानते हैं कि आप एक देश-भक्त हैं और शायद इसीलिए ब्रिटिश आपको पसंद नहीं करते। किन्तु हम पर अपने राजकीय अतिथियों के सुरक्षापूर्ण प्रबन्ध की पूरी जिम्मेदारी थी।

मैंने सोचा कि यह तो कोई सफाई नहीं मानी जा सकती है और उनसे पूछा कि केवल मुझ ही एक 'खतरनाक व्यक्ति' क्या चुना गया? यदि ब्रिटेन विरोधी लोगों की ही निगरानी वांछित थी तो केवल मेरा ही पीछा क्यों किया गया, अन्य किसी पर, उदाहरण के लिए रासविहारी बोस पर, क्या नजर नहीं रखी गयी?

ज्यो ही मैंने रासबिहारी का नाम लिया, सुपरिंटेडेंट महोदय को झटका सा लगा। काफी परेशान दिखाई दिये और कुछ समय तक शब्द खोजते स प्रतीत हुए, फिर अतत उहाने ऐसा कुछ कहा कि सभव है कि जापान मे विवाहित होकर पारिवारिक जीवन वितानेवाले श्री बास को ब्रिटिश सरकार न एक चितक मात्र मानकर छोडा हो और वे खतरनाक न माने जा रहे हा और ब्रिटिश सरकार आप जस एक युवा उग्रवादा ए० एम० नायर' को लेकर चिंतित हो गयी हो।

मैने स्वय से कहा कि यदि सुपरिंटडेंट का अदाजा सही था तो ब्रिटिश खुफिया विभाग के लोग वडे बुद्धू होगे। खर, गवनर के कार्यालय से आय मेरे दयालु अतिथि के साथ बहस को बढाने से कोई लाभ न था। हमारा वार्तालाप मत्रीपूवक समाप्त हुआ। उसके बाद से गवनर के कमचारीगणो का, विशेषकर विदेश विभाग के अध्यक्ष का मेरे साथ बर्ताव बहुत अच्छा रहा। मुझे जापान म कही भी यात्रा करन के लिए एक नि शुल्क पास दिया गया और एक विशेष पहचान-पत्र भी, जिसे दिखाकर म महत्वपूण अवसरो पर राजकुमार-राजकुमारियो जसे विशिष्ट अतिथिया आदि के लिए निर्धारित आरक्षित स्थलो म जाकर बठ सकता था। इस प्रकार विगत सप्ताह की कठिन परीक्षा मेरे जीवन म अपकष और उत्कष की मिश्रित अनुभूति रही।

इस शानदार उत्सव के बाद, क्योतो के शात वातावरण म कुछ तटस्थ होकर, उन दिना की घटनाआ पर सोचने लगा तो इस निष्कष पर पहुचा कि 'ये घटनाएँ हालाकि दुखदायी थी, कि तु एक प्रकार की चुनौती भी थी। मुश्किलें तो आयेंगी ही कभी कभी तो एकदम अप्रत्याशित रूप से, लेकिन उन पर विजय पाना भी आवश्यक है। उनसे पलायन सभव नही है। चुनौती जितनी भी गभीर होगी, अनुभव उतना ही अच्छा रहेगा। मलयालम की एक कहावत है कि 'अग्नि म उगने वाला पौधा, धूप मे मुरझाता नहो'।

कि तु परदश म होनेवाली इस घटना को मैं एकदम भूल नही सका था। यह विचार मुझे लगातार सालता रहा कि मुझे बिना वजह परेशान किया गया। इस सबका अगर कोई तकसगत कारण था भी, तो मैं उसे खोज पाने म असमथ था। अनक वर्षों बाद मुझे असली कारण का पता चला। ये सत्य मुझ पर एक विश्वसनीय सूत्र द्वारा प्रकट किया गया जो गुमनाम ही रहना चाहता था। सत्य यह था कि जापान स्थित ब्रिटिश गुप्तचर विभाग ने अपनी शघाई स्थित शाखा के माध्यम से, दिल्ली (और कदाचित लदन को भी) वष के आरभ म तोक्यो म रासबिहारी बोस के साथ मरी भेंट की एक रिपोट भेजी थी। इस रिपोट मे कहा गया था कि रास-बिहारी और मैंने जसा कि दिल्ली म, सन् 1912 म, लाड हार्डिंग के विरुद्ध किया गया था, ठीक उसी प्रकार, ड्यूक ऑफ़ ग्लोसस्टर पर भी बम फेंकन का षडयत्र रचा गया है। इसलिए क्योतो म ड्यूक के प्रवास के दौरान मुझ पर लगातार कडी

नजर रखी जानी चाहिए।

इससे अधिक गरजिम्मदाराना और झूठी रिपोट की कल्पना भी नही की जा सकती। रासबिहारी के साथ मरी भेट मात्र सौहादपूण रही थी। यह सही था कि स्वय को ब्रिटिश शासका स बचाये रखने के उद्देश्य से उन्होंने जापानी नागरिकता ल ली थी। तो भी, व तन मन से एक भारतीय देशप्रेमी और पूणतया ब्रिटिश विरोधी व्यक्ति वन रह थे। किन्तु एक पागल व्यक्ति ही एसी कल्पना कर सकता था कि मरे माध्यम स या अन्य किसी प्रकार स वे, जिस देश ने उन्ह बचाव के लिए शरण दी थी उस दश के किसी भी अतिथि को व कोई चोट पहुचा सक्त थे।

लकिन, ब्रिटिश गुप्तचर विभाग की शरारत भरी रिपोर्टों के आधार पर, मुझ जस व्यक्ति पर निगरानी रखी जाने की बात, ड्यूक आफ ग्लौसस्टर की क्योतो यात्रा तक ही सीमित न थी। नई दिल्ली स्थित भारत सरकार क राजनीति विभाग न समस्त भारत और विशेषकर, तिरुवितांकूर की पुलिस का आदेश दिया था कि जब कभी भी मैं पुन भारत लौटू तो मुझे हिरासत म ले लिया जाये क्याकि मैं रासबिहारी बास का सहयोगी था और इसलिए सभवत वास क समान ही ब्रिटिश विरोधी खतरनाक आतककारी भी। भारत मे मर परिवार पर गुप्त नजर रखी जाती थी ताकि यह पता लगाया जा सके कि मैं भारत लौटनवाला हूँ या नही। हमारे बीच का पत्र व्यवहार भी सेसर किया जाता था।

लेकिन, वास्तव म यह सब ब्रिटिश सरकार के लिए समय की बबादी ही थी। विधि हमारी जीवन धारा को सचालित करती है, हम उसम अडगा क्स लगा सक्त है? मरी प्रथम भारत यात्रा (और तब मरी पत्नी जानकी नायर और मरा छोटा पुत्र गोपालन नायर मरे साथ थे) 18 सितम्बर, 1958 को यान, जापान के लिए कोलम्बो म सुवा मारू पोत पर सवार हान क ठीक तीस वष बाद हुई। तब तक भारत स्वतन्त्रता के दूसरे दशक म प्रवेश कर चुका था। अगस्त 1947 म, ब्रिटिश साम्राज्य का भारत म सूर्यास्त हा चुका था।

10

क्योतो का छात्र जीवन

प्रोफेसर साकाकिवारा एक प्रतिभा सम्पन्न अध्यापक तो थे ही साथ ही आला दर्जे के मेहमाननवाज भी थे। उनका परिवार भी उतना ही मित्रताप्रिय था। एक घटना की याद करके मुझे बहुत खेद होता है। जापानी रीति रिवाजों के प्रति अपने अज्ञान अथवा गलतफहमी के कारण कुछ समय तक मेरे मन में उनके लिए बुरी भावना घर कर गयी थी, सौभाग्यवश मैं उन्हें नाराज करने या कष्ट पहुँचाने से बाल बाल बच गया।

जापानी भाषा की नियमित कक्षा के अन्त में श्रीमती साकाकिवारा मुझे कुछ नाश्ता दिया करती थी इसमें अक्सर जापानी ढग का केक और चाय हुआ करता था। एक दिन मुझे भूख न थी और इसलिए अपना नाश्ता मैं पूरा खा नहीं सका। मैंने लगभग आधा केक उस प्लेट में ही छोड दिया। घर की सेविका ने उस टुकडे को एक कागज में लपेटकर मुझसे कहा, ' कृपया इसे अपने साथ ले जाइए और बाद में घर पर खा लीजियेगा"। भारत में जिसे हम आभिजात्य वर्ग के लोग, 'जूठन' कहते हैं, वह जब पैकेट के रूप में मुझे दिया गया तो मुझे क्रोध हो आया। अत वहाँ से बाहर आते ही मैंने निकटस्थ कूडेदान में उस पैकेट को फेंक दिया और मन-ही मन उन्हें कोसा।

घर पहुँचते ही मैंने यह सारा किस्सा तगुची दम्पति को सुनाया। लेकिन मुझे बेहद अचरज हुआ कि मेरे साथ सहानुभूति दर्शाने के बजाय उनकी मुद्रा ऐसी थी मानो मैंने कोई गलत हरकत की हो। श्री तगुची ने मुझसे कहा, नायर साहब, आपने गलती की है। सेविका अवशिष्ट केक के द्वारा आपका अनादर नहीं करना चाहती थी। उसने तो ऐसा, उस परिवार की आपके प्रति समादर भावना के तहत किया था। ये सब हमारे रीति रिवाजों का एक अग है"। दयावान प्रोफेसर के परिवार को गलत समझने के कारण खेद के साथ मुझे बहुत अधिक सकोच का भी अनुभव हुआ। इस घटना की याद ने मुझे काफी अरसे तक परेशान रखा। सताप यही था कि प्रोफेसर के घर में मैंने कोई अभद्र व्यवहार नहीं किया था। वस्तुत

इसका असली कारण मात्र गलतफहमी थी, कृतघ्नता नही।

जापान के रिवाजो को पूरी तरह जानने, समझने की कोशिश न करने के लिए मैंने स्वय को प्रताडित किया और निणय किया कि आइन्दा एसी कोई अनुचित गलती न हो इसका ख्याल रखूगा। इस विषय म पुन सोचने पर मन अनुभव किया कि मुझे 'अभिजात वग वाली बात नही सोचनी चाहिए थी। बचा हुआ केक जो मुझे दिया गया था वह उस अथ मे उच्छिष्ट' नही था जसा कि भारत मे मानत थे। भारत म 'उच्छिष्ट' वह माना जाता है, जिसका कुछ अश कोई अन्य व्यक्ति खा लेता है। लेकिन यहा तो, बात सिफ इतनी थी कि मुझ जो बचा खाद्य दिया गया था, वह मूलत मेरा ही था जिसे मै स्वय पूरा खा न पाया था। इसलिए तथा कथित भारतीय दष्टिकोण म भी मेरा व्यवहार उचित नही था। केरल मे, मेरे घर म भी यही नियम था कि खाद्य व्यथ बर्बाद नही किया जाना चाहिए। बौद्ध सस्कृति के अनुसार भी 'खाद्य के सन्दभ म लापरवाही न वरता उसे फेंको मत" की शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार हर दष्टि स गलती मेरी ही थी और मन्य निश्चय ही बहुत अधिक (जो कि उचित ही था) खेद हुआ।

मुझे इस बात की खुशी थी कि थोडे अरस म, विश्वविद्यालय म तथा बाहर भी जापानी भाषा म मेरी निपुणता की ख्याति फैल चुकी थी। कालान्तर मे मरे मित्र मुझसे यह भी पूछन थ कि क्या भाषा के सम्बन्ध म मुझमे कोई विशेष गुण है" ? मैं ऐसे प्रश्नो का उत्तर भला क्या देता ? लेकिन इतना कहना सही है कि किसी भी विदेशी भाषा को सीखन म जिसके सम्पक म मै कुछ अरसा रहा मुझे कभी कठिनाई नही हुई। अपनी मात भाषा के अतिरिक्त अपने देश की बहुत सी भाषाओ मे मे कुछ का मुझे ज्ञान है। मचुको, चीन मगोलिया मलाया और दक्षिण-पूव एशियाई देशो की यात्राओ मे वहा की भाषाओ का कामचलाऊ ज्ञान हासिल करने मे भी मुझे बहुत समय नही लगा। म अपना काम सवत्र सतोषजनक ढग से चला लेता था।

जापानी भाषा की अपनी योग्यता के सम्बन्ध मे मुझे एक रोचक घटना याद आती है। अमरीकी सेनाओ का जब जापान पर कब्जा था उस समय एन० एच० के० यानी जापान प्रसारण निगम द्वारा तोक्यो केन्द्र से विभिन्न विषयो पर वातायें प्रसारित करने के लिए मुझ प्राय आमत्रित किया जाता था। मैं आमतौर स अपनी वार्ताएँ राजनीति की बनिस्बत आर्थिक तथा सास्कृतिक विषयो तक सीमित रखता था। गुलामी के अतिम चरण म 'भारत सपक मिशन' के अध्यक्ष और बाद म जापान के लिए नियुक्त प्रधान भारतीय राजदूत श्री के० के० चेटटूर सदा य जानने को उत्सुक रहत थे कि जापानी प्रसारणो मे क्या कहा जाता है और विशेषकर भारत से सम्बद्ध कायक्रमा म क्या कहा जा रहा है। सामान्य अनुवाद क अलावा जाकि निश्चय ही उन्ह सुलभ था, वे स्वय भी, भाषाविद थे और थोडी जापानी

भी समझ लेते थे। मेरा ख्याल है कि सन 1951 मे वे भारत सम्बन्धी एन० एच० के० (जापान प्रसारण केन्द्र) का एक कार्यक्रम सुन रहे थे, जिसका वक्ता मैं था। एन० एच० के० द्वारा प्रारभ मे प्रस्तुत मेरा परिचय वे नही सुन पाये थे। किन्तु अन्त तक सुनते रहे। प्रसारण के अन्त म प्रसारित सामग्री के लेखक की हैसियत म पुन मेरा नाम घोषित किया गया तो वे विश्वास नही कर सके। उन्हे ऐसा प्रतीत होता रहा कि कोई जापानी व्यक्ति प्रसारण कर रहा है और वे यह जानने के लिए उत्सुक थे कि किस जापानी को भारत का ऐसा निकट का ज्ञान प्राप्त है। उन्होंने अपने एक सहायक से पता लगाने को कहा। जब एन० एच० के० द्वारा यह बताया गया कि वक्ता श्री ए० एम० नायर हैं तो उन्हे बहुत आश्चर्य हुआ। यह बात उन्ही सहायक महोदय न मुझ बताई थी। मै सोचता हू कि मेरे इस भाषा ज्ञान का श्रेय वस्तुत मेरे अध्यापकों को है।

जापानी भाषा अति समृद्ध और लालित्यपूर्ण है। भारत म तथा अन्य देशो म भी बहुत से लोग भ्रातिवश यह समझत कि जापानी भाषा चीनी भाषा के समान है। सचाई यह है कि ये दो भिन्न भाषाएँ हैं। हालाकि मोटे तौर पर आरभिक काल मे चीनी सभ्यता का जापान पर प्रभाव रहा किन्तु जापानियो की आरभ म ही अपनी भाषा रही है। चौथी शताब्दी क आसपास तक यहा इस भाषा के लिखने की व्यवस्था न होने की वजह से चीनी लिपि उधार लेकर काम चलाया गया। किन्तु उस भाषा की लिपि को जापानियो की भाषा सबधी परम्परा की आवश्यकताओ के अनुरूप ढाला भी गया।

सदियो के दौरान लिपि की रूपातरण प्रक्रिया मे अपनाई गयी विभिन्न देशज व्यवस्थाओ की व्याख्या करना जटिल बात है। सक्षेप में कहे तो चीनी भाषा सीखने के बाद जापानी लोग काफी हद तक कानजी कहलानेवाले चीनी चित्राक्षरो को स्वय अपनी भाषा लिखने म उपयोग करने लग थे किन्तु चीनी ध्वनियो के बजाय, अपन उच्चारण को उन्होने बरकरार रखा। किन्ही विशेष शब्दो का चीनी उच्चारण जापानी भाषा के किन्ही विशेष ध्वन्यात्मक सन्दर्भों म भी प्रयुक्त हो सकता है, परन्तु 'उधार लिये गये' चीनी चित्राक्षरो की ध्वनि और अर्थ दोनो का ही पूर्णतया भिन्न उपयोग किया जाता है।

इसके अलावा कताकना और हिरागाना नामक अक्षर मालाएँ जिनम से प्रत्येक म लगभग पचास ध्वनि प्रतीक होते हैं, देशज आविष्कार हैं और उनकी ध्वनि सरचना पर सस्कृत भाषा का प्रभाव स्पष्ट है। कहा जाता है कि इनकी अक्षरमालाओ की रचना, बौद्ध मनीषी कोबो दयी द्वारा की गई थी जो शिनगोण सम्प्रदाय के सस्थापक थे और जिन्होने जापान के बौद्ध धर्म म वज्रयानी मार्ग का समावेश भी किया था। इस प्रकार, हालाकि जापानी भाषा म अनकानेक चीनी चित्राक्षर हैं तो भी दोनो भाषाएँ एक-दूसरी से बिलकुल भिन्न है।

थी जा विश्वविद्यालयी जीवन के बाद भी बनी रहती थी। अपने अपन धन्धे और और अपनी निजी राजनीतिक विचारधारा के बावजद शिक्षा काल क पुराने सम्बन्ध' सामान्यत जीवन भर कायम रहते हैं। इस सम्बन्ध को जापानी भाषा म गक्कोबत्सु' कहा जाता है जिसम माटे तौर पर, अपनी शिक्षण सस्था के प्रति छात्र छात्राओं की सदा सवदा बनी रहन वाली स्नेह व सम्मान भावना भी निहित होती है। मुझे अभी भी अपन छात्र-काल के क्योतो विश्वविद्यालय के इजीनियरी सकाय के छत्तीस सहपाठियो म स प्रत्यक की पक्की याद है। दुर्भाग्य की बात है कि उनम स कुछ अब नहीं रह, किन्तु हम म से जो भी बचे है, परस्पर सम्पक रखे हुए है।

विश्वविद्यालय का माहौल शान्तिमय और गम्भीर अध्ययन के सवथा अनुकल था। लेकिन इसका अथ यह नहा था कि छात्रगण और कुछ नही करत थे। वस्तुत उनम काफी राजनीतिक जागरूकता थी, हालाकि व निकट के मित्रो के बीच अति करीबी वातावरण मे ही अपना मत व्यक्त करते थे और अन्य स्थिति म खुलकर कुछ कहन मे हिचकिचात थे। इस सकोच का कारण था सेना द्वारा नागरिक जीवन पर बढता नियत्रण जा नि सन्देह अत्यधिक सख्त होता जा रहा था।

इतना ही नहा, लाग छात्र हो या अन्य कोई, स्वभाव से ही चुप्पे और मित भाषी थ (और काफी हद तक आज भी है) और उनका दिल खुलवान म काफी समय लगाना पडता था। किन्तु एक बार आपसी विश्वास स्थापित हा जान पर एक चिरस्थायी घनिष्ठता हा जाती थी। मुझे न केवल अपन साथी छात्रा बल्कि राजनीति क्षेत्र के बहुत-स महत्वपूर्ण व्यक्तियो क साथ स्थायी निजी सम्बन्ध बनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी विशिष्ट निजी विचारधाराओ के बावजूद मैं प्रत्यक समूह के सदस्यो मे मिलता-जुलता था। उनके साथ मेरे सम्बन्धो को, 'अनुप्रस्थ' न कह कर अनुलम्ब माना जाना चाहिए क्योकि अनुप्रस्थ सम्बन्धो मे सदा इस बात का भय बना रहता है कि कोई अनजान ही किसी का दिल न दुखा दे या उसकी नाराजगी का पात्र बन जाए। जहाँ तक जापान की भीतरी राजनीति का प्रश्न था, मरा उद्देश्य यही था कि पूर्णतया निष्पक्ष बना रहूँ लेकिन साथ ही मैं यथासम्भव सम्पर्को म जापानियो को ब्रिटेन विरोधी और भारत-समथक बनाने का कोई भी अवसर नही खोना चाहता था जिस काय को मैं अपन पाठ्यक्रम के बाद मुख्य काय मानता था।

लकिन मुझे सावधान भी रहना पडता था। उदाहरण के लिए जापान म 'उपनिवेशवाद' शब्द बहुत लोकप्रिय न था। विश्व की एक बडी शक्ति के रूप म उभरन क बाद, स्वय जापान ने भी विस्तारवादी आकांक्षाओ को पोषित करना आरम्भ कर दिया था। कोरिया तथा प्रशात सागर क्षेत्र क कुछ द्वीपो पर विजय

थी जो विश्वविद्यालयी जीवन के बाद भी बनी रहती थी। अपने अपन ध धे आर आर अपनी निजी राजनीतिक विचारधारा के बावजद शिक्षा काल के पुराने सम्ब ध' सामा यत जीवन-भर कायम रहत हैं। इस सम्ब ध को जापानी भाषा मे गक्कोवत्सु' कहा जाता है जिसम माटे तौर पर, अपनी शिक्षण सस्था के प्रति छात्र छात्राओ की सदा सवदा बनी रहने वाली स्नेह व सम्मान भावना भी निहित होती है। मुझे अभी भी अपन छात्र काल के क्योतो विश्वविद्यालय के इजीनियरी सकाय के छत्तीस सहपाठिया म स प्रत्यक की पक्की याद है। दुर्भाग्य की बात है कि उनमे से कुछ अब नही रहे, कि तु हम म से जो भी बचे है, परस्पर सम्पक रखे हुए है।

विश्वविद्यालय का माहौल शा तिमय और गम्भीर अध्ययन के सवथा अनुकल था। लेकिन इसका अथ यह नही था कि छात्रगण और कुछ नही करत थे। वस्तुत उनम काफी राजनीतिक जागरूकता थी, हालाकि वे निकट के मित्रो के बीच अति करीबी वातावरण मे ही अपना मत व्यक्त करत थ और अ य स्थिति म खुलकर कुछ कहन म हिचकिचात थ। इस सकोच का कारण था सना द्वारा नागरिक जीवन पर बढता नियत्रण जो नि स देह अत्यधिक सख्त होता जा रहा था।

इतना ही नही, लाग छात्र हो या अ य कोई, स्वभाव से ही चुप्पे और मितभायी थ (और काफी हद तक आज भी है) और उनका दिल खुलवाने म काफी समय लगाना पडता था। कि तु एक बार आपसी विश्वास स्थापित हो जान पर एक चिरस्थायी घनिष्ठता हो जाती थी। मुझे न केवल अपने साथी छात्रो बल्कि राजनीति क्षेत्र के बहुत स महत्वपूण व्यक्तियो क साथ स्थायी निजी सम्ब ध बनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी विशिष्ट निजी विचारधाराओ के बावजूद मैं प्रत्यक समूह क सदस्या मे मिलता-जुलता था। उनक साथ मेरे सम्ब धो को, 'अनुप्रस्थ' न कह कर 'अनुलम्ब माना जाना चाहिए क्याकि अनुप्रस्थ सम्ब धो मे, सदा इस बात का भय बना रहता है कि कोई अनजान ही किसी का दिल न दुखा दे या उसकी नाराजगी का पात्र बन जाए। जहाँ तक जापान की भीतरी राजनीति का प्रश्न था, मेरा उद्देश्य यही था कि पूणतया निष्पक्ष बना रहूँ लेकिन साथ ही मैं यथासम्भव सख्या म जापानिया को ब्रिटेन विरोधी और भारत-समथक बनाने का कोई भी अवसर नही खोना चाहता था जिस काय को मैं अपने पाठ्यक्रम के बाद मुख्य काम मानता था।

लेकिन मुझ सावधान भी रहना पडता था। उदाहरण के लिए जापान म 'उपनिवेशवाद' शब्द बहुत लोकप्रिय न था। विश्व की एक बडी शक्ति के रूप म उभरने के बाद, स्वय जापान ने भी विस्तारवादी आकांक्षाओं को पोषित करना आरम्भ कर दिया था। कोरिया तथा प्रशात सागर क्षेत्र क कुछ द्वीपा पर विशप

कर फारमोसा पर तो कब्जा किया भी जा चुका था। इन तथ्यो से जनित, परिभाषा सम्बन्धी कठिनाइयो से बचने के लिए मैं ब्रिटेन द्वारा उपनिवेशवादी कारवाइयो की चर्चा के बदले ब्रिटेन द्वारा भारत और भारतवासियो के शोषण की बात करता। यह अन्तर जो काफी सूक्ष्म था और वास्तव म काई अन्तर था भी नही, न जाने क्यो सुनने वाला पर अपक्षतया अधिक अनुकूल प्रभाव डालता था।

जापान की सास्कृतिक राजधानी हाने के साथ साथ क्योतो सामाजिक राजनीतिक विचारधारा के विभिन्न महत्वपूण रूपो के जन्म व विकास का केन्द्र रहा है। दक्षिणपथी अभियान और इसका प्रभाव स्वाभाविक रूप से काफी प्रमुख था। लकिन अल्पसख्यक वामपथी दल भी थे, जिनम सिद्धान्तवादी' श्रेणी के कम्युनिस्ट भी थे। उदाहरण के लिए, मरे प्रवेश से कुछ ही पूव क्योतो विश्वविद्यालय म अथशास्त्र क प्रसिद्ध प्राध्यापक हाजिमे कवाकामी मार्क्सवाद के समथक थ। और दिवगत राजकुमार फूमिनारू काणोय जो भूततूव प्रधान मन्त्री भी थे (और जिन्हान जापान द्वारा बिना शत हथियार डाले जाने की, सम्राट की घोषणा सुनने पर आत्महत्या कर ली थी) प्रोफेसर कावाकाए की छाया म अध्ययन करने के लिए क्योतो विश्वविद्यालय म प्रविष्ट हुए थे जो अपन प्रोफेसर की विचारधारा स प्रभावित थे।

विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्रोफसरों को ऊँची प्रतिष्ठा प्राप्त थी और वे सेना के प्रभाव से भी मुक्त थे। सेना का दवाव निचले तबका के लोगो पर ही विशेष पडता था। य प्रोफसर लगभग सभी 'सिद्धान्तवादी' थे तथा उनके बहुत से छात्रो म उग्रवादी विचारा का भी प्रावल्य था। उनम स बहुता ने चुपचाप मिलकर, सन 1922 म जापान कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना कर ली थी जो केन्द्र सरकार के लिए भय और आशका का कारण बनी। सरकार की परेशानी सन् 1928 के आम चुनावो के वाद तो लगभग आतक और सन्त्रास का रूप ले चुकी थी। इन चुनावा म मतदान का अधिकार उस समय तक प्रचलित मताधिकार व्यवस्था से कही अधिक व्यापक रूप ल चुका था। इसके परिणामस्वरूप लोगो के बीच राजनीतिक मत भिन्नता उभर कर सामन आ गयी। वामपथी दल भी बराबरी के आसपास आ रहा था। सत्तारूढ सयुकाय पार्टी को प्रतिपक्षी मिनसेइतो पार्टी की तुलना म कुछ ही अधिक वोट मिले थ। इतना स्पष्ट हो गया था कि पार्टिया के आपसी सम्बन्ध म ध्रुवीकरण स्थापित हो चला है तथा दक्षिणपथी विरोधी पार्टियो का प्राप्त सीटो की सख्या कम थी किन्तु साथ ही यह बात भी कम रोचक नही थी कि लगभग पाँच लाख वोट वामपथी उम्मीदवारा के पक्ष म गये थे।

चुनाव के कुछक सप्ताह बाद ही सयुकाइ पार्टी के नता प्रधान मन्त्री गिचि तनाका न लगभग सभी प्रमुख कम्युनिस्ट नताओ की गिरफ्तारी का आदेश दिया

जिनकी सख्या करीब एक हज़ार थी। जिन नताओ को गिरफ्तार किया गया उनम सवश्री क्यूची तोकुदा और सानज़ो नोसाका जसे व्यक्ति भी थे जिन्होने जापान कम्युनिस्ट पार्टी के इतिहास म द्वितीय विश्व युद्ध के बाद महत्वपूण भूमिका निभायी थी। मैं इस घटना की चर्चा इसलिए नही कर रहा हूँ कि उस समय इस घटना का अपन आप म कोई तात्विक मह व था बल्कि इसलिए कि इसस रूस व जापान के बीच सदा से चल आए अविश्वास की याद हो आती है। सन् 1917 की क्राति के बाद रूस न साम्यवाद को अपना लिया था। उसकी नयी विचारधारा का विस्तार अनक दशो के लिए खतरे का विषय था और इन देशो मे जापान भी शामिल था।

यह बात भी काफी रोचक है कि प्रधानमत्री गिच्चि तनाका, जिन्होन चुनाव क बाद कम्युनिस्ट नेताओ को हिरासत म लिए जाने का निणय किया था, स्वय एक अवकाश प्राप्त सनिक जनरल थे। उन्होन साइबीरिया युद्ध का सचालन किया था जिसम रूस की पराजय हुई थी। वे तोक्कुमुकिक्कान के भी सस्थापक थे जो सना की वह शाखा है जो गुप्तचरी की गतिविधियाँ करती है। उन परिस्थितियो म यह बात आश्चयजनक न थी कि सरकार वामपथी विचारधारा के आविर्भाव की किसी भी सभावना को अकुर म ही दबा दना चाहती थी। आज भी सामा य सम्ब धो की स्थिति के बावजूद दुर्भाग्य की बात है कि रूस तथा जापान, राज-नीतिक तथा अ य अनेक विषयो पर सहमत नही है।

सनिक प्रशिक्षण समस्त जापानी छात्रो की शिक्षा का एक अभिन्न अग हुआ करता था कि तु एक विदेशी छात्र होने के नाते मुझ पर ऐसी कोई बदिश नही थी। मैने कभी भी कवायद या तत्सब धी किसी भी गतिविधि म भाग नही लिया। प्रत्यक शक्षिक सस्था म सनिक प्रशिक्षण विभाग हुआ करता था और उसका अध्यक्ष आम तौर पर कनल के दर्जे का सैनिक अधिकारी हुआ करता था। क्योता विश्वविद्याल्य के सनिक प्रशिक्षण विभाग के अध्यक्ष थे कर्नल तरादा। वस य सनिक अधिकारी शैक्षिक सस्था के अध्यक्ष के प्रशासनिक नियत्रण के अतगत माने जात थे, किंतु वास्तव म उनका व्यवहार एसा होता था कि वे केवल सनिक उच्च कमान के प्रति ही जिम्मेवार हैं। उनम स कुछ बिना वजह अपना रौब भी दिखाते थ और ख्रामखाह् अपने पद व शक्ति की शेखी झाडते थे। मरे अनक सहपाठी कनल तरादा के सबध मे भी एसी ही धारणा रखत थ। लेकिन कम-स-कम मैंने सनिक प्रशिक्षण म शामिल न होने के नात ही सही, सदा उ ह बडा हँसमुख और मित्र जसा पाया। हम लोग आपस म प्राय बडा खाभकर वाद विवाद किया करत थे, इस प्रकार के वार्तालाप म मरा मुख्य विषय हुआ करता था भारत की पीडा-यातना जो एक विदशी सत्ता के अधीन हान के कारण उसको भुगतनी पड रही थी।

के लिए रासविहारी द्वारा किये जानेवाले काय म उनका अनुसरण करने की मेरी इच्छा धीरे धीरे बलवती होती गयी।

विश्वविद्यालय मे मेरे द्वितीय वष से लेकर मेरे अध्ययन काल की समाप्ति तक मैं ऐसी किसी भी सभा मे अनुपस्थित न रहा जहाँ एशियाई या भारतीय मामलो पर विचार विमश हुआ हो। इन अवसरो पर कालिज के सहपाठियो के अलावा अध्यापको के साथ भी मत्री बढान की सुविधा मिलती थी। इतना ही नहीं बल्कि इसकी वजह स मुझे अनेक ऐस जापानी सगठना के सपक म आने का अवसर भी सुलभ हुआ जो स्वय अपनी राष्ट्रवादी नीति को आगे बढान मे सलग्न थे। जिस किसी व्यक्ति न कभी स्वतत्रता अभियान म भाग लिया हो वह जानता है कि देश भक्ति का जन्म चाहे कही भी हुआ हो उसके प्रभाव की लगातार वद्धि होती जाती है। इन घटनाओ मे वातावरण का प्रभाव अनिवायत सशक्त होता है। जितना अधिक मुझे जापानियो की राष्ट्रवादी भावना का परिचय मिला, भारत को स्वतत्रता दिलाने के अपने लक्ष्य को आग बढान म मुझे उतनी ही अधिक प्रेरणा मिली। अनक भारतीय देशप्रेमी थ जो विदेश म रहत हुए भी अपने देश को मुक्ति दिलाने की दिशा म कायरत थे। मने जापानी हल्को म अपने प्रचार काय को इसी लक्ष्य की दिशा म अपना योगदान माना।

योवा (सन 1931) काल के छठे वष स जब मै विश्वविद्यालय म ततीय वष का छात्र था, एशियाई मामलो के अध्ययन म सलग्न विभिन्न सस्थाओ की सभाओ म भाषण करने के मुझे अधिकाधिक निमत्रण प्राप्त होन लगे। इन अवसरो का लाभ उठान के लिए मैं अपन देश तथा विदेशो म होनवाली घटनाओ की जानकारी पाने का यथासभव प्रयास करता रहा और रासविहारी बोस स भी मिलता रहा जिनके माध्यम स मुझे अमूल्य सूचना सामग्री और मागदशन प्राप्त होता रहा। विश्वविद्यालय के भीतर वहा के अनुशासन को भग न किया जाय इस उद्देश्य से मुझे अपना ब्रिटेन विरोधी प्रचार काफी दब-छिपकर करना होता था। कितु जब कभी मुझे बाहर कोई अवसर मिलता मैं अपना अभियान अपेक्षतया अधिक जोर से चलाता था। इन अवसरो स सम्बद्ध स्थान थे सनिक सस्थाएँ।

मेरे कालिज जीवन के दौरान जापान म विश्वविद्यालय म या अन्य कही भी जाति सबधी या अन्य किसी प्रकार का भेद भाव न था। फिर भी कोरियाइयो के बीच चाहे वे छात्र तबके म हो या अन्य कही के एक प्रकार की मनोवज्ञानिक अवरुद्धता स्पष्ट लक्षित होती थी। यह स्थिति कोरिया के जापान के अधीन होने का ही परिणाम थी और मानव प्रकृति के अनुरूप ही दोनो ही पक्षो द्वारा ऐसी भावना-ग्रंथि का परिचय दिया जाता था जो ऐसी परिस्थितियो म स्वाभाविक होती हैं। कोरियाई छात्र समुदाय मे मेरे अनेक घनिष्ठ मित्र थे जिनमे से कुछ अति मेधावी

थे। उनम एक प्रकार की बेचैनी व्याप्त रहती थी और उनमे से कुछ मुझे जापान और कोरिया के सबधो के विषय मे कुछ भी बोलन से सावधान किया करत थे। उनकी चिता समझ पाना मुश्किल नही था। मैं पहले ही ऐसी नीति अपनान की चर्चा कर चुका हूँ कि जापानी श्रोताओ के सम्मुख' 'उपनिवेशवाद' शब्द का उपयोग कतई नही किया जाना चाहिए। सावधानी' सदा ही दिलेरी' स बाजी ले जाती है।

मरे विश्वविद्यालय काल की ही एक अय स्मृति एक जापानी व्यापारी कम्पनी से सम्बद्ध है जिसके साथ मेरा एक असाधारण परिस्थिति म सम्पक हुआ था।

एक निर्धारित प्रबध व्यवस्था के अनुसार क्योतो म अपने खच के लिए मैं प्रति मास अपन घर स बीस डालर की रकम मँगवा सकता था। यह राशि सत्तर यन प्रतिमास के बराबर हुआ करती थी जो मेरे लिए जरूरत से ज्यादा थी। कुछ कारणो स प्रेषित रकम मुझ तक पहुँचन मे कई बार विलम्ब हो जाता और उसके पहुँचने तक मेरे मित्र मेरी सहायता किया करत थ। उस समय छात्रो का ऐसी कोई सुविधा प्राप्त न थी कि वे अपने वित्तीय साधना को कुछ अल्प कालिक काय करके थोडा समद्ध बना सके। इसलिए मुझे यह बात सूझी कि किसी प्रकार का व्यापार करके आकस्मिक स्थिति के लिए कुछ धन जमा करके रखा जाय। मेर भाई नारायण नायर तिरुवनन्तपुरम मे मत्स्य विभाग के निदेशक थे और उनकी यह निश्चित धारणा थी कि भारतीय त्रिपग यानी भारत के समुद्री घोघे बहुत बढिया स्तर के होते है। इसलिए उनका विचार था कि जापानी मडी मे उनका प्रवेश कराया जाना चाहिए। उहोने मुझे नमूने के तौर पर कुछ माल भेजा और मैंने उनकी बिक्री करान की सानद स्वीकृति भी दी। कोबे की प्रथम श्रेणी की एक कपनी को मैंने वह नमूना दिखाया और उस वह किस्म बहुत पसद आयी और कपनी ने उचित दाम पर काफी बडी मात्रा मे समुद्री घोघे की माँग की।

माग के अनुसार मैंने तिरुविताकूर स कई टन घाघा आयात किया। किन्तु वह कपनी पूव निर्धारित दाम देने स मुकर गयी और निर्धारित मूल्य का काई दसवाँ भाग ही देने को राजी हुई। मुझे विश्वस्त सूत्रो स ज्ञात हुआ कि कपनी ने ऐसा इसलिए किया कि उसके विचार म मैं केवल एक छात्र भर था और इसलिए व्यापारिक सौदो के सदभ मे अनुभवहीन इसलिए आसानी से मुझस फायदा उठाया जा सकता था। युवावस्था की झाक म मैंने इस घटना को अपनी राष्ट्रीय भावना तथा आत्मसम्मान के प्रति अपमान माना और क्रोधवश सारा माल समुद्र म फेंक दिया जिससे काफी हानि हुई। मैंने अपन भाई को इस बात की सूचना दी। उह इससे कोई प्रसन्नता तो शायद नही हुई होगी किन्तु मुझे

कोई खेद न था क्याकि मरी दलील यह थी कि चूकि मैंने कभी अपना वचन भग नही किया था, अत किसी को मेरे साथ ऐसा व्यवहार करने का कोई हक नही।

मेरे सभी मित्रो न जिह मैंने यह कहानी सुनाई, मरी कारवाई की प्रशसा की और एक मत से कहा कि अपने सिद्धान्त पर अडिग रहकर मैने ठीक ही किया भले ही ऐसा करन पर मुझे वित्तीय हानि उठानी पडी हो। इस घटना स मुझे मानव मनोविज्ञान को समझने का भी एक अवसर मिला। एस व्यक्ति समाज मे हमेशा रहत हैं जो नाजायज लाभ उठाना चाहते है किन्तु परिणाम की चिंता किये बिना ऐसे लोगो का सामना करने को तैयार रहना चाहिए। जिस कपनी ने मुझे धोखा दिया था उसन अत म मुझस क्षमायाचना की। किन्तु पानी सिर के ऊपर से गुजर चुका था।

मोटे तौर पर कहूँ तो क्यातो विश्वविद्यालय के जीवन की मेरी स्मृतियाँ आज भी ताजी है और बडी सुखद है। आज भी मुझे यही लगता है कि सौभाग्यवश ही इस महान सस्था का छात्र बनन का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ। आरभ म, मुझे महान डॉक्टर साकाकिवारा, भद्र तगुचि-दम्पति और अय अध्यापका की निजी देख-रेख का पात्र होने का सौभाग्य मिला। अपने छात्र काल के अतिम दिनों म मुझे सेना विभाग के सम्मानित कमाडर जनरल यामामोतो का घनिष्ठ मित्र बनने का सुअवसर मिला। उनके माध्यम से जापानी कमठ समाज के एक बडे भाग म मैं ब्रिटिश शासन के अधीन भारत की दुरावस्था के प्रति चेतना जगा सका और इसके परिणाम म भारत की स्वतत्रता प्राप्ति के सघष के लिए उनकी सहानुभूति प्राप्त कर सका। जनरल यामामातो के साथ अपनी मित्रता के कारण, जो मुझे लगभग अपने भाई का-सा स्नेह देते थे, मैं सेना की युवा श्रेणी से नतिक बल प्राप्त कर सका था। मुझे अत्यधिक प्रसन्नता तब हुई जब जनरल यामामातो ने बल देकर कहा, जैसा कि वे सदा कहते थ, कि जिन सभाओ मे उह बोलने के लिए आमत्रित किया जाता था उनमे मैं उनके साथ ही बैठू।

पोवा काल के सातवें वष मे (सन 1932 म) मैंने क्योतो विश्वविद्यालय से सिविल इजीनियरी म स्नातक की उपाधि प्राप्त की। चूकि अपने अध्ययन की पूणता के लिए व्यावहारिक अनुभव वाछनीय था इसलिए मैंने कुरिमोतो एण्ड कपनी नामक ओसाका की एक इजीनियरी कपनी मे काम करना आरभ किया। मैंने वहाँ लगभग एक वष तक काम किया और फिर अपने जीवन के एक अय प्रमुख मोड पर आ खडा हुआ।

12

एक और मोड

विश्वविद्यालय छोडने के बाद छात्र जीवन के बधनो म मेरा राजनीतिक जीवन अधिकाधिक मुक्त होता गया। मैं अपेक्षतया अधिक स्वतत्रतापूर्वक महत्वपूर्ण बातो पर अपना मत साहसपूर्वक प्रकट कर सकता था। व्यवसाय तथा जन क्षेत्रो म मेरे जापानी मित्रो की सख्या बहुत बडी हो गयी थी। ब्रिटेन विरोधी प्रोपेगडा और प्रचार-काय अब पहले से तेज हो गया था। मैं अपेक्षतया अधिक सख्या म लागो स मिलता, पहले की अपेक्षा अधिक सभाओ म भाषण करता और विभिन्न जापानी पत्रिकाओ म भारत सबधी लेख आदि लिखता। ऐसी पत्रिकाओ म से एक थी 'आयन' जो ओसाका म विदेशी भाषा विश्वविद्यालय के हिंदुस्तानी विभाग द्वारा प्रकाशित की जाती थी। भारत के स्वतत्रता अभियान के लिए जापानी मत परिवतन करन के प्रयासो मे मैंने यथासभव समूचे जापान की यात्रा की।

सन 1932 33 के दौरान आम सभाओ म दिय गये अपन भाषणो की याद मुझे बार-बार हो आती है। मेरी नौकरी एक जिम्मेवार इजीनियर की थी। लेकिन वह अभी इतनी नई थी कि मन माचा कि अभी कुछ समय तक तो मैं कम स-कम एक प्रशिक्षार्थी या ऐसा ही कुछ दिखाई दू। इसलिए आम सभाओ म भाषण क समय मै छात्र का-सी यूनीफाम पहन लेता था। मन की यह सहज भावना थी कि कपनी कमचारी जसा दिखने के बजाय मैं यदि एक छात्र दिखाई दू तो श्रोताओं की अधिक सहानुभूति जगा पाऊँगा। इसका परिणाम अच्छा ही होता था। श्रोतागण आमतौर पर एक छात्र क दुस्साहस पर अचरज व्यक्त करत थ। मैं भारत पर ब्रिटेन के अत्याचारो पर खुलकर वाक प्रहार किया करता था। उनम से कुछ विशिष्ट जापानी अदाज मे कहते ये 'ये है एक सच्चा पुरुष'। कहने की आवश्यकता नही कि मझ ऐसी बातें सुनकर बडी खुशी और कुछ हद तक गव भी होता था। किन्तु घमण्ड मुझे कभी नही हुआ।

मेरे विचार म मेरे विश्वविद्यालय काल म आत्मसयम और विनम्रता की

जापानी परपरा का मुझ पर इतना असर हो चुका था कि मैं स्वय को आत्मश्लाघा या डीग हाकने से बचाये रख सकता था। मेरे लिए अपना कर्तव्य निभाना महत्व की बात थी। किन्तु उसकी शेखी बघारना म बिलकुल अशोभनीय मानता था। अब भी सोचता हूँ कि मैंने सही रुख अपनाया था। मेरे और जापानी लोगो के बीच की उन दिनो की महत्वपूर्ण मैत्री चिरस्थायी हुई और समय की कसौटी पर आज भी खरी उतर रही है। उस समय के महान शितो पुजारियो म से एक सागिय' के साथ अपने निकट सपर्क की स्मृति आज भी मुझे विशेष आनन्द देती है। वे सम्राट द्वारा विशेष सम्मानित व्यक्ति थे। शितो धर्म का जोकि शाही परिवार का धर्म था, राजनीतिक जीवन पर सशक्त प्रभाव था। महामान्य सागिय और मुझे कई बार सभाओ म बोलने के लिए एक साथ बुलाया जाता था और हम दोनो नगनो शिमा के एक ही मच से, जहाँ वे निवास करते थे भाषण किया करते थे।

भारत म राष्ट्रीय मोर्चे की घटनाएँ जोर पकड रही थी। मैं पहले सन् 1928 म प्रस्तावित सविधान सबधी सुधारो के खिलाफ साइमन आयोग के बहिष्कार सम्बन्धी राष्ट्रवादियो के निर्णय की चर्चा कर चुका हूँ। यह आयोग बिना किसी उल्लेखनीय सफलता के प्रयास करता रहा। सन 1931 को काग्रेस ने ब्रिटेन द्वारा प्रदत्त नियत्रित प्रान्तीय तथा केन्द्रीय विधि-व्यवस्था के राष्ट्रव्यापी बायकाट की भी माँग प्रस्तुत की थी। साथ ही, नागरिक नियम-अवज्ञा का कार्यक्रम भी चलाया गया था जिसके तहत गाधीजी व अन्य नेताओ को बदी बनाया गया था। किन्तु वायसराय लार्ड इर्विन ने शीघ्र ही यह समझ लिया कि दमन से भारत म ब्रिटेन के लिए स्थिति बेहतर नही होगी। अत बदियो को शीघ्र ही रिहा कर दिया गया। लदन मे एक गोल मेज कान्फ्रेन्स म सवैधानिक सुधारो के प्रश्न पर गाधीजी और इर्विन के बीच एक समझौता हुआ। उस कान्फ्रेन्स का परिणाम आने तक काग्रेस ने ब्रिटेन द्वारा स्थापित कानूनो की अवज्ञा का कार्यक्रम स्थगित रखा।

किन्तु गोल मेज कान्फ्रेन्स सफल नही हुई। ब्रिटेन ने गाधीजी की पूर्ण स्वतत्रता की माँग ठुकरा दी। भारत की राष्ट्रीय भावना पुन प्रज्ज्वलित हो उठी और उसके उत्तर म ब्रिटिश अधिकारियो का दमन चक्र पुन चालू हुआ और काग्रेसी नेता एक बार फिर जेल म डाल दिए गये। लदन स्थित भारत लीग' ने एक प्रतिनिधिमण्डल भारत भेजा जिसमे बूट रस्सल शामिल थे जिन्होने स्थिति का जायजा लेने के बाद एक ज्वालामुखी के समान वक्तव्य दिया कि ' जर्मनी म नाजियो के कुकर्मों के प्रति सबकी दिलचस्पी दिखाई जा रही है किंतु इग्लैण्ड म बहुत कम लोग शायद यह जानते होंगे कि वैसे ही भयकर काले कारनामे भारत म ब्रिटिश सरकार और उसके भक्तो द्वारा किये जा रहे है"।

भारत की दुखमय स्थिति का प्रचार करने के लिए मेरे पास बहुत-सी सामग्री

थी और जापानी जनता की ओर स काफी सहानुभूतिपूर्ण प्रतिक्रिया आ रही थी। एक बार अपनी वार्ता के दौरान अपने श्रोताओ को मैंने अंग्रेजी पत्रिका के एक लेख का साराश सुनाया। उसमे कहा गया था कि ब्रिटिश की कृषि उत्पादन क्षमता केवल इतनी थी कि वहा के लोगो को एक वष मे केवल इक्तालीस दिन ही खिला सकती थी। वष के बाकी दिनो के लिए उन्ह अपन उपनिवशो से विशेषकर भारत से खाद्य का आयात करने पर बाध्य होना पडता था और य आयात उत्पादको को काफी नुकसान पहुँचाकर ही किया जाता था। उधर स्वय भारतीय गेहूँ या चावल के अभाव म भूखे मर रहे थे। अंग्रेज परिवार भारत स एँठी गयी आय के बल पर अपन बागो म गुलाब के फूल उगा रह थ। इतना ही नही, भारत म ब्रिटिश शासन बदूक का शासन था। शानो शौकत और एयाशी म डूबे कोई डेढ हजार अंग्रेज, सेना और पुलिस के माध्यम स दमन और आतक का चक्र चलाकर भूख से पीडित करोडो भारतीयो पर नियत्रण रखे हुए थ। य शासक पुलिस तथा सना को भी अपना गुलाम ही समझत थ।

इस बीच चीन व जापान के बीच के सबध तेजी से बिगड रहे थे। चीनियो और कोरियाइयो के बीच (जोकि जापानियो द्वारा सरक्षित लोग थ) भूमि को पट्टे पर दिए जाने को लेकर झगडे होने लग थे। चीन ने एक बार फिर जापान के विरोध मे बहिष्कार की नीति अपना ली थी और जुलाई, 1931 म चीन की गुप्त यात्रा करने वाल जापानी सना के एक कप्तान शिनतारो नकामुरा की कुछ चीनी सनिको द्वारा हत्या कर दिये जाने के बाद तो जापान के साथ चीन के सबध और बिगड गये। वष का अत होत होते 18 सितम्बर, 1931 को मुकदेन घटना के परिणाम म तो सकट की-सी स्थिति उत्पन्न हो चुकी थी। दक्षिण मचूरियाई रेलवे लाइन पर एक बम विस्फोट हुआ और जापानी सनिको ने (जिनके बारे मे कहा जा रहा था कि उन्होने स्वय ही यह विस्फोट करवाया था) इस बहाने से, कि यह घटना उनकी सुरक्षा व्यवस्था की जडें खोदने के लिए हुई थी, तत्काल चीनी सेना के विरुद्ध कारवाई आरभ कर दी। उसके बाद ही पट्टे पर लिये गये क्वानतुग क्षेत्र की जापानी सेना ने जापानी प्रधानमत्री वकातसुकी की तोक्यो स्थित मिनसेइतो सरकार से अनुमति प्राप्त किये बिना मचूरिया के विभिन्न महत्वपूर्ण स्थानो पर कब्जा कर लिया।

इस पुस्तक म उक्त उल्लेख का मेरा उद्देश्य यह हरगिज नही है कि मचूरिया म जापानी सेना की गतिविधियो की अच्छाई-बुराई की व्याख्या करूँ। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि मचूरिया के सन्दभ म जापान की युद्धकारिता की पृष्ठभूमि म सनिक शक्ति को प्रोत्साहित करने की नीति के समथको की प्रेरणा उक्त आक्रमण के लिए काफी हद तक जिम्मेदार थी। 1931 म स्थापित प्रसिद्ध 'चेरी सोसाइटी', जिसके सदस्य मुख्यत सनिक अधिकारी थे, राजनीतिक पार्टियो द्वारा

जाइवत्सु (बृहद उद्योग सगठन) और नागरिक नौकरशाही आदि पर लोगा की बदहाली की, जो सन 1929 की विश्वव्यापी मदी के कारण और भी खराब हा गयी थी जिम्मेदारी का आरोप लगाया जा रहा था। सन् 1926 की मदी और सन 1923 म घटित अभूतपूव भूकप से सारा देश लगभग अकाल क चगुल मे फँस गया था। यह दु स्थिति और बहुत बडी जनसख्या, इन दोना वातो ने मिलकर आम लोगो क बीच अत्यधिक उग्र असतोष को ज म दिया था और सै यवादी पक्ष अपना मतलब साधन के लिए इसका पूरा-पूरा लाभ उठा रहा था।

विदेशा के साथ सबधो के स दभ म सन् 1921-22 के वाशिंगटन सम्मेलन और सन 1930 के लन्दन नौसेना सम्मेलन की रूपरेखाओ को नापसद किया जा रहा था और उन दानो को जापान के प्रति पक्षपातपूण माना जा रहा था। अमरीका की आप्रवास नीति के प्रति भी सशक्त विरोध प्रकट किया जा रहा था जा जापान के स दभ म अति पक्षपातपूण थी। कुल मिलाकर, धीरे धीर जापानिया के बीच यह भावना बलवती होती जा रही थी कि वे हालाँकि प्रगति के सिलसिले मे पाश्चात्य देशो से किसी भी तरह पीछे न थे तो भी जाति-विषयक पूर्वाग्रह के कारण उनके साथ पक्षपातपूण व्यवहार किया जा रहा था। इसमे कोई स देह नही है कि *मचूरिया म जापानियो द्वारा की गई कारवाई पूवनियोजित थी और उस* कारवाई म जापान की विस्तारवादी नीति प्रतिबिंबित होती थी जो सन् 1920 के दशक के अ त म जापान ने स्पष्टतया अपनाली थी। लेकिन सेना के प्रचारतत्र न लोगो म य विश्वास भर दिया कि अतिरिक्त क्षेत्र पर कब्जा करने की आका क्षाओ की दिशा म जापान की पाश्चात्य देशो से तुलना की जाये तो जापान कोई गलत काम नही कर रहा था। जो मियाँ खुद फजीहत मे हो वह औरो को क्या नसीहत दे सकेंग ?

ओसाका स्थित कपनी मे लगभग एक वष तक काम करन के बाद मरी भारत लौटने की योजना थी किन्तु इस अवधि के समाप्त होते-न-होत मुझे केरल म अपने घर से और अन्य सूत्रा से सूचना मिली कि मेरी ब्रिटेन विरोधी प्रत्येक कारवाई की सूचना जापान स्थित ब्रिटिश गुप्तचर सस्था द्वारा तुरन्त पहुँचा दी *जाती है और भारत म कदम रखत ही मुझे गिरफ्तार कर लिये जाने का* पूरा खतरा है। मैंन पहले भी चर्चा की है कि मेरे और मरे परिवार के बीच का पत्राचार सेंसर किया जाता था। अपने एक पत्र म मेरे भाई नारायणन नायर न मुझे बताया था कि मेरे पत्र उन्हे डाकिये स नही पुलिस के सिपाहिया स प्राप्त होते हैं।

यह स्थिति कतई आरामदेह न थी। सौभाग्यवश, मेरे भाइया की सगत अधिकारियो के बीच इतनी निजी थी कि व अधिकारी अनौपचारिक रूप स समय रहते सूचना दे दिया करत थे कि तिरुवनन्तपुरम के दीवान का नई दिल्ली

के राजनीति विभाग स आदश मिला है और मुझे पगान व उद्देश्य स सुराग खोजन के लिए हमारे घर की तलाशी भी ली जानवाली है। एक बार तिरुवनन्तपुरम म तथा नय्याटिटकरा म भी मर समस्त परिजनो क घरो की तलाशी की तारीख निश्चित की गयी। पुलिस अधिकारियो म ही गुप्त रूप स पूव सूचना मिल जाने के कारण मरे भाइयो न चुपचाप पत्र, फ़ोटोचित्र या अय एसी सामग्री को छिपा दिया जिसस कि पुलिस को यह रिपोट दन म कोई परशानी न हो कि उस कुछ नही मिला। वास्तव म मरा एक फोटोचित्र एक कमर म था, जिसकी तलाशी ली गयी थी। उस एक आईन के पीछे रख दिया गया। पुलिस अधिकारी न आईन म तो झाँका किन्तु उसके पीछे न दखा। मर भाई प्रत्यक्षत उस भल पुलिस अधिकारी क साथ शरारत कर रह थ। मनोविज्ञान क विशषज्ञ की भाँति उन्होंने सही अनुमान लगाया था कि आईना दखनवाला व्यक्ति सामान्यत उस सामन ही से दखगा।

अपनी कहानी क इस चरण म मुझे खद क साथ कहना पड रहा है कि दिसम्बर, 1939 म जब मरी माता का देहान्त हुआ तब तत्कालीन दीवान सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर न मेरे भाइयो कुमारन नायर और नारायणन नायर को य परामश दिया बताया जाता है कि उन्ह और मरे अय सभी सम्बधियो को मरे साथ नाता तोड लेना चाहिए। मेरे कुटुम्ब के विभाजन क पश्चात नेय्या टिटकरा म मेरे नाम पर मेरी कुछ अचल सम्पत्ति थी और जब मरी माता का देहान्त हुआ तो उनकी सम्पत्ति का कुछ अश भी मुझे प्राप्त हुआ। यदि मुझे मृत घोषित कर दिया जाता तो वह समस्त सम्पत्ति मरे परिवार के बच रह सदस्यो को मिल जाती। मेरे परिवार के कुछ सदस्यो ने जिनकी गवाही प्रत्यक्षत अधिकारी गणो को स्वीकाय थी लिखित रूप स यह घोषणा कर दी कि मेरी मृत्यु हो चुकी है और इसी घोषणा के अनुरूप भारत म अपने कुटुम्ब तथा माता से प्राप्त होन वाली मेरी समस्त सम्पत्ति मेरे सबधियो म बाँट दी गयी।

मुझे यह मानन म कठिनाई होती है कि सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर जसे व्यक्ति न जिन्ह एक श्रेष्ठ प्रशासक होन की ख्याति प्राप्त है ऐसी सलाह दी होगी। यदि वास्तव म उन्होंने ऐसा कहा था तो मैं नही समझता इसका कारण क्या था। अगर मैं चाहता तो इस मामले की तह तक जा सकता था और अप राधियो के विरुद्ध दण्डात्मक कारवाई कर सकता था लेकिन आज तक मैंने इस दिशा मे कोई कदम नही उठाया है। हाँ ये जानकर सदमा जरूर पहुँचा था कि स्वय मरे परिवार म ऐस लोग भी थे जो ऐसी नीच हरकत कर सकत थे। मानव स्वभाव को समझ पाना कभी-कभी बडा कठिन हो जाता है।

सन् 1931 के अन्त तक लगभग समस्त मचूरिया जापान के नियत्रण म आ गया था। विश्व म आम तौर पर जापान के विरुद्ध प्रतिक्रिया जा रही

थी। भारत के राष्ट्रवादी नेता भी जापानी कारवाई की आलोचना कर रहे थे, जोकि स्वाभाविक ही था, क्योकि वे भारत म ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध सघप कर रहे थ और अय किसी स्थान पर साम्राज्यवाद या विस्तारवाद के चिह्नो से घृणा करत थे। लेकिन क्वानतुग सेना किसी भी आलाचना के प्रति वेपरवाह थी। सेना ने निणय किया कि मचूरिया को चीन से अलग एक राज्य बनाया जाये।

चिग राजवश के हेनरी पू ई, जिह सन् 1912 म अपदस्थ कर दिया गया था, तियनसिन म रह रह थे। क्वानतुग सना के कमाण्डर जनरल पिगेरु होजो के आदेश पर कनल सपिरो इतागाकी वहा गय और पू ई को मचूरिया म चागचुन (जिस बाद म सिकिग यानी नई राजधानी) ले जान म सफल हुए। विजित क्षेत्र को 1 माच 1932 का मचुको नाम से एक नव राज्य घोषित कर दिया गया। पू ई को वहा का रीजेंट बना दिया गया। 1 माच 1934 को उह सम्राट की पदवी से सुशोभित किया गया और मचुको गणराज्य को एक राजतत्र म परिवर्तित कर दिया गया।

निश्चय ही इन घटनाओ न अमरीका व अय पश्चिमी देशा के नताओ के लिए परेशानी उत्पन्न की। किन्तु अमरीका ने अनजानी करने की नीति अपनाई और कोई कारवाई नही की। चीन म अति प्रचण्ड प्रदशन हुए और शघाई म रहने वाले जापानी समुदाय के लिए जिसकी सख्या कोई तीस हजार थी जान व माल का खतरा उत्पन्न हा गया। तत्कालीन मत्री मामोर शिगमित्सू के अनुरोध पर तोक्यो मे मौजूद युद्ध मत्री योपिनोरी पिराकावा न एडमिरल किच्चिसाबुरो नोमुरा के नेतत्व म सना की तीन टुकडिया और एक नौ सनिक वेडा शघाई भेजा। कई दिन घनघोर युद्ध के बाद जापानी सेना ने चीनी सना को शघाई के बाहर खदेड दिया।

जापानियो ने अपनी समझ म एक चीनी विमान मार गिराया किन्तु बाद म पता चला कि वह एक अमरीकी विमान था जिस पर चीनी झडा बना था और उसका चालक भी अमरीकी था। जब यह समाचार प्रकाशित हुआ तब मैं क्योतो विश्वविद्यालय क निकट तनाका नामक स्थान पर एक अमरीकी प्रसबिटीरियन धम प्रचारक श्री फ्रकलिन के घर म वठा था। श्री फ्रैंकलिन जोकि शातिवादी थे आश्चयचकित रह गय और उन्होने कहा कि ये पहला अवसर है जब कि एक एशियाई दश न विमान मार गिराया था। मैंने उत्तर दिया कि कदाचित यह भी प्रथम अवसर हो या जबकि एक अमरीकी एशियाइया की आँखा म धूल झाकत हुए मारा गया था और भविष्य म जब कभी भी ऐसी धोखाधडी की घटना होगी परिणाम यही होगा। श्री फ्रकलिन ने टिप्पणी की कि अमरीकी सरकार का इसम कोई हाथ न था और अमरीकी पाइलट मात्र एक स्वयसेवक था। मैंन यह कहकर

वार्तालाप समाप्त कर दिया कि युद्ध की स्थिति मे कितने ही बहाने ढूढे जा सकते हैं और कुछ भी हो सकता है।

इसी बीच 10 दिसम्बर 1931 को लीग ऑफ नशन्स न मचुको घटना की जाच के लिए एक आयोग की नियुक्ति की जिसके अध्यक्ष ग्रेट ब्रिटन के एल आफ लिटन थे और इटली, फ्रास, अमरीका और जमनी इन सभी देशा का एक एक प्रतिनिधि इस आयाग का सदस्य था। जापान सरकार ने इस आयोग की सुविधा के लिए आवश्यक प्रबन्ध कर दिया ताकि वे अपनी जिम्मेवारी निभा सकें। लेकिन, जापान म बडी मात्रा म दक्षिण पथी तत्व विद्यमान जो लिटन आयोग की नियुक्ति की आलोचना कर रहा था। इन विरोधी तत्वा के प्रमुख नेताओ म थे—जिम्मू काय के सदस्य डॉ० पूम ओकवा जो एक प्रसिद्ध उग्र राष्ट्रवादी थे और कहा जाता था कि 15 मई को घटित दुघटना की योजना उन्हाने बनाई थी जिसम प्रधानमत्री त्सुयाशी इनुकाई की हत्या की गयी थी।

तत्कालीन जापानी राजनीति की एक उल्लेखनीय बात यह थी कि बहुत स उग्रवादी दक्षिण पथी राष्ट्रवादी व्यक्ति थे जो सम्राट क दैवत्व की विचारधारा को बनाए रखन और जापान की सनिक शक्ति को बरकरार रखन के लिए कृत सकल्प थे और जिन्ह खतरनाक माना जाता था। वे अति विद्वान थे और निजी न्यायनिष्ठा के स्वामी थे। जिम्मु-काई (तीव्र राष्ट्रवादी सघ) के सदस्य पूम आकवा को जिनसे मैं भली भाति परिचित था और व भी मुझे पसन्द करते थे तोक्यो विश्वविद्यालय से दो डाक्टर की उपाधियाँ प्राप्त थी, एक दशन शास्त्र मे (जिसमे भारतीय दशन भी शामिल था) और दूसरी राजनीति शास्त्र मे। वे भारत के मित्र थे तथा भारत के स्वतन्त्रता अभियान म रासबिहारी बोस के सहकर्मी थे और इसी सदभ म उनके साथ मेरा सम्पक घनिष्ठ हुआ।

मित्सुर तोयामा, जिन्होने सन 1891 म गेयोपा की स्थापना की थी, और रियाची उचिदा के साथ जिन्हाने 1901 म कोक्कुर्यूकाई (यानी काला अजगर सोसाइटी) की स्थापना की थी, मेरी आत्मीयता के भी ऐसे ही कारण थे। जापान म युयुत्स प्रवृत्ति के वे दोनो सर्वाधिक शक्तिशाली नेता थे। इनके अलावा अन्य बहुत से लोग भी थे जो इसी लक्ष्य के लिए गठित सस्थाओ का नेतृत्व कर रहे थे। ब्रिटन का विरोध उन सभी सस्थाओ के बीच सबध की सशक्त कडी थी और कदाचित मैं उस समान भावना का भारतीय स्वतन्त्रता अभियान के लिए लाभ उठा सकता था इसलिए मैं उन सब के साथ सम्पक रखता था।

मचुको घटना की जाच के लिए लिटन आयोग की नियुक्ति उन अवसरो म से एक थी जबकि दक्षिण पथी सस्थाओ के कणधार मित्सुरु तोयामा और पूमे आकावा आदि ने लीग आफ नेशन्स म पश्चिमी शक्तियो के विरुद्ध एक अभियान छेड दिया था। उन्हाने एशिया म जापान क मामलो मे हस्तक्षप का आरोप उन

पर लगाया जोकि अधिकाशत उपनिवेशवादी थ और जिन्हे जाँच आदि करने का कोई अधिकार न था। उनकी विचारधारा से कदाचित कम ही लोग सहमत रहे होगे।

पूम ओकावा द्वारा सचालित लिटन आयोग विरोधी अभियान 1931-32 तक क्योतो मे परिलक्षित पश्चिम विरोधी भावनाओ का सर्वाधिक उग्र प्रदशन था। मैंने इस आयोग के विरुद्ध प्रदशन मे भाग लिया और इन अभियानो को प्रोत्साहित करने के लिए बहुत सी सभाओ मे भाषण भी दिये। मेरे भाषणा म बल इस बात पर नही दिया जाता था कि जापान द्वारा मचूरिया की हार का समथन ध्वनित हो बल्कि मेरा आक्रमण आयोग मे प्रतिनिधित्व करनेवाले दशो के चयन की निरथकता पर हुआ करता था जो एक ऐसी समस्या के निपटारे का प्रयास कर रहे थे जिसका समाधान खोजना स्वय एशियाई देशो पर ही छोड दिया जाना चाहिए था। मैं इस बात पर बल देता था कि आयोग के अध्यक्ष लाड लिटन एक ऐसे देश से थे जो भारत को गुलाम बनाए हुए था। ऐसा व्यक्ति मचूरिया की समस्या के समाधान की खोज के लिए अनुपयुक्त था। मेरा विषय दशन, 'एशियाइया के लिए एशिया' बहुत सफल रहा, न केवल दक्षिण-पथी सस्थाआ के बीच बल्कि जापानी जन-समुदाय क अन्य क्षेत्रो म भी। हाँ, यह सही है कि मुझे हर समय ये विचार घेरे रहता कि ब्रिटिश गुप्तचर विभाग मे मेरी स्थिति बहुत तीव्र गति से नाजुक होती जा रही थी।

रासबिहारी बोस के अतिरिक्त, कुछेक प्रमुख भारतीय क्रातिकारियो ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद थोडी अवधि के लिए ही सही, जापान यात्रा की थी और भारतीय स्वतत्रता अभियान के लिए सराहनीय काम किया था। उनमे प्रमुख थे बरकतुल्लाह, लाजपतराय और राजा महेन्द्रप्रताप। मेरी बरकतुल्लाह तथा लाजपतराय स तो भेंट न हो सकी, लेकिन सन 1930 मे जब मैं क्योतो विश्व विद्यालय का छात्र रहा था, तब मैं राजा महेन्द्र प्रताप के सम्पक म आया।

महेन्द्र प्रताप को यह ख्याति प्राप्त थी कि वे ऐस प्रथम भारतीय थे जिन्होंने सन् 1915 म काबुल म स्वतत्र भारत की एक अस्थायी सरकार स्थापित करने का प्रयत्न किया था। वे शुरू शुरू के उन भारतीय देश प्रेमियो मे से थे जिन्होंने स्वदेश के बाहर रहते हुए भारत की स्वतत्रता के लिए सघष किया। प्रथम विश्व युद्ध के प्रारभिक काल मे वे यूरोप मे थे और बाद मे अफगानिस्तान चल गय जहाँ उन्हे सुरक्षा और अफगान नागरिकता भी प्रदान की गई थी। यह उनके लिए आस्था का ही विषय था कि जब कभी भी व जनता के बीच उपस्थित हुए तो वे बलपूवक कहा करते थे कि वे एक अफगान नागरिक थ। इसका उद्देश्य यही था कि ब्रिटिश सरकार की कुदृष्टि से उन्हे बचाये रखनेवाले दश के प्रति वे अपना आभार दर्शाते थे। क्योतो मे उनके साथ मेरी मुलाकात के आरभिक दिना म हमारे

बीच, मुख्यत भारतीय समस्याओ स सम्बद्ध अनक लबी बहस हुइ और इन बहसो का अन्य विषय था उनकी अपनी व्यापक यात्राएँ जिनके माध्यम स व बहुत स सूत्रो से लाभान्वित हुए थे और भारतीय स्वतत्रता अभियान के लिए समथन हासिल कर सके थे।

व कमाल के व्यक्ति थे और उनका सौम्य व्यक्तित्व शीघ्र ही लोगो का मन जीत लेता था और उनके बहुत स मित्र बन जात थ। उनका एक भूतपूव भारतीय राजकुमार होना प्राय सहायक होता था। ब्रिटेन के विरुद्ध लडन क लिए एक विश्व सना वल्कि एक एशियाई सेना एकत्र करने के उनके कायक्रम की व्यवहायता के सम्बध म मुझे गभीर सदह था, लेकिन लक्ष्य क प्रति महद्रप्रताप की ईमानदारी और दृढ विश्वास के साहस पर कोई सदेह नही कर सकता था। हालाँकि इष्ट सिद्धि क कारण उह अफगान नागरिकता स्वीकार करन पर बाध्य होना पडा था तो भी, हृदय स व एक सच्च भारतीय और सच्च दश प्रेमी थ। जापानी नताओ के बीच उनके अच्छ सबध थ और जापानी भाषा के ज्ञान क अभाव के बावजूद व भारतीय स्वतत्रता अभियान के लिए जापानियो की भावना जगाने के लिए वे यथाशक्ति प्रयास करत थ।

कानसाई क्षेत्र म लिटन कमीशन विरोधी अभियान के दौरान मरी उनस दूसरी बार भेट हुई। कुछ जापानी भारतीय मित्रो न ओसाका के नक्नोशिमा भवन म, (पश्चिम जापान म स्थित) जिसम सवाधिक बडी सख्या म दशक बठ सकत थे एक सभा का आयोजन किया था बडी सख्या म लाग एकत्र हुए थ, यहाँ तक कि मित्रो व परिचितो का ढूढ पाना भी कठिन था। लकिन मैं राजा महद्र प्रताप को आसानी से उस भीड म पहचान सका क्योंकि एक तो वे चद भारतीयो म स एक थ, दूसर उनकी प्रभावशाली काली दाढी आसानी स पहचानी जा सकती थी। मैं उस सभा म प्रमुख वक्ता था और सदा की भाँति मरी वार्ता का विषय था—ब्रिटिश शासको द्वारा भारत का शोषण। मरा विचार है कि मैं खूब बोला था। धारा प्रवाह जापानी भाषा बोलने की मरी दक्षता और श्रोतागणो की उत्साह-वधक प्रतिक्रिया के कारण मैं अपने विचारो को यथासभव अभिव्यक्ति द सका था। ब्रिटिश शासको के विरुद्ध घोर निंदा क लिए शब्द खोजने म मुझ कभी भी कठिनाई नहीं होती थी। निश्चय ही, ब्रिटिश गुप्तचर विभाग क लोग हमे देख रहे थे किन्तु मैंने उसकी बिलकुल परवाह नहीं की और न ही मैं रुका। जापानी नेताओ और मित्रो ने मुझे बधाई दी, राजा महेद्रप्रताप न भी। उसके बाद मेरा उनस बार-बार सम्पक होता रहा। हालाकि भारत को मुक्ति दिलान के लिए काय प्रणाली के सदभ म हम दोनो के मूल विचारो म भिन्नता थी तो भी आपसी मत्री का नाता हम दोनो के बीच कायम रहा।

मैंने अनुभव किया कि महेद्र प्रताप वास्तविकता से परे एक आदशवादी थ।

व एक भले आदमी थे और भारत को स्वतन्त्र देखने की उनकी आकांक्षा की इमानदारी में सन्देह की क़तई गुंजाइश न थी तो भी, व स्वप्नद्रष्टा थे और, जैसा कि बताया जाता है जवाहरलाल नेहरू ने एक बार उनके लिए टिप्पणी की थी, 'उनकी अभिरुचि हवाई किले बनाने म थी'। भारत को ब्रिटिश पजे स मुक्ति दिलाने की अपनी परिकल्पना के विषय म वे बलपूवक कहा करत थे कि यह काम स्वयसेवकों की एशियाई सेना की सहायता से सपन्न करना होगा। उनका विश्वास था कि जापान दक्षिण पूव एशिया चीन, मगोलिया और तिब्बत आदि की अपनी यात्राओं के दौरान वे ऐसी एक सेना का गठन कर लेंगे। इस योजना को लेकर मैं कभी भी उनसे सहमत न हो सका। मेरे विचार म सभावित बहुत सारी बाधाओं के बावजूद यही वाँछनीय था कि समस्त सभव सूत्रों से सहायता पाने पर भी भारतीयों को स्वय अपनी ही मानव शक्ति के बल पर अपनी लडाई लडनी होगी।

इस सन्दभ मे मुझे चीन व कोरिया के सहपाठियों और जापानी मित्रों के साथ की गयी अपनी कुछ अति स्पष्ट चर्चाओं की याद हो आती है। उनम से प्रत्येक के मन म भारत के प्रति मैत्री भावना और मेरे देश की दुदशा के प्रति सहानुभूति के अतिरिक्त अन्य कोई भाव न था। तो भी यह मेरी दृढ धारणा थी कि विदेशों म बसे भारतीयों द्वारा चाहे वे स्वय ऐसा करें या किसी अन्य राष्ट्र के नागरिकों के साथ मिलकर कर ब्रिटिश साम्राज्य शाही के विरुद्ध एक सशस्त्र युद्ध न केवल सिद्धान्त मे गलत था बल्कि व्यवहार्य भी नहीं था। वास्तव म मेरे जापानी सहपाठियों म स कुछ मुझे अपनी तत्कालीन सैनिक नीतियों पर काबू न पाने की स्थिति म स्वय जापान की आक्रमणकारी सभावनाओं के प्रति चेतावनी दिया करते थे। निश्चय ही भारत नहीं चाहता था कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद समाप्त हो और जापानी विस्तारवाद का शिकंजा उसे जकड ले। जब राजा महेन्द्रप्रताप एक एशियाई सेना की बात करते थे तो उनके मानस म उसकी कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं थी। तो भी, जैसाकि मैं पहले भी कह चुका हूँ उनकी देशभक्ति के लिए मैं उनका प्रशसक था।

13

मचुको मे

मचूरियाई घटना तथा लिटन कमीशन दोना ही एक अथ म सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था की परीक्षा के समान थे जिसका सरक्षण व परीक्षण 'लीग आफ नेशन्स' सस्था द्वारा किया जाना था। मचूरिया म जापान की कारवाई और मचुको का आविर्भाव निश्चय ही इस बात के द्योतक थे कि लीग आफ नशन्स' म बहुत ताक़त थी। नि सदेह कमीशन न बहुत काम किया हालाकि उसक कडे श्रम के परिणामो स भी लोग की प्रत्याशाएँ पूरी नही हुइ। जसाकि मैं पहले कह चुका हूँ, जापान म इसके विरुद्ध सघर्ष लगभग इसके सृजन क साथ ही आरम्भ हो गया था। यह कमीशन जापान आया और इसन तत्कालीन विदश मत्री कॅकिचो योषिसावा और युद्धमत्री सदावो अराकी के साथ बठका म भाग लिया, उसके बाद कमीशन पू ई के साथ और क्वानतुग सना के अध्यक्ष, जनरल्ल विगरु होंजो के साथ विचार विमर्श के लिए मचुको गया। कुछ समय के लिए वह कमीशन पीकिंग भी गया।

कमीशन की रिपोट की एक उल्लेखनीय बात यह थी कि इसकी क्वानतुग सना द्वारा मचूरिया तथा चीन पर आक्रमण किये जाने के कारण उसकी निंदा की गयी थी फिर भी यह स्वीकार किया गया था कि जापान को चर्चित क्षेत्र मे कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे। तो भी अतिम विश्लेषण म कमीशन ने चीन के अधिराज्य के बाहर एक स्वतत्र राज्य की भाँति मचुको को मान्यता दिलाने की सिफारिश नही की थी। जापान ने कमीशन की ऐसी खोज का विरोध किया और जब लीग ऑफ नेशन्स की सभा म रिपोट को पारित करने के सिलसिले म मतदान हुआ तो योसूके मत्सुवोका के नेतृत्व मे जापानी प्रतिनिधि-मडल ने सभा का त्याग किया। 27 माच, 1933 को जापान लीग ऑफ़ नेशन्स से अलग हो गया।

मचुको की कहानी और लिटन कमीशन की रिपाट पर विचार-विमश का एक अन्य महत्वपूण पहलू यह भी था कि जो देश जापान की कारवाई की आलोचना

कर रहे थ वे अधिकाशत दूसरे देश थे। अमरीका, जोकि लीग का सदस्य नही था, प्रत्यक्षत तो कडे विरोध का प्रदर्शन कर रहा था परन्तु मचुको के सदभ मे विशेष चिंतित न था। अमरीका की दिलचस्पी चीनी मचूरिया मे अपने हितो के प्रति अधिक थी। फ्रास और ब्रिटेन भी, जिनका कि चीन म बहुत कुछ दाँव पर लगा था, लगभग वही रुख अपनाये हुए थे।

वास्तव म, ब्रिटेन का रवया बहुत हद तक ढुलमुल था क्योकि ब्रिटेन ने विश्व के विभिन्न भागा मे, विशेषकर भारत मे, जो कुछ किया था मचूरिया म जापान की कारवाई के सिलसिले मे उसका अत करण स्वच्छ कस हो सकता था? 16 सितबर, 1932 के दिन, लीग ऑफ नेशस की सभा म लिटन कमीशन की रिपोट पर विचार विमश किये जाने से कुछ सप्ताह पूव ब्रिटिश सरकार के एक अभिस्वीकृत मुखपत्र लदन के द टाइम्स' ने अपने सपादकीय मे जापान को लगभग निरपराध घोषित कर दिया था। उक्त समाचारपत्र मे कहा गया—' जापान न शघाई म जो कुछ किया उसस उसे इस देश मे बहुत कम समथन मिला है, किन्तु मचूरिया म उसकी स्थिति बहुत भिन्न है। वहाँ जापान के आर्थिक हित तीव्रता से बढती जनसख्या के लिए अति महत्वपूण है। जापान ने शताब्दी के आरम्भ म उस दश को रूस के चगुल से बचाया था। उसके बाद से जापान उस देश को चीन के अन्य भागा मे फैली गडबडी और अराजकता की स्थिति से बचाये हुए है। उसने कानूनी तौर पर आर्थिक अधिकार हासिल किये जिनमे अवध ढग से चीन द्वारा बाधा डाली गयी थी। मगर इतना सही है कि दीघ धैय तथा राज नीतिक माध्यम से क्षतिपूर्ति प्राप्त करने मे जापान असफल रहा। यह बात जोर देकर कही जा सकती है कि आचरण के जो नियम लीग द्वारा निर्धारित किये गय थे व विश्व के प्रत्येक भाग मे व्यवहाय नही हो सकते थे। लेकिन सभा म जहा सभी देशो को एक आम दृष्टि से बराबर माना जाता है और सभी सदस्य देशो के बारे मे समदृष्टि से यह सोचा जाता है कि वे विकास के एक समान चरण म है, इस बात को नजरदाज ही किया जायगा"।

लीग की सभाओ म बहस आदि के दौरान भी ब्रिटेन के विदेशमत्री, सर जान साइमन और कनाडा के प्रतिनिधि ने जापान की तुलना म चीन की ही अधिक आलोचना की थी।

उधर अप्रल, 1932 म तावयो मे गडबडी शुरू हुई। उस महीने की 29वी तारीख को सम्राट हिरोहितो की वषगाठ क दिन एक कोरियाई न उस मच पर एक बम फेंका जहाँ शघाई काड के कमाडर एडमिरल नोमुरा, शिराकावा और शिगेमित्सु बठे थे। नोमुरा को तो कोई चोट नही आयी किन्तु शिगमित्सु घायल हो गय, उनकी दायी टाँग म चोट आयी जिस बाद म काट देना पडा था और उस वष मई म शिराकावा की मृत्यु हो गयी।

दासता की बेडियो मे जकडे रहने के अपराध के लिए ब्रिटेन के विरुद्ध प्रचार करना। राजा महेन्द्रप्रताप के साथ मैंने सावजनिक सभाओ द्वारा विभिन्न देश वासियो और समूहो के साथ सपर्क स्थापित करके अपने अभियान को बल दिलाने के उद्देश्य से व्यापक यात्राएँ की। हमने इस बात की सावधानी बरती कि जापानियो म कोई प्रतिकूल प्रतिक्रिया न हो, वास्तव मे हमारी जापानियो के कायकलाप या मचुको प्रशासन की गतिविधियो मे किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप करने की कतई मशा नही थी। हमारा काम सिफ भारत के मुक्ति आदोलन को बढावा देना था।

हमारे लक्ष्य के प्रति गोमिनसाकू क्योवा काई की आम तौर पर सहानुभूति रही थी। मगोल पहले कुछ कुछ अनिश्चित थे। किन्तु अत म हमने उनका भी समथन प्राप्त कर लिया। जापानी के साथ-साथ मगोलियाई बोलियो का ज्ञान भी मेरे लिए इस दिशा म बडा सहायक सिद्ध हुआ। महेन्द्रप्रताप ने भी मगोलियाई सीखने की कोशिश की परन्तु मुझे अपेक्षतया अधिक सफलता मिली जिसका कारण कदाचित मेरी युवावस्था थी।

दक्षिण मचूरियाई रेलवे म हमारी यात्रा के लिए हमारे पास उच्चतर श्रेणी के पास थे। दूर-दराज के इलाको की यात्रा के लिए भी वाँछित प्रबन्ध मचुको सरकार द्वारा कर दिय जात थ। सिकिंग म मैं पूमे ओकावा के भाई युज़ावो होम्मा के महल जैसे घर म ठहरा और डायरन म मैं पूम के छोटे भाई पूज़ो ओकावा का अतिथि रहा जो सभी मामलो के विशेषज्ञ थे और सभी भाषाएँ जानते थे। वे उन अग्रणी लोगो म से थे जिन्होने भारत की स्वतन्त्रता के अभियान को गति दिलाने के उद्देश्य से डायरन म एक प्रचार-सस्था की स्थापना मे मेरी सहायता की थी।

हमारे लिए आवश्यक समस्त वित्तीय सहायता बिना शत पूमे ओकावा की सिफारिश पर दक्षिण मचूरियाई रेलवे द्वारा प्रदान की जाती थी। जिम्मू-काई सस्था की गतिविधियो के सूत्रधार होने के साथ-साथ वे दक्षिण मचूरियाई रेलवे के आर्थिक केन्द्र के अध्यक्ष भी थे। सरकार के बाद एस० एम० आर० यानी दक्षिण मचरियाई रेलवे मचुको म सर्वाधिक सशक्त सस्था थी। इसकी विविध शाखाओ का काम केवल रेलगाडियो का सचालन न होकर स्वास्थ्य शिक्षा, अथतत्र, शोध-काय आदि म भी प्रभावकारी ढग से अपना असर डालना था। जापान सरकार का इस कम्पनी म सबसे बडा हिस्सा था इसलिए एस० एम० आर० के प्रधान की नियुक्ति के लिए तोक्यो के मन्त्रिमडल की स्वीकृति आवश्यक थी।

जापान द्वारा 15 सितम्बर, 1932 को औपचारिक रूप से मचुको को मान्यता दे दी गई थी। 3 माच, 1934 को एल-साल्वाडोर से विधिवत मान्यता

प्रदान किय जान की घोषणा की गयी। सावियत सघ न औपचारिक कूटनीतिक मान्यता तो न दी किन्तु, सगत क्षत्रा म परस्पर वाणिज्य दूतावासा की स्थापना करके मचुको को वस्तुत मान्यता प्रदान कर दी थी। कुछ समय तक अन्य दशो की प्रतिक्रियाआ म गतिरोध रहा किन्तु अतत स्पन (1937), पोलड (1938), हगरी (1939), चीन (वाग चिग वेई की सरकार द्वारा 1940), रूमानिया (1940) और थाईलड (1941) आदि देशा न मचुका का विधिवत मान्यता प्रदान कर दी। इस बीच कभी छिपकर और कभी खुल तौर पर ब्रिटन तथा मचुको के बीच व्यापारिक आदान प्रदान होते रहे हालांकि ब्रिटन इस राज्य का औपचारिक मान्यता देन के लिए तयार नही था।

मैं जानता हूँ कि अमरीका भी किन्ही अन्य दशो क माध्यम स, कदाचित मध्य अमरीकी दश एल-साल्वाडोर क माध्यम स परोक्ष रूप से मचुको के साथ व्यापार म सलग्न रहा था। चूकि इस व्यापार के सहयोगियो मे स कुछ के विषय म मैं जान सका था इसलिए मचुको सरकार के अधिकारीगणो को यह जानकारी दिलाने म मेरा भी योगदान था कि चीनिया की सहायता स ब्रिटन तथा अमरीका किस प्रकार की कारवाइया म लगे हुए हैं। अपने कायकलाप के सिलसिले म मेरा सम्पक व्यापक रूप स सरकारी या अपन-अपन क्षत्रा मे महत्वपूण कार्यों म सलग्न विभिन्न जातिया के लोगा के साथ स्थापित हो चुका था। प्राय एसा हाता था कि जापानी या मचुको के अधिकारीगणो को पश्चिम के गुप्तचरो की कारवाइया का ज्ञान हाने स पूव ही मुझे उनका पता चल जाया करता था।

स्वाभाविक ही था कि ब्रिटिश-जन मुझे बेहद नापसन्द करत थे। किन्तु मुझे न केवल सिकिग मे मचुको की सरकार के प्रशासनिक अधिकारियो का समथन प्राप्त था बल्कि गोमिन सोकू क्योवाकाई और क्वानतुग सना का भी मुझे सशक्त समथन प्राप्त था। सना के उपप्रधान लेफ्टिनेट जनरल सईपीरो इतगाकी मेरे निजी मित्र थे और मचुको मे उनका स्थानातरण होने से पूव भी जापान में मेरा उनके साथ परिचय था। भारत के प्रति उनके मन म सद्भाव था और उसके स्वतत्रता सघष म उनकी बहुत रुचि थी। सन् 1934 म जब वे विश्व भ्रमण के लिए जापान स रवाना हो रहे थे तो उन्हें विदा करने मैं योकोहामा गया था। उन्होंने मेरे कधे पर अपना हाथ रखकर कहा था "मचुको जाकर अपना काय जारी रखो मेरी आशा और प्राथना है कि अपनी दृष्टि रहते मैं भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्त देख पाऊँ।

मचुको मे मेरी स्थिति कई अर्थों म असाधारण थी। मैं सरकार मे कोई पदधारी तो नही था, फिर भी एक निष्पक्ष पयवक्षक की सी मेरी सदभावना के प्रति आश्वस्त होने के कारण वरिष्ठ अधिकारी अनेक मामलो म मेरी सलाह लिया

करते थे। अपने परामर्शों मे मैंने सदा ही पूणतया निष्पक्ष रुख अपनाया और सरकार को ईमानदारी से सदा वही बताया जो मै सोचता था। मेरी बात बहुत से लागो को अखरती थी, किन्तु जो लोग वाकई उस सस्था मे कुछ महत्व रखत थे वे सदा मेरे विचारा की कद्र करते थे।

जापानी अधिकारियो मे कमियाँ न हो ऐसा नही था, किन्तु जिस ढग स उन्होंने देश को एक बनाय रखने के प्रयास किए उसके लिए उन्हे श्रेय मिलना ही चाहिए। हालाकि इस बात म कोई सन्देह न था कि प्रत्येक क्षेत्र म विशेषकर, तकनीकी के क्षेत्र मे, उनकी सी योग्यता अप्रतिम थी तो भी उन्होने सदा यह प्रयास किया कि जनसख्या के अन्य भागो को भी प्रगति के बराबर अवसर मिलने चाहिए। अनेक अति उच्च दक्षता प्राप्त जापानी कमचारियो को औपचारिक रूप से चीनियो, मगोला या माचू जनता के प्रशासनिक नियत्रण म रखा गया था। वे बिना किसी शिकायत के अपनी जिम्मेवारियाँ निभाते थे।

इसलिए कुछ पश्चिमी लेखको द्वारा, गोमिन सोकू क्योवा काई के बारे म यह कहना कि वह पूणतया जापानियो द्वारा शासित एक ऐसी सस्था थी जिसम अन्य किसी जाति की कोई आवाज नही थी—सही नही है। जापान ने निश्चित रूप से, पाँच जातियो की एकता के सिद्धान्त की भावना को बनाये रखने का हार्दिक प्रयास किया। अन्य जातियाँ प्रभावकारी ढग से अपना असर न दिखा सकी यह बात भिन्न है।

मचुको पर जापानियो का नियत्रण होने से पूव वह स्थान लगभग एक बजर क्षेत्र था हालाँकि यह भूभाग बडा था और वहाँ खनिज व अन्य प्राकृतिक ससाधनो की भरमार थी। जापानी उद्यमशीलता के प्रताप से वह देश अपना असाधारण औद्योगिक विकास कर पाया। इसी प्रक्रिया के दौरान, सर्वाधिक महत्वपूण भूमिका योवा हैवी इडस्ट्रीज ने निभाई थी जिसके प्रधान मरे अच्छे मित्र ऐकावा गीईत्सुके थे। प्रमुख नगर आयोजक थे प्रोफेसर तकेय जो क्योतो विश्वविद्यालय म मरे अध्यापक रहे थे। उन्ह अपने क्षेत्र म विश्व के सवश्रष्ठ विशेषनो म स एक हाने की ख्याति प्राप्त थी। योवा के भारी उद्योगा के प्रमुख इजीनियर थे प्रोफ़ेसर वगुची जिनके घर म मैं क्योतो के अपने छात्र काल म रहा था। इन उद्भट विद्वानो के मागदशन म और गोमिनसोकू क्योवा काय तथा जूजि यामागुची के नेतृत्व म मचुको म विकास-काय बडी तीव्रता और दक्षता स सम्पन्न हो रहा हो था।

मूलत सोवियत सघ द्वारा निर्मित एस० एम० आर० म जापानियो न व्यापक सुधार किये। डायरन तथा सिंकिंग के बीच दौडनेवाली अति द्रुतगामी रेलगाडी एशिया प्राच्य क्षेत्र की तीव्रगति वाली रेलगाडी थी। पाट आथर, डायरन, सिंकिंग आदि नगरो का पुनर्निर्माण करके उन्ह बहुत बढ़िया बना दिया गया। कृषि तथा

सबद्ध क्षेत्रा म भारी व हल्के उद्यागो की प्रगति असाधारण स्तर की थी। यह सही है कि मचुको से प्राप्त कच्चा सामग्री का जापान के उद्योग जगत म व्यापक उपयोग किया जा रहा था लेकिन माल का निर्यात मचुको क हितो को हानि पहुचाकर नही किया जाता था। यह स्थिति ब्रिटेन द्वारा भारत क शापण क समान न थी।

ब्रिटेन की नीति यह थी कि भारत म काई भी औद्योगिक विकास इस प्रकार किया जाय कि वह सदा सवदा अपन औपनिवेशिक आधार स जुडा रह। जापान का प्रयास यह था कि मचुका के उद्याग जगत म स्वय अपन पैरा पर खडा होन की क्षमता उत्पन्न हो, इतना ही नही भारत म इग्लड की कारवाई के विपरीत जापान ने उस पर शासन करने के उद्देश्य स मचुको का विभाजन करन का प्रयास कभी नही किया। उल्टे उसका प्रयास यह था कि पाँच जातियो की एकता के सिद्धान्त के अनुसार मचुको की परस्पर सम्बद्धता का बनाए रखा जाय। यह प्रयास काफी हद तक सफल भी रहा। जनता के पिछडे वर्गों को प्रगति के उच्चतर चरणा म प्रवेश के लिए प्रात्साहित किया गया। शोषित वर्गों को राहत पहुँचाने के कायक्रमो को व्यवस्थित ढग से अमल म लाया गया।

मचुको म भारतीयो का समुदाय बहुत बडा नही था। इनमे मुख्यत सिंध निवासी व्यापारियो के 15 या 20 परिवार थ जाकि काफी अच्छी माली हालत मे थे। इन परिवारो मे स सवप्रमुख थे—बूलचद और दौलतराम परिवार। इन दोनो परिवारो की थोक व खुदरा विक्रेता सस्थाए थी जो विभिन्न प्रकार की उपभोक्ता वस्तुएँ बचती थी। उनकी मुकदेन तथा सिकिंग सहित विभिन्न केंद्रो म शाखाए थी। उनमे स कुछ उत्तरी चीन मे भी थी। उनके अलावा यदि मेरी याद सही है तो दो या तीन मारवाडी कपनियाँ भी खाली बोरियो का व्यापार कर रही थी जिनमे से एक कलकत्ता की मारवाड एण्ड कम्पनी और दूसरी वालिया एण्ड कम्पनी की शाखा थी। वे बडे ही तेज किस्म के व्यापारी थे और बाजार पर सदा उनकी मजबूत पकड रहती थी। श्रीलका के कुछ तमिल परिवार आभूषणो का व्यापार करत थे। राजा महेन्द्रप्रताप और मेरे वहाँ पहुचने के बाद इन सभी कपनिया न अतीत की तुलना मे कही अधिक आश्वस्तता का अनुभव किया था। स्थानीय अधिकारियों क साथ यदि उन्ह कभी किसी कठिनाई का सामना करना होता तो मैं उनका प्रमुख कष्ट निवारक सिद्ध होता था।

उनका आपस म गहरा सम्बन्ध था। हमारी सस्था की स्थापना मे सहयाग देने के साथ-साथ वे प्राय अपनी ही शक्ति के बल पर राज्य की जातीय सस्थाओं म भी कायरत रहत थे। उनमे अधिकाश अच्छी चीनी भाषा बोल लेते थे। लकिन सरकार-तत्र म अधिकार रखनेवाला क साथ हमारे घनिष्ठ सबधो के कारण

उलझने से कोई लाभ न होगा। फलत उन्होंने इम्पीरियल होटल वाला अपना दफ्तर बद कर दिया और कोकूबुजी म चले गये। उसके बाद उन्ह कोई कठिनाई नहीं हुई। भारत के स्वतत्र हो जाने क बाद वे जापान से चले गये। मेरे मन म उनकी स्मतिया बहुत स्नेहभरी है। हालाकि प्राय व कल्पना लोक म विचरण किया करते थे तो भी इसम स देह नही कि व एक ईमानदार देशभक्त और साहसी व्यक्ति थे। मैंने उनस बहुत कुछ सीखा था। व बहुत साहसी थे आत्म-बलिदानी थे और उनकी यह अडिग आस्था थी कि कठिनाइयाँ कुछ भी क्यो न हो भारत को शीघ्र ही ब्रिटेन की दासता के चगुल स मुक्ति मिलेगी।

भारत के समथन म और ब्रिटेन के विरुद्ध प्रचार-काय चलाने के उद्देश्य से मचुको म विभिन्न महत्वपूण स्थाना पर शाखाएँ स्थापित करन के बाद मैंने डायरन म एशियाई कान्फ्रेस की स्थापना की दिशा म काय आरभ कर दिया जिसके लिए गुता नगावा ने मुझस सहायता मागी थी। तैयारी का लगभग सारा काम मुझे सौंपा गया था।

डायरन म मैंने एक सबसे पुराने यामातो होटल का अपन कार्यों का केंद्र चुना। मैंने जानबूझकर इसलिए एसा किया कि इस होटल क ठीक सामने ब्रिटिश वाणिज्य दूतावास था। ब्रिटन को ये सूचना दिलानी ही थी कि एक विशाल एशियाई कान्फ्रेस का आयोजन किया जा रहा है और विशेष रूप स यह भी कि एक भारतीय इसके समस्त प्रबधो का प्रभारी है जो जापान और मचुको की सरकारो की छत्रछाया म नही, बल्कि स्वय अपने किन्तु अनिवायत जापानियो के समथन के बल पर क्रियाशील है।

यह कान्फ्रेस सन 1934 की शरत ऋतु म हुई जिसम विभिन्न एशियाई देशो के एक सौ से अधिक प्रतिनिधियो ने भाग लिया था। जिन भारतीयो ने इस सभा मे भाग लिया उनम महेन्द्रप्रताप और मेरे अलावा जापान स ए० एम० सहाय हागकाँग से डी० एन० खान और शघाई से ओ० आसमान थ। सभा मे भाग लनवाला म चीन के विभिन्न भागो से आये प्रतिनिधि भी थे। अनक जापान से आये जिनम से बहुत से दक्षिणपथी सस्थाओ की ओर से भेजे गये थ।

इस सम्मेलन से एशियाई एकता की भावना को बल दिलाने का लक्ष्य प्राप्त किया जा सका। साथ ही विश्व को मचुको के बारे मे भी और अधिक जानकारी मिली। स्वाभाविक रूप से ही ब्रिटिश शासक अत्यधिक चिढ गय। सम्मेलन म मेरी भूमिका के सम्बन्ध म तत्कालीन भारत सरकार क राजनीति विभाग को भेजी गयी विस्तृत रिपोर्टों म उनके गुप्तचर विभाग ने मेरा बहुत ही बुरा चित्र खीचा था। मुझ पर जापानियो को उभारन के साथ साथ उस क्षत्र मे पश्चिमी शक्तियो के विशष हितो को मचुको की कठपुतली सत्ता द्वारा चुनौती दिय जाने म अगुआ होन का आरोप भी लगाया गया था। यदि मैं ब्रिटिश शासन

काल म भारत म प्रवेश करता तो इन रिपोर्टों के बल पर निश्चय ही मुझे हिरासत म ले लिया जाता किंतु जसाकि मैं पहले कह चुका हूँ भारत द्वारा स्वतत्रता प्राप्ति के बाद तक मैं विदेश म ही रहा।

भारत के विभाजन और पाकिस्तान के ज म के समय अविभाजित देश की नई दिल्ली स्थित सरकार के अनेक गुप्त दस्तावेजा का भी वँटवारा किया गया ग। इस प्रक्रिया के दौरान नई दिल्ली के अधिकारिया ने निणय किया कि विदेशी मामलों से सम्बद्ध बहुत सी फाइलो को रखन की आवश्यकता नही है और उ हे अग्नि के हवाले कर दिया गया। इस प्रकार नष्ट किय गय बहुत स कागजा मे मेरे सबध म बनाई गयी अत्यधिक गोपनीय फाइल भी थी। इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद और भारत की स्वतत्रता प्राप्ति के दिवस की पूव सध्या को *खतरनाक भारतीयो' सम्ब धी ब्रिटेन द्वारा बनायी गयी काली सूची म स मेरा* नाम लुप्त हो गया।

ब्रिटिश गुप्तचर विभाग ने मेरा नाम मचुको नायर रख दिया था जिसका अभिप्राय था कि मैं मचूको सरकार के लिए कायरत था। मगर वस्तुत मै कभी किसी भी सरकार की नौकरी नही करता था हालाकि यह बात सही है कि तोक्यो तथा सिंकिग की सरकारा पर मेरा काफी प्रभाव था और पूर्वी क्षेत्र म भारत के स्वतत्रता अभियान के काम म मुझे दोनो से विभि न सुविधाएँ मिला करती थी। विचित्र बात तो यह है कि ब्रिटिश सरकार ने जो निराधार नाम मुझे दिया था वह जान क्यो मेरे साथ जुडा रहा। मेरे अनेक भारतीय मित्रो ने भी हँसी मजाक म उसी नाम का उपयोग करना शुरू कर दिया। हालाकि मचुको का द्वितीय विश्व युद्ध के अत क साथ ही अत हो गया, फिर भी भारतीय मित्रो के लिए मैं अभी भी 'मचुका नायर' ही हूँ।

सितम्बर 1934 म रासबिहारी बोस ने नवराज्य के गवनरा के (जाकि चीनी थे) जापानी परामशदाताओ के सघ के प्रधान कजामी रियोमे के निमत्रण पर भाषण करने के लिए मचुको की यात्रा की। रियोमे एक बुद्धिजीवी थे और उनके हृदय मे भारत की स्वतत्रता के लिए गहन रुचि थी। उ होन एशियाइया के लिए एशिया' की विचारधारा के प्रवतन के उद्देश्य से जापान म एशिया लीग की स्थापना की थी जिसकी एक शाखा मचुको म भी थी। वे एक पत्रिका भी निकालत थे जिसम रासबिहारी बास के भारत सम्ब धी लेख नियमित रूप से छपा करते थे। मुझे रासबिहारी बोस के कायक्रम की देखभाल मे 'रियोमे' की सहायता करन म बडी प्रस नता हुई। मैं 4 सितम्बर को उनस सिंकिग म मिला और पूरे दो सप्ताह उनकी यात्रा के दौरान उनके साथ रहा था।

इस यात्रा का तोक्यो के जापानी अधिकारियों के बीच रासबिहारी बोस की लोकप्रियता पर अस्थायी कुप्रभाव पडा। पहली बात तो यह थी कि वे बहुदेशीय

उलझने से कोई लाभ न होगा। फलत उन्होने इम्पीरियल होटल वाला अपना दफ्तर बद कर दिया और कोकूबुजी म चले गये। उसक बाद उन्हे कोई कठिनाई नही हुई। भारत के स्वतत्र हो जान क बाद वे जापान स चले गये। मरे मन म उनकी स्मतिया बहुत स्नेहभरी है। हालाँकि, प्राय व कल्पना लोक म विचरण किया करते थे तो भी इसम स देह नही कि व एक ईमानदार देशभक्त और साहसी व्यक्ति थे। मैंन उनस बहुत कुछ सीखा था। वे बहुत साहसी थे आत्म-बलिदानी थे और उनकी यह अडिग आस्था थी कि कठिनाइयाँ कुछ भी क्यो न हो भारत को शीघ्र ही ब्रिटेन की दासता के चगुल स मुक्ति मिलेगी।

भारत के समथन म और ब्रिटेन के विरुद्ध प्रचार-काय चलाने के उद्देश्य स मचुको म विभिन्न महत्वपूण स्थानो पर शाखाएँ स्थापित करन के बाद मैंन डायरन म एशियाई कान्फ्रेस की स्थापना की दिशा म काय आरभ कर दिया जिसके लिए गुता नगावा न मुझस सहायता माँगी थी। तयारी का लगभग सारा काम मुझे सौंपा गया था।

डायरन म मैंन एक सबसे पुरान यामातो होटल को अपन कार्यों का केन्द्र चुना। मैंन जानबूझकर इसलिए ऐसा किया कि इस होटल के ठीक सामने ब्रिटिश वाणिज्य दूतावास था। ब्रिटन का ये सूचना दिलानी ही थी कि एक विशाल एशियाई कान्फ्रेस का आयोजन किया जा रहा है और विशेष रूप से यह भी कि एक भारतीय इसके समस्त प्रबधो का प्रभारी है जो जापान और मचुको की सरकारो की छत्रछाया म नही बल्कि स्वय अपने किन्तु अनिवायत जापानियो के समथन के बल पर क्रियाशील है।

यह कान्फ्रेस सन 1934 की शरत ऋतु मे हुई जिसम विभिन्न एशियाई देशो के एक सौ स अधिक प्रतिनिधियो न भाग लिया था। जिन भारतीयो ने इस सभा मे भाग लिया उनम महेन्द्रप्रताप और मेरे अलावा जापान से ए० एम० सहाय हॉगकाग से डी० एन० खान और शघाई स ओ० आसमान थे। सभा म भाग लेनवालो म चीन क विभिन्न भागो से आये प्रतिनिधि भी थे। अनेक जापान से आये जिनम स बहुत स दक्षिणपथी सस्थाओं की ओर से भेजे गये थे।

इस सम्मेलन से एशियाई एकता की भावना को बल दिलान का लक्ष्य प्राप्त किया जा सका। साथ ही विश्व को मचुको के बार म भी और अधिक जानकारी मिली। स्वाभाविक रूप से ही ब्रिटिश शासक अत्यधिक चिढ गय। सम्मेलन म मेरी भूमिका के सम्बन्ध म तत्कालीन भारत सरकार के राजनीति विभाग को भेजी गयी विस्तृत रिपोर्टों म उनक गुप्तचर विभाग न मेरा बहुत ही बुरा चित्र खीचा था। मुझ पर जापानियो को उभारने के साथ साथ उस क्षत्र मे पश्चिमी शक्तियो के विशेष हितो को मचुको की कठपुतली सत्ता द्वारा चुनौती दिये जाने म अगुआ होने का आरोप भी लगाया गया था। यदि मैं ब्रिटिश शासन

काल मे भारत म प्रवेश करता तो इन रिपोर्टों के बल पर निश्चय ही मुझे हिरासत म ले लिया जाता किंतु जैसाकि मैं पहले कह चुका हूँ भारत द्वारा स्वतत्रता प्राप्ति के बाद तक मै विदेश म ही रहा।

भारत ने विभाजन और पाकिस्तान के जन्म के समय अविभाजित देश की नई दिल्ली स्थित सरकार के अनक गुप्त दस्तावेजा का भी बँटवारा किया गया था। इस प्रक्रिया के दौरान नई दिल्ली के अधिकारियो न निणय किया कि विदेशी मामला स सम्बद्ध बहुत सी फाइलो को रखने की आवश्यकता नही है और उन्हे अग्नि के हवाले कर दिया गया। इस प्रकार नष्ट किय गय बहुत स कागजा मे मेरे सबध म बनाई गयी 'अत्यधिक गोपनीय' फाइल भी थी। इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद और भारत की स्वतत्रता प्राप्ति के दिवस की पूव सध्या को खतरनाक भारतीयों' सम्बन्धी ब्रिटेन द्वारा बनायी गयी काली सूची म से मेरा नाम लुप्त हो गया।

ब्रिटिश गुप्तचर विभाग ने मेरा नाम मचुको नायर रख दिया था जिसका अभिप्राय था कि मै मचूको सरकार के लिए कायरत था। मगर वस्तुत मैं कभी किसी भी सरकार की नौकरी नही करता था हालाकि यह बात सही है कि तोक्यो तथा सिंकिंग की सरकारो पर मरा काफी प्रभाव था और पूर्वी क्षेत्र मे भारत के स्वतत्रता अभियान के काय मे मुझे दोना से विभिन्न सुविधाएँ मिला करती थी। विचित्र बात तो यह है कि ब्रिटिश सरकार ने जो निराधार नाम मुझे दिया था वह जान क्यो मेर साथ जुडा रहा। मेरे अनक भारतीय मित्रो ने भी हँसी मजाक मे उसी नाम का उपयोग करना शुरू कर दिया। हालाकि मचुको का द्वितीय विश्व युद्ध के अत के साथ ही अत हो गया, फिर भी भारतीय मित्रा के लिए मै अभी भी 'मचुका नायर' ही हूँ।

सितम्बर, 1934 मे रासबिहारी बोस न नवराज्य के गवनरो के (जाकि चीनी थे) जापानी परामशदाताओ के सघ के प्रधान कजामी रियोमे के निमत्रण पर भाषण करने के लिए मचुको की यात्रा की। रियोमे एक बुद्धिजीवी थे और उनके हृदय म भारत की स्वतत्रता के लिए गहन रुचि थी। उन्होन एशियाइयो के लिए एशिया' की विचारधारा के प्रवतन के उद्देश्य से जापान म एशिया लीग की स्थापना की थी जिसकी एक शाखा मचुको म भी थी। वे एक पत्रिका भी निकालत थे जिसम रासबिहारी बोस के भारत सम्बन्धी लेख नियमित रूप स छपा करत थे। मुझे रासबिहारी बोस के कायक्रम की दखभाल म रियोम की सहायता करन म बडी प्रसन्नता हुई। मैं 4 सितम्बर को उनसे सिंकिंग म मिला और पूर दो सप्ताह उनकी यात्रा के दौरान उनके साथ रहा था।

इस यात्रा का तोक्यो के जापानी अधिकारियो के बीच रासबिहारी बोस की लोकप्रियता पर अस्थायी कुप्रभाव पडा। पहली बात तो यह थी कि वे बहुदेशीय

श्रोताओ के बजाय, जिसकी उनसे आशा की गयी थी, केवल जापानी श्रोताओ के सम्मुख ही भाषण करते थे। उनकी एक अन्य कारवाई तो बहुत ही दुस्साहसपूर्ण थी। वे जापान की कुछ नीतियो की खुली आलोचना करते थे। जापान लौटने के लिए डायरन म पोत पर सवार होने से कुछ ही पूर्व उन्होंने तोक्यो म युद्धमंत्री जनरल अराकि के नाम एक तार भेजा जिसम उनके शब्दो म मचूरिया म चीनियो के साथ जापान के दुर्व्यवहार की कटु आलोचना की गयी थी और उन्होंने प्रेषक के स्थान पर लिखा था—इडाजिन बोस अर्थात् भारतीय बोस। उन्होंने वह तार भेजने का दायित्व मुझे सौंपा। कुछ आश्चर्यचकित होकर मैंने उनसे पूछा कि जबकि वे जापानी नागरिक हैं तो क्या उनके लिए स्वयं को भारतीय बोस कहना उचित था? अगली ही साँस म उनका उत्तर मिला— मेरी जापानी नागरिकता केवल मेरे जीवित रहने भर के लिए है। अपने विचारो और कार्यों म मैं एक भारतीय ही हूँ। इसकी जिम्मेवारी मैं उठाता हूँ। अत तुम तार घर जाओ और यह तार ज्यो का त्यो भेजो।

यह स्वाभाविक ही था कि जनरल अराकि को यह सदेश बहुत पसद नही आया किन्तु रासबिहारी का कुल मिलाकर जापानी अधिकारियो पर प्रभाव इतना अच्छा था कि इस घटना के सदर्भ म सरकार की खीज का उन पर या भारत पर कोई हानिकर प्रभाव नही पडा। समय के साथ साथ उस तार की बात भी भुला दी गयी। किन्तु मेरे लिए यह एक बहुत बडी शिक्षा थी। एक बार फिर गीता के सदेश अर्थात 'अनासक्त कर्म' को कार्यान्वित किये जाने का इसे मैंने आह्वान माना। वे कानून की दृष्टि से जापानी नागरिक थे लेकिन साथ ही अत्यधिक सवेदनशील भारतीय देशप्रेमी भी थे और स्वयं को 'भारतीय बोस' कहने म कतई नही डरते थे। इस घटना की याद मेरे मन म सदा स्पष्ट बनी रही है। यह स्मृति मेरे मानस मे उस समय भी सर्वोपरि थी जबकि द्वितीय विश्वयुद्ध म जापान के प्रवेश के तुरन्त बाद रासबिहारी के 'भारतीय स्वतत्रता लीग' का प्रधान चुने जाने तथा सन्नो होटल म उसके सर्वप्रथम अधिवेशन के सम्बन्ध मे जिसम समस्त दक्षिण पूर्व एशिया से आये भारतीय प्रतिनिधियो ने भाग लिया था, मुझे जापानी हाई कमान की अनुमति मिली थी।

सन् 1934 म मचुको से जापान लौटने के बाद तोक्यो म श्री चमनलाल से मेरी भेंट हुई। वे उस समय दिल्ली के समाचारपत्र 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के विशेष सवाददाता थे। अपने समाचारपत्र के लिए कुछ लेख लिखने के उद्देश्य से वे विश्व भ्रमण कर रहे थे। उनका राजा महेन्द्रप्रताप के साथ सम्पर्क था और वे दोनो तान्जुमाची अजाबू म मध्यम श्रेणी के एक पश्चिमी ढग के होटल म ठहरे हुए थे। महेन्द्रप्रताप ने मुझे सदेश भेजा और जब मैं उनसे मिला तो उन्होंने श्री चमनलाल के लिए दो काम करने को कहा। एक, युद्धमंत्री जनरल अराकि के साथ भेंट वार्ता

तथा दूसरा, मचुको की यात्रा का प्रब ध और सम्राट पू ई के साथ भेंट का कार्यक्रम भी शामिल था, इतने कम समय के नोटिस पर य दोनो काम कर पाना मुश्किल होने पर भी मैने कोशिश करने का वचन दिया।

मुझे पता चला कि जनरल अराकि के कार्यालय म उनसे मिलने के इच्छुक प्रतीक्षारत विदेशी पत्रकारा व अ य लोगो की सूची इतनी लम्बी थी कि दो मास के बाद भी इनकी बारी नही आ सकती थी। इसलिए आवश्यक था कि श्री चमनलाल के लिए कोई छोटा' रास्ता अपनाऊँ। मैंने कनल ईमुरा से सम्पक स्थापित किया जो मिलिटरी हाई कमान के आठव विभाग के (एशियाइ मामलो तथा सोवियत सघ के लिए गुप्तचर विभाग) अध्यक्ष थे। मैने उ ह बताया कि भारत व जापान के बीच अच्छे सम्ब धो के समथक एक प्रमुख भारतीय समाचारपत्र के एक प्रमुख पत्रकार जनरल अराकि के साथ जल्दी भेट करना चाहते हैं क्योकि वे जापान म बहुत थोडे समय के लिए ठहरेंगे। मैंने सलाह दी कि यदि युद्धमत्री उनके लिए कुछ समय दे सकें तो इससे उ हे भारत के साथ विचारा के आदान प्रदान का अवसर मिलेगा। कनल ईमुरा ने मुझे कुछ देर रुकने को कहा, उ होंने मेरे सामने ही टेलिफोन उठाया, जनरल अराकि से बात की और मुझे बताया कि चमनलाल अगले दिन सुबह 11 बजे जनरल से मिल सकते हैं। सभी को य जानकर अचरज हुआ कि जबकि अ य लोग अनेक सप्ताहो या महीनो से प्रतीक्षा कर रहे थे तो भारतीय पत्रकार को भट की अनुमति इतनी जल्दी कसे मिल गयी !

जनरल अराकि बहुत ही सौहादपूवक मिले और कुछेक मिनटो के बजाय, जसाकि वे सामा यत विदेशी भटकर्ताओ को समय दिया करत थे, उ होंने चमनलाल से पूरे 45 मिनट तक बातचीत की और खुले रूप से उनके प्रश्ना के उत्तर दिये। एक प्रश्न के उत्तर म उन्होने कहा कि जापान को अपने आपको अनक कठिनाइयो स बचाने के लिए मचुको म घुसना पडा था, विशेषकर भारी आर्थिक मदी, कच्ची सामग्री के अभाव और सबसे बढ़कर बेकाबू बढती जनसख्या की समस्याओ क कारण एसा किया गया था। उन्होंने कहा कि जापान की योजना मचूरिया को एक उपनिवेश बनाने की नही है। वहाँ के लोगा की अनुमति से एक स्वतत्र राज्य को स्थापना की गयी है और जापान सभी जातिया के बराबर हित के लिए मचुको की एकता तथा समृद्धि का आश्वासन दगा। चमनलाल ने तार द्वारा एक लम्बा-सा सदेश अपन समाचारपत्र को भेजा। उनक पास तार का शुल्क दन के लिए धन न था न ही पत्रकार के नाते ऋण पाने की कोई साख ही थी, इसलिए तार भेजन के लिए वाछित धनराशि का प्रब ध मैंने ही किया।

उनकी मचुको यात्रा के लिए हाई कमान ने यह स्वीकार कर लिया कि सिंकिग तक सभी प्रब ध कर दिया जायगा और उनका तमाम खच भी हाई कमान ही

उठायगी। सिंकिग के बाद से डायरन जान और फिर तोक्यो लौटने तक का समस्त खच गोमिनसोकू क्योवा काय सस्था वहन करेगी। मै चमनलाल को अपन साथ ले गया और वे बहुत सतुष्ट थे कि उनकी यात्रा सफल रही। उनकी अति महत्व पूण भेटा मे एक हेनरी पू ई के साथ की भेट थी जिसका प्रब ध मैंने किया था। य विचार विमश मूलत पू ई द्वारा भारत की स्थिति सम्ब धी प्रश्नो पर, विशेषकर महात्मा गाधी के काय-कलाप पर, जिनके स्वास्थ्य के प्रति वे अति उत्सुक थे, आधारित था। चमनलाल ने गाधीजी के प्रति पू ई की चिता को उजागर करत हुए एक तार की सामग्री तयार की और जसाकि जनरल अराकि के साथ भेट वार्ता के समय हुआ था उसे भेजने का खच भी मने दिया। वह उनका अतिम काय था और मैंने डायरन मे उनसे विदा ली जहा गु ता नगाओ के आदेशानुसार गोमिनसोकू क्योवा काय ने उ ह कोबे होते हुए तोक्यो तक का टिकट दिया।

मचूको मे मरे प्रवास के दौरान दो बार मेरी सम्राट पू ई से भट हुई जिनम पाच जातिया के सिद्धात के आधार पर देश के प्रशासन सम्ब धी विभि न मामलो पर अनौपचारिक विचार विमश हुआ। निश्चय ही मेरा मत पूणतया निजी और स्वतन था लेकिन मरे विचारो के प्रति सदा ही मचुको की असनिक सरकार और क्वानतुग के सनानायको की सकारात्मक रुचि रही थी।

जसाकि सभी जानते है, बहुत से पश्चिमी देश पू ई का जापानिया के हाथ की कठपुतली कहा करते थे। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि पू ई को, सन 1912 मे उ ह गद्दी छोडने पर वाध्य किये जाने के बाद पुन सत्ता म लाये जान और फिर मचुको राज्य का अध्यक्ष बनाने के लिए जापान ही ज़िम्मेदार था। कि तु पू ई ने स्वय कभी अपनी स्थिति के विषय मे कोई अप्रसन्नता नही दिखायी। ऐसा प्रतीत होता था कि वे अपनी स्थिति से काफी सतुष्ट थे और स्वय को मचूको का उचित शासक मानते थे।

जापानी उ ह एक सवधानिक शासक का उचित आदर-सम्मान दते थे, हा, उसमे उस दिव्यता की विचारधारा का अभाव था जो वस्तुत केवल उनके सम्राट के लिए ही आरक्षित थी। दोना बार की भेट मे पू ई न महात्मा गाधी और भारत क स्वतन्नता अभियान के विषय मे प्रश्न किये। वे बडे ही सज्जन और भल व्यक्ति थे। उ होने भारत के लिए मेरे कायकलाप तथा ब्रिटिश सत्ता की जड खोदन क लिए की जानेवाली मेरी गतिविधियो के लिए मुझे बधाई दी।

इतगाकि और पू ई मे अच्छी मित्रता थी। जिन लोगा को मचुको म उनक सबध के बारे म जानकारी थी, उनके लिए यह बात आश्चयजनक थी कि तथा कथित 'युद्ध अपराधियो' पर मुकदमा चलाये जान के उद्देश्य स मकाथर न सुदूर पूव के लिए जो अन्तर्राष्ट्रीय सैनिक अदालत (ए० एम० टी० एफ० ई०) बनाई थी, उसम गवाही देते समय पू ई न विशेष रूप स इतगाकी और आम तौर पर

जापानियो के विरुद्ध अपशब्द कहन क सिवाय कुछ न किया था। यह एक प्रकार का धोखा था। कभी-कभी अवसरवादिता असीम रूप ले लेती है। जब सन् 1945 म, मचुको सरकार को सोवियत सघ के हाथा हार खानी पडी तो पू ई का युद्ध वदी वनाकर रूसिया ने एक नजरवदी शिविर म रखा। वही स उन्ह ए० एम० टी० एफ० ई० के सम्मुख गवाही के लिए बुलाया गया था। उन्होन निश्चय ही यह अनुमान लगा लिया होगा कि उनके जीवित रहना या न रहना मुकदमे म उनकी गवाही निभर है।

14

मगोलिया और सिकियॉग मे

पहले चर्चा कर चुका हूँ कि मैं राजा महे द्रप्रताप के साथ सन् 1933 म कुछ समय क लिए मगोलिया गया था। व मरा नतिक समथन चाहत थे और साथ ही चीनी भाषा तथा मगोलियाई बोलिया के मेरे ज्ञान का उपयोग भी करना चाहत थे। एक एशियाई सघ बनाने की उनकी योजना या विचार का लेकर वचारिक मतभेद के बावजूद मैं उनके साथ यथासभव सहयोग करन का इच्छुक था। कोई छह सप्ताह की यह यात्रा स्वय मरे लिए भी उपयोगी सिद्ध हुई। कठिनाइया को सहन करने की महे द्रप्रताप की क्षमता और उनका असीम आशावाद, दोना ही बहुत प्रेरणादायी थे। अय लोग उनम चाहे जो नुक्स निकालें मगर उनकी नजर म उनकी परियोजनाएँ कभी भी असफल नही हो सकती थी। मेरे लिए यह यात्रा वहाँ की धरती आदि की जानकारी पाने, वहाँ के लोगो स मिलने-जुलने और उनके काम काज रीति रिवाज आचरण तथा धम आदि समझन की दष्टि स एक अच्छे अवसर के समान थी।

उस क्षेत्र की एक महत्वपूण आर्थिक गतिविधि किसी की नजर से छिपी नही रह सकती था। वह थी तिब्बत मगोलिया क भीतरी भागो और चीन स होकर बड-बडे काफिला म किया जानवाला ऊन का व्यापार, जो तियनसिन के बदरगाह तक ले जायी जाती थी, जिसे ब्रिटेन ने चीन से पट्टे पर ले रखा था।

वहाँ मुख्यत तीन महत्वपूण काफिला माग थे—एक था तिब्बत स होकर सिंकियाँग माग म मिलने वाला रास्ता दूसरा अलाशान से आनेवाला और तीसरा, मगोलिया के काफी भीतरी इलाको म आनवाला माग, ये सभी रास्ते पल तवु नामक स्थान पर आकर मिलते थ। ये काफिल आश्चयजनक रूप से लबे हुआ करते थे जिनमे एक लाख या उससे भी अधिक पशु—अधिकतर ऊँट लेकिन काफी सख्या म खच्चर भी हुआ करते थे। तियनसिन म प्रेषित माल उतारन से पूव वे कई हजार मील का यात्रा किया करते थे। पूछताछ करन पर मुझे बताया गया कि यह ऊन चीन के लिए नही बल्कि मानचेस्टर तथा लकाशायर की मिलो के लिए पोता

द्वारा इग्लैण्ड भेजी जाती थी।

महेन्द्रप्रताप इन काफिला म बहुत रुचि नही रखत थ। किन्तु मैं उनके बारे म विचार करता रहता था। मैं जहाँ से यह ऊन लाई जाती थी या जहा पैदा हाती थी उस क्षेत्र म जाने और उस व्यापार के विषय म और अधिक जानकारी पान का इच्छुक था।

महेन्द्रप्रताप के तोक्यो लौट आने के बाद मैं मचुको मे ही रह गया और मैंने अपने मित्र लेफ्टिनन्ट जनरल इतगाकी के साथ सम्पक स्थापित किया। मैंने उन्हे बताया कि मैं एक बार पुन चीन तथा मगोलिया जाना चाहता हूँ। उन्होने अनुभव किया कि मैं स्वय को गभीर जोखिम म डाल रहा हूँ किन्तु मैंने अपनी प्रथम यात्रा के दौरान पर्याप्त आत्मविश्वास अजित कर लिया था। अन्तत वे राजी हो गय और तोक्यो स अनुमति प्राप्त करने के बाद मेरी यात्रा का बढिया और विस्तृत प्रबध करने को तयार हो गये। लेकिन मैंने निणय किया कि मै जरूरी चीजे ही, और वह भी कम से-कम ही ले जाऊँगा। कवल कुछ जानवर—जो मेरे व मेरे नौकर के परिवहन के लिए काफी होगे और जहां कही चीजे आदि मिल सकती हो, एस एक पडाव स दूसर पडाव तक खाद्य आर तबू लगान का सामान आदि ल जान का काम करेंग।

अपनी पिछली यात्रा म मैंने अनेक यूरोपीय, विशेषकर ब्रिटिश धम-प्रचारको को उस क्षत्र म लागा के बीच चिकित्सा-काय करत देखा था। ऐसी परोपकारी सेवा के माध्यम स उन्हाने वहाँ के लोगो के बीच काफी प्रभाव अजित कर लिया था। कदाचित उस क्षेत्र म पच्चीस या तीस व्यक्तियो क लिए एक धम प्रचारक सेवारत था। धम परिवतन के सन्दभ म उन्हे बहुत सफलता तो नही मिली थी किन्तु अपनी चिकित्सा सेवाओ के कारण काफी सद्भाव अजित कर लिया था। उन्होन स्थानीय बोलियाँ सीख ली थी और उस स्थान म सुलभ प्रत्यक सुविधा हासिल कर ली थी। बहुतो की पत्नियाँ भी वहा उनके साथ थी और कुछ के पास तो मोटर गाडियाँ भी थी। लेकिन मुझे यह सन्देह होता था कि उन लोगो म गुप्त चर भी थे जो विभिन्न देशो को और विशेषकर इग्लण्ड को सूचना पहुँचाया करते थ। कदाचित उनमे से कुछ भीतरी मगोलिया क्षेत्र से व्यापार मार्गों पर आने जानेवाले चीनियो को लोभ चम की सप्लाई करने मे सहायता भी करते थे।

मसीही धम प्रचारको के समान ही जापानियो के पास भी चिकित्सा व अन्य समाज सवा का काय करने की क्षमता सम्पन्न जेनरिन क्योकाई जसी स्वय सेवी सस्थाएँ थी लेकिन चूकि क्वानतुग सेना अभी भी मचुको के सैनिक तथा राज-नीतिक दृढीकरण मे अत्यधिक व्यस्त थी, इसलिए मैंने एक चिकित्सा दल को अपन साथ ल जान का प्रस्ताव इतगाकी के सम्मुख रखने या विचार त्याग दिया। इतना ही नही, पुर्नविचार करने पर मैंने निणय किया कि मुझे अपनी यात्रा को

सुदढ करत आय थे। यह स्थान, सामान्य अथ म, राजधानी नही कहा जा सकता था। वहाँ कोई इमारते न थी केवल तारपाल के कुछ खेम और मिट्टी की योपडियाँ थी। एक मगोलियाई समुदाय के लिए यह एक सामान्य निवास व्यवस्था थी, इसम अनेक गट' थे जो एक साथ मिलकर मगोलियाई भाषा मे, 'एल' कहलात थे और सामान्यत घाटिया म स्थित हात थे। वही मेरी राजकुमार तेह से दूसरी बार भेंट हुई थी। व मुझे दूसरी बार दखकर आश्चयचकित रह गये थे किन्तु पहले की भाति ही मरा स्वागत सत्कार करने म सौजन्यता बरत रहे थे। उन्हाने मरे लिए एक तबू का प्रबन्ध करवा दिया जो आशा से अधिक आराम देह था। उसम एक अगीठी की भी व्यवस्था थी जो खाना पकाने की भट्टी जैसी थी। गोबर का उपला ही वहाँ का इधन था। वहा कोई भी वनस्पति नही उगती थी और इसीलिए वहाँ कोई इमारती लकडी या इधन की लकडी सुलभ न थी।

हमारी बातचीत मगोलियाई बोली म हुई जिसम मैं काफी पारगत हो चुका था। राजकुमार तेह एक प्रबुद्ध व्यक्ति थे किंतु उन्ह बाहरी जगत का ज्ञान बिलकुल नही था। मरे मन म उनके लिए बहुत सहानुभूति जागी क्योकि उनकी स्थिति अनिश्चित तथा अवाछनीय थी। उनके गिद तीन शक्तिया का प्रभाव था। एक था चीन जहा, अनक सनिक सरदारो के कारण, जो अपन नियन्त्रित क्षेत्र को अपना प्रान्त मानन की चेष्टा म थे बहुत अराजकता फैली हुई थी। नानकग म चियाककाय शेक देश म एकता स्थापित करने में प्रभावशाली सिद्ध नही हो रह थे। सोवियत सघ बाहरी मगोलिया क माध्यम से दवाव डाल रहा था और मचुको के सघटन के बाद स जापान अपना प्रभाव बढाता जा रहा था जो मगोलिया की सीमा तक आ पहुँचा था।

एक अन्य समस्या भी थी। माओ त्स-तुग के नतत्व म पडोस के विभिन्न चीनी प्रान्ता म कम्युनिस्ट सनाओ की गोरिल्ला गतिविधिया चल रही थी। सीमावर्ती प्रान्ता म से एक का प्रभारी फेग यू षान मगोल क्षत्र के उस पार के सिंगक्याग की सनिक व्यवस्था के साथ सम्पक जमाने का प्रयास कर रहा था। इन सबके बीच राजकुमार तेह की स्वायत्त सरकार की स्थिति शिलाओ से घिरी बाबी के समान थी। मगोल जनता म चीनियो के प्रति बहुत अधिक अविश्वास था और सोवियत सघ से इसलिए भय था कि वह उनके प्रिय धम का नाश कर सकता था।

जब मैंने राजकुमार तेह को उनकी स्थिति के बारे म बताया तो उन्होन मुझसे इस स्थिति के निदान के बारे म पूछा। मैने उन्ह बताया कि हालाकि मैं उनकी सहायता क लिए बेहद उत्सुक हू तो भी मै पूणतया निरापद किसी तरीके के बारे मे नही सोच पा रहा हूँ। यह बहाना करना कि जापानिया म ही विस्तार-

थी। एक मजाक भी प्रचलित था कि वहाँ के लोग अपने शरीर को गम रखने के लिए अपनी ढीली-ढाली पोशाक म जूए भर लेत थ जिनके काटने स गरमाई का अनुभव होता था।

एक और खतरा भी था जिसकी चेतावनी मुझे मिल चुकी थी। हालाकि लामाओ को ब्रह्मचय का कठोर रूप स पालन करना होता था किन्तु कहा जाता था कि उनकी ओर स जरा भी ढील दिखान पर स्थानीय नारिया यौन सबधो के आनन्द क लिए सदा तत्पर रहती थी। यहाँ तक कि लामा की इस स्वीकृति को व अपना विशेषाधिकार-सा मानती थी क्योंकि उनका विश्वास था कि लामा से प्राप्त सतान सुदर और अति बुद्धिमान होगी। निम्न स्तर का एक लामा ऐस प्रलोभन का शिकार होन के बाद भी जनता की नजरो से बचा रह सकता था। परन्तु रिमपोच्चे को हर समय अपनी प्रतिष्ठा बनाय रखनी होती थी क्योंकि उस पर लोगो की दृष्टि निरन्तर रहती थी और नारिया भी ऐसे उद्देश्यो के लिए उसके निकट आने स डरती थी।

अवतारी लामा या साक्षात बुद्ध की हैसियत स मैं स्त्रियो को अपने निकट आन से रोके रख सकता था। इस प्रकार ब्रह्मचय के माग स डावाडोल होने या और किसी मुसीबत म फँसन का मेरे समक्ष कोई खतरा नही था। स्थानीय नारियो तथा पुरुषो म गुप्त रोगो का भी बहुत अधिक प्रसार था। मगोलिया के एक कप मे स्वीडन के एक धम प्रचारक न मुझ बताया था कि यदि इन रोगो पर काबू पाने क लिए समुचित कारवाई नही की गयी तो समस्त मगोलियाई जाति एक या दो पीढियो म समाप्त हो सकती है।

मैंन अपने साथ किसी अगरक्षक को न ले जाने का भी निणय किया। उच्च लामाओ म स कुछ अपनी यात्राओ क दौरान दल बल सहित चलते थ। मैंने सोचा कि यह बात कुछ बेतुकी सी है कि म एक साक्षात बुद्ध और उसी नाते शान्ति तथा दया की मूर्ति होकर भी अपनी रक्षा के लिए हट्टे-कट्टे तगडे सिपाहियो की सहायता लू। मेरे पास बडे-बडे मनको की एक सुमिरनी थी जिसे मैं बौद्ध मत्रो का, जिनका कि मैं स्वय अथ नही समझता था धीमे स्वर म उच्चारण करते हुए जपता रहता था। मैंन अपन मित्रो को बताया कि एक सच्चे लामा के लिए जपमाला समस्त खतरो स बचाव और हर बुराई को दूर रखन के लिए सर्वाधिक सशक्त अस्त्र के समान है।

मैंने लोगो के बीच अनेक छोटे मोटे रोगो का उपचार भी आरभ कर दिया। यदि उनक सिर म पीडा होती तो मैं उनके स्वस्थ होने की प्राथना करता। कुछ समय बाद वे स्वस्थ हो जात और मेरे प्रति आभार प्रकट करते थ। जब प्राथना का कोई असर न होता तो मैं अपने पास सचित छोटी मोटी दवाइयो म से जो ठीक लगती उन्हे दे देता और अचरज की बात तो यह थी कि मेरी इस नीम हकीमी से

कितने ही रोगी तुरन्त चगे भी हो जाते थे। यदि ऐसे रोग ठीक न होता तो उस अभागे व्यक्ति का 'कम दोष' माना जाता, जैसा कि उन्होन स्वय अपनी धार्मिक शिक्षा मे सीखा। कहने की आवश्यकता नही कि ऐसे मनोरजक प्रयोग ऊब मिटाने और खतरनाक क्षेत्रो म अपनी यात्रा से सम्बद्ध खतरो का भय दूर करने के साथ साथ, स्थानीय जनता की मैत्री और सद्भाव प्राप्त करने म सहायक होते थे।

आज भी बहुत से लोगो के लिए मगोलिया दूरस्थ और काल्पनिक पाग्रीला जैसा इस विश्व से परे का रहस्यमय देश है। अन्य लोग इसे चगेजखा का देश मानते हैं जिसने सात शताब्दी पूव तत्कालीन सभ्य जगत के लगभग 80 प्रतिशत क्षेत्र मे जिसमे मध्य एशिया, चीन तथा यूरोप शामिल थे आतक मचा रखा था। अपने बेटो और पोतो के साथ मिलकर उसने इतिहास के विशालतम राज्य की स्थापना की थी। उसके बाद करीब छ सौ वष तक मगोलिया का पतन होता रहा और वह अलग-थलग पड गया। अब फिर विश्व की प्रमुख धारा म अवतरित हुआ है। अब वह दो राजनीतिक इकाइयो मे बँटा हुआ है—एक है भीतरी मगोलिया नामक स्वायत्त क्षेत्र, जो अब चीन के जन गणराज्य मे शामिल है और दूसरा है, बाहरी मगोलिया का क्षेत्र, जो है तो प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य किन्तु सोवियत प्रभाव की सीमा के भीतर स्थित है।

चगेज खाँ के तीसरे पोते कुबला खाँ की सन 1270 के दशक मे महत्वाकाक्षा थी कि जापान पर विजय प्राप्त की जाय। किन्तु उसे असफलता मिली जिसका श्रेय जापानियो ने कामी काजे अर्थात 'दवी आधी' को दिया जिसने उसके समस्त पोतो को जापानी बन्दरगाहो से विपरीत दिशा मे बहा दिया था। कालान्तर म महान तिब्बती महाधीश फगप ग्यालसेन के प्रभाव मे आकर उसने बौद्ध धम अपनाया। 16वी सदी म 'महान लामाओ' की शृखला म तृतीय सोनाम ग्यात्सो ने मगोल राजा अलतान खा के निमत्रण पर मगोलिया की यात्रा की और कोको नोर म अपनी भेंट के दौरान उसका महायान बौद्ध मत के 'पीत वग' म धम परिवतन कर लिया। अलतान खा ने अपने गुरु को दलाय लामा वज्रधर (सबको समाविष्ट करने वाला वज्र धारक लामा) की मानोपाधि से सम्मानित किया। दलाय अर्थात सागर' का मूल, मगोलियाई शब्द तले' म है। इस प्रकार तिब्बत तथा मगोलिया दोनो की धम सस्कृति की जडे भारत मे स्थित हैं जहा से बौद्ध मत अन्य देशो को फला है।

भगवान बुद्ध के देश का होने के कारण मेरी स्थिति स्वाभाविक रूप से ही अति लाभकर थी। जिन मगोलो के सम्पक म मैं आया वे सब मेरे प्रति पूज्य भाव प्रदर्शित करते थे तथा मुझे धम रिमपोच्चे यानी समस्त सद्गुणो का अवतार मानते थे। अगले पडाव तक पहुँचने से पूव ही वहाँ समाचार पहुँच जाता था कि धर्म रिमपोच्चे आ रहे है और उन्हे हर प्रकार की सेवा-सहायता

सुलभ कराई जानी चाहिए। ये बात बडी आश्चयजनक थी कि जिन क्षत्रा मे डाक-तार या रेडियो की कोई व्यवस्था न थी वहा इतनी जल्दी समाचार कैसे पहुँच जाता था।

अलापान की मरी यात्रा सर्वाधिक भयकारी थी। उजिनो म अलापान तक की यात्रा की अनुमानित अवधि दो सप्ताह थी। इस अवधि म रत के असीम विस्तार क अलावा कुछ भी दिखाई न दिया था। यात्रा म यह जानने के लिए भी कि सही दिशा मे जा रहे है या नही मागदशक पर निभर रहना होता था। ये मार्गदशक विलक्षण हात ये। केवल अत प्रज्ञा के बल पर व रगिस्तान मे इस प्रकार मार्गदशन कर सकत थ जसे पोत का कप्तान या विमान का चालक कुतुबनुमा और कम्प्यूटरा की सहायता स सागर के वक्ष पर या नीले आकाश म अपना रास्ता तय करता है। कदाचित ऊँट म भी जिसे रेगिस्तान का जहाज़ कहा जाता ह एक निहित स्वचालित सहजबुद्धि होती है जा मागदशन म सहायक बनती है। जहा के मागदशक वायु तक की दिशा, गति और काल आदि की भविष्यवाणी कर सकत थे जिससे कि स्थान बदलत रेत के ढूहा स बचा जा सकता था।

सर्वाधिक कठिन समस्या थी, पानी के कुएँ की खोज कर पाना जो अलापान आर उजिनो के बीच म कही था। हमे अवश्य ही आठवे दिन तक उसे खोज कर वहा पहुचना था क्योकि उस समय तक साथ लाया गया जल समाप्त हो जाता था। ऊँटा के लिए सचित किये जानेवाले जल भडार को पुन भरा जाना था और हमारे पात्रो को भी भरा जाना था जिससे आनवाल आठ दिन तक गुज़ारा किया जा सके। यदि दुर्भाग्य से मध्य स्थित वह कुआ हम छाड दते या खोज न पाते तो पशु और मनुष्य सभी अपने गतव्य तक पहुँचने मे पहले ही प्यास के कारण मत्यु को प्राप्त हो जाते। इसलिए निर्णायक दिवस को उस माग पर से गुजरनेवाले सभी यात्रियो की भाति मने मरे मागदशक और मेरे सेवक न भी प्रभु से प्राथना की कि चाहे व अल्ला हा, कृष्ण हो, बुद्ध हा या अय कोई शक्ति या भगवान हा, हम जल के स्रोत का सही मार्ग निर्देशित कर दे।

और जब हमारी विनती सुन ली गयी तो हमने वास्तव म उस प्रभु के प्रति आभार प्रकट किया। सध्या के समय हम ठीक जगह पहुँच गये और कुएँ पर रखे लकडी क ढक्कन को हटाया। (रगिस्तान मे कूपा को ढँकना आवश्यक व महत्वपूण था क्योकि यदि वे तख्त उस पर न रखे जात तो कुआ रेत स भर सकता था) जीवन रक्षक अमत जल को देखकर वही खमा गाड दिया। पानी भर लेने के बाद हम अगले दिन वहाँ स रवाना हो गये। इस प्रकार सही मार्गदशन के बल पर की गयी एक सप्ताह की यात्रा के बाद अलापान पहुच गय।

नीले आकाश के नीचे बियाबान म जो कभी चगेज़ खाँ का क्षत्र रहा था, पद्रह दिन की यात्रा दिन के समय, सूय और रेत हमारे हर पल के साथी थे रात्रि

क समय चद्रमा और तार अपना पूर्ण सौन्दर्य लिय हमारे साथ होते थे। लेकिन हम बचाये रखनवाली निश्चित रूप से सबसे बडी शक्ति थी 'हमारा आत्मविश्वास और हमारे ऊपर का भगवान'।

अलापान म मैं दस दिन रहा। जो सूचना मैं चाहता था वह सब पाना बहुत आसान था। एक प्रकार स नया कुछ भी नही था, किन्तु इस बात की पुष्टि हो गयी थी कि अविश्वसनीय मात्रा म ऊन ऊँटो के काफिला मे अलापान से पावतउ भेजी जाती थी जहा से, जैसाकि पहले कहा जा चुका है, उसे तीएनसिन भेजा जाता था और वहाँ जहाज़ पर लादकर इग्लैंड भेज दिया जाता था।

मैं स्थानीय राजा से अनेक बार मिला। एक भारतीय लामा द्वारा दिल दहला दन वाला रगिस्तान पारकर पद्रह दिन तक यात्रा करन क दुस्साहस स वह आश्चयचकित रह गया। वह बडा ही खुशमिज़ाज, दोस्त किस्म का आदमी था और मेरे अनुरोध पर उसने मुझे एक नया माग दशक दिया। वह माग-दशक वही का एक सरदार था। वापसी की यात्रा के लिए ऊँटा का भी नया दल दिया। उजिनो लौटत हुए यात्रा उतनी ही कठिन थी जितनी वहा स अलापान की यात्रा। किन्तु हम दो सप्ताह बाद, सकुशल वापस आ गय। इधर हाल के वर्षों म मुझे जो अफवाह सुनने को मिली है उनसे प्रतीत होता है कि चीन सरकार का परमाणु अस्त्र परीक्षण स्थला म स एक केद्र उसी रगिस्तान म है जहा मैन सन 1935 म यात्रा की थी।

उजिनो के राजा को अलापान के राजा स भी बढकर अचरज हुआ। किंतु उस यह जानकर सतोष हुआ कि मैं जीवित और सही-सलामत था। उसन बल पूवक कहा कि मैं कुछ दिन रुककर विश्राम करूँ और उसके साथ माजाग खेला करू। मुझे उस खेल की जानकारी थी क्याकि वह मेल जापान और मचुका म बहुत लोकप्रिय था। उस खेलने म मुझे काफी दक्षता प्राप्त थी। राजा विशेष कुशल खिलाडी न था और यदि मै चाहता तो हर बार उस हरा सकता था। लेकिन राजा को सदा नही हराना चाहिए। अधिकतर ता आपका हारना ही चाहिए वर्ना अशिष्टता होती है। खेल म यह जताय बिना हारना कि आप जान कर एसा कर रह हैं इसके लिए भी काफी हद तक दक्षता की ज़रूरत होती है। किन्तु मैं उचित युक्तिया का उपयोग करता था। सही भगिमाआ और ध्वनिया का उपयोग करता और इस बात का ध्यान रखता कि ज्यादातर राजा ही खेल म जीत। वह बहुत प्रसन्न था।

मरी सिंकियांग, विशेषकर हमी और उरुमाची जान की दा कारणा स प्रबल इच्छा थी। पहली बात तो यह कि मैं उनके व्यापार के विषय म और अधिक जानना चाहता था जिसके लिए चीनी प्रात एक महत्वपूण क्षेत्र माना जाता था। दूसरी बात यह कि मैं उस क्षेत्र की स्थिति का देखन का इच्छुक था जहाँ स

प्रत्यक्षत हिमालय से होकर भारत को रास्ता जाता था। यौवन की तरग और उत्साह के आवेग म मने चीनी तीर्थयात्री फाहियान और ह्यूवानसाग, वेनिस के मार्कोपोलो और स्वीडन क स्वेन हेडिन व अन्य लोगो की बात सोची। उन लोगो ने इतना सब किया था क्या मैं नही कर सकता था?

मैने इस विषय मे राजा स बात की। वह मरे आशावाद से चकित रह गया किन्तु उसन मुझे आवश्यक पशु एक परिचर और खाद्य सामग्री आदि दन की कृपा की। चूकि वह यात्रा खतरनाक हो सकती थी इसलिए उसन मुझे सावधानी बरतन की सलाह भी दी। उसन मेरे लिए सशक्त अग-रक्षका का एक दल भेजना चाहा किन्तु मन एक लामा बना रहना ही बहतर समझा और किसी विशप रक्षा-व्यवस्था के प्रस्ताव को स्वीकार नही किया। कालातर म अपन इस अतिशय विश्वास पर मुझे अफसोस करना पडा था।

इस बार अधिकतर पठारी माग था। लेकिन ऊँचे ऊँचे पवत भी थे जिनमे स कुछ 15 हजार फुट या उससे भी ऊँचे थ। सिंकिग हालाकि अधिकतर ऊजड बजर था किन्तु वहाँ का दृश्य बहुत भव्य था। वह स्थान गोबी और अलाशान के रेतीले समुद्र से एकदम विपरीत था। कारवाँ का माग अति दुगम इलाका स होकर गुजरता था, जिसके कुछ हिस्से भयकर शिला की खडी चट्टानो के नीचे थे जहाँ दर्रों म से वायु ऐसे साँय-साँय करती थी मानो विशाल सुरगो म से दबाव के साथ हवा छोडी जा रही हो। ऐसे स्थलो पर व्यक्ति की आवाज़ ऐसी गूज पदा करती थी मानो आपकी आवाज सौ मील दूर तक सुनी जा सकती हो।

माग अनेक स्थला पर बहुत ही खतरनाक था किन्तु ऊँटो के सधे हुए कदम आश्चयजनक थे। मेरा अपना कारवाँ तो बहुत छोटा था जिसमे केवल तीन पशु ही थे। कभी-कभी दो दिन की यात्रा के बाद ही हमको कोई छोटी आबादी वाला गाँव मिलता था। हम उन मार्गों पर चलनवाल अन्य यात्रियो की तरह करीब 12 मील प्रतिदिन की रफ्तार स चलत। दो सप्ताह के बाद मर विचार म हम हामी के निकट पहुचे जो सिंकियाँग म मेर मतलब का प्रथम पडाव था। वहाँ पहली बार हम मुसीबत का सामना करना पडा।

मगोलियाई क्षेत्र म मेरी यात्रा बहुत शातिपूण रही थी। कारवाँ के मार्गों पर आन जाने वाले व्यापारियो या लामाओ को परेशान करनेवाल कोई चोर-ठग नही दिखायी दिय थे। किन्तु सिंकियाग म ठगी चोरी पर कोई नियत्रण नही प्रतीत होता था। सशस्त्र अगरक्षका रहित यात्रिया की सुरक्षा का कोई आश्वासन न था। सम्भवत किसी चोर-लुटेरे ने मेरे छोट-से कारवाँ को ताड लिया था जिसकी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध न था।

पहली शाम को हामी म जब मेर दल न तबू गाडा तो मशीनवाली बदूक लिये

एक चीनी हमारे तबू म घुस आया और मरे नौकर से अपन पीछे-पीछे आन को कहा। आश्चयवश मैने उस घुस आनेवाले व्यक्ति स पूछा कि मामला क्या था? उसन केवल मुझे घूरकर दखा और काई उत्तर नही दिया किन्तु मेरे परिचर को आदश दिया कि वह उसके साथ चले। मरा परिचर डर गया, जोर-जोर स रान लगा और मुझसे सहायता की माँग करन लगा।

गत तीन मास की यात्राओ के दौरान मुझे एसी किसी स्थिति का सामना न करना पडा था लेकिन यहा उस बदूकधारी चीनी का दखकर मुझे पता लग गया कि मामला कुछ गडबड था। एक घटे के बाद एक और चीनी आया और स्वय का लो पिंग फू कहकर परिचित कराया। वह असाधारण रूप से लबा, ऊँचा और गोरा था और अंग्रेजी भाषा बालता था। उसन कहा कि वह तिब्बत जानवाला एक सामान्य यात्री था, हालाकि मुझे आश्चय व सदह हो चला था कि वह कही सुरक्षा स सम्बद्ध बतार सचालक या मकनिक न हो। एस लागा स मैं कभी-कभी मगोलिया म मिल चुका था। मेर पास ऐसा कोई साधन न था कि मैं जान पाता कि वह वास्तव म कौन था और उसका विश्वास करन के अलावा मर पास कोई चारा भी न था। उसन मुझे बताया कि "एक कुख्यात डाकू न मरे नौकर का, पकड लिया है और अगले दिन वह उसे जान से मार डालेगा और आज वही डाकू मर भाग्य का भी फसला करन के लिए वही आनवाला है"।

मरे लिए यह बहुत बडी उलझन पैदा हा गयी। यह लो पिंग फू कौन हो सकता था और उसकी मशा क्या थी, उस तथाकथित डाकू की बात क स पता चली और मर नौकर की सम्भावित मौत की बात का समाचार भी कस मिला आदि प्रश्न मरे दिमाग म चक्कर काटन लग। न जान क्या यह विचार मरे मानस म बना रहा कि वह बतार का तकनीशियन मात्र हो सकता था न कि सचालक क्योकि मुझे आसपास कही कोई ऐंटेना दिखायी न दिया था। लेकिन शीघ्र ही मुझे यह सदह हान लगा कि जरूर उसकी उस डाकू स मिलीभगत थी जा मर परिचर को पकडकर ले गया था। हमारे वार्तालाप क दौरान फू न मुझस या ही पूछा कि मेरे पास कितन युआन (चाँदी का चीनी सिक्का जिसका मूल्य उन दिना तीन रुपय के बराबर हुआ करता था) है? मैंन उस बताया कि मर पास पचास सिक्क हैं। बतान के बाद ही मैंन सोचना शुरू किया कि उसने मुझस यह प्रश्न क्या किया? वह बाहर चला गया और थोडी ही दर म लोट आया। फिर मुझस बाला कि क्योकि वह मरी रक्षा करना चाहता है इसलिए डाकुआ क सरदार स बातचीत करके फ़सला करवा दगा। उसन कहा कि यह बड खेद की बात है कि मुझ जस 'श्रेष्ठ' का डाकुआ द्वारा हानि पहुचाई जा रही है। इसलिए यदि उस मैं अपना समस्त धन द दू ता वह मरी खातिर जोखिम उठान का तयार है।

मैंने एक क्षण के लिए सोचा और एक प्रसिद्ध मलयालम कवि की बात याद हो आयी कि मनुष्य की बहुत-सी मुसीबतों का कारण धन और नारी होती हैं। मरी परेशानी का कारण कोइ नारी न थी किन्तु मरे पास कुछ धन था। य फमला करके कि सिंकियाग म मर जान स जीवित बने रहना बेहतर रहेगा और स्वय का ये सात्वना देत हुए कि बहादुरी के बजाय अक्लमदी से काम लेना ही यहाँ ठीक रहेगा, मैंने अपना समस्त धन फू को थमा दिया। जब मैंने उनस उस प्रदेश म आगे बढने के लिए सहायता की माँग की तो उसने अस्वीकार कर दिया और कहा कि मुझे आगे नही बल्कि वापस लौट जाना चाहिए। उस क्षण मुझे पक्का यकीन हा गया कि फू स्वय ही वह डाकू सरदार था। आखिरी दाँव के तौर पर मैंन उससे अनुरोध किया कि कम स कम मेरा ची ी परिचर ता मुझे लौटा दिया जाय किन्तु उसन साफ इनकार कर दिया। एक स्वामिभक्त सेवक क प्रति भारी मन लेकर जिस उस अत्याचारी क चगुल मे छुडान म मैं कुछ न कर सकता था, मैं उलटे पाव लाटकर पुन उजिनो पहुँच गया।

सिंकियाग मे हमी उरुची तथा तिब्बत यात्रा की अपनी परियोजना मे असफलता के बाद मुझे बहुत निराशा हुई। मैंने इस बात की उजिनो के राजा से चर्चा की। उन्होन काफी सहानुभूति दर्शायी और खेद प्रकट किया कि मैंने सुरक्षा सम्बन्धी उनकी सलाह पर कान नही दिया था। वास्तव मे मुझे उनसे कही अधिक खेद था। मैंने अपनी सुमिरनी पर बहुत अधिक आस्था जमा ली थी और काफी दु ख भोगने के बाद मैंने यह सीखा कि उस का सिंकियाग म कोई महत्व न था।

किन्तु राजा न मुझे एक ऐसा समाचार दिया जिसकी मुझे कतई प्रत्याशा न थी। सिंकियाग की मेरी यात्रा के दौरान एक छोटा सा जापानी सनिक विमान उजिनो मे आया था और उस पर एक अफसर सवार था जो मरे बारे मे पूछताछ कर रहा था। राजा उस केवल इतना ही बता सका था कि मै सिंकियाग चला गया था। विमान लौट गया। मै असमजस म पड गया लेकिन तब मुझे और कुछ ज्ञात न हो सका। सिंकिग लौटन के बाद ही मुझे विस्तत जानकारी मिली जिसकी मैं यहा सक्षिप्त चर्चा ही करूगा ताकि बाद के घटना क्रम के वणन म बाधा न आये।

हुआ यो कि यात्रा स मेरी वापसी मे विलम्ब होने के कारण क्वानतुग सेना कुछ चिंतित थी और इसलिए भी परेशान थी कि उस मेरा कोई समाचार नही मिला था। एक अफवाह यह भी फल गयी थी कि मै खो गया था। जनरल इतगाकी ने जो विशेष रूप से चिंतित थे सना का एक विमान मुझे खोजने के लिए भेजन का निणय किया, चूकि सेना को रिपोट यह मिली थी कि मैं अलापान के लिए रवाना हो गया था इसलिए विमान के क्रू न वही मुझे ढूढन का निणय

किया। यह लगभग वही समय था जबकि क्वानतुग सना ने अलापान मे एक ऐसी तोक्कुमुक्किकन यानी गुप्तचर चौकी की स्थापना का निणय किया था जो भीतरी मगोलिया मे, जहाँ तक सभव हो, दूरस्थ क्षेत्र तक उपयोगी सिद्ध हो सके। सेना के एक जनरल के भाई तथा रिज़व अधिकारी मेजर योकोता को इस चौकी का कायभार सँभालन के लिए मनोनीत किया गया था। इस केन्द्र मे एक वायरलेस सट भी रखा जाना था जा अन्य बाहरी चौकियो और मुख्यालय स सलग्न रहे।

अलापान म तोक्कुमुक्किकन की स्थापना के पूव ही मैं उजिना की ओर अपनी वापसी यात्रा आरम्भ कर चुका था। इस बात का बहुत अधिक प्रचार न हो कि मेरी खोज के प्रयास किये जा रहे ह इसलिए सना ने यह कहानी फलाई कि वहाँ की नयी चौकी का मुआयना करने के उद्देश्य स कुछ अधिकारियो को लेकर एक विमान अलापान जा रहा है। किन्तु उस छोटे से विमान पर (जिसमे दो या तीन व्यक्तियो के बैठने की ही गुजाइश थी) एक दो कनिष्ठ अधिकारियो के साथ जनरल इतगाकी भी सवार हुए। ये बात अत्यधिक असामान्य थी कि एक जनरल एक बाहरी चौकी का मुआयना करने के लिए यात्रा करे। वास्तव म वे मरी कुशल के लिए इतने चितित थे कि उन्हाने स्वय ही खोज-दल म शामिल होने का निणय किया। वे खामखाह ही जोखिम उठा रहे थे।

जब अलापान मे यह पता चला कि मैं उजिनो की ओर वापस चल पडा हूँ तो जनरल इतगाकी तोक्कुमुक्किन म ठहर गए और मेजर योकोता के साथ विमान को पूछताछ के लिए उजिनो भेज दिया। यह वही विमान था जिसके विषय म उजिनो के शासक महोदय मुझम पूछ रह थे। व उक्त अधिकारी को वही सब बता सकत थे जो उस समय वे जानत थे। हालांकि खोजी दल चाहता था कि मुझे और मेर छोटे से कारवाँ का खोजने के लिए सिकियाग पर उडान भरी जाय लेकिन विमान म पेटोल कम हो गया था। इसलिए वह विमान जनरल इतगाकी को लान के लिए अलापान लौट गया और कालगन होत हुए सिक्यािग लौट आया। चूकि मरे बारे म कोई सूचना प्राप्त नही हो सकी थी इसीलिए मेरा नाम लापता व्यक्तियो की सूची म आ गया था। मगोलियाई मामलो के कायभारी क्वानतुग सना के विभागाध्यक्ष, लेफ्टिनन्ट कनल र्यूकिच्चि तनाका न इसका अथ ये लगाया कि मेरी मृत्यु हो चुकी है। उन्होने और मरे जापानी मित्रो म से कुछ ने मिलकर मेरी मृत्यु का शोक मनान क लिए एक साके भोज (साके चावल की बनी जापानी शराब होती है) का आयोजन किया।

ऊन के व्यापार की बात पुन करें। मैं यह देख चुका था कि हालांकि उस माल का अधिकाश मगोलिया से आता था तो भी व्यापारी सभी चीनी मुसलमान थ। इसम किसी मुद्रा का विनिमय नही होता था और व्यापार वस्तु विनिमय के आधार

पर किया जाता था। मगोल लोग विभिन्न वस्तुआ, जबकि गहूँ, बाजरा, सूती कपडा और कमरबद, छुरी-काँटा, कसाई के छुरा और कटारा आदि क बदल म ऊन बेचा करत थे जिनका मुख्य आहार गोश्त था। उनके द्वारा खरीदी जान वाली लोकप्रिय वस्तुएँ थी चीनी लोम की टापियाँ, आईन, चाय और नमक।

लकिन सबस महत्वपूण वस्तु थी तम्बाकू। मगोल उस बडी मात्रा म खरीदा करत थे। वे उसका अनक तरीका स उपयोग किया करत थे, चबान के लिए धूम्रपान करने के लिए और उसस नसवार बनान क लिए। नसवार का आदान प्रदान मगोला और तिब्बत वासिया म आपसी अभिवादन का चिह्न होता था। इसी प्रथा के कारण, चीन म बन नसवार क डिब्बा व बातलो आदि की भारी माँग हुआ करती थी। मैंन बडी मात्रा म इग्लण्ड म बनी घटिया सिगरटें भी कारवाँ के लागो म बिकती देखी। तीनसिन के ब्रिटिश व्यापारी मगोलो को यह सिगरेट बेचकर अच्छा-खासा मुनाफा कमा रहे थ। एक मार्के का नाम था हतोमन। इस सिगरट को मैंने सुलगाकर पिया जा बहुत ही खराब निकली। उनके बदले मे दी जान वाली ऊन की मात्रा को देखत हुए इन घटिया सिगरेटा का मूल्य हद से ज्यादा था। स्पष्ट था कि ब्रिटिश व्यापारी सीधे-सादे और निधन मगोला को दिन दहाडे लूट रहे थे। मुझे उस अफीम-व्यापार की याद हा आयी जो बहुत स पश्चिमी दश सफलतापूवक चीन क साथ करते आय थे किन्तु मचुको म उन्हे सफलता नही मिली थी।

उजिनो से मैं मचूको लौटते हुए पावतऊ वापस पहुँच गया। यहाँ भी व्यापारी तथा असख्य सरायो के मालिक समद्ध चीनी मुसलमान थ जो अपनी आय के लिए पूणतया नही तो अधिकाशत ऊन के व्यापार पर ही निभर करत थ। सिकियाग मे लूटे जाने के बाद मैं एक सम्मानित भिखारी ही था और अन्य लोगा की दया पर किसी प्रकार निर्वाह कर रहा था और मचूको पहुचन तक एसा ही रहने की स्थिति म समझौता कर चुका था।

सिंक्यिाग म पहले तो किसी को यह विश्वास ही नही हुआ कि म स्वय मैं ही था कोई भूत नही क्याकि वे तो मुझे खो गया' समझकर मेरी सब उम्मीद छोड चुके थे और एक शोक सभा भी आयोजित कर चुके थे। किन्तु मैं ता मरा नही था और मेरी शक्ल सूरत मे भी मेरे चेहरे पर उगी दाढी के सिवाय कोई महत्वपूण अन्तर न था। थोडे ही समय म सनिक अधिकारीगण और मेरे अन्य मित्र मान गये कि मैं जीवित हू। उससे पूव आयोजित शोक सभा की क्षतिपूर्ति के रूप म उन्होने मेरी वापसी का उत्सव बडे जोश के साथ मनाया।

जब मैं बियाबान म था उस समय सिंकिग म एक महत्वपूण राजनीतिक घटना हुई थी। मैं अलापान के माग म पाइ लिंग मियाओ नामक स्थान पर राज कुमार तेह के साथ के वार्तालाप की चर्चा पहल कर चुका हूँ। उसके कुछ समय बाद

राजकुमार जनरल इतगाकी से मिलने आये और कोकुतो होटल मे ठहरे जो सिंकियाग मे मेरा भी प्रिय स्थान था। इस यात्रा के दौरान राजकुमार तेह की अध्यक्षता मे एक स्वतत्र 'भीतरी मगोलियाई महासघ' की स्थापना म जापान की सहायता सम्बधी बातचीत हुई थी और अ तत मेनकुको या जापानी उच्चारण के अनुसार माक्यो राज्य की स्थापना की घोषणा कर दी गयी थी। इससे पूव क्वानतुग सना के अन्तगत 'विशेष सेवा' विभाग के अध्यक्ष जनरल केनजी दोयहरा ने मगोला द्वारा सुइयान प्रदेश के निय त्रण का प्रबध भी कर दिया था। नवराज्य मे निगसिया के भाग भी शामिल थे और उसकी राजधानी कालगान को बनाया गया था।

मुझे यह जानकर अचरज हुआ कि राजकुमार तेह न इन सब बाता से सहमति प्रकट की थी जो अस्वाभाविक थी। कालगन एक चीनी नगर था जहाँ की अथ व्यवस्था मगोलो की पशुचारी ग्रामीण व्यवस्था से भिन्न थी। ऐसी स्थिति म शासक तथा शासितो के बीच का सम्बध निश्चित रूप से दुबल और अवास्तविक हो सकता था। मोक्यो का जम वस्तुत क्वानतुग सना के बल पर हुआ था जिस क्रिया म मगोलियाई राज्यो के भौगोलिक हितो की कोई परवाह नही की गयी थी। जापानी सत्ता के लिए इसकी सामूहिक या भौगोलिक महत्ता ही मूलत क्वानतुग सेना के लिए महत्वपूण प्रतीत होती थी। मुझे पता चला कि राजकुमार तह और मचुको सरकार प्रतिनिधिया की सहायता प्राप्त जापानी प्रतिनिधियो के बीच हुए समझौते मोक्यो के मगोल निवासिया पर थोप गये थे। मुझें यह भी पता चला कि वार्ता के अति महत्वपूण तथा निर्णायक चरण म जनरल इतगाकी सिंकियाग म उपस्थित न थे और इन निणयो के रचनाकार वास्तव म कनल रयूकिच्ची तनाका थे।

मैंने कनल तनाका को सदा ही सन्देह की दृष्टि स दखा है। उनकी ईमान दारी पर मुझे शक होता था। वे राजकुमार तेह जसे सीधे और भले आदमी की आँखा मे धूल झाक सकत थे जसाकि बाद म उ होने अपने भूतपूव अध्यक्ष जनरल इतगाकी के साथ किया था। वे कपटी थे। जब जनरल इतगाकी क्वानतुग सना के अध्यक्ष थे तब तनाका उनके विश्वास पात्र थे, दाहिने हाथ थे और जनरल इतगाकी भी उन पर पूरा भरोसा करते थे। किन्तु युद्ध अपराध के मुकदम के दौरान तनाका न अपनी स्वामिभक्ति का केद्र बदल लिया और उह धोखा दिया। उ होने बहुत से ऐसे मामला म ग़लत गवाही दी जिनस जनरल इतगाकी का कोई सम्बध न था। वे प्रमुख अमरीकी अभियाक्ता वकील कीनन के हिमायती बन गये और वकील को ऐसी झूठी सामग्री सुलभ करायी जिसके कारण अन्तत जनरल इतगाकी को मृत्यु दड दिया गया।

मेरी मगोलिया यात्रा म, जिसम सिंकियांग को छोटी-सी सैर भी शामिल

थी लगभग छह मास का समय लगा था। म सन् 1935 रा शात ऋतु व अन्त म सिंकिग लौट आया और मन 1936 व आरम्भ म तोक्यो आन रा निणय किया ताकि जापान सरकार तथा मनिक हाइ कमान व वरिष्ठ अधिकारियो स भट करूँ और उन्ह बताऊँ कि मगोलिया म ऊन क व्यापार क सम्बध म मन क्या देखा है और भविष्य म कौन सी अनुवर्ती कारवाई की जा सकती है। सन् 1936 के फरवरी मास म मैं तोक्यो पहुँच गया।

15

तोक्यो यात्रा एक चर्चा

सन 1936 के आरम्भ मे तोक्यो म बहुत गडबडो फली हुई थी। नगर पर लगभग माशल ला प्रशासन लागू था। सरकार को एक अति सकटपूण दौर से गुजरना पड रहा था। एक ओर तो सेना की आर से प्रशासन के नियत्रण पर बल दिया जा रहा था दूसरी ओर सेना म ही अनुशासनहीनता की समस्या फली थी। सामुराय (युद्ध वीर) भावना की वापसी क पक्ष म एक लहर-सी फली थी और इस बात की बहुत चर्चा हो रही थी कि योवा (पुनर्जागरण) का युग आना चाहिए। इन सबका अथ था कि विस्तारवादी प्रवत्तियाँ उभरकर प्रत्यक्ष हो रही थी।

सना मे अन्त कलह कुछ समय स भीतर ही भीतर सुलग रहा था। 12 अगस्त 1935 को एक युवा अधिकारी लेटिफ्नेन्ट कनल साबूसो एसावा न अपनी तलवार से सनिक मामला के ब्यूरो के निदेशक, जनरल तत्सुजान नगाता की हत्या कर दी थी। 26 फरवरी 1936 की वारदात म सना के कुछ उग्रवादी योद्धा शामिल थे जो कुछ अवाछित बडे-बडे सरकारी नेताआ का खात्मा करके राज्य मे एक परि-वतन लाना चाहत थे। उनम वित्त मत्री ताकाहाशी और सैनिक शिक्षा व्यवस्था क इन्सपक्टर जनरल जोतारो वतनावे तथा भूतपूव प्रधान मत्री एडमिरल साइतो के नाम उल्लेखनीय हैं। राजकुमार सयोनजी और महाप्रबधक एडमिरल कातरो सुजुकी की हत्या की भी कोशिश की गयी थी। प्रधान मत्री ओकादा सिफ इसलिए बच रहे कि उन्ह गलती स उनका बहनोई समझा गया जिन्ह मौत के घाट उतार दिया गया था।

इस हत्याकाण्ड म महत्वपूण बात यह थी कि एक दो छिटपुट निजी महत्वाकाक्षापूण वारदाता के अलावा इस बात का कोई सकेत न था कि सना के उक्त विद्राह वास्तव म शक्तिशाली विद्रोहिया की ओर स अपन निजी स्वाथ से प्ररित

नही था। इस विप्लव म शामिल प्रत्यक सनिक पहल क समान ही सम्राट क प्रति पूणत समर्पित था। वस्तुत असतुष्ट सनिको की शिकायत यह थी कि प्रशासन तत्र म उदासीनता की भावना स सम्राट क सम्मान का क्षय हो रहा है। कुछ इतिहास शास्त्री इस कथन म जापानी लोगो क परम्परागत चरित्र की झलक दखत है।

कोकी हिराता न एडमिरल ओकादा के स्थान पर प्रधान मत्री पद सभालत ही सना के बहुत स जनरलो को जो युवा विद्रोहियो का पक्ष लन के जिम्मेवार थ अपदस्थ किया और युद्ध परिषद की अध्यक्षता जनरल जिरो मिनामी को सौपी जिन्ह मचुको स स्थानान्तरित करक तोक्यो बुलाया गया था। हिदकी तोजो को जो जापान म ब्रिगेडियर के पद पर आसीन थे और कठोर प्रशासक मान जाते थे, क्वानतुग सेना की सशस्त्र पुलिस की टुकडी क नतत्व क लिए मजर जनरल की पदवी दकर मचुको भेज दिया गया। जनरल इतगाकी को, जो क्वानतुग सना क कमाण्डर थ आशका थी कि तोक्यो की शाही सना की गडबडी क्वानतुग म भी शायद दुहराइ जाय। तोजो स्थिति पर काबू पान म पूणतया सफल रहे।

सनाओ क भीतर की सभाव्य अवज्ञा की जडें भले ही कमजोर की गयी हो लेकिन कुल सरकार तत्र पर सेना क बढत प्रभुत्व की स्थिति को रोकन म कोई ठोस सफलता प्राप्त न की जा सकी।

सेना की योजना म मचुको को विशेष महत्व दिया जा रहा था। सनिक अधिकारीगण चाहत थे कि उस राज्य के साथ निकट सम्पक तथा रूस के सभाव्य आक्रमण की दष्टि स एक सुरक्षात्मक इकाई क नात जापान की राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के लिए नवराज्य का विकास शीघ्र सम्पन्न किया जाय और इसके साथ ही प्रशान्त सागर क्षत्र म ब्रिटिश तथा अमरीकी हितो को शिथिल करने के लिए जापान की नौशक्ति बढ़ायी जाय। अत सनिक मद म खच की राशि कुल राष्ट्रीय बजट क लगभग आधे के बराबर पहुँच चुकी थी। हिरोता मत्रिमडल म युद्ध मत्री जनरल जुइची तरावुच्ची के समथको का बोलवाला था।

इन दिनो मैं अपना अधिकाश समय तोक्यो म बिता रहा था और प्राय सेना के उच्चधिकारियो स मिलता रहता था। इस आधार पर जापान म स्थित ब्रिटिश गुप्तचर विभाग न मेरे बारे मे एक पूणतया झूठी रिपोट भारत सरकार को भेज दी कि जापान सरकार तथा क्वानतुग सेना ने सयुक्त रूप से मुझे उच्चस्तरीय नागरिक गुप्तचर अधिकारी के पद पर नियुक्त करने का प्रस्ताव रखा है और मुझे जापानी सेना म मेजर जनरल का ओहदा दिया जाने वाला है।

यह एक दुर्भाग्यपूण रिपोट थी। जापानी पक्ष मुझे भली प्रकार जानता था कि मै कभी भी जापान सरकार की नौकरी करने को राजी नही होऊँगा। ब्रिटिश

गुप्तचर या तो इस बात को नही जानते थे या वस्तुस्थिति की पूरी जानकारी के बावजूद वे उच्चतर अधिकारियो को गलत सूचना दे रहे थे। यह सही था कि अपने ब्रिटिश विरोधी कायकलाप म सुविधाएँ प्राप्त करने के उद्देश्य से मैं जापानियो के साथ विभिन्न स्तरो पर सहयोग कर रहा था किन्तु वह स्थिति उनकी नौकरी करने की स्थिति से बहुत भिन्न थी। यह मेरी आस्था की बात थी कि भारत के स्वतन्त्रता-अभियान सम्बन्धी अपनी गतिविधियो म जापानियो या अन्य किसी का भी हस्तक्षेप मेरे लिए स्वीकाय नही हो सकता था। किसी की भी नौकरी न करके ही अपने स्वतन्त्र कायकलाप पर मैं अपना अधिकार बनाये रख सकता था।

इस गलत रिपोट का प्रेरणा स्रोत कदाचित यह था कि जापानियो तथा क्वानतुग सेना के मुख्यालय के साथ अपनी गतिविधियो म सुचारुता लाने और काम को आसान बनाने के लिए मुझे एक मेजर जनरल के ओहदे के समकक्ष माना जाने लगा था और मुझे किसी भी स्थान की यात्रा के लिए एक विशेष पास दिया गया था जिसके बल पर मुझे ऐसे ओहदे के अधिकारी के लिए स्वीकृत प्राथमिकता की सुविधा की माँग का अधिकार प्राप्त था। इन सुविधाओ म आपात स्थिति मे एक विमान की सेवा की माग भी शामिल थी। वास्तव म मैंने इस रियायती अधिकार का केवल एक बार ही उपयोग किया था। चूंकि मैं लगभग समस्त प्रशासन अधिकारियो को निजी रूप से जानता था इसलिए मुझे अपने पास का उपयोग किये बिना ही एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा म कभी कोई कठिनाई नही होती थी। अपने बाकी कामो के लिए सेना की उच्च पदवी वाला ओहदा मेरे लिए खास उपयोग का न था। मै एक व्यापक स्तर पर के अधिकारियो से सम्पक रखता था जिनमे मेजर से लेकर लेफ्टिनेन्ट जनरल और जनरल भी शामिल थे। लेफ्टिनेन्ट जनरल और जनरल के पद के अधिकारियो के साथ मैं महत्वपूण विचार विमश के सन्दभ मे मिला करता था।

तोक्यो म गडबडी की स्थिति के कारण मगोलियाई ऊन के व्यापार के सिलसिले म वहाँ के प्रशासन के अधिकारियो से चर्चा तथा आवश्यक निणय की प्राप्ति म विलम्ब हो गया। मैने देखा कि जापान सरकार की उस व्यापार को रुकवाने की बडी इच्छा है किन्तु अधिकारीगण अन्य मामलो म बुरी तरह उलझे हुए थे। उन्हे बडी प्रसन्नता होती यदि मैं निजी तौर पर इस मामले को सभाल लेता। इसके लिए वाछित प्रबन्ध और सुविधाओ का आयोजन क्वानतुग सेना द्वारा सुलभ कराया जा सकता था।

अतत मैने एक कारगर योजना बनाना स्वीकार कर लिया लेकिन मैं स्वतन्त्रता चाहता और किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही चाहता था। बदले म मुझे अपने लिए

पहुँच जाऊँगा जहाँ से लौटने की कोई सभावना न होगी।

उन्होंने सलाह दी कि मैं जापान छोडकर अमरीका या कनाडा चला जाऊ या यदि मैं चाहूँ तो वहाँ पढाई कर सकता हूँ। अगर मैं अध्ययन न करना चाहूँ तो वही आराम से रह सकता हूँ। वे इस सबके लिए खच का आशिक भार भी उठाने को तयार थे और आशा करते थे कि बाकी का इन्तजाम मैं स्वय कर लूगा।

मैं अपने बडे भाई को अप्रसन्न करने की बात सोच भी नही सकता था। मैंने उन्हे बताया कि मैं उनकी इच्छा का पालन करने को तयार हूँ। लेकिन मचुको और मगोलिया म अपना अधूरा काय पूरा भी करना होगा। इसलिए मैं एक बार फिर वहाँ जाऊँगा और जापान लौटने पर अमरीका या कनाडा चला जाऊगा। मैं अपने भाई की मशा जानता था। उनका ख्याल था कि एक पश्चिमी देश म जाकर रहने से कदाचित मेरे बारे म ब्रिटेन विरोधी मेरी धारणा मिट जायेगी और इस प्रकार भारत म प्रवेश करने पर दड का पात्र नही समझा जाऊँगा। जब मैंने उन्हे परिस्थिति की जानकारी दी तो वे सहमत हो गये कि केवल एक बार मचुको और मगोलिया जाने की मुझे छूट है लेकिन उसके फौरन बाद मुझे वहाँ से अमरीका जाना होगा।

जापान म उनके प्रवास के दौरान मैंने अपने बहुत से मित्रो से उनका परिचय करवाया जिनमे सैनिक हाई कमान के आठवें विभाग के अध्यक्ष कनल ईमुरा तथा डाक्टर यूमई आकावा भी थे। ओसाका म उद्योगपतियो, शिक्षाशास्त्रियो और सास्कृतिक क्षेत्र के गण्यमान्य लोगो के एक बडे से समूह ने उनके सम्मान मे एक प्रीतिभोज का आयोजन किया। इस अवसर पर महापुजारी सगे (जिनकी चर्चा मैं पहले कर चुका हूँ) और श्री कोइच्ची फुकुदा भी आये जो चीनी भाषा के तत्का लीन सर्वोच्च विद्वान माने जाते थे। मैं प्राय श्री फुक्कुदा के घर ठहरता था और मेरे भाई भी उनके साथ ठहरते थे। इससे पहले और इस आयोजन के दौरान मेरे बडे भाई को विविध उपहार देने वाले सब मेरे परिचित उच्चस्तरीय सावजनिक कार्यों म सलग्न लोग थे जिनकी सख्या से मेरे भाई विशेष रूप से अभिभूत हो गये। उन्हे यह सतोष हुआ कि मैं उच्च सामाजिक हल्को म उठता बठता हूँ और सर्वोच्च मानको के अनुसार ही अपनी मर्यादा और नतिकता बनाये हुए हूँ। कुछ दिन बाद ही हम दोनो अश्रुपूर्ण आँखो से कोबे म विदा हुए।

जब पोत रवाना हुआ उस समय मैं परस्पर विरोधी भावनाओ मे घिरा हुआ था। मैंने अपने भाई को वचन दिया था कि मचुको और मगोलिया का काय समाप्त करने के बाद अमरीका चला जाऊँगा। मेरे लिए यह भारत के स्वतत्रता-अभियान से सम्बद्ध अपने काय से मेरा पीछे हटना था जो असभव था। मैंने इस विचार से वचन दिया था कि उन्हे दु ख न पहुँचे। किन्तु इस बात से मेरा अपराध-बोध कम नही हो रहा था। ये हम दोनो के लिए अति कठिन क्षण था। मेरे लिए सात्वना यही

किसी प्रकार की प्रत्याशा नही थी। साथ ही मेरी माग न्यूनतम थी। तोक्यो के अधिकारीगणा ने मेरी शर्ते मान ली।

इस समस्या म जूझन की प्रक्रिया के दो भाग थे। इग्लण्ड को भेजे जान वाले माल को रोकना तो था ही साथ ही, यह आश्वासन प्राप्त करना भी आवश्यक था कि उनके व्यापार पर कोई आच न आन दी जाय क्याकि इतनी बडी सख्या म मगोला और चीनियो की आजीविका उस पर निभर थी। इसलिए इस समस्या का सुस्पष्ट समाधान यही हो सकता था कि जापान सारी ऊन खरीद ले और उसे इग्लैण्ड के हाथा मे पडन से रोककर स्वय उसका लाभकारी उपयोग करे। इतना ही नही तीनसिन मे गढ बनाकर जमे। ब्रिटिश व्यापारियो के मसूबो को नाकामयाब बनाने के लिए ये आवश्यक था कि खरीद ऐसे स्थान पर की जाय जहाँ या तो वे अनुपस्थित हा या फिर कम से-कम सख्या म हा। इसके लिए सवथा उपयुक्त स्थान था पावतऊ, जहा सभी महत्वपूण कारवा आकर मिला करते थ। मतलब यह कि व्यापार पावतऊ म ही समाप्त कर दिया जाय अर्थात् ब्रिटिश व्यापारियो या उनके एजेन्टो से बचकर बाहर ही-बाहर सौदा कर लिया जाय।

किन्तु यह बात महत्वपूण थी कि व्यापारियो को पावतऊ मे वही दाम दिलाये जाएँ जो उन्ह तीनसिन मे मिलत थे वर्ना हर कदम पर परेशानी खडी हो सकती थी। जापान सरकार को स्वाभाविक रूप से ही आगे भेजने के परिवहन के खच का अतिरिक्त बोझ उठाना पडता। जो भी हो इस योजना की रूपरेखा स्वीकार कर ली गयी। इस योजना की काय प्रणाली की तयारी के लिए ज़िम्मेदार थे मै और क्वानतुग सेना तथा अन्य अधिकारी वग जिनकी सहायता की आवश्यकता हो सकती थी।

जून, 1936 मे, जब मै जापान सरकार के साथ अपने कायक्रम पर विचार विमश कर रहा था, मुझे अपने बडे भाई नारायण नायर स, जो कनाडा मे विज्ञान विषय पर मास्टर की उपाधि का कोस पूरा कर चुके थे सूचना मिली कि वे जापान होते हुए भारत लौटनवाले है। वे मुझसे मिलन के लिए कुछ दिन तोक्यो म ठहरेग। स्वाभाविक था कि मुझे उनसे भेंट करने की भारी उत्सुकता थी।

हम दोनो कुछ दिना तक साथ रहे। मुझे इस बात का खेद हुआ कि बडे भाई *जापान म मेरे कायकलापो स दुखी थे। वे जानते थे कि मैं ब्रिटिश अधिकारिया की* काली सूची म दज था। इसलिए यदि भारत लौट जाऊँ तो मेरे लिए खतरा था। साथ ही उन्ह यह भी चिता थी कि म राजनीतिक कार्यों मे अधिकाधिक उलझता जा रहा हूँ। स्थिति को मानो और भी बिगाडन के लिए उनके पुराने जापानी मित्रो मे से कुछ न उन्ह बताया कि मैं रोणिन बनन जा रहा हूँ। यदि मुझे किसी अन्य काम म न लगा दिया गया तो मैं शीघ्र ही राजनीतिक क्षत्र म एसी जगह

पहुँच जाऊँगा जहाँ म लौटन की राइ सभावना न हागी।

उन्होंने सलाह दी कि मैं जापान छोडकर अमरीका या कनाडा चला जाऊँ या यदि मैं चाहूँ ता वहाँ पढाई कर सकता हूँ। अगर मैं अध्ययन न करना चाहूँ ता वही आराम स रह सकता हूँ। र इन सबके लिए ग र मा आर्थिक भार भी उठान का तयार थ और आगा रन थ कि बाकी का इन्तजाम मैं स्वय कर लूगा।

मैं अपन बड भाई का अप्रसन्न करन की बात साच भी नही सकता था। मन उन्ह बताया कि मैं उनकी इच्छा का पालन करन का तयार हूँ। लकिन मचुको और मगोलिया म अपना अधूरा काय पूरा भी करना हागा। इसलिए मैं एक बार फिर वहाँ जाऊँगा और जापान लौटन पर अमरीका या कनाडा चला जाऊगा। मैं अपन भाई का मना जानता था। उनका खयाल था कि एक पश्चिमी दश म जाकर रहन स कदाचित मर बार म ब्रिटन विरोधी मरी धारणा मिट जायगी और इस प्रकार भारत म प्रवश करन पर दड का पात्र नहा समझा जाऊँगा। जब मैंन उन्ह परिस्थिति की जानकारी दी ता व सहमत हा गय कि कवल एक बार मचुका और मगोलिया जान की मुझ छूट है लकिन उसक फौरन बाद मुझे वहाँ स अमरीका जाना हागा।

जापान म उनक प्रवास क दौरान मैंन अपन बहुत स मित्रों म उनका परिचय करवाया जिनम सनिक हाइकमान क आठव विभाग क अध्यक्ष कनल ईमुरा तथा डाक्टर यूमई आकाया भी थ। जामाका म उद्यागपतियो शिक्षाशास्त्रियो और सास्कृतिक क्षेत्र क गण्यमान्य लागो के एक बडे-स समूह न उनक सम्मान म एक प्रीतिभाज का आयाजन किया। इस अवसर पर महापुजारी मगे (जिनकी चर्चा मैं पहल कर चुका हूँ) और श्री काइच्ची फुरुदा भी आय जा चीनी भाषा के तत्का लीन सर्वोच्च विद्वान मान जात थ। मैं प्राय श्री फुरुदा क घर ठहरता था और मर भाई भी उनक साथ ठहरत थे। इसस पहल और इस आयाजन के दौरान मेरे बडे भाई का विविध उपहार दन वाल सब मरे परिचित उच्चस्तरीय सावजनिक कार्यों म सलग्न लाग थ जिनकी सख्या स मर भाई विशेष रूप स अभिभूत हो गय। उन्ह यह सतोष हुआ कि मैं उच्च सामाजिक हल्को म उठता-बठता हूँ और सर्वोच्च मानको के अनुसार ही अपनी मर्यादा और नतिकता बनाय हुए हूँ। कुछ दिन बाद ही हम दाना अश्रुपूण आँखो से कोबे म विदा हुए।

जब पात रवाना हुआ उस समय मैं परस्पर विरोधी भावनाओ म घिरा हुआ था। मैंन अपन भाई को वचन दिया था कि मचुको और मगोलिया का काय समाप्त करन के बाद अमरीका चला जाऊँगा। मर लिए यह भारत के स्वतन्त्रता-अभियान स सम्बद्ध अपन काय स मेरा पीछे हटना था जो असभव था। मैंने इस विचार से वचन दिया था कि उन्ह दुख न पहुँचे। किन्तु इस बात स मेरा अपराध-बोध कम नही हो रहा था। य हम दोना के लिए अति कठिन क्षण था। मरे लिए सात्वना यही

थी कि मेरी मशा वे भी पूरी तरह समझ चुके थ कि मने केवल उन्ह सुख पहुँचान के लिए ही वचन दिया था और असलियत ये थी कि मै अवसरवादी बनूगा, इसकी कोई सभावना नही थी। विशेष सतोष की बात यह रही कि मेरे भाई जाते जात मुझे यह आश्वासन द गये कि वह माँ को जिनकी आयु उस समय लगभग अस्सी वष थी, यह बतायगे कि मरा चरित्र निश्छल और मेरे सगी साथी नितात भद्र तथा विवाद से परे है।

16

ब्रिटेन के साथ आर्थिक युद्ध

सन 1936 की शरद् ऋतु म मैं तोक्या से सिकिग लौटा और कनल रयुकिच्चि तनाका के साथ विचार विमश आरम्भ किया। उन्ह पहले ही ताक्यो से कुछ आदेश प्राप्त हो चुके थे। ब्रिटेन के साथ ऊन के व्यापार को रोकन के प्रयास की दिशा मे मैंने योजना बनानी आरभ कर दी।

स्वाभाविक रूप स मेरा पहला कदम था कि एक खरीदार प्रतिनिधिमडल का चुपचाप पवतऊ म गठन किया जाए। यह काय जापान की नो विशाल व्यापार कपनिया की सहायता से सम्पन्न किया जा सका, जिनमे कोबे की कनेमात्सु कपनी की आस्ट्रेलिया स्थित एक विशाल शाखा के अलावा मित्सुबिषि आदि ऊन की थोक खरीददार कपनिया भी उल्लेखनीय थी। कनेमत्सु कपनी के पास ऊन का स्तर निर्धारित करने और दाम आदि नियत करने के लिए वाछित सारी जानकारी थी। खरीदारा का यह वाणिज्यमडल एक पूण और सुगठित इकाई थी जिसकी प्रत्येक शाखा को अपने काय मे विशेपज्ञता हासिल थी। कोई भी ब्रिटिश व्यापारी उनसे बेहतर नहा हो सकता था।

अपने लिए मैंने क्वानतुग सना से न्यूनतम यात्रा प्रबन्धो की सुविधा के अतिरिक्त केवल एक सहायता की माँग की थी। मैने उनके एक चीनी अधिकारी कर्नल कुवो की सेवाओ को उधार मागा था जो उन दिनो मचुको सेना के साथ सलग्न थे।

मैंने कनल तनाका से कनल कुवो की सहायता की इसलिए माग की थी कि वे स्नातक उपाधि के लिए तोक्यो सनिक कालेज म अध्ययनरत एक मुस्लिम थे और ऊन के व्यापार मे सलग्न मुस्लिम चीनियो के साथ अपन कायकलाप के लिए मुझे ऐस ही अफसर की सहायता की जरूरत थी। इतना ही नही उनका परिवार दक्षिण मचुको क्षेत्र म सर्वाधिक अभिजात वग म स था और इसलिए उन्हे उस

क्षेत्र मे प्रतिष्ठित व्यवहार की प्रत्याशा भी हो सकती थी। आम तौर पर वरानतुग अधिकारियो को ऐसी बातो के महत्व का कोई खास अदाजा न था। इसलिए मुझे अपनी काय विधि को समझाने तथा उसे मनवाने के लिए काफी लबी चौडी दलीलें देनी पडी।

सबसे पहली बात निश्चय ही यह थी कि प्रस्तावित काय के लिए परम गोपनीयता यानी बोच्चो का पालन किया जाय। समस्त तावरुमु रिक्कन और मोक्या तथा भीतरी मगोलिया स्थित अन्य जापानी अधिकारीगणो को परम गुप्त आदेश भेजे जाने थे कि मुझे और मेरे साथियो को सुरक्षा ठहरने की सुविधा, भोजन और अन्य सुविधाए सुलभ कराइ जायें। उन्हे गुप्त रूप मे यह सूचना भी दी जानी थी कि मैं भारत के एक मुल्ला के वेष मे अपना काय करूँगा। कितु ये बातें किसी भी अनधिकृत व्यक्ति को किसी भी हालत मे मालूम नही होनी चाहिए। कनल तनाका ने मेरी सभी शर्तें मान ली।

चीन मे किसी व्यक्ति के नाम से उसके धम का मुश्किल से ही पता चलता है। ली काग क्वो और चो मन वाग नामक व्यक्ति या फिर तुग-कुग मिग या ऐसे किसी भी नाम का व्यक्ति किसी भी धम का अनुयायी हो सकता था। वह बौद्ध, मुसलमान कफ्यूशियन और यहाँ तक कि एक नास्तिक भी हो सकता था। मैंने अपना नाम बदलने की सोची थी परन्तु फिर ऐसा न करने का निर्णय किया। मैं युवा और आशावादी था और सभी खतरो का सामना करने के लिए तयार था। चीनी व्यापारियो मे से किसी को भी मेरे असली धम के बारे मे पता चल भी जाय तो भी मुझे कोई परेशानी न थी। मैं सोचता था कि ऐसी स्थिति के उत्पन्न होने पर मैं उस पर काबू भी पा सकता था। मैंने ऐसी दाढी बढा ली जसी आम तौर पर चीनी मुसलमानो की हुआ करती थी और एक टोपी और एक लबादा और अन्य ऐसी वस्तुए प्राप्त कर ली जो उनके किसी एक विशिष्ट पुजारी के पास हो सकती थी। सब तैयारी पूरी होने पर कनल तनाका ने आर्मी क्लब मे कनल क्वो के साथ मेरी भेंट का प्रबध किया। बोच्चो' सिद्धान्त के अनुसार सभी आवश्यक बातो से उन्हे अवगत कराया गया। उन्होने बडी समझ बूझ और सहयोग की भावना का परिचय दिया।

यह व्यवस्था की गयी कि चार या पाँच मास तक कनल क्वो मेरे साथ विशेष ड्यूटी पर तैनात रहेंगे और आवश्यकता पडने पर पावतऊ या अन्य किसी भी स्थल की मेरे साथ या अकेले यात्रा करेंगे। उन्हे अपने कुछक मित्रो विशेषकर अभिजात वग के मुसलमानो के साथ भेंट का अवसर मिलने पर बडी खुशी हुई। हम दोनो का भी परस्पर घनिष्ठ सबध हो गया। पावतऊ की यात्रा के दौरान और पवतऊ मे भी यह देखकर बडी खुशी हुई कि स्थानीय निवासी क्वो को बडा आदरणीय मानते थ। उनके साथ रहते हुए मौलवी या मुल्ला नायर भी गण्यमान्य

व्यक्तियो जसे आदरपूण व्यवहार की प्रत्याशा कर सकते थे। क्वो सदा अत्यधिक श्रद्धापूवक मेरा परिचय कराते थे। इस प्रकार चीनी मुस्लिम समुदाय मे मेरा गौरव और वढ जाता था। मै उनकी भापा अच्छी खासी बोल लेता था जो एक अतिरिक्त और वडा लाभ था।

सन् 1937 की ग्रीष्म ऋतु म हमने भीतरी मगोलिया के लिए प्रस्थान किया। पावतऊ म जापानी तावकुमु किक्कन हर प्रकार स बडा सहायक सिद्ध हुआ। एक प्रमुख मुस्लिम सराय मे हमारे ठहरन का प्रव ध कराया गया। वहा क नल क्वा मे म जापानी भापा म वार्तालाप करता था जो चीनी शब्दो क लिए दिमाग पर जार डालन की अपक्षा मरे लिए अधिक सहज बात थी। क्वो ने भी तोक्यो म अपन प्रशिक्षण काल मे जापानी भापा अच्छी खासी सीख ली थी। वे बडे भले व्यक्ति थ साथ ही समझदार आर बुद्धिमान भी। उ होने निर्णय किया कि एक मुस्लिम पुजारी क ऊँचे रतव के अनुसार ही मेरा परिचय दिया जाना आवश्यक है। कसी विचित्र वात थी कि कुछ समय पूव तक मै धर्म रिमपोच्चे' बौद्ध था आर अब म एक मौलवी बन गया था। मुझे स्मरण था कि एक मौलवी के नाते अगले दिन जो कि शुक्रवार था मुझे स्थानीय मस्जिद म जाकर नमाज आदि का सचालन कराना होगा।

कुवो मुझे मस्जिद म ले गये और एक बहुत बडे पुजारी के पद के अनुकूल अगली पक्ति मे मुझ जगह दिलवाई। पलभर के लिए मैं कुछ परेशान सा हुआ क्योकि मैं एक नकली मुसलमान था। "यदि किसी को असलियत का पता चल गया ता अनर्थ हो जायगा पर तु यह विचार केवल क्षणिक ही था और मैने हठधर्मी की अपनी आदत और कभी हार न मानने की क्षमता तथा आत्मसयम का पुन सहारा लिया। मैं यह भी विश्वास करने लगा कि जो भी हो, मैं एक असली मुसलमान पुजारी के रूप म भी फब सकता था। मैंने भारत मे मस्जिदें देखी थी और मुस्लिम रीतिरिवाजा की मुझे खासी जानकारी थी जिसके बल पर मैं वे सभी कार्य कर सकता था जिनकी उस समुदाय के एक पुजारी से अपेक्षा की जा सकती थी। भारतीय मुसलमानो और चीनी मुसलमानो के रीतिरिवाजा मे कुछ अन्तर हो सकता था पर तु उन्ह नजर अ दाज भी किया जा सकता था क्याकि मै एक अ य देश से नया-नया आया था और मस्जिद म एकत्र श्रद्धालुजन यह बात समझ सकते थे। पर तु सबसे बडी चि ता यह थी कि मैने मस्जिदो को बाहर से ता देखा था कि तु जीवन मे प्रथम बार मैं उसम प्रवश कर रहा था और वह भी एक उच्च पुजारी के रूप मे। दोनो स्थितियो मे वस्तुत कुछ अ तर था।

मै जानता था कि मुझे नमाज तो पढनी ही थी। आखिर मै पावतऊ स्थित सबसे बडी मस्जिद म था और वह शुक्रवार का दिन था। उसस भी वढकर महत्व पूण वात यह थी कि मेरा कर्नल कुओ द्वारा प्रमुख पुजारी स यह कहकर परिचय

करवाया जा चुका था कि मैं एक प्रमुख भारतीय मुस्लिम पुजारी था और साथ ही मचुको और जापानी सैनिक अधिकारीगण के साथ मेरे बहुत बढ़िया सम्बन्ध थे। जब प्रमुख पुजारी ने मुझे प्रथम पक्ति म आने को कहा तो मैं कुछ घबरा गया। नि सदेह उस पक्ति म बैठाया जाना आदर का प्रतीक था किन्तु मेरी स्थिति म यह बात कुछ नुकसानदेह थी। यदि थोड़ा पीछे की क़तार म होता तो देख सकता था कि मुझस आग क लाग क्या कर रह है और उन्ही की भाति आचरण कर सकता था। इस दृष्टि स प्रथम पक्ति मे होना असुविधा था। जो हो, इस प्रकार की कठिनाइयो को महत्वपूर्ण लक्ष्यसिद्धि के लिए बाधक नही मानना चाहिए। मरा लक्ष्य केवल एक था कि पावतऊ और तीनसिन म ऊन के व्यापार पर ब्रिटिश एकाधिकार की कमर तोड़ना उसके लिए मुझ माग म आने वाली हर प्रकार की कठिन बाधाओ का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए था।

शीघ्र ही नमाज़ का वक्त हो आया। मैंने बहुत समय पूर्व इसके बारे म पढ रखा था कि ऐसे अवसरो पर कैसा आचरण अपनाया जाना चाहिए। सबसे पहले शरीर के जो विशिष्ट अवयव धोय जाते थे, जसे—हाथ, मुह, नाक, आखे और कान गुदा और लिंग—इन सब क्रियाओ का मैंने धम की रीति का सम्मान करते हुए सम्पन्न किया। मगर शुद्धि क्रिया म लिंग का धोते समय एक गर मुस्लिम के लिए परेशानी पेश आ सकती थी। कोई देख रहा होता तो मुसीबत हो जाती। एक व्यक्ति के मुसलमान होने का एकदम स्पष्ट प्रमाण या चिह्न खतना या सुन्नत का निशान होता है। खतना रहित व्यक्ति क लिए एक मुसलमान का रूप धारण करना वह भी मुल्ला का रूप धारण करना खतरे से खाली नही था।

सयोग ही कहूँगा कि मुझे इस विषय म परेशानी नही उठानी पडी। सन 1934 मे मचुका मे प्रवास के दौरान मरे लिंग के चम पर एक घाव-सा हो गया था और वहाँ के अस्पताल के एक प्रसिद्ध सजन डॉक्टर ओमोरी ने फोडे से मुझे मुक्ति दिलाने के लिए मेरी सुन्नत कर दी थी। उस समय स्वप्न म भी यह बात न उठी थी कि डॉक्टर आमोरी द्वारा की गयी शल्य चिकित्सा भीतरी मगोलिया म पावतऊ की मस्जिद मे मेरी सहायक सिद्ध होगी और दव योग से अब मेरे पास एक मुसलमान होने के लिए प्रमाण का कोई अभाव नही था।

सामान्यत मैं किसी भी धम के साथ खिलवाड करना पाप मानता हूँ क्योकि सभी धम पावन होते हैं, किन्तु मैंने स्वय इस कहावत को कि प्रम और युद्ध म सब जायज होता है मन ही मन दुहराकर अपने-आपको आश्वस्त कर लिया। मैं ब्रिटेन के विरुद्ध एक आर्थिक युद्ध म सलग्न था। इसलिए एक व्यापक दशन के अन्तगत मेरा यह धार्मिक पाप क्षम्य माना जा सकता था।

धोने की क्रिया समाप्त होने पर एक कठिनाई तो दूर हो गयी परन्तु वास्तविक नमाज प्रक्रिया के दौरान सही-सही आचरण की समस्या अभी बाक़ी थी।

'अल्लाह के फ़ज़ल से' मैं अपने इद गिद के श्रद्धालुजनो की ओर अनक वार छिप-छिपकर देखकर अनुकरण करता रहा। कदाचित यह नकल उतनी वढिया न थी जितनी कि मैं पीछे वैठकर कर सकता था किन्तु प्रभु की कृपा स मैं वचा रहा।

ला इल्लाह् इल्लल्लाह (अल्लाह् बहुत महान है)

मुहम्मद उल रसूलिल्लाह् (और मुहम्मद उसका पग़म्वर है)

अल्लाहो अकवर (अल्लाह् सबस महान है)

वहाँ इतनी वडी सख्या म लाग एक साथ नमाज पढ रह थ कि मैं उनकी ध्वनि क साथ अपन होठा का सचालन कर सकता था। मुझे धीम स्वरा म ला इल्लाह इल्लिल्लाह् ही दुहराते जाना था और यदि अरबी भाषा का मेरा उच्चारण त्रुटिपूण भी रहा हो तो भी किसी को पता नही चला हागा।

मस्जिद के वाहर मामला काफी आसान था। मैं हर किसी का मुस्लिम अदाज के साथ अभिवादन करता—"अस्लाम आलिकुम" (प्रभु आपको बनाय रखे, प्रसन्न रखें और आपका कल्याण हा)। उसका मुझे उत्तर मिलता—"आलिकुम अस्लाम" (और आप भी बन रह, प्रसन्न रह और आपका कल्याण हो)। ' वारहमतुल्लाह्" (और अल्लाह् की समस्त नमतें आपको बख्शी जायें)।

मरे जान विना ही, मर उस नाटक मे अवश्य कोई एसी बात रही होगी जिससे मेरा आचरण स्वाभाविक प्रतीत हुआ होगा। थोडे ही समय म मैं देख सका कि मुसलमान व्यापारी और सराया के मालिक मुझे अपना भाई-बधु ही समझने लगे थे। हमारी खूब अच्छी निभी। अपनी अगली कारवाई के लिए निश्चय ही मुझे एक अनुकूल वातावरण की आवश्यकता थी यानी व्यापारियो को मनवा सकू कि तीनसीन भेजन के बजाय पावतऊ म अपनी ऊन जापान और मचुको के व्यापारी दल को बच दें। पक्ष-परिवतन का यह सौदा पटन म कुछ समय तो लगना ही था। कनल ववो के साथ विचार विमश करके मैंने निणय किया कि जल्दबाजी का कोई भी आभास दिलाया गया तो परिणाम प्रतिकूल हो सकता था। हमने निश्चित रूप स किन्तु धयतापूवक प्रचार काय आरभ कर दिया।

बाहरी तौर से मैं चीनी मुसलमाना और अन्य समुदायो की मानसिकता पर नजर रखे हुए था। समाज के विभिन्न स्तर के व्यक्तिया के साथ बातचीत के दौरान मुझे पता चला कि चीन के लगभग प्रत्येक प्रान्त म मुसलमान रहते थे। वे थे तो अल्प सख्या म किंतु उतनी अल्प सख्या म नही जसाकि मैंने सोचा था। उत्तर पश्चिमी प्रान्तो म उनकी सख्या लगभग चालीस प्रतिशत के आस-पास थी किन्तु राजनीतिक मामलो म उन लोगा म उतनी जागरूकता न थी जितनी कि बौद्ध धम या कफ्यूशियस की विचारधारा के अनुयायियो मे थी। उनका जीवन राजनीतिक गतिविधियो के बजाय उनके धम और व्यापार आदि से ही अधिक वँधा था।

मैंने देखा कि उनम स अधिकाश स्वय को चीनी कहने के बजाय मुसलमान कहना अधिक पसद करत थे। धार्मिक जोश कभी-कभी विभिन देशा म जिनमें भारत शामिल है कट्टर धर्मान्धता का रूप ले लेता है किन्तु कदाचित राजनीतिक रुचि के अभाव के कारण चीन के मुसलमान बडे विनीत थ। 13वी शताब्दी के आरभ मे चगेज खाँ का डर न केवल मगोलिया म बल्कि उत्तरी चीन म भी फला था किन्तु उसके पोत कुबला खा की मत्यु के बाद मुसलमानो की शक्ति का ह्रास हो गया और उसका स्थान बौद्ध प्रभाव ने ले लिया।

भीतरी मगोलिया मे जिन मुसलमाना के सम्पक मे मैं आया वे बडे गरिमामय और सुसस्कृत लोग थे। मैंने उन्ह अन्य समुदायो की तुलना म स्वच्छतर और स्वास्थ्य क प्रति अपेक्षतया जागरूक पाया। अपने धम के मामले म वे कुछेक अन्य देशो के अपने धम भाइयो की तुलना म अधिक रूढिवादी थे। यह बात प्राय उनकी खान पान की आदता म दष्टिगोचर हुआ करती थी। यह निश्चित था कि कोई भी चीनी मुसलमान किसी एसे रेस्तराँ मे कभी प्रवेश न करेगा जहा सुअर का गोश्त बिकता हो। लकिन साथ ही उन्ह इस बात का सम्मान भी दिया जाना चाहिए कि वे अन्य धर्मों क प्रति सहिष्णता बरतत थे। खान-पान सबधी भिन्नता के आधार पर कभी कोई झगडा नही होता था।

मुझे ऐसा एक भी मुसलमान नही मिला जो शराब या सिगरेट पीता हो या नशीली वस्तुओ का सेवन करता हा। मुझे बताया गया कि उस समुदाय म नारी सबधी कोई व्यभिचार आदि नही होता था। कुरान के अनुसार एक व्यक्ति को चार पत्निया रखने की अनुमति है और चीनी मुसलमाना म से अधिकाश इस छूट का लाभ उठाते थ। मेरे कुछ मुसलमान मित्र मेरे प्रति सहानुभूति रखते थे क्योकि अविवाहित होने के नाते मरे पास एक भी पत्नी न थी। यह उनकी नजर म बडे दु ख और दया की बात थी। यह सही है कि मैं किसी नारी के निकट जाने तक का साहस न कर सकता था क्योकि मुझे एक पुजारी की हैसियत से जिसे स्थानीय भाषा मे 'जहोम' कहते, अपनी मर्यादा बनाये रखने के लिए सदाचरण करना था। यह शब्द कभी-कभार पुजारियो को छोडकर अन्य महत्वपूण व्यक्तियो के प्रति आदर व्यक्त करने के लिए भी उपयोग मे लाया जाता था। जो लोग यह नही जानत थे कि मैं एक पुजारी था व भी मुझे एक महत्वपूण व्यक्ति तो मानत ही थे इसलिए मुझे सदा अपन आचरण का खयाल रखना होता था।

जब मैंने अनुभव किया कि अनुकूल समय आ पहुँचा है तो मैंने कनल क्यो को बताया कि अच्छा रहेगा अगर पावतऊ म एक सशक्त मुस्लिम सगठन बनाया जाए। तभी बार बार लोग आपस म मिल सकेंगे और सामाजिक आर्थिक कार्यों के सयुक्त प्रवतन के लिए समान रुचि के मामलो पर विचारो का आदान प्रदान किया जा सकेगा। इस प्रकार एक सयुक्त इकाई के रूप म जब सामजस्यपूवक काय

इस बात का ध्यान रखा था कि हम चीन के अदरूनी मामला मे कोई बाधा न डाल। लेकिन अपन दोस्ता को मात्र निजी सलाह दते थे।

पावतऊ म मेरे प्रवास के आरम्भिक काल म रमजान का महीना आया। कनल क्यो और मैंने विशेष नमाज आदि म भाग लिया और अय मुसलमाना की भाँति रोजा रखा। हमने इस मामले म कभी भी धोखा नही दिया। वास्तव म, रोजा रखन के बाद सहत की दष्टि से मैंने अपने को बेहतर ही अनुभव किया। मेरे विचार म धार्मिक महत्व के अलावा कभी-कभी नियत अवधि के लिए व्रत आदि रखना स्वास्थ्य के लिए भी लाभकर होता है। हाँ, व्रत खोलन पर ज्यादा खान के खतर स भी वचना चाहिए वर्ना व्यक्ति का हाजमा खराब हो सकता है।

सन् 1937 क रमजान के महीन के तुरन्त बाद कनल क्यो पवतऊ छाड कर मचुका लौट गय। मैं इस बात के प्रति काफी हद तक आश्वस्त होन के बाद कि जिस सस्था की स्थापना हमने की थी वह स्वय अपने बल पर कायरत रहेगी, नागाशिमा क साथ सन 1938 के आरम्भ म लौट आया। हमारी आशा थी कि सन् 1936 का वष तीनसीन स मगोलियाई और चीनी ऊन इग्लड भेजे जान का अन्तिम वष होगा। यह समाचार शीघ्र ही जापान व अय दशा म फल गया।

तोक्यो म ब्रिटिश राजदूतावास के खुफ़िया विभाग म श्री फ़िग्स नाम के एक अधिकारी थे। मुझे यह भी पता चला था कि कालातर म उसे ब्रिटेन के राजा जाज पष्टम स नाइट की उपाधि भी प्राप्त हुई थी। उसन गुप्तचरा का एक जाल-सा बिछा रखा था और मुझ पर और मेरी गतिविधिया पर नजर रखन के लिए उसे बहुत साधन भी प्राप्त थे। अपने पूर्वाधिकारी गुप्तचरा स प्राप्त सूचना के आधार पर वह मुझे 'मचुको नायर' कहा करता था। मुझ ठीक स तो ज्ञात नही पर सम्भव है कि उसन मरा नाम 'खतरनाक भारतीयो' की सूची म स काटकर सर्वाधिक खतरनाक' व्यक्तियो की सूची म और कदाचित रासबिहारी बोस के नाम के साथ ही लिख दिया होगा। यह बात अजीब प्रतीत हो सकती है। किन्तु मरे मन म फ़िग्स (या अय किसी ब्रिटिश गुप्तचर या फिर अय किसी भी अधिकारी) क प्रति कोइ निजी दुर्भावना न थी। मरा क्रोध ब्रिटिश शासको द्वारा भारतीयो को दासता की बेड़िया म जकड जान के विरुद्ध था। मेरा तन-मन हर सभव प्रकार म इस प्रथा की समाप्ति की दिशा म सयपरत था। मरा विश्वास था कि दर-गबर मगोलिया म बिताया गया मरा समय और मर प्रयास इसी सदभ म मरा सहयोग होगा।

मर कायकलाप का पुल परिणाम यह हुआ कि सन 1936 तक जो ऊन इग्लण्ड को भजी जाती थी वह उसक बाद म जापान को भेजी जान लगी। उसक लिए ब्रिटिश वस्त्रा और इग्लड म बनी अय वस्तुआ क बायकॉट क भारत म महात्मा गाधी द्वारा चलाय जा रह आदालन स ही मुझ मनचस्टर तथा लकाशायर

मे प्रयुक्त होने के लिए तिब्बत और मगालिया से भेजी जानेवाली ऊन के प्रेषण पर रोक लगाये जाने की प्रेरणा मिली थी। मुझे प्रसन्नता थी कि मैं लगभग अकेले ही इस लक्ष्य की प्राप्ति मे सफल हो सका था।

लेफ्टिनेंट यमामोतो नामक एक रिज़व अधिकारी थे जिन्हे एक दिन य सूझी कि यदि उजिनो मे एक जापानी सैनिक चौकी यानी तोक्कुमुक्किकन की स्थापना कर दी जाय तो मचुको और जापान के भीतरी मगोलिया म विस्तार को सहायता मिलेगी। इस योजना की व्यवहायता सम्बन्धी जाच आदि के लिए अपने कुछ जापानी मातहता के साथ टोह-यात्रा पर रवाना होने के उद्देश्य से उन्हाने धन तथा अन्य वाछित सहायता के लिए कनल र्‍यूकिच्चि तनाका के साथ सम्पक स्थापित किया। तनाका उनके झांसे म आ गये और यमामोतो को हर प्रकार की सहायता सुलभ करा दी। जापान का तत्कालीन राष्ट्रीय ध्वज हिनोमारू फहरात हुए यमामोतो और उनका दल घोडा पर सवार होकर उजिनो गया। लौटकर उसने तनाका को सूचना दी कि वह स्थान एक तोक्कुमु किक्कन की स्थापना के लिए आदश रहगा।

जापानी सेना मे से मेरे कुछ मित्रा ने मुझे बताया कि ऐसा हुआ है और मैं इस प्रस्ताव की मूखता से चकित रह गया। मैं उजिनो स भलीभाति परिचित था और वहाँ की स्थलाकृति आदि स वाकिफ था। हालाकि यी ता अप्रत्यक्ष किन्तु वहाँ चीनियो की स्थिति काफी सशक्त थी। यदि जापानिया को उस क्षेत्र म एक चौकी की स्थापना करनी ही थी तो बढ़िया सुरक्षा प्रब ध एक पूव शत थी। न तो ऐसा कोई प्रबन्ध वहाँ था न ही उस दिशा म कोई प्रयास ही किय गय थे। मैंने तनाका को यमामोतो का प्रस्ताव स्वीकार किये जाने से सभाव्य खतरे के प्रति सावधान किया। लकिन वह खुद को काफी हद तक तीसमार खाँ समझत थ और उनका दिमाग भी बहुत सही-सलामत न था क्याकि उनका विचार था कि हिनोमारू सवशक्तिमान है। उन्हाने मेजर एज़ाकी और उनके साथ पन्द्रह अन्य कमचारियो को उजिनो म एक तोक्कुमु किक्कन खोलन क लिए भेजा। उनके साथ वायरलेस यत्र और उसके चालक भी गय।

एक मास के भीतर ही चीनी सना न उस चौकी का नामो निशान मिटा दिया और समस्त जापानी कमचारियो को मौत के घाट उतार दिया। जहाँ तक मुझे ज्ञात है इस त्रासदीपूण घटना की सूचना समाचार जगत या अन्य किसी भी सूत्र द्वारा कभी प्रकट नही की गयी। कदाचित सना म भी बहुत ही कम लागा का इस उजिनो इज़ाकी किक्कन घटना को जानकारी थी क्याकि इस एकदम गुप्त रखा गया था। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अमरीकी सना द्वारा मजर फुजीवारा जस व्यक्तिया की सहायता स (जिन्हे यह सदिग्ध ख्याति प्राप्त थी कि उन्होंने कप्तान माहनसिंह के साथ मिलकर जाकि मूलत जापानिया क युद्ध बदी थ आज़ाद हिंद

फौज, यानी आई० एन० ए० का गठन किया था) ववानतुग सना क मामला म गहरी खाजवीन का प्रयास किया गया था किन्तु मुझे सदह है कि उस भी उजिनो हत्याकाड का रहस्य ज्ञात हा पाया था।

कनल कवो और लेफ्टिनेंट नागाशिमा केवल इन दो अफसरा की सहायता स मैन पावतऊ म जो सस्था बनायी थी उस आघात पहुचानवाली दूसरी घटना तब हुई जब कनल नाकामुरा की कालगन म जापानी सना हाइ कमान क आर्थिक विभाग म नियुक्ति की गयी। मैं पहले चर्चा कर चुका हूँ कि मैंन यह प्रबध कर-वाया था कि पावतऊ स्थित जापानी व्यापार मडल व्यापारियो को ऊन क वही दाम दगा जो उन्ह तीनसीन म मिलत थ। वास्तव म यह सिद्धात इस मुल योजना की रीढ था। जब कर्नल नाकामुरा वहाँ पधारे ता उन्ह एक उम्दा विचार सूझा कि क्योकि जापान इतना शक्तिशाली देश था इसलिए चीनी कारवाँ सचालका या ऊन क व्यापारिया के प्रति रियायत बरत जान की कोई आवश्यकता नही है। उन्हान कम दाम नियत किय (या कदाचित एसा आदेश दिया) जा व्यापारिया क लिए आर्थिक दष्टि स लाभकर न हा। व्यापारिया को अनुभव हुआ कि उनस अनुचित लाभ उठाया जा रहा है।

मरे मित्र नागाशिमा कोव की कनमाम्तु कम्पनी के एक कमचारी स यह सब समाचार पाकर बहुत क्षुब्ध हुए। उन्हान मुझे इस विषय म बताया। हमन कनल नाकामुरा से भेंट की और उन्ह उनकी नीतिजन्य खतर के बारे म कहा। किन्तु वे तनाका के समान ही घमण्डी और शक्ति मदाध थे। हमन उन्ह उजिनो के तोक्कुमु किकन की घटना की याद दिलायी। परन्तु उन्हान उत्तर दिया कि उजिना एक सेना विहीन चौकी थी जबकि पावतऊ चौकी जापानी सनिका द्वारा बहुत अच्छी तरह सुरक्षित थी।

नाकामुरा को बुद्धिमानी से काम लेन के लिए मनवान म कालगन सना के साथ खासा बहस के बावजूद असफल रहने पर मैं वहाँ की सनिक हाई कमान के सम्मुख अपनी शिकायत रखन क उद्देश्य स तोक्यो गया। वहाँ उनके द्वारा दी गयी जानकारी से मुझ बहुत बडा आघात लगा कि मरे पावतऊ छोडने के लगभग एक मास बाद, जिस मुस्लिम सगठन की स्थापना म मैंने सहयोग दिया था वह जापानी एजेन्टो के विभिन्न अपराधपूर्ण कार्यों और कदाचित व्यापारमडल के कुप्रबध के कारण छिन्न भिन्न हो गया था। लोग असतुष्ट हो चुके थे जिसके परिणाम म चीनी अधिकारियो ने उस क्षेत्र पर पुन अधिकार कर लिया था और समस्त जापा नियो की हत्या कर दी थी जिनम, वहाँ स्थित जापानी सना के कमाडर एक लफ्टिनेन्ट कनल भी शामिल थे। पावतऊ स्थित जापानी सनिक पुलिस कमान चीनियो क हाथो पूर्णरूप स तबाह कर दी गयी थी।

पावतऊ की घटना' नामक इस घटना पर भी उजिना घटना की भाँति हो

जापानी सना द्वारा पर्दा डाल दिया गया। पारम्परिक चीनी व्यापारियो को कम-स-कम कुछ काल के लिए बहुत परेशानी उठानी पडी और अपने अधिकारियो की असावधानी की वजह से बहुत से निर्दोष जापानियो को जान गँवानी पडी। क्वान तुग सना म इतना अधिक आत्मविश्वास आ गया था कि उसने वास्तविकताओ को ही भुला दिया था। दुर्भाग्यवश, ये सब बाते मेरे वश के बाहर थी। इग्लण्ड को भेजी जानेवाली ऊन के प्रेषण मे बाधा उत्पन्न करने के बाद मरा काय समाप्त हो गया था। किन्तु मुझे बहुत खेद था कि कुछ अधिकारियो की कल्पनाशक्ति इतनी सकुचित थी। जो कुछ हुआ, उसके प्रति बहुत दुखी मन से मैं मचुको लौट गया। जहा नया कार्य-क्षेत्र और नया भविष्य मेरी प्रतीक्षा कर रहा था।

17

पुन मचुको मे

सन 1938 के मध्य म तोक्यो स सिंकिंग लौटन पर आशा थी कि गत वप की तुलना म इस बार भारत के स्वतत्रता अभियान क प्रचारकाय और अय कार्यों पर मैं अपक्षतया अधिक ध्यान व प्रयास केंद्रित कर पाऊंगा। साथ ही, गामिन-साकू क्योवा काइ और मचुका प्रशासन तत्र क परामशदाता की हैसियत स मेरी भूमिका के बहुत से काम बाकी पड़े हुए थे। मैंने इस दिशा म काफी ध्यान दिया किंतु साथ ही राजनीतिक गतिविधियो म भी भाग लेता रहा।

तोक्यो स्थित युद्ध मत्रालय म और क्वानतुग सना के मुख्यालय म भी जार दार कारवाइ चल रही थी। जापानी सनाएँ चीन म बहुत अधिक व्यस्त थी जहाँ उनकी उपस्थिति अधिकाधिक अलोकप्रिय होती जा रही थी। उन सनाओं और च्याग-काई शेक की सनाओ म बहुत बार छिटपुट मुठभेड़ें होती रहती थी। दिसम्बर 1937 म जापानी सनाओ न शघाई म चीनी सनाओ का पराजित किया और नानकिंग पर अधिकार कर लिया जहाँ भयकर हत्याकाड और बबरता का ताडव हुआ। किंतु अपनी राजधानी को हांको म स्थानातरित करन क बाद च्याग-काई शेक ने और अधिक बलपूवक प्रतिरोध आरभ कर दिया। जापानी सनाओ पर बहुत अधिक दबाव था। इस स्थिति का सामना करन के लिए क्वानतुग सना म भारी विस्तार किया गया।

जापान सरकार क लिए एक अतिरिक्त चिंता का विषय था, चीन या मचुको मे या दोना म रूस के हस्तक्षेप की आशका। तोजो न, जब वे 1936 37 म क्वानतुग सना के महा अध्यक्ष थ, तोक्यो सरकार का चेतावनी दी थी कि ऐसी आकस्मिकता की सभावना को नजरअदाज नही किया जा सकता। इस सदभ मे कोरिया की स्थिति पर भी ध्यान दिया जाना था। कोरियाई राष्ट्रवाद एक ऐसी शक्ल पकडता जा रहा था कि उस पर नजर रखी जानी थी। क्योंकि दो की तुलना म तीन शत्रुओं का होना हानिकर था इसलिए जापान कम स-कम, चीन और

रूस स सभाव्य खतरे की स्थिति मे कोरिया के प्रति उदार रवैया अपनाना चाहता था।

इन परिस्थितिया मे जापान के लिए यह जरूरी हो गया था कि मचुको सबधी मामले को प्राथमिकता दे। तोक्यो की सरकार ने निर्णय किया कि नव-राज्य का आर्थिक विकास और सैनिक सुरक्षा सबधी तैयारी के लिए तीव्र प्रयास किये जाने चाहिए थे।

आर्थिक मोर्चे पर जापानी जायवत्सु की सहायता से विभिन्न विशाल स्तरीय औद्योगिक परियोजनाएँ आरभ की गयी। इससे न केवल मचुको के वल्कि कोरिया के लोगो के लिए भी भरती करके वडी सख्या मे नय स्थाना को भेजा गया था जिसस उन्हे रोजगार के अधिक अवसर सुलभ कराये जा सके थे। चूकि कोरिया की अथव्यवस्था म सुधार होन स उस देश मे शाति स्थापित रह सकती थी इसलिए यह क़दम एक सुविचारित प्रयास था। कोरियाई श्रमिका को विभिन्न क्षेत्रा म विशेपकर कोयले की खानो म काम करन के लिए जापान ले जाया गया। प्रतिरक्षा सनाओ के विस्तार के लिए अनेक अतिरिक्त सनिक डिविजना का जापान स लाया गया था। उनम से वहुत-सी चीनी सीमा के निकटवर्ती इलाका म तैनात थी।

इन सब गतिविधिया का विशेपकर, जापानी सनाओ की वद्धि का एक खेद पूण पहलू यह भी था कि उससे कोरियाई महिलाआ को वडे पैमाने पर अपमान का शिकार होना पडा था। जापान अधिकृत चीनी क्षेत्रो म चीनी कन्याआ स भर वश्या-गृहो की स्थिति पहले ही कलकपूर्ण थी। मचुको मे युवा कोरियाई कन्याओ की वडी सख्या मे पकडकर आला जापानी सनिको के मनोरजन के लिए भरती कर लिया गया था। कुछेक जापानी लडकियाँ भी भरती की गयी थी किन्तु उनकी सख्या अपेक्षतया वहुत कम थी।

प्रतिरक्षा प्रयासो का एक पहलू यह था कि सोवियत सघ और मचुको तथा अन्य जापान अधिकृत क्षेत्रो के बीच एक मध्यवर्ती क्षेत्र बनाकर रखा जाय। भीतरी मगोलिया पहले ही ऐसा एक क्षेत्र था किंतु तोक्यो स्थित सैनिक हाई कमान की एक और ऐसा क्षेत्र बनाने की गुप्त योजना थी। यह एकदम नया विचार था।

सोवियत क्षेत्र के भीतर कोरिया की सीमा के एकदम निकट वहुत वडी सख्या म कोरियाई निर्वासित-जन बिखरे हुए थे। योजना यह थी कि इन लोगो के बीच घुसपैठ करके उन्ह सिखाया-पढाया जाय कि जिन क्षेत्रो म वे वहुसख्या म निवास करत थ उन क्षेत्रो म राजनीतिक स्वायत्तता क लिए रूस क विरुद्ध लडें। कुछ लोगो को कदाचित यह योजना कष्टसाध्य भले ही प्रतीत हुई हो किन्तु जापानी सना इस विषय म बहुत गभीर थी और शीघ्र उस पर अमल करना चाहती थी। यदि यह योजना सफल होती तो कोरियाई निष्कासित जन स जापान क प्रति

वफादार रहने की अपेक्षा की जा सकती थी और इस प्रकार जापान को दूसरा मध्यवर्ती क्षेत्र मिल सकता था जिसकी उसे चाह थी ।

यह नि सन्देह एक बहुत नाजुक कदम था। इसके लिए कोरियाई सहयोग अनिवार्य था जिसका स्वाभाविक अर्थ था—एक कोरियाई नेता का चयन। जापान सरकार ने तत्कालीन कोरियाई देश भक्ता म स एक श्री ली-काय-तेन के बार म विचार किया।

तुरन्त ही यह प्रश्न उठ सकता था कि ली काय तन ही क्या ? कारण था—एक ओर तो कोरियाइयो के बीच उनकी लाकप्रियता और दूसरी जार कोरि याई स्वतन्त्रता क प्रश्न पर जापानिया के प्रति उनकी राजनीतिक दृष्टि। नौकर-शाही के समथको के लिए ली-काय-तेन कुछ कुछ पहेली के समान ही थे। हाँ, व इतना जरूर जानते थे कि ली-काय-तेन राष्ट्र प्रेमी हैं किन्तु ठीक-ठीक नही जानत थ कि किस हद तक। किंतु जो लोग उन्ह निकट से जानत थ उनका मानना था कि उनम देश भक्ति की भावना कूट कूटकर भरी है तथा अपने देश का जापान की दासता स मुक्त करान के लिए वे कृतसकल्प हैं। व एसा कोई भी क़दम उठान का तयार न थे जो इस भावना के विरुद्ध हो। लेकिन एसे लोग बहुत कम थे जो उन्ह बहुत अच्छी तरह जानते थे। वे एसे चतुर और कूटनीतिक नेता थ कि बाहरी तौर पर ही यह आभास दिलात थे कि व मध्यमार्गी हैं। गुप्त रूप से कोरियाई स्वतन्त्रता अभियान को सर्वाधिक प्रभावकारी बनाने मे उन्हान एक बढिया कलाकार का-सा परिचय दिया था। इसलिए कुछ परिस्थितिया म वे जापान सरकार की नजर म एक स्वीकाय और राष्ट्रवादी कोरियाई थे। जापानियो की दृष्टि मे निष्कासित कोरियाई जन का उपयोग किया जाना परिस्थिति की माग थी।

मैं ली के घनिष्टतम दोस्तो म एक था, जो उनक वास्तविक चरित्र और कारिया की स्वतन्त्रता के लिए उनकी काय विधि के विषय म अच्छी तरह जानता था। 'काला अजगर सोसाइटी के सस्थापक रियोही उच्चिदा और मितसुरु तोयामा, जा उनके विश्वस्त सहयोगी थ के साथ सम्पक के कारण हम भी एक-दूसरे के निकट आ गये थ। ये दोना प्रसिद्ध उग्र राष्ट्रवादी जापानी अनेक प्रकार स हमारे प्रति अनुग्रह बरतते थे। वे असाधारण व्यक्ति थे। मैंन रासबिहारी बोस से सम्बद्ध अध्याय म पहल भी तोयामा की चर्चा की है। मैं विश्वविद्यालय मे अपने छात्र काल म क्योतो मे उन्ह निजी तौर स जानता था। वही मैं रियोही उच्चिदा के भी सम्पक मे आया था। रियोही की सन 1933 मे क्षय रोग स मत्यु हो गयी। रोग ग्रस्त स्थिति म भी मैं उनस दो-एक बार मिला था और यह देखकर आश्चय-चकित रह गया था कि वे अन्तिम साँस लेन तक कितना कठिन काय करते रहे थ। वे लौह इच्छा शक्ति के स्वामी थे।

ली और मरे प्रति रियोहे और तोयामा के मन म स्नेह का कारण यह था

कि हमारे मन मे अपने अपने देश के प्रति प्रेम की जा भी भावना थी वह उनकी दप्टि म जापानी सम्राट के प्रति उनकी अपनी सम्मान भावना और अपने देश के प्रति उनके प्रेम के समान ही थी। कुछ लोग इन बातो म असगति की झलक देख सकते हैं। उन्हे यह बात कुछ अजीब लग सकती है कि वे दोनो ली के प्रति भी वसी ही सहानुभूतिपूर्ण भावना दर्शाते थे जा कोरिया के थे जिस पर जापान का कब्जा था। आम धारणा यह हो सकती थी कि ये एक कोरियाई के प्रति अहित के सिवा और कोई भी कारवाई नही करना चाहेगे जो अपने देश से जापान की सत्ता मिटाने के लिए प्रयासरत था। किन्तु मानव मनोविज्ञान भिन्न व्यक्तियो के सन्दभ मे वास्तव म विचित्र रूप से कायशील हो सकता है।

उनके वामपथी अतिवाद के प्रति आलोचकगण कुछ भी क्यो न कहे काला अजगर सोसाइटी के सदस्य के नेतागण वडे ही सुसस्कृत लाग थे। ली की देश-भक्तिपूण भावनाआ की ईमानदारी स वे अत्यधिक प्रभावित हुए थे। वे अगर चाहते तो उन्हे अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए कायशील होने स चाहे वह देश कोरिया ही क्या न हो, रोक सकत थे। यह एक असाधारण रुख था किंतु पूणतया सत्य था।

यद्यपि राष्ट्रवाद के प्रति भक्ति हम चारा के सन्दभ म सत्य थी, फिर भी हमारे बीच ये निश्चित मान्यता थी कि हमम से कोई भी परस्पर किसी के मामले म दखल न दगा और उसे कष्ट नही पहुँचायेगा। प्रत्येक अपने मन के मुताबिक काम करेगा। यदि कोई न चाहगा तो वह अन्य किसी को अपनी गतिविधिया की न तो जानकारी देगा और न उससे कोई प्रश्न ही किये जाएँगे। साथ ही हमारी दोस्ती पूर्ववत अटूट और सौहादपूण रहगी। किंतु ली और मैं स्वेच्छा से ही अपने विचारो का आदान-प्रदान करत और अपन कायकलापो की सूचना एक-दूसर को देते थ। बहुत अवसरा पर हमने मचुको और कोरिया की एक साथ यात्रा की। गुप्त कार्यों मे ली की दक्षता से मैं सदा प्रभावित रहा।

ली-कायन्तेन दक्षिण कोरिया के थे। वे जन्मजात राष्ट्रप्रेमी थे। जब सन् 1910 म जापान ने कोरिया पर अधिकार कर लिया तो वे बहुत क्रुद्ध हुए थे। जब सन् 1938 म मचुको मे हम इकट्ठे थे तब उनकी आयु लगभग 65 वप की थी यानी मेरी आयु से लगभग दुगुनी किन्तु उनकी आजस्विता म कोई कमी न थी। वे मेरे बराबर थे कदाचित मुझसे कुछ बढकर ही थ। उनका मस्तिष्क बहुत विलक्षण था और शरीर अति सबल। वे एक धनी परिवार से थे और दक्षिण कोरिया म सियोल म रहते हुए बाहरी तौर पर तो शानदार और वभवपूण जीवन का आभास देते थे किन्तु निजी रूप स बहुत सादा और मितव्ययी जीवन के हामी थे। जडी-बूटिया की औपधि म उनका अखड विश्वास था और स्वय उनका स्वास्थ्य उन औपधियो की प्रभावोत्पादकता का सर्वोत्तम प्रमाण था। ली धूम्रपान

नही करते थे और मद्यपान भी कभी-कभार ही करते थ और वह भी बहुत थाडी-सी मात्रा म। हम दोना की आयु मे अतर का हमारी हार्दिक मित्रता पर कोई प्रभाव नही पडा था जो हमारे अपन अपन दश के स्वतत्रता अभियाना की प्रेरणा की पहचान पर आधारित थी। प्रत्यक्ष कारणो स ही उनके काम काज का तरीका मेरे तरीके से कही अधिक खतरनाक था।

ली का जमाई किन भी मेरा अच्छा मित्र था। वे तोक्यो के हितोत्सुबाषी विश्वविद्यालय के स्नातक थ। व बडे मेधावी छात्र थ और अपने अथशास्त्र सकाय की सूची म प्रथम स्थान प्राप्त करक उन्होने सन 1935 या 1936 म स्नातक की उपाधि ली थी। तोक्यो हितोत्सुबाषी विश्वविद्यालय का अथशास्त्र सकाय बहुत ख्याति प्राप्त था। जापान के युद्धोत्तर प्रधान मन्त्रियो म स एक, श्री आहिरा आसाही समाचार-पत्र स सलग्न एक प्रसिद्ध पत्रकार श्री रियु शिन्तरो और अय अनेक प्रमुख अथशास्त्री वही के स्नातक थे। किन की आयु लगभग मेरे बराबर ही थी। ली के समान ही वे भी रग रग म दश प्रेम की भावना लिये हुए थे। ससुर और दामाद ने मिलकर स्वतत्रता क लिए एक सुदर कायकर्ता-दल बना रखा था।

यह सोचना गलत होगा कि जापानियो को ऐसी कोई भ्राति थी कि ली काय तन का खरीदा जा सकता है या उ ह एजेट बनन के लिए मनवाया जा सकता है। फिर भी उन्ह अनिवायत कोई जोखिम ता उठानी ही थी। मध्यवर्ती क्षेत्र सबधी कारवाई एक जाने पहचाने प्रसिद्ध कोरियाई राष्ट्र प्रेमी की सहायता के बिना सभव न थी। जापानियो ने यह आशा की थी कि रूस म एक स्वायत्त कोरियाई क्षेत्र की सभावना और कोरिया पर उनकी पकड मे ढील देने की उनकी इच्छा की अभिव्यक्ति मे कदाचित ली के लिए वह आकषण पदा किया जा सकता था जिसके बल पर वे उस परियोजना का सँभाल लते।

हान वाकाबयाषी जो काला अजगर सोसाइटी से सलग्न थे, इस काय के बिचौलिया बने तथा जापान सरकार ने क्वानतुग माध्यम स ली तक अपना विचार पहुँचाया। ली न अपनी शर्तों के अनुसार उस योजना को काय रूप देने की हामी भरी।

उक्त योजना के अनुसार उन्हे रूसी क्षत्र के भीतर के अलावा कोरिया मचुको शघाई और चीन के अन्य भागो मे भी क्रातिकारी कोरिया मे एक गुप्त आदोलन का नेतृत्व करना था। योजना यह थी कि इस सस्था द्वारा शिकिंग मे एक स्कूल खोला जायेगा जहाँ क्वानतुग सना क जापानी अफसरा के साथ मिलकर वह अपनी पसद के चुन हुए कोरियाइ लागा को कोरियाकू यानी षडयत्र आदि की तकनीक सिखा सगे। वहाँ के पाठयक्रम के दो भाग हागे। एक म तो आध्यात्मिक और राजनीतिक शिक्षा दी जायगी जिसका सचालक स्वय ली करनेवाल थ। दूसरे भाग म रण-क्षत्र

या मदानो म गुप्तचरी के कार्यों के सिद्धान्त और प्रयोग की शिक्षा दी जायगी जो जिम्मेवारी जापानी प्रशिक्षका की थी। ली की चतुराई का कमाल यह था कि इस सब कायकलाप का नियत्रण पूणतया उन्ही के हाथो मे रहनेवाला था। 'सबसे पहली बात तो यह कि छात्रो का चयन भी उन्ही के द्वारा किया जायगा। व इस बात का आश्वासन प्राप्त करनेवाले थे कि उनमे से प्रत्येक कोरिया की स्वतन्त्रता के सकल्प से ओतप्रोत होगा जबकि प्रत्यक्ष रूप से वह रूस मे कोरियाई निष्कासितो की बस्तियो मे घुसपैठ का प्रशिक्षण प्राप्त करता रहेगा।

इस योजना का समस्त खच जापान की सरकार द्वारा वहन किया जायगा। जब भी उसकी माग प्रस्तुत की जायगी तो कोष ली और वाकाबयाषि को सयुक्त रूप से प्रदान किया जायगा। वकावयाषि को प्रदत्त राशि मे से क्यानतुग सना के अफसरो की खातिर की जानी थी जसा कि उन दिना आम प्रथा थी। बाकी राशि का ली द्वारा, जसा वे उचित समझत, उपयोग किया जाना था। वाकाबयाषि को हर बार 'सम्पक सूत्रधार' होन की हैसियत से एक मोटी रकम अलग से दलाली के एवज मे दी जानी थी।

ली ने मुझे एक प्रशिक्षक की भाति काय करन के लिए आमन्त्रित किया। उनके साथ अपनी मित्रता को देखते हुए मै उन्ह इनकार न कर सका हालाकि मैंने ईमानदारी स उन्ह यह स्पष्ट बता दिया कि मै जापानियो या कोरियाइयो का पक्ष लिये बिना षड्यत्र आदि की मोटी मोटी जानकारी की ही शिक्षा दूगा। दूसरे शब्दो मे मै बोरियाकू के सिद्धान्तो क बिषय मे एक अप्रतिबद्ध परामशदाता भर ही होऊँगा और परियोजना के प्रायोगिक रूप से मेरा कोई सवध न होगा। मेरे मित्र को यह बात स्वीकाय थी। मुझ जैसे एक बाहरी व्यक्ति से सहायता की प्राप्ति नीति से सवद्ध थी, इसलिए ताक्यो के अधिकारीगणा की स्वीकृति लेना आवश्यक था। यह स्वीकृति प्राप्त करने मे ली को कोई कठिनाई नही हुई। मुझे उनकी सहायता करने म बहुत खुशी हुई क्योकि मैं यथा सुलभ किसी नये प्रयास के बल पर कोरिया द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त किए जाने के पक्ष मे था।

जापानी विशेषज्ञो के एक समूह के साथ जो प्रशिक्षका के रूप मे नियुक्त किय गये थे, ली-काय-तेन ने अपनी पसन्द के चुने गये तीस कोरियाइयो को लेकर शिकिंग म एक षडयत्र स्कूल की स्थापना की और उनके लिए तीन मास की अवधि का एक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आरभ किया। उस अवधि की समाप्ति पर, उतनी ही सख्या का दूसरा समूह भरती किया गया और वैसे ही एक कायक्रम को सम्पन्न किया गया। मैं पाठ्यक्रम का सयोजक और अवैतनिक परामशदाता होने के साथ-साथ अतिथि प्रशिक्षक भी था और साथ ही मुझे मुख्य वाडन का दायित्व भी सौंपा गया था।

प्रशिक्षण सम्पन्न कर लेने और अपना काय आरभ करन की अवस्था को

पहुँचने पर ली-काय-तन न अपने शागिर्दों को मचुको, कोरिया और रूस क सीमा क्षेत्र स होत हुए साइबीरिया भेज दिया। कालान्तर म सन 1940 के दशक क आरभ मे जब समस्त क्षेत्र हिम से ढँका था और यात्रा स्थिति भयावह हो गयी थी, ता व स्वय भी सीमा पार कर साइबीरिया मे प्रविष्ट हा गय। मैंने सीमावर्ती काणचुन नामक नगर म उन्ह विदा दी। क्वानतुग सना और तोक्या स्थित जापानी सनिक हाई कमान को इस दल से अति महत्वपूण सूचना पान की प्रत्याशा थी किन्तु कोई सूचना प्राप्त नही हुई। उन गुप्तचरा और उनके नता के विषय म फिर कभी कोई सूचना न मिल सकी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद मुझे पता चला कि जिन कारियाइयो को ली ने और मैंने सिकिंग म प्रशिक्षण दिया था व उत्तर कोरिया के राजनीति जगत् म बहुत सक्रिय थ। किन्तु मुझ खेद है कि मैं इस बारे म कोई विश्वसनीय जानकारी प्राप्त नही कर सका कि स्वय मरे मित्र ली पर क्या गुजरी।

18

मेरा विवाह

1938 की शरद म, जब मै सिंकिग मे कोरियाइ पडयन्त्र केन्द्र म कायरत था समय के लिए तोक्यो गया। यह यात्रा जापानी हाई कमान के निमन्त्रण पर यी थी जिसका उद्देश्य था—मचुको की स्थिति पर विचार विमश क लिए सभाओ म भाग लेना। सरकार तन्त्र से बाहर के अपन कुछ पुरान मित्रो क भेंट के लिए भी मैन इस अवसर का लाभ उठाया। इनम थ—श्री रिसुके फुवा तोक्यो मे एक व्यापारी थे और भारत से सम्बद्ध मामला म जिनकी चिर स्थाई थी।

फुवा श्री इमागोरो असामी के दामाद थे। श्री असामी सईतामा जिला के एक सम्मानित ग्राम मुखिया थे और उन्ह इस क्षेत्र के सर्वाधिक अभिजात परिवार सिरमौर हान की ख्याति प्राप्त थी। एक शाम अपन मित्र क घर पर भोजन के मेरी भेंट उनकी पत्नी की वहन कुमारी इकु असामी स हुई जो कुछ समय क वहाँ रहन आयी हुई थी। विनम्र और साधारण वातालाप के अलावा हम के बीच मुश्किल से ही कोई बात हुई होगी, फिर भी मैंन स्वय को उनके प्रति प आकृष्ट पाया।

जब मैं तोक्यो म था ता मैंने अपनी भावनाओ को एकदम अपन तक ही सीमित था। प्रेमपाश म बाँधने की बुद्धिमत्ता के प्रति मेरे मन म वडा ऊहापोह था। एक ऐसी स्थिति थी जिसका मेरी तत्कालीन जीवन शैली के साथ कदाचित मल बठ सकता था। मैं एक रोणिन की तरह एक स्थान स दूसर स्थान तक घूमता ता था जिसका न कोई निश्चित कायस्थल था न कोई घर-बार। राज-क सन्दभ म मुझे इतना कुछ करना था कि मैं इस बार म कुछ अनिश्चित था कभी भी एक विवाहित स्थिर जीवन बिता पाऊँगा। इसलिए मैंन विवाह सब भावनाओ का अपन मन से दूर रखने की चेष्टा की। कि तु वे बार-मेरे मानस म उभरती रहा। सिंक्यांग म लौटन के कुछ ही समय बाद मैंन एक अभिन्न जापानी मित्र श्री कोरी के साथ कुमारी इकू असामी क विषय

म अपनी भावनाओ को प्रकट किया।

इस विषय पर मुझे सवप्रथम बोलत सुनकर श्री कोरी को बडी आनन्दमय उत्तेजना हुइ। उन्होने अपने ऊपर एक जिम्मेदारी-सी सँभाल ली। उनके विचार म यह उनकी' जिम्मेदारी थी कि यह समाचार फला दे कि ए० एम० नायर कुमारी इकू असामी के साथ विवाह के लिए राजी है। मेर विचार म उनकी ओर स यह एक बडा साहसपूण कदम था किन्तु उन्हे भला कौन रोक सकता था।

कोरी ने जापानी सनिक हाई कमान के विभिन्न गणमान्य व्यक्तियो को, जिनम क्वानतुग सना के महत्त्वपूण अध्यक्ष (भूतपूव) और तत्कालीन युद्ध मत्री जनरल इतगाकी भी शामिल थे तार भेजे। जापान म जिन भारतीयो को उन्होने सर्वप्रथम सूचित किया उनमे रासबिहारी बोस भी थे। मचुको मे यह समाचार तीव्रता स फल गया और जनरल कुदो के माध्यम से सम्राट पू ई तक पहुँच गया। श्री ली-काय-तेन का यह समाचार सवप्रथम मिला। इस तार के लिए कोरी ने स्वय ही सन्देश की रचना कर ली थी जिसका अथ यह निकलता था कि कुमारी इकू के साथ मेरा विवाह पहले ही से निश्चित हो चुका था और अब केवल तिथि निश्चित करनी था। हालांकि मैं विवाह के विषय पर स्वय को बहुत निश्चित न पाता था तो भी मैंने कोरी द्वारा किय गये साहसिक उपक्रम का कोई विरोध नही किया। उल्ट, अन्तत मुझ यह जानकर काफ़ी सुकून सा मिला कि मेरा भी कोई था जो एक ऐसे मामले को सभालने के लिए तयार था जिसके बारे मे मुझे एहसास था कि मैं चाहता तो हू किन्तु आरभ म ऐसा स्वीकार करने को तयार न था।

कोरी ने बुद्धिमानी से काम लिया। अन्य लोगो की तुलना मे श्री इमागोरो असामी स बात करते हुए कुछ भिन्न रूप अपनाया। उन्होन इस बात का ध्यान रखा कि यह सन्देश उनके पास सीधे नही बल्कि कुमारी इकू के भाई के माध्यम से भेजा जाय। यह एक प्रकार से मेरी ओर से एक अनुरोध था कि मुझे उनकी पुत्री से विवाह की अनुमति मिल जाए।

घटनाचक्र तेजी से चला। श्री इमागोरो की अनेक पुत्रिया द्वारा एतराज उठाया गया। यह बात अनसुनी थी कि एक विदेशी को एक जापानी अभिजात परिवार, विशेषकर ग्राम मुखिया के परिवार म विवाह की अनुमति दी जाए। जहाँ तक भारतीया का प्रश्न था, रास बिहारी बोस का विवाह एकमात्र ऐसी घटना थी, जब एक प्रसिद्ध जापानी परिवार की कन्या का विवाह एक भारतीय स और वह भी और कोइ नही बल्कि मित्सुरु तायामा के अनुरोध से हुआ था। स्वय श्री इमागोरो ने खुले दिल स काम लिया। उन्होने मेरे बारे म सुन रखा था और उन्हे मुझे अपना दामाद बनाने म कोई आपत्ति न थी। व केवल इस विषय म सोचन का अवसर चाहत थ। इसी बीच बधाई सन्देश आने शुरू हो गये। स्थिति कुछ

ऐसी हो गयी कि श्री ली कायन्तेन के स्कल म मेरी व्यस्तता के बावजूद मैंने सोचा कि बजाय इसके कि अनावश्यक अटकलबाजी हो इस निजी मामले का निपटारा करने क लिए मुझे तोक्यो जाना ही चाहिए ।

विभिन्न पत्रा व स देशो के अलावा तोक्यो म मरे लिए जनरल इतगाकी का एक खत भी पडा था जिस पर लिफाफे म स्वय उनके हाथ की लिखाई थी। उस लिफाफे म हार्दिक शुभ कामनाआ को सु दर सदेश के साथ । विवाह के अवसर पर दिये जानेवाला नकद उपहार यानी तीन हज़ार येन की राशि भी थी। एक क्षण तो मुझे विश्वास ही न हुआ कि मैं ठीक स गिन रहा था क्याकि उन दिना तीन हज़ार यन एक बडी धनराशि समझी जाती थी। लेकिन वह बात ता छोडिये, श्री इतगाकी का शुभ कामना स देश एक ऐसा बेहतरीन प्रमाण था जिसकी कोई आशा भर ही कर सकता था। मैंने श्री इमागोरो के सबधिया द्वारा उठाई जान वाली आपत्ति के बारे म सुन रखा था इसलिए मैंन अपन एक मित्र क हाथ इतगाकी की शुभ कामना का लिफाफा श्री इमागोरी का भेजन का निणय किया ताकि उनके परिवार म मुझे अपनाने के सम्ब ध म वे कुछ निणय ले सके। जसा कि मुझे कुछ अदाज था, उसका प्रभाव बहुत जल्दी हुआ। दो बडी बहना के विरोध को छाडकर, अ य हर प्रकार का विरोध विलुप्त हो गया। उन दोनो ने मेर विवाह के तथ्य से तभी समझौता किया, जब जापान की पराजय हा चुकी थी, भारत आजाद हो चुका था और मैंने तोक्यो म अपना मकान बनवा लिया था।

श्री इमागोरो एक प्रश्न का समाधान चाहत थे। यदि वे मेरे साथ अपनी पुत्री का विवाह करते है ता उनकी पुत्री के कोसेकी यानी परिवार पजीकरण का क्या होगा ? उस समय, उनके बडे भाई के हाथ मैंने यह स देश भेजा कि दुर्भाग्यवश भारत अभी भी ब्रिटेन की औपनिवेशिक सत्ता के अधीन है, कि तु मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही वह स्वतत्र हो जायेगा। उस स्थिति म यदि वे मुझ से विवाह करती हैं तो मैं चाहूँगा कि वे भारतीय नागरिकता अपना लें। उ हाने कुछ समय तक विचार किया और आखो के झिलमिल आँसुओ के साथ श्री इतगाकी के पत्र को परिवार के पूजा-स्थल पर रख दिया।

मैं जानता था कि इसका अथ था मेरे विवाह के प्रस्ताव क प्रति उनकी स्वीकृति। उ हाने अपने पुत्र के माध्यम से मुझे स देश भिजवाया कि मैने जो कुछ कहा था उसस वे पूणतया सहमत थे। अपनी पुत्री इकू के साथ विवाह के विषय पर उ हे बहुत प्रस नता है। उनकी राष्ट्रीयता बदलन के सिलसिले मे मैं भारत द्वारा स्वतत्रता प्राप्ति तक प्रतीक्षा कर सकता था क्योकि वे भी नही चाहते थे कि उनकी पुत्री ब्रिटेन की नागरिक बने। मैं इसस बहुत प्रभावित हुआ। मरे ससुर उन जापानी गणमा य व्यक्तियो की अग्रिम पक्ति म थ जि ह हार्दिक विश्वास था कि शीघ्र ही भारत स्वतत्र हो जाएगा। दुर्भाग्यवश यह शुभ अवसर

अपनी आखा से देखन से पूव ही वे स्वग सिधार गय । किन्तु मैं बहुत बार सोचता हूँ कि वे स्वग म इस घटना के प्रति आनन्द का अनुभव कर रह होग ।

स्वय अपने परिवार की परम्परा के अनुसार मैंने अपन सबस बडे भाई डॉ० कुमारन नायर को कुमारी इकू असामी के साथ अपन विवाह के प्रस्ताव की सूचना लिख भेजी । वधू के परिवार क सम्बन्ध म सब बाते ब्योरेवार लिखी और अपनी माता की अनुमति व आशीर्वाद की मांग की थी । मुझ यकीन न था कि मेरा पत्र उन तक पहुँचेगा भी या नही । वह पत्र पहुँचा जरूर, मगर डाकिय के बदल उस पत्र को एक पुलिसमन न मेरे घर पहुँचाया । उनका उत्तर अविलब ही आया कि मेरे परिवार को कोई आपत्ति न थी । अपना आशीर्वाद देत हुए, मेरी माता न यह आशा भी व्यक्त की थी कि मैं अपनी (और समय आन पर सतान की भी) ठीक से देखभाल करूँ—आर्थिक और सामाजिक दाना ही प्रकार स और यह भी कि मुझे एक अच्छा सहृदय पति और पिता बनना चाहिए । उनकी एक अभिलाषा और भी थी कि उनकी इहलीला समाप्त होन स पूव व कम स-कम एक बार मुझे और मेरी पत्नी व बच्चो का देखना चाहती है । मेरा जी भर आया । मैंने अपनी माता को लिखा कि उन्ह अपने सबस छाटे पुत्र के बार म चिंतित नही होना चाहिए और यह भी कि मैं एक भला आदमी बनूगा, चाह महान न भी बनू । मुझ विश्वास है कि मेरे आश्वासन स उन्हे तसल्ली मिली होगी ।

6 फरवरी, 1939 को तोक्यो म एक सादा समारोह म कुमारी इकू असामी से मेरा विवाह हुआ जिसम असामी परिवार के निकट के मित्रो और सबधिया ने, जिनमे श्रीमती इमागोरो भी शामिल थी भाग लिया और मेरे कुछ अतरग मित्र भी आये । कुल बीसेक व्यक्ति थे । मेरे ससुर न अपनी पत्नी के हाथा अपना आशीर्वाद हमारे लिए भेजा ।

7 फरवरी को मेरी पत्नी और मैं कोबे के लिए रवाना हो गये और अगले दिन पोत पर सवार हम दायरन की ओर बढे जहाँ हम 11 फरवरी को पहुँचे । अपन मित्रो द्वारा आयोजित भोज और उत्सवो क आनन्द मे कुछ दिन बिताने के बाद मै अपनी सामान्य राजनीतिक गतिविधियो म व्यस्त हो गया । उस समय मेरी काय सूची मे मुख्य काम था—श्री ली काय-तेन के स्कूल म उन दिनो प्रचलित पाठयक्रम को समाप्त कराना । मुझे लौट आया देखकर कोरियाई नता बहुत प्रसन्न हुए । यहाँ इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि अपने विवाह के लिए तोक्यो तक की यात्रा और फिर वापसी के लिए उन्हाने मेरी जो वित्तीय सहायता की थी उसके प्रति मेरा मन आभार भाव से विशेष अभिभूत हुआ । उन्होने मुझ काफी धन उपहार म दिया था । हालाकि मुझ अन्य अनेक शुभचितका स काफी अच्छे उपहार प्राप्त हुए थे और जनरल इतगाकी के उपहार की राशि भी बहुत अधिक थी तो भी मै श्री ली काय-तेन के उपहार का भी उपयोग तो कर ही सकता था

क्योंकि अति मितव्ययता से की गयी विवाह रस्म भी तो कम खर्चीली नहा होती है।

मेरे पास सदा ही बहुत स काम होते थे जिसम मचुको के भीतर ही बार-बार की याना भी शामिल थी। मेरी पत्नी और मैं सिंकिग मे एक अच्छे घर म रहते थे और आराम का जोवन विता रह थे। हमारा प्रथम पुत्र वासुदवन नायर 4 दिसम्बर, 1939 को सिंकिग म जन्मा। मेरे परिवार को देखने की मरी माता की इच्छा की बात एक दिन के लिए भी मैं नही भूलता था।' लेकिन दुर्भाग्यवश, उनकी और मरी भी यह आशा फलीभूत नही हुई। मरे पुत्र वासुल्वन के जन्म के पाच दिन बाद मेरी माता का निधन हा गया। हालांकि उस समय उनकी आयु 80 वप से ऊपर थी तो भी इस समाचार स मुझे बहुत दुख हुआ और अब भी जब कभी मैं उनकी याद करता हूँ तो मरा मन दुख से भर उठता है।

19

मचुको मे जासूसी

विवाह के बाद कदाचित अधिकाश लोग, विशपकर जो इसस पूर्व सावजनिक कार्यों म बहुत सक्रिय रहे होते हैं, पहल की तुलना म अधिक शात पारिवारिक जीवन बिताने की इच्छा करते हैं। मैं एक घुमक्कड जीवन का काफी आनन्द ले चुका था और अपने राजनीतिक जीवन के खतरो का भी सामना कर चुका था। अत मेरे बहुत से मित्रो की सलाह थी कि मुझे एक टिकाऊ, अच्छी तनख्वाह वाली गर राजनीतिक नौकरी कर लेनी चाहिए। मचुको म या जापान म कही भी ऐसी नौकरी के अवसरो की कमी न थी। केवल भारत ही एसा स्थान था जहा मुझ बेरोजगारी का मुह देखना पडता क्योकि ब्रिटिश अधिकारीगण मुझ जेल म ठूस दने के लिए आकुल थे।

किंतु मुझे अपनी काय शली मे परिवतन की कोई इच्छा नही हुई थी। निश्चय ही मेरे विवाह के कारण मेरी निजी जिम्मेवारी बहुत बढ गयी थी परन्तु यह कोई कारण न था कि मैं काया पलट कर लेता। जहाँ तक मेरी पत्नी का प्रश्न था, उनके जीवन की पृष्ठभूमि कुछ ऐसी थी कि वे सदा ही खतरे की छाया मे जीन वाले एक क्रातिकारी के जीवन के तनाव और परेशानियो के बजाय एक समद्ध जीवन शली की ओर आकृष्ट होती। किन्तु वे न केवल सतुष्ट थी बल्कि जो कोई भी काय-क्षेत्र मैं अपन लिए चुनता उसम शामिल होने और अन्त तक मेरी सहायता करन को उत्सुक थीं। वे मेरे जीवन-लक्ष्य के साथ पूणतया सहानुभूति रखती थी और मानती थी कि मुझे औपनिवेशिक सत्ता स मुक्ति के लिए भारत के स्वतत्रता सघष का अग बने रहना चाहिए। सौभाग्य से बहुत अच्छी जीवन सगनी मुझे मिली थी।

सन 1939 के आरभ म मचुको सरकार ने अनक नव प्रशासनिक कार वाइयो के सिलसिले मे मेरी सेवाओ की माग की जो उन्हे मजबूरन उस राज्य म करनी पड रही थी। चूकि मचुको म किये गए सुधार जापान अधिकृत चीनी क्षेत्रो म बढते तनाव को कम करने के लिए कारगर हो सकते थ इसलिए तोक्यो

सरकार म पूण समथन दिया। मैंन 'मजबूरन' इसलिए कहा क्योकि मचूरिया पर काफी आसानी से अधिकार करने और उसे एक स्वतत्र राज्य म परिणत कर लेन के बाद जापान को उस पर नियत्रण बनाय रखन के स दभ म समस्याओ का सामना करना पड रहा था। वहाँ प्रशासनिक सुधारो की अत्यधिक आवश्यकता थी।

इस दिशा म सवप्रथम आवश्यकता इस बात की थी कि बढिया प्रशासक दल की रचना की जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मचुको सरकार ने सन 1939 के आरभ म सिंकिग मे एक केनगोकू दैगक्को यानी 'राष्ट्रीय निर्माण विश्व-विद्यालय' की स्थापना का निणय लिया। इस विश्वविद्यालय मे पाचो जातियो से चुने गय उच्च योग्यता-प्राप्त उम्मीदवारा को चार वष के पाठ्यक्रम की शिक्षा दी जानी थी। विभि न सकायो के विशेपज्ञ प्रशिक्षक वहाँ नियुक्त किये जाने थे जिनम सनिक विज्ञान और तकनीक आदि के विद्वान भी शामिल थ। तोक्यो से जनरल इतगाकी और जनरल इषिहरा भी कनल सूजी, लेफ्टिने ट कनल कतओका और मेजर मिपिना के साथ इस नव सस्था के सगठक थे और उ होन राष्ट्रीय तथा अतर्राष्ट्रीय मनाविज्ञान के विभाग म अध्यापन काय के लिए मुझे आमत्रित किया। यह सस्था मचुको सरकार के शिक्षा मत्रालय के अधीन थी किन्तु तकनीकी सह-योग आदि क्वानतुग सेना स प्राप्त होता था। मैंने एक अतिथि प्रोफेसर की भाति काम करना स्वीकार कर लिया।

अध्यापन के तरीका के अ तगत मैने अपने छात्रो को अपने घर मे अधिकतर प्रति रविवार को आमत्रित करना आरभ कर दिया जिससे कि विभि न जातियो के छात्र एक-दूसरे को भली प्रकार जान-पहचान सकें। य दिन ऐसे थे जब साधारण-तया कोई भी खुले रूप से अपना मत व्यक्त नही करता था क्योकि उसको गुप्तचरी के जरिये शिकायत हो जान का भय बना रहता था। एक स्वतत्र चिंतक द्वारा उच्चरित एक भी आवाज के परिणाम मे सनिक-पुलिस के उस पर झपट पडन की आशका बनी रहती थी। छात्रगण उनसे बेहद भयभीत रहते थे। कि तु जहा तक मेरे घर मे उनकी सभाओ का प्रश्न था उ हे चिंता की कोई आवश्यकता न थी। क्वानतुग सना के अध्यक्ष ने यह आदेश दे रखा था कि मरा घर सेना पुलिस की हद से बाहर रह। इसलिए छात्रगण बिना किसी डर के अपन मन की बात खुलकर कह सकते थे। यह देखकर बडा अच्छा लगता था कि एक मुक्त वातावरण म वे कसे अपना-अपना मत प्रकट किया करते थे और सिद्धान्तो को लेकर प्राय गर्मागर्मी भी हो जाया करती थी।

कोरियाई छात्र आम तौर पर जापानी और चीनी छात्रा से असहमत रहा करते थे। किन्तु यह बात ध्यान देने योग्य थी कि स्वय जापानी छात्रो म भी कई ऐस थे जो काफी खुले दिमाग के थे और हालाँकि वे सभी आमतौर पर इस

विचार के समथक थे कि एक नव एशिया के निर्माण के लिए जापान का प्रमुख भूमिका निभानी है किंतु वे, कही भी औपनिवेशिक विस्तारवाद के विरुद्ध थ। मै छात्रो को सदा इस ओर आश्वस्त करान की चेष्टा करता था कि उन्ह अपना मत व्यक्त करने का अधिकार तो प्राप्त होना चाहिए मगर उनके विचार विमश म निजी तनाव नही आना चाहिए। उन्ह कभी भी झगडा नही करना चाहिए और न ही मुक्का मुक्की की नौवत आनी चाहिए। उत्तेजना का कसा भी अवसर क्या न आय किसी के प्रति कभी भी निजी शत्रुता की कोई भावना नही रखनी चाहिए। बहस आदि का आधार अच्छी जानकारी होना चाहिए और उन्ह वौद्धिक स्तर तक ही सीमित रखा जाना चाहिए। यदि कोई छात्र दूसरे किसी छात्र के साथ सहमत न हो तो उसे असहमति प्रकट करनी चाहिए। उन सबको मैंन यह सलाह दी कि उन्ह एक समान भावना को अपनाना चाहिए और वह थी एशिया म हर प्रकार क पश्चिमी उपनिवेशवाद का विरोध।

इन सभाओ पर जोकि वौद्धिक रूप स वडी प्रेरक होती थी, कुछ व्यय भी होता था। हमारे घर मे अपने छात्रो को उचित रूप स खिलाने पिलान योग्य सुविधाएँ न थी। इसलिए मेरी पत्नी को काफी खच करके निकट के रेस्तरा स उनके लिए बढिया भोजन का प्रबन्ध करना पडता था।

जबकि इधर मचुको प्रशासको के एक वेहतर दल की रचना के प्रयास किये जा रहे थे उधर क्वानतुग सना को कठिनाइ का सामना करना पड रहा था। सन 1939 के वष भर चीन म उस अधिकाधिक परेशानी उठानी पड रही थी। मचुको चीन सीमा पर स्थिति अति सकटपूण होती जा रही थी। जापानियो को ज्ञात हो चला था कि वे अपराजेय होन की अपनी ख्याति या प्रतिष्ठा को और अधिक न वनाये रख सकेंगे। कुछ सीमावर्ती मुठभेडो म, जिनम विरोधी दल म रूसी होते थे जापानी सेनाओ को बहुत मार खानी पडी थी। एक रिपोट के अनुसार सोवियत सघ ने पूर्वी साइवेरिया म कोई ढाई लाख सना केन्द्रित कर रखी थी जिससे कि बडी लडाई छिडने की स्थिति मे क्वानतुग सना का सामना किया जा सके।

सन 1939 की ग्रीष्म ऋतु म तथाकथित नोमोणहान घटना हुई जिसका जापानी प्रतिष्ठा पर जबरदस्त दुष्प्रभाव हुआ। क्वानतुग सेना के लिए यह बहुत शम की बात थी। नोमोणहान बाहरी मगोलिया तथा मचुको के बीच की सीमा पर चरागाही क्षेत्र म एक छोटा-सा ग्राम था। वहाँ की सीमावर्ती हल्की-सी झडप ने सोवियत सघ तथा जापान की सनाओ के बीच एक वडी लडाई का रूप ले लिया। भारी हमले और जवावी हमल हुए और बहुत वडी सख्या म दोना ओर के टको और विमानो न अपनी-अपनी थल सेनाओ की सहायता की। क्वानतुग सना को मुह की खानी पडी। इसम कोई नौ हजार सनिक मारे गये थे

और तकरीबन उतन ही घायल हुए थे। कहा जा रहा था कि स्थानीय जापानी कमाडर न गलती की थी। किन्तु क्वानतुग सेना के अध्यक्ष लेफ्टिनन्ट जनरल रेनसुके इसोगाइ न सारा दोष अपने सिर ले लिया। उन्ह वहा से बुला लिया गया। अगस्त 1939 म रूस तथा जमनी के बीच हुई आक्रमण विरोधी सधि के बाद मचुको-सोवियत सीमा पर शाति स्थापित हो गयी। किन्तु जापान वस्तुत सोवियत सघ को सदा एक खतरा समझता रहा।

सन 1940 की ग्रीष्म ऋतु म मैं पूववत सिंकिंग म अपनी सामान्य गति विधियो म सलग्न था यानी भारतीय स्वतन्त्रता अभियान का प्रचार करता था और केनगोकू दैगक्को मे पढाता था। नोमोणहान की दुघटना के पश्चात जनरल उवेदा के स्थान पर जनरल यापीजिरो उमेजू को क्वानतुग सेना का अध्यक्ष बनाया गया। जापान अधिकृत चीनी क्षेत्रो स प्राप्त हानवाली खबरें बहुत परेशान करनेवाली थी जिनस यह आभास मिलता था कि उन क्षेत्रो का प्रशासन बहुत कमजोर है। जनरल उमजू ने इन समस्याओ के कारण खोजने का निणय किया और इस बारे म विचार विमश के उद्देश्य से अपने सहायको के साथ कई बैठके की। इन बैठका मे किये गय निणयो के अनुसार मुझसे सगत चीनी के द्रो मे से कुछ म सही जानकारी प्राप्त करने के लिए जाने और इस यात्रा की रिपोट जनरल उमेजू को देने का अनुरोध किया गया।

मैंने यह काम करना स्वीकार कर लिया क्योकि इससे मुझे यह देखने-जानने का अवसर भी मिल रहा था कि जिन क्षेत्रो मे ब्रिटेन को कुछ इलाके किराये पर दिये गय थे वहाँ ब्रिटिश तथा अन्य पश्चिमी शक्तिया क्या कर रही है? मैने जनरल उमेजू को अपनी विशेष रुचि के बारे मे भी बता दिया जो उन सब के अलावा थी जो काम मुझे क्वानतुग सेना के लिए करना था। मैंने उन्हे सूचित किया कि स्वय अपनी जासूसी की गतिविधियो के लिए यानी शघाई तीनसीन और पीकिंग आदि स्थाना पर ब्रिटेन निश्चित रूप से उपस्थित है जो गुप्तचरी का काय कर रहा है उसकी जवाबी कारवाई के लिए मुझे कभी-कभी जापानविरोधी रुख भी दशाना पड सकता था। इसलिए समस्त जापानी अधिकारियो और गुप्तचरो को अग्रिम सूचना भेज दी जानी चाहिए जिससे कि व मुझे गलत न समझे बल्कि जरूरत पडने पर मुझे वाछित सरक्षण और सहायता सुलभ कराये। जनरल उमेजू इस बात पर राजी हो गये कि इस आशय के आदेश अविलब ही जारी कर दिये जाएँगे। लेकिन मैं निश्चय ही बोन्चो की सहिता के अनुसार आचरण करूँगा।

मैंने पीकिंग, नार्नकिंग और अन्य क्षेत्रो मे लगभग पाच मास बिताये। परेशानी का कारण करीब सभी स्थानो पर एक ही था। जापानी सनिक कमान और स्थानीय चीनियो व अन्य नागरिको के बीच किसी प्रकार की सौहादपूण भावना नही थी। चीनी लोग जापानियो के काम करने के ढँग को नही समझते थे और जापानी

पक्ष द्वारा उसे स्पष्ट करन का कोई प्रयास भी नही किया जाता था। उदाहरण के लिए यदि किसी चीनी को किसी सहायता के लिए जापानी सेना के अधिकारियो से मिलना होता था तो उसे यह मालूम नही होता था कि उस किस कार्यालय विशेष म जाना चाहिए। एक ही केन्द्र म, बहुत-सी सस्थाएँ एक साथ कायरत थी, एक तथाकथित आधिपत्य सम्बन्धी' मामलो को देखती थी, ता दूसरी सस्था जिला कार्यालय का काम करती थी और तीसरे विभाग मे जिला सरकारा के परा मशदाता कायरत थे। इसके अलावा 'सप्लाई और सेवा कार्यालय', सनिक पुल्सि प्रशासन विभाग आदि उपकार्यालय भी थे जिनमे से अधिकाश को स्थानीय लाग भूल भुलैया मानते थे।

मामला को मानो और भी जटिल करने के लिए शिनमिन-काइ (नूतन जन सघ) जसे नामावाली अस्पष्ट इकाइयाँ या अन्य 'काइ' (विभाग) भी थ। इस सब का कुल परिणाम था—बेहद बेतरतीब प्रशासन तत्र। अथव्यवस्था एकदम अव हलित थी और चूकि जापानी व्यापारी ठेकेदारो के कायकलाप पर कोई उचित नियत्रण न था इसलिए वे स्थानीय लागो स नाजायज लाभ भी उठाया करत थे।

सक्षेप मे कहूँ तो मुझे एसा प्रतीत होता था कि जापानी सना चीन के अधि कृत क्षेत्रो का प्रशासन उसी शली मे करने का प्रयास कर रही थी, जसाकि जापान के जिलो के लिए किया जाता था जिसे चीनी लोग बिलकुल नही समझ पाते थे। विभिन्न विभागा के बीच सामजस्य नही के बराबर था। स्थिति बहुत से रसोइयो द्वारा पकाये जाने वाले भोजन के समान थी।

अपनी गुप्तचरी के दौरान मुझे पता चला कि अमरीकी और ब्रिटिश अधिकारीगण चीनियो म जापानिया के विरुद्ध मन मुटाव बढ़ाने म बहुत सक्रिय थे। अमरीकी राजदूत का एक अहानिकर कि तु बहुत प्रभावकारी तरीका यह था कि वे चीनी युवजनो का मस्तिष्क प्रक्षालन' करने के लिए लगभग प्रत्येक शाम को दस या पन्द्रह चीनी युवक-युवतियो को अपने घर पर खाना खाने के लिए बुलाया करते उन्ह शराब पिलाया करते और फिर परोक्ष रूप स चीन मे जापानी विस्तारवाद की बुराइयो' के बारे म भाषण दिया करत थ। चीनी युवक शीघ्र ही अमरीका के समयक और जापान के विरोधी बन जाया करते थे। ब्रिटिश अधिकारीगणा का भी कुछ एसा ही तरीका था। शघाई और चीन के अन्य क्षेत्रो म अपन अतिरिक्त क्षेत्रीय अधिकारो के बल पर उनका वहाँ विद्यमान होना अभी भी प्रभावकारी था। ब्रिटेन के गुप्तचर विभाग की कारवाइयो का उत्तर दन के लिए जापानिया की कोई सही सशक्त सस्था नही थी।

एरिक तचमन (बाद म सर एरिक कहलाये थे) जो पीकिंग म ब्रिटेन के वाणिज्य प्रतिनिधि थे एक अति दक्ष गुप्तचर विशेपन थ। उनक इरादे चीनियो के बीच जापान विरोधी भावनाआ के प्रसार स कही बढ़ चढ़ कर थे। उन्हाने

चीन स तिब्बत होते हुए हिमालय के पार, भारत तक के माग का नक्शा तयार करन की योजना बनाई थी। एक बार तो वास्तव मे, वे आश्चयजनक काय क्षमता क साथ अनक मोटर गाडिया और अ य साधन सामग्रिया के साथ 'माग की खोज' के उद्देश्य से यात्रा पर निकल भी पडे थे। यह एक बहुत बडा और दुस्साहसपूण इरादा था। लेकिन आरम्भ मे वे इसे मूत रूप नही दे सके। मैंने अपने सीमित साधनो के बल पर उनकी खोज यात्रा मे यथासम्भव अडगा लगाने की कोशिश की। मैं बहुत कुछ तो न कर सका लेकिन कम से कम तीन स्थाना पर (यानी कोई 40 या 45 मील के फासले मे) मैं चीनी गुप्तचरो की सहायता स जि ह मैंने इस परियोजना को असफल बनाने के लिए भरती कर किया था, माग म पेट्रोल की उनकी समस्त सप्लाई को जला डालने म सफल हो सका।

ब्रिटिश वाणिज्य सवा म बडे-बडे दृढ निश्चयी अधिकारी थे जो सिकियाँग व अ य चीनी क्षेत्रा तथा दूर दूर के इलाका म सक्रिय रूप से कायरत थे। एक रिपोट क अनुसार तचमेन कम स कम उरूँची तक तो चला ही गया था, जो उस स्थान स कही दूर था, जहा तक मैं पहुँच पाया था। जैसाकि मै पहले ही कह चुका हूँ, मुझे हामी से पहले ही एक चीनी लुटेरे ने रोक लिया था। मैं नही जानता था कि तचमेन उरूँची से आग बढ पाया था या नही लेकिन मुझे बताया गया था कि ब्रिटिश वाणिज्य दूतावास के अधिकारिया ने चीन से होते हुए आशिक रपसे गोबी क रेगिस्तान के पार हामी, उरूँची, काशगर और गिलगित होते हुए कारकोरम पवत माला लाघकर भारत मे कश्मीर तक के भूमाग का नक्शा तयार कर लिया था। उ हाने इस माग म सभी महत्वपूण स्थलो पर स्थायी रूप से कार्यालय स्थापित करके अधिकारियो को भी नियुक्त कर दिया था। मुझे इस बात का बडा खद है कि ऐसी यात्रा की मेरी आकाक्षा फलीभूत नही हो सकी। आज भी कभी कभी मैं उस चीनी लुटेरे को कोसता हूँ।

सिकिंग लौटने पर मैंने जनरल उमेजू को तीन पष्ठो की एक रिपोट दी। व और उनके कार्यालय के कमचारी चीन मे उनकी कमान के कार्यालयो मे व्याप्त अयाग्यता के बार म जानकर आश्चयचकित हो गये। उनक प्रशासकगण चीनियो की मनोवनानिक स्थिति से पूणत अनभिज्ञ थे। उमेजू मेरी रिपोट की विस्तत जानकारी के लिए स्वय सेना क्लब मे मुझसे मिले। मैंने उ ह अपनी रिपाट के सम्ब ध म पूरी पूरी सफाई देकर सही सही जानकारी दी। मैंन उ ह बताया कि मेरी बाते, सेना व प्रशासन-तन्त्र को कितनी भी अप्रिय क्यो न लगी हा पर मैन तो अपनी ओर से पूणतया ईमानदारी से रिपोट पेश करना उचित समझा।

मेरी इस स्पष्टवादिता से ही मुझे नवानतुग सेना के कमाण्डर का विश्वास प्राप्त हो सका। जनरल इतगाकी (जो उस समय युद्ध मन्त्री थे) जनरल इपिहरा

(जो क्वानतुग सना के भूतपूव अध्यक्ष थे) और अय सनिक अधिकारिया के अति रिक्त चीनी कमान के जनरल उपिरोकू के साथ भी मेरे इसी प्रकार के वढिया सम्बध थे। सना मे मध्यम स्तर के अधिकारिया म से अपने एक सुहृद मित्र की चर्चा मे विशेष रूप से करना चाहता हूँ। वे थे लेफ्टिनेट कनल मेयदा, जो सना के सोपानक्रम म अवर स्थिति के बावजूद नौसैनिक मामलो के निदेशक के अति महत्वपूण पद पर आसीन थे।

मैंने जनरल उमजू को बताया कि जो कमिया मैन देखी थी, उनम से कुछ मूलभूत प्रकार की थी और राष्ट्रीय मनोविनान स सम्बद्ध थी। कुछ जापानी अधिकारीगण बिना सोचे समझे आख मूद कर काम करत है। लचीलापन अच्छे नताओ का गुण होता है। तोडे बिना, कुछ चीज़ो का मरोडना होगा। लेकिन उस क्षेत्र क नियत्रण काय मे सलग्न वहुत स जापानी पहले तो कुछ बिगाड खडा कर देते थे और बाद म उसे सुधारन के प्रयास करत थे।

क्वानतुग सेना न मेरे विचारो की कद्र की। ताक्यो स्थित हाई कमान न तो उसे और अधिक निष्कपट कहा और रिपोट की प्रतिया जानकारी दिलान के उद्देश्य से विदेशा म समस्त जापानी कूटनीतिक मिशना के सनिक अधिकारिया को भेज दी।

तोक्यो के मरे वहुत से मित्रो से उक्त जाच की सक्षिप्त रिपोट भेजने के लिए मुझे आभार प्रदशन के कई पत्र मिले। लेकिन परिस्थितिया कुछ ऐसा मोड ले रही थी कि जापान अधिकृत चीनी क्षेत्रा म प्रशासन सबधी सुधार का प्रयास सहज न था। कभी समाप्त न होन वाले चीनी युद्ध के कुप्रभाव ताक्यो स्थित युद्ध कायालय को भी तीव्रता मे महसूस हो रहे थ। ब्रिटेन तथा अमेरिका द्वारा च्याग-काइ शक को दी जान वाला अतिरिक्त सहायता के कारण जापान चीन की राज नीति के दलदल म अधिकाधिक धसता चला जा रहा था। जापान के प्रयास प्रशासनिक स्थायित्व के बजाय स्थिति को यथावत बनाये रखन पर ही केंद्रित थे। इतना ही नहीं, यूरोप म द्वितीय विश्व युद्ध छिड चुका था और जापान उस स्थिति का अपने पक्ष म सदुपयोग कर पाने के साधना की योजना मे लगा था।

सम्राट के अनुरोध पर जुलाइ 1940 म राजकुमार कोणोय ने युद्ध मत्रि-मडल' की स्थापना की। मत्सुओका को विदश मत्री बनाया गया और लेफ्टिनेट जनरल हिदेकी ताजो युद्ध मत्री बन। एडमिरल जनगो योपिदा को नौसना मत्री नियुक्त किया गया। यह स्पष्ट हो गया कि अमरीका को किसी भी प्रकार की रियायत नही दी जायगी और उसके किसी भी कदम को वर्दाश्त नही किया जायेगा। 26 सितम्बर को तोक्यो म मत्सुओका द्वारा जमनी के प्रतिनिधि हेनरिक स्टामर के साथ एक सनिक सधि की गई। निश्चित रूप स इसका उद्देश्य अमरीका के विरुद्ध कारवाई करना था।

13 अप्रैल, 1941 को स्टालिन के साथ एक पचवर्षीय तटस्थता सधि सम्पन्न कर मत्सुआका न कदाचित अपन कूटनीतिक काय-काल की सर्वाधिक मूल्यवान उपलब्धि प्राप्त कर ली।

अपनी चीन यात्रा के दौरान मेर लिए निजी लाभ ब्रिटन तथा अमरीका द्वारा की जा रही कुटिल पडयन्त्रकारी कारवाई की जानकारी प्राप्त करना था। लेकिन धन या मानव शक्ति के पूण अभाव मे किसी व्यवस्थित आधार पर गुप्तचरी की जवाबी कारवाई भला कोई कैस कर सकता था।

काफी अचरज की ही वात है कि मचुको म मरी अतिम प्रमुख गतिविधि सितम्बर, 1939 म यूरोप म आरम्भ हुए युद्ध की ही एक शाखा स सम्बद्ध थी।

मचुको म, श्वत रूसियो की काफी वडी सख्या थी जा सन 1917 की बालशेविक क्रान्ति के दौरान स्वदेश छोडकर भाग आय थे। इनकी सर्वाधिक वडी सख्या हारविन, हिलार, शिंकिंग और डायरन म थी। कुछ कम सख्या म वे शघाई, तीनसिन और चीन के अय क्षेत्रो मे भी रहत थे। यह समुदाय गोमिन-सागु क्योवा-काई यानी पाच जातियो की राज्य व्यवस्था का अग न था किन्तु जापानियो ने उह अपनी एक निजी सस्था बनान को प्रेरित किया था। उह राजी के लिए जापानी उद्योग कम्पनिया न, जो मचुको म सिंकिंग और दायरन आदि विभिन्न केद्रो को अति आधुनिक नगरो का रूप दिलान म कायरत थी, उह विशेष रियायते दनी चाही। किन्तु चीन म जापान के बुरी तरह उलझे होन क परिणाम स्वरूप विकास कार्यों म भारी व्यवधान आ गया जिसकी वजह स श्वत रूसियो के बीच वेरोजगारी की समस्या उठ खडी हुई।

21 अगस्त, 1939 का की गयी रूस जमनी अनाक्रमण सधि न विश्व का अचरज म डाल दिया था। हालांकि इसक कारण मचुको और सावियत सघ के बीच की सीमा पर कुछ शाति आ गयी थी, लेकिन ताक्यो स्थित बारान किचिरा हिरानुमा का मत्रिमडल स्तभित रह गया था। मत्रिमडल की दृष्टि म यह जमनी द्वारा उस एटी कोमिटेन सधि का उल्लघन था जा उसन नवम्बर, 1930 म जापान के साथ सम्पन्न की थी। सम्भव है, इसी वजह स जापान सावियत सघ को सदा गम्भीर खतरा मानता आया हो।

सोवियत सघ क किसी भी खतरे का सामना किया जा सक, इस उद्देश्य स, मचुको म अपनी प्रतिरक्षा स्थिति को सुदृढ बनाना क्वानतुग सना क लिए एक धुन या सनक का रूप ल चुकी थी। इस दिशा म सना क प्रयासो म स एक था श्वत रूसियो क बीच म ही लगभग एक डिविजन की-सी क्षमता सम्पन्न कद यूनिटो यानी एक स्वयसवक सना का गठन करना। यह प्रत्याशा की जा रही था कि जार भक्त होन क कारण व कम्युनिस्ट रूसी सनाओ क सम्भावित आक्रमण की स्थिति म एक बाधक की-सी भूमिका निभायगे और इसक साथ हो

नौकरी के अवसरा के बल पर समुदाय का आर्थिक कठिनाइया से भी उबारा जा सकेगा।

इन श्वेत रूसियो को सनिक प्रशिक्षण दिया गया। उनम स चुन गय लागा स बनी सनिक टुकडियो का एक अलग पताका दी गयी जिस पर जमन नाजी पार्टी के स्वास्तिक चिह्न मे मिलता जुलता चिह्न अंकित था। क्वानतुग सनिक मुख्यालय के चौथे विभाग को इन टुकडियो का सभी प्रबन्ध आदि पूर्ण रूप स सौंप दिया गया।

हिटलर की आरम्भिक सफलताओ से जापान बहुत अधिक प्रभावित था। जब 1940 के वर्ष के आरम्भिक काल म, जमन सेनाओ ने फ्रास और हालैण्ड पर विजय प्राप्त की उस समय दक्षिण-पूर्व एशिया म उन दशा के उपनिवेशो म जापान द्वारा घुसपैठ क प्रयास अति स्पष्ट थे। जापान ने 12 जून 1940 को थाईलण्ड के साथ एक मत्री-सधि सम्पन्न की और उतत जिसे, 'वृहत्तर पूर्व एशिया—सह समृद्धि क्षत्र' कहकर पुकारा गया उसके विकास की लाभकर स्थिति का आश्वासन प्राप्त करने क लिए उस सधि का उपयोग किया गया।

जब जमनी ने सोवियत सघ के साथ अपनी अनाक्रमण सधि का उल्लघन करके 22 जून 1941 को रूस पर आक्रमण किया तो विश्व उससे भी कही अधिक अचभित हुआ जितना कि वह अनाक्रमण सधि किये जाने का समाचार पाकर हुआ था। मचुका म अविलम्ब ही जिस बात स विस्मय और आतक का लहर फल गयी, वह यह थी कि ज्यो ही सोवियत सघ पर जमनी के आक्रमण का समाचार आया, क्वानतुग सेना की श्वेत रूसियो की समस्त टुकडियो ने अपनी स्वामिभक्ति बदल दी और निकटतम रूसी व्यापार दूतावासा के प्रतिनिधियो के पास गये और उन्होने जमन सेनाओ के विरुद्ध लडने के लिए अपनी सेवाएँ स्वेच्छया अर्पित की। क्वानतुग सेना के कमाण्डर जनरल उमेजू इस बात पर हक्के-बक्के रह गये।

उसी मास क अतिम सप्ताह म एक दिन मुझे सिकिंग म अपन घर के अहाते म क्वानतुग सना के चतुर्थ विभाग के मेजर मत्सुमारा को मोटर गाडी स उतरते देखकर बडा अचरज हुआ क्योकि व अपनी सनिक वेश भूषा म थे। मैं तुरन्त ही यह अन्दाजा लगा सका कि यह नितान्त निजी शली की भेंट न थी। बिना किसी विलम्ब के उन्होने तुरन्त ही अपने मतलब की बात कही यानी सेना क कमाण्डर मुझसे फौरन मिलना चाहते थे। मत्सुमुरा के साथ मैं गया और जनरल उमेजू से मिला। हमारे वार्तालाप का सक्षिप्त विषय उमेजू का ये प्रश्न था कि क्या मैं उन पर मेहरबानी करके उन परिस्थितियो की शीघ्र जाँच आदि कर सकूँगा जिनमे सना की श्वेत रूसिया की टुकडियो न सोवियत पक्ष की ओर अपसरण कर लिया था। उन्हे इस विषय पर एक रिपोर्ट तोक्यो भेजनी थी।

मैं उस समय यह काम करन के लिए तैयार न था। चीन की एक कठिन और थका देने वाली यात्रा के बाद मैं हाल ही मे लौटा था। इतना ही नही, मैं अपनी पत्नी और न‍्हे बेटे को, सिंकिग मे पुन अकेला छोडकर जाना नही चाहता था। लेकिन जनरल उमेजू सहायता करने के लिए मुझ पर दबाव डालते रहे। इस विषय म दो एक दिन सोच कर और अपनी पत्नी से यह आश्वासन पाकर कि मुझे उनके और अपने पुत्र के बारे म बिलकुल चिन्ता नही करनी चाहिए, मैंने वह काम करना स्वीकार कर लिया और जाच यात्रा पर रवाना हा गया। लगभग अवचेतन ही म, चीन मे विद्यमान ब्रिटिश और अमरीकी गुप्तचर अपने एजे‍टा के माध्यम से मचुको मे क्या गुल खिला रहे थे, उसके बारे म और अधिक जान पाने के अवसर का लोभ भी मुझे आकृष्ट कर रहा था।

मैंने उससे पहली यात्रा क दौरान प्राप्त विशेष सुविधाओ के समान प्रबध की माँग की। सब इन्तज़ाम तुर‍त ही हो गया। इस बार क्वानतुग सेना न और भी उदारता दिखाई। उ‍हाने मुझे लेफ्टिने‍ट जनरल के बराबर का ओहदा भी प्रदान किया और उसी के अनुकूल एक पहचान पत्र भी मुझे दिया गया। आवश्यकतानुसार सभी जापानी कार्यालयो मे भी इसकी सूचना पहुँचा दी गई।

श्वेत रूसिया के समुदाय म प्रवेश कर पाना चीनो क्षेत्रो म घुसपैठ की तुलना म कही कठिन था। मैंने शीघ्र ही यह जान लिया था कि किसी श्वेत रूसी का मुह खुलवाने के लिए शुरुआत 'वोदका' के बडे बडे पैगो स करनी होती थी। अनिवायत मुझे भी उनके साथ वोदका पीनी पडती थी, लेकिन उस स्थिति मे पूणतया मदहोश हो जाने के बजाय अपने होशो-हवास को कायम रखना होता था ताकि जासूसी का प्रयास निष्फल सिद्ध न हो। पूछताछ करन पर पता चला कि एक ऐसा तरीका था जिसे अपनाकर किसी रूसी स अधिक वोदका पीन के बावजूद अपने होश कायम रखे जा सकत थे। वोदका सवन स पूव अच्छी मात्रा मे यदि जैतून का तल पी लिया जाय तो अतडिया म एक प्रकार का अस्तर-सा लग जाता है और तब अलकोहाल इतनी शीघ्रता से रक्त प्रवाह मे नही घुलता। उस स्थिति मे जब दूसरा व्यक्ति मुह खोलने के लिए तयार हा चुका हो तो आप काफी चौकन्ने रह सकते हैं। हाँ, इस तरीके का स्वास्थ्य पर दीघकालिक प्रभाव बुरा हो सकता है, लेकिन कहावत है कि मरे विना स्वग कस देखा जा सकता है'। मुझे अपने काम को ठीक-ठीक अजाम देना था इसलिए मैंने काफी मात्रा म जतून का तल इकटठा कर लिया था। हाँ, मद्य-पार्टी के बाद की प्रतिकारक चिकित्सा के लिए दूध के साथ बारीक कटे सब बडे कारगर थ। मैं उचित समय पर सदा ही उन सबका सेवन किया करता था।

लगभग एक मास की अवधि म मैं श्वेत रूसियो के नेताओ को अच्छी तरह जान गया। इतना समय सेना की रूसी टुकडियो द्वारा उठाय गय क़दम का कारण

खोज पाने के लिए पर्याप्त था। यह राष्ट्रीय मनोविज्ञानिकता का प्रश्न मात्र था। य जार भक्त लोग निस्सदेह कम्युनिस्ट विरोधी थ। रूस के भीतर किसी भी नागरिक गडबडी के अवसर पर वे कम्युनिस्ट का विरोध करत। किन्तु एक गैर देश के रूस पर आक्रमण की स्थिति म व अपने वचारिक मतभेद का ताक पर रखकर पहल रूसी की भाँति और बाद म कम्युनिस्ट विरोधी आचरण क पक्षधर थे। हालाँकि व तो ज़ार भक्त थ मगर अपनी मातृभूमि की अखडता उनके लिए परम पावन थी। यह स्पष्ट था कि रूस और अय किसी भी देश क बीच जिसम जापान भी हो सकता था मुठभेड की स्थिति म जापानी सना की श्वेत रूसी टुकडियो पर भरासा नही किया जा सकता था।

म लौट आया और जनरल उमज़ु का एक पृष्ठ की एक रिपोट दी और बाद म निजी भेट के दौरान प्राप्त जानकारी के प्रमाण आदि पश किय। यह बात आश्चयजनक थी कि उस समुदाय म स लागा का चुनकर सेना की टुकडियाँ गठित करन स पूव जापानियो न उस समुदाय की मानसिकता का जानन समझन का कोई प्रयास न किया था। यह बिना सोच-समझ काम करन की प्रवृत्ति' के अनुरूप ही था, जिसके कारण उन्ह चीन म इतनी कठिनाई उठानी पड़ी थी। मनोविज्ञान की अवहेलना कर समस्त उपयोगिता की दृष्टि य उन्होन स्वय अपनी ही सस्था मे एक पचमाग गठित कर लिया था।

मेरी रिपोट तोक्यो भेज दी गयी लेकिन एक बार जो बीता उसम कुछ भी सुधार ला पाना असम्भव था। पानी सिर के ऊपर स गुजर चुका था। इतना ही नही, तोक्यो का सरकारी-तन्त्र द्वितीय विश्व युद्ध की स्थिति म अपनी सामरिक युक्तियो की योजना म पूरी तरह उलझा हुआ था।

इस सदभ म एक ऐसा तथ्य प्रकट करना चाहूगा जो कदाचित सव विदित नही है। तोक्यो के मन्त्रिमडल के भीतरी हलको म गम्भीर मतभेद उत्पन्न हो गये थे। होप्पोहा दल चाहता था कि रूस पर पहल आक्रमण कर दिया जाय। और नामपोहा दल दक्षिण की ओर आक्रमण के पक्ष म था। इन दोनो समूहो म कभी मतैक्य नही हो सका। अन्तत जनरल तोजो के दबाव म आकर पल हावर पर आक्रमण का निणय किया गया जिसके सामन प्रधानमत्री राजकुमार कोणोय विवश थे। उस समय तोजो युद्ध मत्री थे। वे नामपोहा दल के विचार के अनुकूल सम्राट की सहमति प्राप्त करन म सफल हो गय जो मूलत उनका अपना ही मत था। तोजो न, जिन्हे उनकी तीव्र और कुशाग्र बुद्धि के कारण, धारदार उस्तरा' कहा जाता था, यह मत अपनाया कि मचुको चीन और रूस की सीमाओ पर लगभग दस लाख जापानी सेनाओ के तनात होने के कारण रूस की ओर स आक्रमण का कोई खतरा नही है।

जब जमनी ने रूस पर हमला किया उस समय होप्पोहा दल के भीतर यह

भय उत्पन्न हुआ कि जापान के विरुद्ध विद्वेष की भावना स सोवियत सघ, जा न केवल जमनी का मित्र दश था, बल्कि रूस का ज म ज म का वैरी भी, मचुको या फिर जापान की देशीय द्वीप भूमि पर भी आक्रमण करके कब्जा न कर ले। लेकिन, रूस को चूकि अपना सवस्व जमनी के आक्रमण के उत्तर म अपण करना पड रहा था इसलिए रूस चाहकर भी आक्रमण करन की स्थिति मे न था। उधर नामपोहा दल की यह धारणा कारगर सिद्ध हुई कि दक्षिणी क्षेत्रो के कच्च माल के क्षेत्रा मे घुस जाना कही अधिक लाभकर सिद्ध होगा। भावी घटनाओं की दिशा म पासा फेंका जा चुका था।

20

द्वितीय विश्व युद्ध तथा दक्षिण-पूर्व एशिया मे भारतीय स्वतन्त्रता लीग

नवम्बर 1941 के अत म मुझे क्वानतुग सना के मुख्यालय स एक सदश मिला जिसम यह अनुरोध था कि अन्य किसी सूचना के मिलने तक मैं सिंकिंग म ही रहूँ ।

इसके कारण की कल्पना करना कोई कठिन न था। पिछले कई महीनो स सनिक हाई कमान के कार्यालय म आपात स्थिति का सा वातावरण छाया था। सचार विभाग म चौबीसो घटे कमचारी तनात रहत थे। मुझे और मरे बहुत से मित्रो को ज्ञात था कि जापान द्वितीय विश्व युद्ध म भाग लने वाला था किन्तु किसी को इस बात का तनिक भी गुमान न था कि आक्रमण स्थल पल हावर होगा। आक्रमण की सही सही तिथि को भी पूरी तरह गुप्त रखा जा रहा था। इसम सदेह था कि स्वय क्वानतुग सना के कमाण्डर जनरल उमेजू को भी इसका ज्ञान था। इस आक्रमण की विस्तृत सूचना इस योजना के लिए प्रसारित सना वग को भी केवल अतिम क्षण म ही दी जा सकती थी। किन्तु 8 दिसम्बर, 1941 को समस्त विश्व ने पल हावर पर हुए आक्रमण की खबर सुनी।

यह जापान की तरफ स एक तूफानी हमला था जो बहुत ही सुचारु और सुनियोजित ढँग से किया गया था। तोक्यो समय के अनुसार 8 दिसम्बर को रात्रि के 0 32 बजे, जाकि हवायी समय के अनुसार रविवार सवेरे 7 बज कर 52 मिनट का समय था नौसेना कमाण्डर मित्सुवो फुचिदा ने अमरीका के प्रशान्त समुद्री बेडे पर, जो हवायी के जल प्रागण मे स्थित था आक्रमण करने के लिए बम वषको की टुकडी का नेतृत्व किया। जापानी विमानवाहक पोतो से सकडो विमान उडे थे। चार अमरीकी युद्धपोत एक दजन से भी अधिक अन्य पोत और 200 से अधिक विमान नष्ट कर दिए गय थे। अमरीकी हताहतो की सख्या दो हजार से भी अधिक थी। उसी दिन सवेरे तोक्यो रेडियो स

सम्राट की यह घोषणा प्रसारित की गयी—

" हम धैयपूवक प्रतीक्षा करत रहे है और दीघकाल से हम, इस आशा से बँधे आये है कि हमारी सरकार, शाति की स्थिति को पुन प्राप्त कर सकेगी कि-तु, मेल-मिलाप की भावना का कोई प्रदशन न करत हुए, हमारे शत्रुओ ने निपटार म अनुचित रूप स विलम्ब किया ह और इस बीच उ-होन आर्थिक तथा राजनीतिक दबाव बढा दिया है जिसस हमारे साम्राज्य को अधीनता स्वीकारन के लिए वाध्य किया जा सके। इसलिए हमन कृतसकल्प होकर साम्राज्य की आत्मरक्षा तथा पूव एशिया म स्थायी शाति के उद्देश्य से अमरीका और ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है '

वृहत्तर पूव एशिया युद्ध आरभ हो गया था।

9 दिसम्बर को मुझे क्वानतुग आर्मी जेनरल के कायालय से टलिफोन पर स-देश मिला कि मै कार्यालय म आऊँ। शीघ्र ही मुझे पता चल गया कि इसका उद्देश्य मुझ यह सूचित करना था कि जापानी नौसना न उसी दिन सिंगापुर के विरुद्ध आक्रामक कारवाई आरम्भ कर दी और प्रि-स आफ वल्स तथा रिपल्स नामक ब्रिटेन के युद्धपोत डुबा दिए गये। इस अवसर पर उत्सव मनाने की एक दावत म शम्पेन का सवन किया गया था। वहा उपस्थित अधिकारीगण एक साथ आन-द मनात हुए उस घटना को ब्रिटिश उपनिवेश के अन्त का आरभ मान रहे थे और उ-हाने कहा कि मेरे लिए एकदम 'सीधी कारवाई' आरभ करने का अवसर आ पहुचा है।

यह बात महत्वपूण थी कि इस भाज के दौरान कम से-कम मरी उपस्थिति मे पल हावर पर आक्रमण की कोई चचा नही की गयी। स्पष्टतया सैनिक अधिकारिया ने यह अनुमान लगा लिया था कि चूकि भारत अमरीका का शत्रु न था इसलिए पल हावर पर आक्रमण म मेरी कोई विशेष रुचि नही हो सकती। भारत तो केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध सघपरत था।

आखिरकार उपनिवेशवादी ब्रिटेन को जापान के हाथा भारी मार खानी पड रही थी। अपन काम का रख बदलन के लिए मरे सामने अवसर उपस्थित हो चुका था और मैन निणय कर लिया कि मुझ अवश्य ही युद्ध स्थल पर पहुँचना चाहिए। अपनी पत्नी और न-हे पुत्र की खरियत मेरे लिए भारी चिन्ता का विषय था किन्तु मरी पत्नी न स्वय ही मुझे इस मानसिक सघप स मुक्ति दिलान म सहायता दी। व स्थिति को भली भाँति समझती थी और एक सामुराई की पत्नी की भाँति उ-हान स्वय को सबल बनाकर मुझस कहा कि भारतीय स्वतत्रता की प्राप्ति क लिए उनकी या अपन पुत्र की चिता किय बिना मैं जब चाहू मचुको स अन्यत्र जा सकता हूँ। मैन उनस कहा कि हाल की घटनाओ को दखते हुए चर्चित सघप का पुन स्थिति निर्धारण वाछित है और मुझ इस दिशा म यथासभव प्रयास करन होगे।

यह बात स्पष्ट थी कि हांगकांग तथा अन्य केन्द्रों पर शीघ्र ही जापानियों का अधिकार हो जायेगा। दिसम्बर, 1941 तक ऐसा हो भी गया और 15 फरवरी 1942 को सिंगापुर ने औपचारिक रूप से आत्मसमर्पण कर दिया। शम्पेन पार्टी की समाप्ति के पूर्व ही मैंने क्वांगतुंग सेना में अपने मित्रों से कह दिया कि मुझे तुरंत ही दक्षिण की ओर प्रस्थान करना होगा। मेरे अनुरोध पर उन्होंने तियनसिन, शंघाई, नानकिंग, हांगकांग तथा अन्य केन्द्रों पर बेतार से ये सन्देश भेजे कि मुझे समस्त आवश्यक सुविधाएँ सुलभ कराई जाएँ। सिंकिंग रेलवे स्टेशन पर अपने परिवार तथा मित्रों से विदा लेने के बाद मैं उसी दिन तियनसिन के लिए रवाना हो गया और वहाँ से विमान द्वारा शंघाई पहुँचा। नानकिंग में जापानी सेना की चीनी कमान के कमांडर इन चीफ जनरल उपिराकू को मेरे सिंकिंग से आने का समाचार मिल चुका था। उन्होंने शंघाई कमान को आदेश दिया कि मेजर मिपिना मेरी देखभाल करेंगे। इस सन्देश में यह भी कहा गया था कि मैं जब चाहूँ नानकिंग में जनरल से मिल सकता हूँ।

मैं दो दिन तक शंघाई में रहा और वहाँ मेरा मुख्य उद्देश्य, औपचारिक रूप से, भारतीय स्वतंत्रता केन्द्र की स्थापना करना था जिसे स्थानीय भारतीय नेताओं के द्वारा प्रदत्त कोष के बल पर उन्हीं के द्वारा चलाया जाना था। शंघाई में सम्पन्न भारतीय व्यापारियों की खासी संख्या थी, वहाँ की पुलिस में काफी बड़ी संख्या में सिख भी थे। समस्त समुदाय बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ और भारतीय स्वतंत्रता अभियान के लिए प्रभावकारी प्रचार चलाने के उद्देश्य से एक संस्था की स्थापना में उन्होंने मेरे साथ पूर्ण सहयोग किया। मैं जापानी सेना के कई अधिकारियों से भी मिला जिससे कि वहाँ के सभी भारतीय निवासियों की उचित रक्षा का आश्वासन प्राप्त कर सकूं। इस आकस्मिक घटना चक्र के परिणामस्वरूप शंघाई के सामान्य जीवन में काफी गड़बड़ी फैल चुकी थी। मैंने मेजर मिपिना से अनुरोध करके यह बात मनवा ली कि चूंकि भारतीय उस समय तक वैध रूप से ब्रिटेन की प्रजा थे इसलिए इस सन्दर्भ में जापानी सेनाएँ उन्हें शत्रु की श्रेणी में मानकर कैद कर सकती थी इसलिए एक कृपाप्राप्त समुदाय की भांति उनकी विशेष देखभाल की जानी चाहिए। तोक्यो से भी कुछ ऐसे ही आदेश आ गये और सभी भारतीयों को उचित परिरक्षण दिया गया। शंघाई में बड़ी संख्या में ब्रिटिश लोग भी थे। उन परिवारों में से कुछ तो शंघाई छोड़कर जाने में सफल हो गये किन्तु अधिकांश को युद्धबंदी बना लिया गया।

मेरी सुरक्षा का दायित्व मेजर मिपिना पर था। अतः उनके साथ मैं जनरल उपिराकु से मिलने नानकिंग गया। बेहद व्यस्त होने के बावजूद उन्होंने मुझे अपने मुख्यालय में बढ़िया लंच दिया और भारत वर्मा और पूर्व के अन्य स्थानों से ब्रिटिश सत्ता को हटाने के लिए भारत जापान सहयोग की वाञ्छनीयता को लेकर बहुत देर

तक बातचीत की।

नानकिंग से मैं शघाई होते हुए हागकाँग गया। उस क्षेत्र के कमाडर, कनल हारा ने शघाई मे स्थापित भारतीय केन्द्र के समान ही एक केन्द्र की स्थापना के लिए सभी आवश्यक सुविधाएँ सुलभ कराइ। चीन मे होने वाली घटनाओं की सूचना प्राप्त करने के लिए हागकाँग सर्वोत्तम जगह भी थी।

अति योग्य स्थानीय भारतीय नेताओ को उस कार्यालय का कायभार सौंपने के बाद मैं सहयोग के लिए आभार प्रकट करने के उद्देश्य से कनल हारा के कार्यालय मे गया। मेरे साथ नानकिंग मे उपिरोकू कमान के ले० कनल ओकादा भी थे। लेकिन यहाँ अप्रत्याशित रूप से एक अप्रिय घटना हो गयी। हारा और मुझ मे झगडा हो गया। उन्होने बहुत शान बघारते हुए कहा कि हालाँकि मैं जो चाहू कर सकता था किन्तु मुझे सब कुछ सम्राट के नाम पर करना चाहिए था। अकारण ही इस सलाह की मुझे कोई आवश्यकता नही थी। अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए मैंने उनसे कडे स्वर मे पूछा—'कनल हारा, आपका क्या आशय है? मुझे अपना कायकलाप सम्राट के नाम पर क्यो सम्पन्न करना चाहिए? मूलत भारत का स्वतत्रता अभियान ही मेरा लक्ष्य है और वह मैं भारत के नाम पर ही करूँगा।"

हारा बराबर मुझे उकसाते रहे। मुझे उनका आचरण बेहद अप्रिय लगा और लगभग नाराजगी मे ही मैंने कहा, "आप भाड मे जाइये। मैं, जो ठीक समझता हूँ वही करूँगा।'

ले० कनल ओकादा ने मेरे साथ शघाई की यात्रा के लिए अपना दो सीटो वाला विमान तैयार कर रखा था परन्तु हारा तथा मेरे बीच के वादविवाद के कारण उसकी उडान मे विलम्ब हो गया। मुझे हारा के आचरण पर अभी भी बहुत क्रोध था और मैं इसी असमजस मे था कि जनरल उपिरोकु या किसी अन्य वरिष्ठ अधिकारी से हागकाँग छोडने से पूर्व कोई शिकायत करूँ या न करूँ। लेकिन ले० कनल ओकादा ने किसी प्रकार हारा तथा मेरे बीच दोस्ती करवा के स्थिति सभाल ली।

हमारी उडान के दौरान ओकादा तथा मैं दोनो ही काफी तनाव मे रहे और चुपचाप बैठे रहे। हम दोनो हारा के बर्ताव के बारे मे सोच रहे थे। लेकिन शघाई पहुँचने पर हमने कुछ शाति का अनुभव किया।

मेरे पूर्व परिचित, जनरल उपिरोकू की चीन की कमान के वाइस चीफ आफ स्टॉफ, ले० जनरल कसहरा और स्टाफ के अधिकारी मेजर मिपिना एक शानदार जापानी रेस्तराँ मे हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। ओकादा ने उन्हे हागकाँग की घटना कह सुनाई। वे सब खिलखिलाकर हँस पडे। जब मैंने अचरज के साथ पूछा कि ऐसे गभीर मामले को वे इस प्रकार हँसी मे क्यो ले रहे थे, तो ले० जनरल कसहरा

ने कहा कि कर्नल हारा से और किसी प्रकार की उम्मीद थोड़े ही की जा सकती थी क्योंकि वे आधे पागल हैं।

तब मुझे सेना में अपने साथियों के बीच कर्नल हारा की असली ख्याति का ज्ञान हुआ। वे एक अति योग्य अफ़सर ज़रूर थे, वर्ना उन्हें हांगकांग जैसी महत्वपूर्ण कमान का अध्यक्ष न बनाया जाता। उनके समक्ष ही, ब्रिटिश सेना की हांगकांग रक्षक सेना ने आत्म-समर्पण किया था। मुझे बताया गया कि असल में वे बुरे आदमी नहीं हैं। मगर उनकी समस्या ये थी कि कट्टर राष्ट्रवादी भावना अर्थात सम्राट के प्रति अति भक्त होने के कारण कभी कभी वे अपना संतुलन खोकर पागलपन का व्यवहार करने लगते है। हांगकांग में मेरे साथ हुई घटना का भी कदाचित यही कारण रहा होगा। ले० जनरल काशहरा ने मुझे बताया कि हारा ने इससे पूर्व कोरिया में भी ऐसी ही परेशानी खड़ी की थी। ये सब बातें मुझे यदि पहले ही पता होतीं तो मैं उनके साथ भिन्न आचरण करता और कदाचित वह अप्रिय घटना न होती।

भारतीय स्वतन्त्रता अभियान के लिए स्थापित शघाई कार्यालय में खूब बढ़िया काम हो रहा था। जनवरी 1942 के अंतिम सप्ताह में मैंने वहां के एक प्रमुख व्यापारी जोसमान से मिलकर भारतीय ध्वजारोहण समारोह की योजना बनाई। पंजाबी महिलाओं के एक समूह ने मिलकर 'वन्देमातरम' गाया। यह प्रथम अवसर था जबकि शघाई में बाहर खुले मैदान में इस प्रकार का एक भारतीय आयोजन किया गया था। भारतीय समुदाय के लगभग पांच सौ सदस्य वहाँ उपस्थित थे।

अगले ही दिन मैं जहाज से तोक्यो के लिए रवाना हो गया। रवाना होने से पूर्व मुझे बड़ा सुखद अचरज हुआ, मेजर मिथिना मुझे विदा देने के लिए आये थे और उन्होंने छह हजार येन नकद मुझे दिये जो इस संदेश के साथ जनरल उपरोक्त द्वारा भेजे गये थे कि मैं वह रकम निजी खर्च के लिए और अपनी समझ के अनुसार भारतीय स्वतन्त्रता अभियान के लिए उपयोग में ला सकता हूँ।

तोक्यो पहुंचने पर मैं आकासाका स्थित सन्नो होटल गया और 301 तथा 302 नम्बर के कमरे किराये पर लिये। मुझे कार्यालय के लिए एक अतिरिक्त कमरे की भी आवश्यकता इसलिए महसूस हुई क्योंकि अतिथियों से भेंट के अलावा वहाँ से पत्राचार संबंधी बहुत अधिक काम किया जाना था। मैंने जनरल उपरोक्त द्वारा दिए गये धन में से कुछ राशि तो अपने लिए रख ली और बाकी सुरक्षित रखने की दृष्टि से होटल के प्रबंधकों को सौंप दी। वे लोग मेरी सम्पदा देखकर अत्यधिक चकित व प्रभावित हुए। अपनी वर्तमान सम्पन्नता से मैं भी कम प्रसन्न नहीं था। चीनी लुटेरों का शिकार होने के बाद सिक्यिांग से सिंकिंग लौटते समय की नितांत अभाव की स्थिति और अब की स्थिति में कितना अंतर था। आज मेरे पास इतना धन था कि मैं उसे बैंक में रखकर सन्नो होटल में अपनी साख की धाक

जमा सकता था।

तोक्या के मेरा सर्वप्रथम काय था सनिक हाई कमान विशेषकर युदान हिल्स म स्थित सशस्त्र सना के मुख्यालय के द्वितीय ब्यूरो के आठवे विभाग क साथ सम्पक स्थापित करना। वहा का विशाल कार्यालय समूह, शाही मुख्यालय और आम कमचारीगणो का कार्यालय आदि सब मिलाकर जापानी भाषा मे दाय होनेई कहलाता था। जनरल मुख्यालय के प्रथम ब्यूरो के चार विभाग थ और वहा सनिक कायक्लाप स सम्बद्ध मामला पर काम किया जाता था। द्वितीय ब्यूरो के भी चार विभाग थ जो प्रथम ब्यूरो के चार विभागा स सम्बध बनाय हुए थे और उन्ह पाच म आठ तक की सख्याएँ दी गई थी। द्वितीय ब्यूरो का मुख्य काम था राष्ट्रीय तथा विदशी गुप्त सूचना एकत्र करना। यह कायालय बोरयाकू यानी अभिसधि आदि का भी सचालन किया करता था जोकि युद्धकाल की एक अनिवाय गतिविधि होती है। द्वितीय ब्यूरो के हाथ म निणय प्रक्रिया की विभिन्न गतिविधियो की कुजी थी और यह प्रथम ब्यूरो के साथ मिलकर काम करता था। पाचवां छठा आर सातवा विभाग यूरोपीय अमरीकी, रूसी, चीनी तथा दक्षिण-पूव एशियाई मामले सँभालता था। आठवे विभाग की काय-परिधि अति व्यापक थी। शत्रु-क्षेत्रा म छिपकर घुसपठ, गुप्त तथा प्रत्यक्ष रूप से प्रचार तथा विज्ञापन काय आदि इसके दायित्व थे। माल-सामान की सप्लाई, परिवहन आदि ब्यूरो का दायित्व भी इसी का था।

हा, जापानी सनिक हाई कमान काफी समय स युद्ध की तैयारी कर रही थी। उसने दक्षिण-पूव एशिया म विद्यमान करीब 20 लाख लोगो के भारतीय समुदाय की मत्री और सहयोग प्राप्त करने की योजना भी बना रखी थी। सन 1941 के सितम्बर मास मे इसी उद्देश्य से एक सम्पक समिति का गठन कर लिया गया था। उपरोक्त विशाल भारतीय समुदाय म भारतीय स्वतन्त्रता अभियान के बहुत म जाने मान और सिद्ध समथक भी थे। वहत्तर पूव एशिया युद्ध के सदभ म सबका सहयाग अनेक प्रकार स अमूल्य सिद्ध हो सकता था।

सना के अध्यक्ष, जनरल सुगियामा राजनीतिक दूरदष्टि के धनी थे हालाकि अपने साथियो की ही भाति वे पश्चिमी शक्तियो की सयुक्त शक्ति के सम्मुख जापान की सनिक शक्ति को अनावश्यक महत्व देते थे। आरम्भ म जापान के हाथ लगी विजय सनसनीखेज था। जनरल सुगियामा ही ने इस विचार का समथन किया कि भारतीय समुदाय स सम्बद्ध मामलो को दखने के लिए एक पथक कार्यालय की स्थापना की जानी चाहिए।

उन्होने बैंगकॉक म जापान के राजनयिक मिशन म नियुक्त सनिक अताशे कनल तमुरा के अधीन वही एक कार्यालय की स्थापना का निणय किया क्योकि वह एक ऐसा केन्द्रीय स्थल था जहाँ स दक्षिण पूव एशिया के विभिन्न भागा के

बिना किसी आदेश के ही उन्होने भारत मे अन्तत जापानी सेना के अधिकारतन्त्र के विस्तार की योजना बनाने का जिम्मा ले लिया था। उन्होने मलाया मे भारतीय युद्धबंदियो की सहायता से यह काम करने का निश्चय किया। उच्च अधिकारियो से अनुमति लेने की तो दूर रही उन्होने किसी से परामर्श किये बिना इन युद्ध बंदियो को एक भारतीय कप्तान मोहन सिंह के नियन्त्रण मे रखने का निर्णय किया जिसने पहले ब्रिटिश इडियन सैनिक टुकडियो के कप्तान की हैसियत से जितरा नामक स्थान पर मलाया की लडाई मे जापानियो के हाथो हार खाई थी। सिंगापुर के समर्पण के बाद, जबकि भारी सख्या मे भारतीय और ब्रिटिश सैनिक बंदी बनाये गये थे, फुजीवारा और मोहनसिंह के बीच गठजोड हो गया। बाद मे, उन दोनो ने ही भारतीय स्वतन्त्रता लीग के लिए बहुत सी समस्याएँ खडी की। इसकी चर्चा मैं बाद मे करूँगा।

दक्षिण-पूर्व एशिया मे भारतीय स्वतन्त्रता अभियान के विषय पर अनेक पुस्तकें लिखी जा चुकी है, जिनमे पहले रासबिहारी बोस और बाद म सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व की चर्चा है। उनम स अनेक म अनेक त्रुटिया है या सत्य को विकृत किया गया है। ऐसा या तो जान-बूझकर किया गया है अथवा अज्ञानवश। मेरे इन संस्मरणो का एक उद्देश्य यह भी है कि इतने अरसे से व्याप्त गलत जानकारी को सही रूप म पेश करूँ। तथाकथित घटनाओ के चश्मदीद गवाह अथवा भागीदार होने के नाते मेरा नैतिक कर्तव्य है कि जनता को दी गयी गलत सूचनाओ को सही रूप मे प्रस्तुत करूँ।

पूर्व के युद्ध म प्रवेश के समय भारत-जापान संबधो के मामलो के निपटारे के संबध मे जापान की कोई स्पष्ट नीति नही थी। रासबिहारी बोस जापान म बहुत सक्रिय थे। मैं मचुको म था और हम दोनो ही अपने-अपने तरीके स ब्रिटिश विरोधी गतिविधियो मे सलग्न थे। थाईलण्ड, मलाया, बर्मा हागकाग, शघाई और अन्य केन्द्रो म भी भारतीय स्वतन्त्रता सेनानी काम कर रहे थे। किन्तु अन्तत जिस संस्था को भारतीय स्वतन्त्रता लीग का नाम दिया गया और जिसने इन सभी क्षेत्रो म भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष को एक औपचारिक और सगठित रूपरेखा प्रदान की उसका गठन द्वितीय विश्व युद्ध मे जापान के प्रवेश के बाद रासबिहारी बोस के नेतृत्व म किया गया। यह घटना तोक्यो म जापानी हाई कमान तथा मेरे और रास बिहारी बोस के बीच अनेक बार विचार-विमर्श के बाद हुई।

मैं यह बात अधिकारपूर्वक कह सकता हूँ क्योकि उन सभी विचार-विमर्शों म मैं, रासबिहारी बोस तथा जनरल सुगियामा के नेतृत्व म गठित जापानी सैनिक अधिकारीगणो के बीच एक कडी की भूमिका निभाया करता था। हालांकि हमम से बहुत से लोग स्वतन्त्रता अभियान मे सलग्न थे, तो भी रासबिहारी बोस ने अन्य सभी भारतीयो की तुलना मे मुझे ही इस काम के लिए चुना। इसका कारण यह

था कि हालांकि उनके असनिक सोपानक म ता अति उच्च स्तर क सम्पक स्थापित थ फिर भी उधर मैं ही ऐसा भारतीय था जिसक कि सना के साथ विशषकर दाई होनय क द्वितीय ब्यूरा के साथ निकट सम्पक थ। वास्तव म जनरल सुगियामा और रासविहारी बोस के बीच भारतीय मामला स प्रत्यक्ष रूप स सम्बद्ध अधिकारियो के माध्यम स मैंन ही सवप्रथम भेंट का प्रबध कराया था।

हमारा प्रयास यह था कि जापान के अलावा समस्त दक्षिण-पूव एशिया म भारतीय जना की एक मर्यादित सस्था का सगठन किया जाय। साथ ही अचानक बदली स्थिति का भारतीय स्वतत्रता प्राप्ति के लक्ष्य की दिशा म कस सवश्रष्ठ उपयोग किया जा सकता है इसकी भी व्यवहाय निर्देशिका आदि तयार की जाय।

जसाकि मैं पहले कह चुका हूँ भारत म विद्यमान स्वतत्रता सनानियो के अलावा विदशा म उपस्थित विभिन्न नताआ क निर्देशन म भारत की स्वतत्रता के लिए सघष काफी पहले स ही तेज गति से चलाया जा रहा था। उनम स कुछ तो अकले ही कायरत थ और अन्य लाग विभिन्न सस्थाआ के अध्यक्षा की हैसियत स कायरत थ। अब वह समय आ गया था कि इन सभी छितर हुए लोगा को एक नता के अधीन एक सगठित इकाई क रूप म एक सस्था का रूप दिया जाय। मर साथ सलाह मशविरा करके रासविहारी बास न यह सुझाव रखा कि प्रस्तावित सस्था का नाम 'भारतीय स्वतत्रता लीग रखा जाय, जनरल सुगियामा इससे सहमत थ। फरवरी 1942 के प्रथम सप्ताह म, ताक्यो स रेडियो पर यह समाचार प्रसारित किया गया और जापान के समाचार पत्रा म भी छपा कि भारतीय स्वतत्रता लीग की स्थापना की गयी है जिसका मुख्यालय सन्नो होटल के कमरा नबर 302 म है। हम निश्चयात्मक और प्रभावकारी तरीके तय करन म जुट गय।

मैं व्यापक और लम्बे विचार विमश के लिए राज ही रासविहारी बोस स मिलता। एक अन्य चिता का विषय था कि उन क्षत्रा म जो पहले ही कब्जे म ले लिय गय थ तथा उन क्षेत्रो म जिनके शीघ्र ही जापानी सेनाओ के कब्जे म आ जान की आशका थी रहने वाले लगभग 20 लाख भारतीय राष्ट्रिका के जान-माल की हिफाजत का इन्तजाम कसे किया जाए। मैं उस समय सर्वाधिक आक्रान्त क्षेत्र यानी मलाया की स्थिति का लेकर, जहाँ कि दक्षिण-पूव एशिया म रहने वाले कुल भारतीय लोगो म स लगभग आधे लोग रहते थे, सनिक मुख्यालय के साथ बराबर निकट सम्पक कायम किय था। हालाकि काफी बडी सख्या म, वहाँ भारतीय वकील डाक्टर, तकनीशियन व अन्य दफ्तरी बाबू आदि थे किन्तु वहाँ बसनेवाला म से अधिकाश सादा मजदूर थे जो ब्रिटिश बागानो म काम करते थे या फिर व्यापार करत थे। जापानी सेनाओ न थाईलण्ड की सीमा की ओर स मलाया प्रायद्वीप म घुसकर सिंगापुर की ओर बढना आरभ कर दिया था। ब्रिटिश

विरोध के पूर्णतया खंडित हो जाने के कारण यह लगने लगा कि शीघ्र ही जापानियों के अधिकार में आ जायेगा। नागरिक भारतीयों की सुरक्षा के अलावा, भारतीय सैनिकों के कल्याण का भी प्रश्न था। मैंने गुप्त रूप से, कुदान हिल्स में स्थित सैनिक हाई कमान से अनुरोध किया कि अपनी मलाया स्थित कमान के लिए तत्काल निर्देश जारी करें कि उनकी सेनाएँ किसी भी भारतीय को हानि नहीं पहुँचाएगी।

यह बड़े संतोष की बात थी कि अविलम्ब ऐसा आदेश जारी कर दिया गया। इसका प्रभाव उल्लेखनीय रहा। दुर्व्यवहार या हत्या की कुछ छिट-पुट घटनाओं को छोड़कर भारतीय नागरिक समुदाय उस घोर नियति से बचा रह सका जिसका शिकार अधिकांश अन्य राष्ट्रिकों को विशेषकर चीनियों को बनाना पड़ा था। ब्रिटिश, आस्ट्रेलियाई और न्यूजीलैण्ड निवासी युद्धबंदियों के मुकाबले में भारतीय युद्धबंदियों को भी कोई हानि नहीं पहुँचाई गयी। मलाया, भारत या अन्य देशों के बहुत कम लोग, जिन्होंने युद्ध या भारतीय स्वतन्त्रता अभियान विषय पर पुस्तकें लिखी हैं, यह जानते थे कि तोक्यो स्थित सैनिक हाई कमान के आदेश के कारण ही भारतीयों की रक्षा हो सकी थी। मलाया स्थित कमान को तोक्यो से यह आदेश भी दिया गया था कि भारतीयों को अन्य व्यक्तियों से अलग कैसे पहचाना जा सकता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया थी जिसमें जापानी सैनिकों विशेषकर देहातों से भरती किये गये सैनिकों के लिए जो उतने पारंगत न थे, एक सादा तरीका अपनाया गया था। तोक्यो से प्रेषित संकेत के अनुसार, जापानी सशस्त्र सैनिकों को भारतीयों को पहचानने में दुविधा की स्थिति में, प्रश्न पूछना होता था "गांधी ?"। यदि उत्तर "हां" में मिलता चाहे वह मात्र सिर हिलाकर ही दिया जाता तो उस व्यक्ति की अच्छी देखभाल करनी होती थी। यदि तोक्यो से समय पर यह आदेश न भेजा जाता कि भारतीयों को शत्रु नागरिक नहीं माना जाना चाहिए तो 20 लाख भारतीय समुदाय को अवर्णनीय कष्ट भुगतना पड़ सकता था।

सन्नो होटल में लीग के मुख्यालय के उद्घाटन की घोषणा होते ही हजारों की संख्या में जापानी युवजन स्वयंसेवकों की भांति संस्था में शामिल होने के लिए आने लगे। रासबिहारी बोस और मैंने इस स्थिति की प्रत्याशा की थी और हम उसके लिए तैयार थे। शुरू में ही जनरल सुगियामा के साथ विचार विमर्श से पूर्व ही हम दोनों ने आपस में यह फैसला कर लिया था कि कुछ मूलभूत सिद्धान्तों के अनुसार ही लीग का कार्यकलाप सम्पन्न किया जाएगा।

ये सिद्धान्त थे—पहला, यह संस्था प्रत्येक स्तर पर, 'अनासक्त कर्म' की भावना से काम करेगी यानी किसी एक व्यक्ति के निजी लाभ या किसी समूह विशेष के निजी हित के लिए कोई काम नहीं करेगी। दूसरा लीग की स्थापना से पूर्व स्थापित सांस्कृतिक, राजनीतिक या अन्य सभी क्षेत्रों की विभिन्न

भारतीय सस्थाओ के बीच उद्देश्य न सबध म पूर्ण एकता होगी। तीसरा, लोग भारत म विद्यमान भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के नताओ के समथन म राय करगी और उनके विरोध म या उनकी निन्दा करत हुए कोई काम नही करगी। चौथा, कोई भी गर भारतीय राष्ट्रिक लीग की सदस्यता प्राप्त नही कर सकगा न ही उसकी गतिविधिया म सक्रिय भाग ले सकगा। पाचवा हालाकि जापानी अधिकारियो का सहयोग आवश्यक होगा और उसका स्वागत किया जाएगा तो भी नीतिनिर्धारण और उसके कार्यान्वयन के लिए पूर्णतया लीग ही जिम्मेवार होगी और अन्य किसी का हस्तक्षेप सहन न किया जाएगा।

इस प्रकार जापानियो के भाग लेने के प्रश्न पर पहले ही सोच विचार करके निर्णय किया जा चुका था और मुझे कोई दो सप्ताह तक प्रतिदिन कई घटो के लिए सन्नो होटल के गलियारे म बठना पड़ा था और भारी सख्या म आनवाले स्वयसेवको को य स्पष्टीकरण देना होता था कि हम उन्ह अपनी सस्था का सदस्य क्यो नही बना सकत थे। मैं उन सबका धन्यवाद देता और पारम्परिक भारतीय शैली म हाथ जोडकर नमस्ते करके कहता कि हम उनके सद्भाव स बहुत प्रभावित हैं किंतु हमारी नीति के अनुसार लीग की सदस्यता केवल भारतीयो को ही मिल सकती है। हम जापानी मित्रो की सहायता और उनके सहयोग की आवश्यकता थी किन्तु हम औपचारिक रूप से उन्ह अपनी सस्था का अग नही बना सकते थे।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि आनवालो म स अधिकाश भारत की सहायता करने की इच्छा म प्रेरित थ लेकिन इस बात की सभावना भी थी कि उनम स कुछ न लीग को जापानी सशस्त्र सेना म भरती किये जाने स बचने का एक माध्यम माना हो। जो भी हो ये बात महत्वपूर्ण थी कि हम लीग को उसकी सरचना और नियत्रण, दोनो ही प्रकार स पूर्णतया भारतीय रख सके।

उसके शीघ्र बाद निप्पोण होसो क्योकाई (एन० एच० के०) अर्थात जापान प्रसारण निगम ने हम लोगो द्वारा भारत के लिए दनिक प्रसारण के उद्देश्य स एक शार्ट वेव केन्द्र खोला। रासबिहारी बोस ने इस सुविधा का भारत म विद्यमान लगभग प्रत्येक भारतीय नेता को सम्बोधित करने के लिए उपयोग किया और उन्ह यह बताया गया कि लीग का स्वरूप क्या है और उसका उद्देश्य क्या है। उन्हे यह भी बताया गया कि यह दक्षिण पूर्व एशिया और सुदूर पूर्व म बसनेवाले भारतीयो की एक सस्था है जो भारत के स्वतन्त्रता सघर्ष म यथासभव समर्थन करने का कृत सकल्प है। अपने एक भाषण म रासबिहारी बोस ने भारत की एकता को बनाये रखने की एक जोरदार अपील की। उन्होने इस समाचार को लेकर अपना क्षोभ व्यक्त किया कि श्री जिन्ना मुसलमानो के लिए एक पृथक राज्य, पाकिस्तान के सृजन की दिशा म कार्यरत है। उन्हाने रेडियो पर ही यह विनती की कि यदि श्री

जिन्ना भारत के राष्ट्रपति बनना चाहते है तो हम सहमत है कि तु उन्हे ऐसी किसी भी कारवाई स गुरेज करना चाहिए जिससे हमारी मातृभूमि के टुकडे होते हो। "आइये हम सब मिलकर सघष करें और एक ऐसा स्वतत्र भारत लायें जो सदा- के लिए एक होकर रहे"।

हम इस विषय म बिलकुल स्पष्ट थे कि तोक्यो स्थित अधिकारीगण और उनकी क्षेत्रीय कमानो के सहयोग के बल पर ही जापान-अधिकृत या जापान नियन्त्रित क्षेत्रो मे भारत का स्वतत्रता आदोलन चलाया जा सकता है क्योकि जापान को इन सभी क्षेत्रा म बहुत अधिकार प्राप्त था। यह बात तकसगत ही थी और वास्तविकता की अवहेलना करन से कोई लाभ न था। लेकिन हमने जापानिया द्वारा लीग पर नियत्रण के विचार को कभी स्वीकार नही किया। स्थिति बहुत नाजुक थी और उसके बारे म जापानी हाई कमान के साथ विवेकपूवक और कूटनीतिक ढग से बातचीत अपेक्षित थी जिससे कि लीग एक स्वायत्त भारतीय सस्था के रूप मे अपनी प्रतिष्ठा खोये बिना प्रभावकारी ढग से काय कर सके। यह जानकर हम बडा सतोष हुआ कि थाईलण्ड और मलाया मे स्थानीय भारतीय नेताओ न पहले से ही सुचारु ढग से काम शुरू कर दिया था। समुदाय म आत्म-विश्वास जगाने के उद्देश्य से उन्होन समस्त महत्वपूण केन्द्रा मे लीग की शाखाओ की स्थापना कर दी थी।

बडी-बडी सभाआ म भारतीय लोगो को बताया गया कि भारत को स्वतत्र देखने की प्रत्येक व्यक्ति की आकांक्षा पूरी होने का अवसर आ पहुँचा है। इस काम को बल देने और विकसित करने का जिम्मा स्वय भारतीयो का है। लेकिन, इसमे जापानिया की सहायता आवश्यक थी। इसका उपयोग रासबिहारी बोस के नेतृत्व मे केन्द्रीय सस्था द्वारा समय समय पर निर्धारित कायक्रमा के अनुसार किया जा सकता था। विभिन्न देशो म लोगो को उचित नेतृत्व प्रदान करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय परिषदो की स्थापना की जानी थी। मलाया मे नेतृत्व प्रीतमसिंह को और थाईलण्ड मे स्वामी सत्यानद पुरी को सौपा गया।

प्रीतमसिंह एक धम-प्रचारक सिख थे जो मूलत थाईलण्ड म धम प्रचार के लिए गये थे। किन्तु, उन्हे मेजर फुजिवारा इस उद्देश्य स मलाया ले गय थे कि ब्रिटिश सेना म से भारतीय सनिको को हथियार छोडकर जापानी पक्ष की ओर आने के लिए प्रेरित करें। स्वामी सत्यानद पुरी कलकत्ता की 'वृहत्तर भारतीय समाज' नामक सस्था क सदस्य थे और थाई सस्कृति एव भाषा के अध्ययन के लिए सन् 1930 मे थाईलैण्ड गये थे। वे वही बस गये और भारतीय स्वतत्रता अभियान मे जुट गय। दुर्भाग्यवश बर्मा स्थित भारतीया को उचित नेता न मिल सका। जब वहाँ युद्ध जोर पकडने लगा तो उनम से बडी सख्या म लोग सीमा पार कर भारत

आ गय। बहुत से लाग तो सुरक्षित पहुँच सके किन्तु अय बहुत स जा उस यात्रा के लिए अशक्त थे माग म ही समाप्त हो गय।

15 फरवरी 1942 को जापानी सेनाओ द्वारा सिंगापुर पर अधिकार किय जाने पर जनरल आचिबाल्ड पर्सीवाल और उनकी सेना न जापान की 25वी सेना के ले० जनरल तोमोयूकी यामाशिता के समक्ष आत्मसमपण कर दिया। युद्धबदियो म कोई 45 हजार भारतीय सैनिक भी थे। 17 फरवरी के दिन फरर पाक नामक स्थान पर ब्रिटिश सना के ले० कनल हण्ट द्वारा औपचारिक रूप स उन्ह मेजर फुजिवारा को सौंप दिया गया। उन युद्धबदियो म कनल निरजनसिंह गिल भी थे जो उच्च सम्मान प्राप्त सम्राट के आयोग' क अधिकारी थ और पजाब क अभिजात मजीठिया परिवार स थ। इस परिवार क एक सदस्य सुदरसिंह मजीठिया को ब्रिटिश सम्राट द्वारा नाइट की उपाधि स विभूषित किया गया था।

मेजर फुजिवारा न 'मेरे प्रिय भारतीय सनिको !' क सबोधन के साथ अति नाटकीयतापूवक भारतीय युद्धबदियो के आत्मसमपण को स्वीकार किया। उन्होंने उन युद्धबदियो और जापानी सेनाओ क बीच अच्छे सबधो की स्थापना की दिशा म प्रयास करने का वचन दिया। उनके और युद्धबदियो म स एक कप्तान मोहनसिंह के बीच जिनकी चर्चा मे पहल कर चुका हू, एक मिलीभगत थी। मोहनसिंह थाईलण्ड के साथ मलाया की सीमा पर जित्रा के निकट स्थित 14वी पजाब रेजिमेंट की प्रथम बटालियन क सदस्य थ। कहा जाता था कि व भागकर आग बढती जापानी सेना के साथ आ मिले थ। वास्तव म क्या हुआ इसकी कोई प्रामाणिक जानकारी सुलभ नही है, लेकिन कुछ सूत्रो के अनुसार युद्धबदी बना लिए जाने के बाद व जापानी सना म आ मिल थे लेकिन अन्य लोगो का कथन है कि वह इससे पूव ही भागने की योजना बना रहे थ और जसे ही अवसर सामने आया उन्होंने स्वय का प्रस्तुत कर दिया।

मोहनसिंह ने सन 1907 म एक साधारण पैदल सनिक की भाति भारतीय सेना मे प्रवेश किया था और धीरे धीरे देहरादून स्थित भारतीय सनिक अकादमी से कमीशन प्राप्त किया था। कोई 32 वष की आयु म उन्ह कप्तान बना दिया गया था। फुजिवारा प्रत्यक्षत उनस प्रभावित थे और अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए उनका उपयोग करने की आशा रखते थ। जो भी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि फुजिवारा ने मोहनसिंह को बहुत अधिक छूट दे रखी थी कि वह बाकी भारतीय युद्धबदियो स जस चाहे व्यवहार करें जिसस कि उन्ह उनकी देखभाल आदि की मुसीबत से छुटकारा मिल जाएगा।

जब मोहनसिंह न फुजिवारा के साथ मिलीभगत की थी तो उस कदाचित बडी-बडी आशाएँ रही होगी। एक अनुमान के अनुसार उसे यह भी विश्वास था कि यदि जापान युद्ध म जीत जाता है तो उसके साथ मिलनेवाले प्रथम भारतीय

सैनिक अधिकारी के नाते व भारत के सैनिक तानाशाह भी बन सकते थे। अन्य लोग भी थे जिनका विचार था कि फुजिवारा मोहनसिंह साठगाठ म और अधिक अप्राकृतिक और सन्देहजनक बाते भी थी। कारण यह कि यदि भारतीय युद्धवदियो की देखभाल का ही प्रश्न था तो साधारणतया एक वरिष्ठ सनिक अधिकारी की सेवाएँ वाछनीय थी और उन वदियो म अनेक ऐसे अधिकारी थे जो मोहनसिंह की तुलना मे कही उच्च स्तर के थे।

प्रत्यक्षत फुजिवारा ने मोहनसिंह को इसलिए चुना क्योकि वे ऐसे प्रथम भारतीय अधिकारी थे जिन्होने अपनी स्वामिभक्ति का स्थान परिवतन कर लिया था। जो भी हो, यह उस प्रकरण की चरम हास्यास्पद समाप्ति ही कही जाएगी कि मेजर फुजिवारा ने कप्तान मोहनसिंह को जनरल की उपाधि से विभूषित किया और उन्ह युद्धवदियो का नियत्रण इस स्वीकृत लक्ष्य के साथ सौप दिया कि समय आने पर उन्ह भारतीय राष्ट्रीय सेना मे बदल दिया जाएगा जो अतत भारत पर आक्रमण करने और उसे मुक्त कराने का काय सम्पन्न करेगी। इस प्रकार की एक अत्यत बेहूदा योजना, जो निश्चित रूप स वरिष्ठ अधिकारियो के उत्साह भग का कारण हो सकती थी, किसी भी सैनिक इतिहास के विवरण म अज्ञात ही रह गयी प्रतीत होती है। जापानी सना के उच्च कमाडरो के पास उसके मेजरो म से एक के द्वारा सृजित इस प्रकार की एक विचित्र स्थिति की ओर ध्यान देने का शायद समय ही न था। यदि उन्ह इसका ज्ञान होता भी तो भी कदाचित उन्होने प्राथमिकता की अपनी सूची म सबसे निम्न स्थान पर एक विचित्र बात की भाति इसकी अवहेलना ही की होती। सर्वाधिक उच्च स्तर के जिस जापानी सनिक अधिकारी स 'जनरल मोहनसिंह कभी मिल पाय थे, वह एक 'कनल' था और वह भी तव जब जनरल मोहनसिंह को उसस मिलने के लिए बुलाया गया था। सामान्यत उनका सम्बन्ध केवल मेजर या उसस भी नीचे के दर्जे के अधिकारियो के साथ ही रहा था।

सिंगापुर की पराजय के एक दिन बाद जनरल तोजो ने जापानी दायत (ससद) मे एक वक्तव्य दिया। उन्होने कहा कि जापान भारतीयो को शत्रु नही मानता और जापान सरकार ब्रिटिश सत्ता से मुक्ति पाने के भारतीयो के प्रयासो मे सहायक होगी। तोजो ने कहा कि अब समय आ गया है कि सब भारतीयो को एकजुट होकर ब्रिटिश शासको को भारत से खदेड देना चाहिए। उन्होने यह भी कहा कि इस प्रक्रिया म जापान द्वारा अनासक्त भाव स ही सहयोग किया जाएगा यानी जापान का भारत विजय का कोई इरादा नही है। इन सब बातो की एक रोचक पृष्ठभूमि थी। जनरल तोजो द्वारा सिंगापुर म ब्रिटिश जन के आत्मसमपण की घोषणा और भारत की चर्चा किये जाने स कुछ ही समय पूव सनिक मुख्यालय म एक सभा हुई थी जहाँ मैं भी उपस्थित था। डा० निकि कुमुरा

भारतीय मामला म हाई कमान के सलाहकार थ। व रिपा विश्व
भारतीय दशन के प्रोफेसर थे और शातिनिकेतन म टगोर के
विश्वविद्यालय म काफी समय रह चुके थ। व सस्कृत भाषा के पडित
स्वतत्रता लीग के साथ निकट सम्पक बनाय रखन की सुविधा
उ होने स नो होटल के 41० नम्बर के कमरे म निवास स्थान बन
चूकि लीग का मूल सिद्धा त था अनासक्त कम यानी 'बिना
काय' मैंन जनरल तोजो को विवरण दन वाल अधिकारिया स कह
रहेगा यदि दायत (ससद) म प्रधान मत्री के भाषण म उसी विचार
दिया जाये जो भारत के प्रश्न को लेकर जापान के रुख के लिए भी
हो सके।

प्रोफसर किमुरा और विवरण देने वाले अधिकारी दाना ही
गये। कि तु, प्रोफेसर को सस्कृत वाक्याश का सही जापानी रूपान्तर
कुछ समय लगा। अतत उ होन सही मुहावरा प्रस्तुत किया। कि
म कोइ चालीस मिनट का समय बीत गया और जनरल ताजो की
उतनी अवधि के लिए स्थगित रखना पडा। लेकिन इसका सुपरिणा
मैंने जापानी सनिक अधिकारिया को इसस पूव के अपने विचार विम
भारत के प्रति उनकी योजना की सुस्पष्ट घोषणा के महत्व का स्म
चीन मे उनकी त्रुटिपूण नीतिया और कायप्रणाली की वजह स बहु
पदा हो चुका था और जसा कि उनके अनुरोध पर मचुको म कि
काय की रिपोट म मैंने स्वय भी लिख भेजा था, उन सब के परिणाम
बेकाबू समस्याएँ उठ खडी हुई थी। यह जरूरी था कि जापान के
सबध म भारतीयो के मन म कोई स देह पैदा न हो, इसका निश्च
ही कर लिया जाना चाहिए था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का जूआ उत
लिए सघपरत भारत जापान की ओर स उपनिवशवादी रवय की
झलक भी बदाश्त नही कर सकता था। दक्षिण पूव एशिया ही नही,
भारत के भारतीया के बीच किसी भी सभाव्य स देह को पहल ही
जाना चाहिए था।

जापान सरकार को इसस पूव दी गयी सलाह का दोहरान के
अवसर का हमने उपयोग किया और अपनी सलाह को दुहराते हुए ह
किसी भी गलतफहमी स बचे रहने के लिए भारतीय मामला के सम्ब
विचार विमश तथा कारवाई भारतीय पक्ष की ओर से स्वतत्रता लीग
पक्ष की ओर से सनिक सम्पक समूह द्वारा समजित की जानी चाहिए।

लेखक के भाई श्री नारायणन नायर के सम्मान म ओसाका (1936 मे) आयोजित स्वागत समारोह। मेज पर (बाय से दाये) प्रमुख समाजवादी नेता, श्री कोइची फुजुदा नारायणन नायर लेखक और कनसाई के सर्वोच्च शिंतो पुजारी श्री सेनगी।
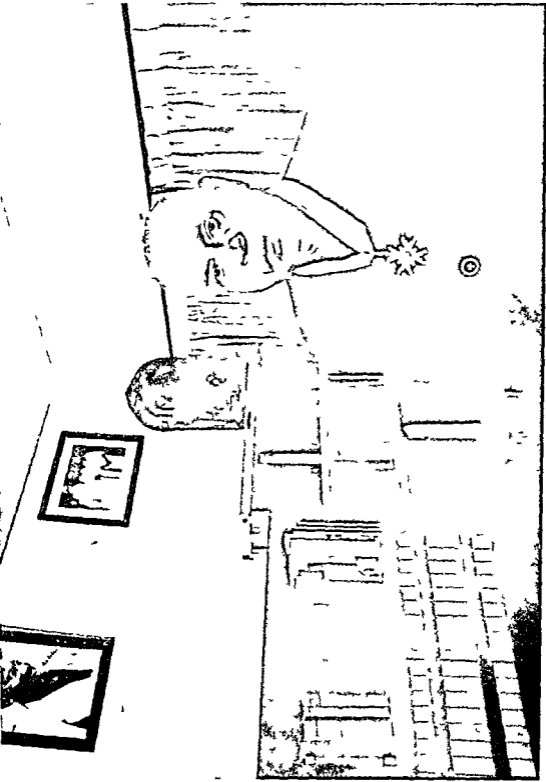
लेखक श्री ए० एम० नायर अपने अध्ययन कक्ष मे

लेखक के भाई श्री नारायणन नायर के सम्मान मे ओसाका (1936 मे) आयोजित स्वागत समारोह। मेज पर (बाय से दाये) प्रमुख समाजवादी नेता श्री कोइची फुजुदा नारायणन नायर लेखक और कनसाई के सर्वोच्च शिन्तो पुजारी श्री सेनगी।
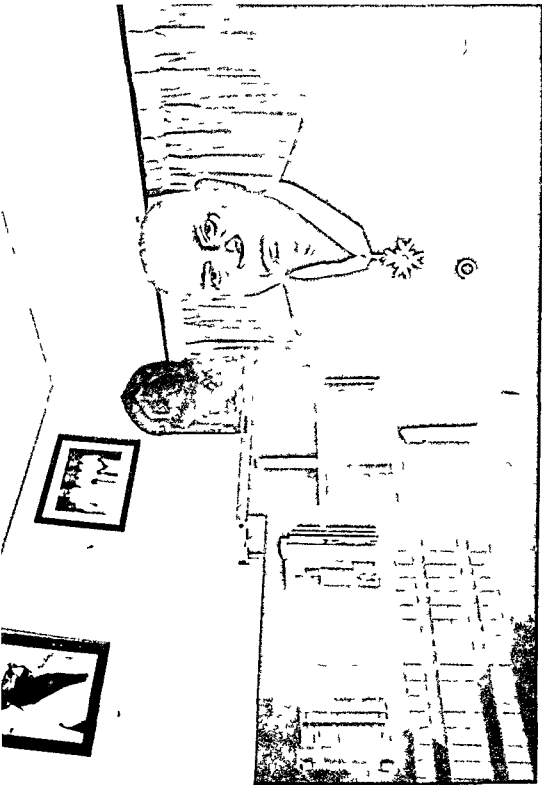
लेखक श्री ए० एम० नायर अपने अध्ययन कक्ष मे
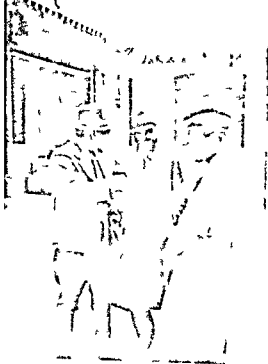
लेखक मुस्लिम मौलवी के रूप म पावो ताओ मस्जिद म (1937 म), बाइ स दाइ ओर नेफ्टिनेंट नागाशिमा, लेखक और समाचार रिपोटर।

महान कोरियाई देशभक्त ली वाईतेन।

लेखक और उनकी पत्नी, विवाह के समय का फोटो, (6 फरवरी 1939 में)।
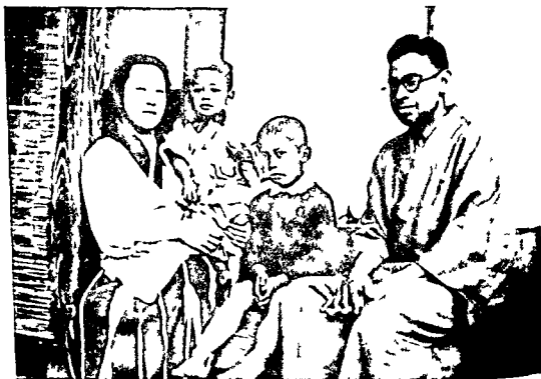
लेखक, उनकी पत्नी और उनके दो पुत्र (1946)।

नवम्बर, 1944 म सुभाष चन्द्र बोस की तोक्यो यात्रा के अवसर पर उनके साथ हैं—दोमेई समाचार एजेंसी के अध्यक्ष श्री कोनो। (दाहिन) और दोमई के दक्षिण पूर्व एशिया ब्यूरो के अध्यक्ष श्री फुकुदा, उनके पीछे हैं वी० सी० लिंगम और लेखक।
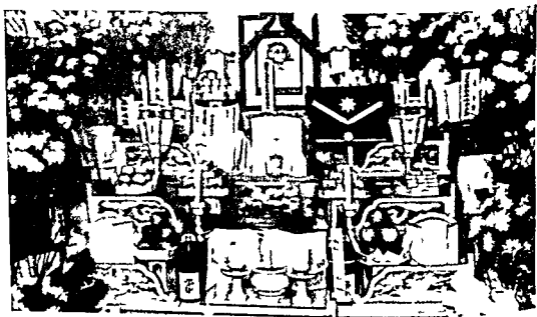
। बोस के अन्तिम सस्कार म बौद्ध लोग वठे हुए—दाइ ओर उस सम्मान का चिह्न जापान के सम्राट ने उन्ह दिया था। (सकिड आडर आफ मरिट आफ द राइजिंग सन)

21

भारतीय स्वतंत्रता लीग का तोक्यो सम्मेलन

भारतीय स्वतंत्रता अभियान के प्रति जापान सरकार के रुख के सम्बन्ध में दायत में जनरल तोजो की घोषणा के शीघ्र बाद ही रासबिहारी बोस ने और मैंने यह अनुभव किया कि लीग के समस्त महत्वपूर्ण क्षेत्रीय नेताओं का तोक्यो में एक सम्मेलन आयोजित किया जाय जिसमें कि विचारों का आदान प्रदान किया जा सके और एक सुस्पष्ट कार्यक्रम की रूपरेखा बनायी जा सके। इस सम्मेलन की तिथि 10 मार्च, 1942 निर्धारित की गयी थी किन्तु परिवहन की कठिनाई के कारण इसको बढ़ाकर 28 मार्च करना पड़ा।

रासबिहारी बोस और मेरे बीच की महत्वपूर्ण बैठकों में से एक के दौरान उन्होंने यह निर्णय किया कि वे लीग के संस्थापक प्रधान बने रहेंगे और प्रस्तावित तोक्यो सम्मेलन के भी अध्यक्ष होंगे मगर एक सह-संस्थापक और उनके विकल्प स्वरूप कोई एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो किसी भी आपातस्थिति के आने पर उनकी जिम्मेदारी सँभाल सके। उन्होंने निर्णय किया कि जब कभी ऐसा अवसर आये तब मैं ये दोनों भूमिकाएँ अदा करूँ। लीग की समस्त रूपरेखा में अपने *द्वितीय स्थान के सहकर्मी की भाँति रासबिहारी ने मुझमें जो विश्वास दर्शाया था* उससे मैंने अपने आपको अति सम्मानित अनुभव किया। इसके साथ साथ मुझे भारतीय स्वतंत्रता लीग और भारतीय मामलों से सम्बद्ध जापान सरकार के अधिकारियों के साथ सभी महत्वपूर्ण मामलों के सम्बन्ध में और मोटे तौर पर प्राय उठने वाले मामलों को लेकर, जिनका सुदूर पूर्व और दक्षिण पूर्व में रहनेवाले भारतीय समुदाय पर प्रभाव हो सकता था सैनिक हाई कमान के साथ प्रमुख सम्पर्क अधिकारी की भूमिका भी निभानी थी।

प्रस्तावित सम्मेलन के लिए तोक्यो स्थित समस्त भारतीयों से यह सहमति प्राप्त की गयी कि मलाया में निवास करने वाले भारतीयों का प्रतिनिधित्व करेंगे— एन० राघवन जो पेनांग के एक प्रमुख वकील और मलाया की भारतीय संस्था के प्रधान थे, के० पी० केशव मेनोन, जो जापान द्वारा कब्जा किये जाने से पूर्व,

सिंगापुर के सर्वोच्च न्यायालय में कार्यरत बैरिस्टर थे और एस० सी० गोहो, जो सिंगापुर में 'यूथ लीग' तथा कुछ संगठनों के नेता होने के अलावा सिंगापुर में ही एडवोकेट भी थे। बर्मा तथा फिलिपीन से कोई प्रतिनिधि नहीं आ सका था लेकिन हांगकांग, शंघाई और कुछ अन्य क्षेत्रों से प्रतिनिधि आनेवाले थे।

जापान में निवास करनेवाले भारतीयों में से, रासबिहारी बोस के अलावा जिन व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व के लिए चुना गया, वे थे—डी० एस० देशपांडे, वी० सी० लिंगम वी० डी० गुप्ता एस० एन० सेन राजा शेरमन, एल० आर० मिगलानी और के०वी० नारायण। हालांकि मैं काफी लंबे लंबे अरसे के लिए मंचुको में रहता रहा था लेकिन मैं स्थायी रूप से वहां स्थानांतरित नहीं हुआ था। इसलिए मैं तोक्यो के भारतीय समुदाय का एक अंग बना हुआ था। अतः जापान से शामिल होनेवाले प्रतिनिधियों में से मैं भी एक था। वास्तव में, इस सम्मेलन में मेरी भूमिका बहुमुखी थी। पहले जिन पद-दायित्वों की चर्चा मैं कर चुका हूं, उनके साथ-साथ मुझे मंचुको के भारतीय स्वतंत्रता अभियान केंद्रों और वहां रहनेवाले भारतीय समुदाय का भी प्रतिनिधित्व करना था। चीन के विभिन्न नगरों में भारतीय रहते थे। किन्तु शंघाई के अलावा अन्य कोई भी केंद्र अपना प्रतिनिधि भेजने की स्थिति में न था। इसलिए मुझे उन समुदायों का प्रतिनिधित्व भी करना था। इतना ही नहीं, मैं प्रमुख संयोजक तथा सचिव की हैसियत से रास विहारी बोस के प्रति उत्तरदायी था और उन सब कार्यों के लिए भी जो वे लीग के सह संस्थापक तथा वैकल्पिक प्रधान की हैसियत से मुझे सौंप सकते थे।

हांगकांग से आये प्रतिनिधि थे डी० एन० खान और एम० आर० मल्लिक तथा शंघाई के भारतीयों का प्रतिनिधित्व ओ० आसमान और प्यारासिंह ने किया।

सम्मेलन के लिए प्रबंध सम्पन्न हो जाने से पहले हमें पता चल चुका था कि मेजर फुजिवारा और कप्तान मोहनसिंह भारतीय युद्धबंदियों के बीच कार्यशील थे और उन लोगों में से एक संस्था का सृजन करने में प्रयासरत थे जिसे भारतीय राष्ट्रीय सेना का नाम दिया जाना था। यह बात बड़ी आश्चर्यजनक थी कि इतना महत्वपूर्ण मामला इस क्षेत्र में लगभग नहीं के बराबर अनुभव प्राप्त दो अवर सैनिकों द्वारा सँभाला जा रहा था। रासबिहारी और बाकी हम सभी इस विषय में चिंतित थे और मलाया के भारतीय समुदाय के असैनिक नेता भी परेशान थे।

हमने सुना कि भारतीय सैनिक अधिकारी जिनमें से अनेक मोहनसिंह से वरिष्ठ थे। आम तौर पर एक नई संस्था की स्थापना का जिम्मा मोहनसिंह को सौंपे जाने के विरुद्ध थे। किंतु, स्थिति अस्पष्ट थी। हमें पता चला कि आजाद हिन्द फौज का एक केंद्र स्थापित किए जाने का निर्णय हो चुका था और कुछ अधिकारियों तथा अन्य वर्गों ने उसमें शामिल होने की इच्छा प्रकट की थी।

उनकांक स्थित तमुरा किकन की, जिसके अन्तर्गत फुजिवारा सिंगापुर में कार्यशील था, सलाह के अनुसार हमने सैनिक मुख्यालय को परामर्श दिया कि भारतीय युद्धबंदियों के कुछ प्रतिनिधियों को भी सम्मेलन में भाग लेने की अनुमति दी जानी चाहिए क्योंकि इसमें उन लोगों में नैतिक बल बनाये रखने में सहायता मिलेगी। साथ ही भविष्य की गतिविधि में भी उनका उचित उपयोग किया जा सकेगा। फुजिवारा के निर्देशानुसार जो दो प्रतिनिधि भेजे गये, वे थे—कप्तान मोहनसिंह और कर्नल एन० एस० गिल।

सम्मेलन के उद्घाटन के पूर्व एक घटना हो गयी। एक विमान थाईलैण्ड से स्वामी सत्यानन्द पुरी और मलाया से ज्ञानी प्रीतमसिंह, कप्तान अकरम खान और के० ए० नीलकंठ अय्यर (जो मलाया तथा कुआलालम्पुर की केन्द्रीय भारतीय संस्था के अवैतनिक सचिव थे) तथा कुछ जापानी सैनिक अधिकारियों को ला रहा था जो जापान में कहीं, कदाचित फुजियामा पर, दुर्घटना का शिकार हो गया।

कहा गया था कि जापान की ओर यात्रा के लिए, मौसम की खराबी के कारण विमान चालक ने प्रस्थान अड्डे से कुछ विलम्ब से उड़ने का प्रस्ताव रखा था जिसे विमान पर सवार एक वरिष्ठ सैनिक अधिकारी ने, जो तोक्यो में एक बैठक में शामिल होने के लिए उत्सुक था, नहीं माना। उस अधिकारी ने मौसम की अवहेलना करके क्रू के सदस्यों को उड़ान का हुक्म दिया था। यह विमान और इस विमान पर सवार लोग फिर कभी नहीं देखे जा सके। इस दुर्घटना के कारण सम्मेलन में दुख का वातावरण छा गया और सम्मेलन में सबसे पहले उस अभागे विमान पर आने वाले प्रतिनिधियों और उनके साथियों की मृत्यु पर शोक प्रस्ताव पारित किए गए।

इस सम्मेलन के लिए कोई 24 प्रतिनिधि सन्नो होटल में मिले और कुछ दिन के लिए पूरे होटल को लीग के कार्यों के लिए ही उपयोग किया गया था। रासबिहारी बोस को एक मत से प्रधान चुना गया। सम्मेलन के आयोजन के दौरान उपस्थित समस्त कठिनाइयों और उन पर विजय पाने के अनेक प्रयासों का विस्तृत वर्णन करने का मेरा कोई इरादा नहीं है। बहुत-सी समस्याओं में से एक जिसमें आश्चर्यजनक हो पहुंचा, जापानी सैनिक अधिकारियों ने हम से अनुरोध के सम्बन्ध में कि हम सम्मेलन की बैठकें सन्नो होटल के बजाय पर इम्पीरियल होटल में करें।

मैंने जिन न्यूनतम सुविधाओं का अनुरोध किया था उनकी पूर्ति न हुई जापानी होटल मकान और सुरक्षा में अनेक हर्ष हो चुका थी। इस अनावश्यक प्रस्ताव को मानने का मेरा कोई इरादा न था। मैंने आग्रहपूर्वक कहा और कहा कि सम्मेलन का पूर्व निर्धारित स्थान बदलने की कोई आवश्यकता नहीं है। क्या यह नहीं, जिस स्थान पर भारतीय स्वतंत्रता लीग का सम्मेलन किया जाना था

उसके लिए 'इम्पीरियल' शब्द के प्रयोग भी हम नापसद करत है। हाँ, तोक्यो म हम इम्पीरियल होटल का वहाँ के सदभ मे और उचित परिप्रेक्ष्य म महत्व समझते है और स्वीकार करते है, किन्तु अन्य स्थानो स आन वाले भाइयो द्वारा अनिवायत यही बात सोची जायगी, इसकी प्रत्याशा हम नही कर सकत थे। जापान स अनभिज्ञ भारतीय उपनिवेशवाद से सबद्ध अप्रिय अथ वाले इस शब्द को आपत्तिजनक मान सकते थे वे सोच सकत थे कि हम जापान के इम्पीरियल नियत्रण म बँधे हैं। काफी बहस के बाद, अन्तत मैं हाई कमान के अधिकारियो को अपने साथ सहमत करा सका और उन्होने स्वीकार कर लिया कि पूव निर्धारित योजना के अनुसार हमारी सभाएँ सन्नो होटल म ही होगी। छोटी सी बात का बतगड बहुत अप्रिय रहा।

अपनी पुस्तक 'दि रोड टु डेल्ही' म एम० शिवराम ने इस सम्मेलन के आयोजन तथा प्रबध आदि को लेकर मेरी बहुत प्रशसा की है। उन्होने जो कुछ कहा है उन शब्दो का अथ या निकलना है कि वहा जो कुछ भी हुआ और जो भी उपलब्धि हुई उस सबका श्रेय मुझे जाता है। ये शिवराम का बडप्पन है। उन्होने एक भारतीय स्वतत्रता सेनानी की हैसियत से मेरे जीवन के विभिन्न पहलुओ और राजनीतिक गतिविधियो म मेरी सक्रियता की भी चर्चा की है। मुझे साधारणतया इजीनियर का काम करने के लिए भारत लौट जाना चाहिए था, लेकिन इसमे गम्भीर कठिनाइयाँ थी क्योकि मै ब्रिटिश अधिकारियो की नाराजगी का पात्र था। इसलिए मैं ऐसी स्थिति म था कि भारत से बाहर रह कर ही वह सब काय सम्पन्न कर सकता था, जिसे अपन देश के स्वाधीनता सघष में मैंने अपना योगदान मान लिया था और जिसके लिए मै अपना सब कुछ खुशी से अपण कर सकता था।

शिवराम का यह कहना सही है कि मैंन जापान म तथा अन्य स्थानो पर भी स्वय को बहुत-सी गतिविधियो म उलझा लिया था। मै एक रोणिन की भूमिका निभा चुका था, मगोलिया म साक्षात् बुद्ध' के रूप म यात्रा कर चुका था ऊँटो का व्यापारी भी बन चुका था। यह भी सत्य है कि मगोलिया के राजकुमार तेह का जापानियो क साथ सम्पक म मेरे ही कारण हुआ था। इसके अलावा मैं चीन के राजनीतिक नेताओ और जापानियो के बीच सम्पक कडी की-सी भूमिका भी निभा चुका था। उन्होने अन्य जिन बातो का हवाला दिया है उनम हैं—'ब्लैक ड्रैगन सोसाइटी' और अन्य दक्षिणपथी राजनीतिक सगठनो के साथ मेरा सपक, जिनके साथ मिलकर मैं एशिया म ब्रिटिश सत्ता को समाप्त करने के लिए यथासभव प्रयास करने को उत्सुक था। शिवराम न यह भी लिखा है कि रासबिहारी बोस मेरे ही बल पर यहाँ कायरत रह। उन्होने जापानी सैनिक सोपानक के साथ मेरे सम्बन्धो की भी चर्चा की है। उन्होने मुझे एक 'रहस्यमय व्यक्ति कहा

है जो भारी ओजस्विता और गुप्त शक्ति का स्वामी है और बहुत प्रभावशाली है'।

किन्तु सम्मेलन मे जो कुछ हुआ वह सभी सुखद सुचारु रहा हो ऐसी बात नही है। मलाया से आने वाले सनिक व गर सनिक दोनो ही प्रतिनिधियो के मन मे जापानिया के मत्री प्रस्ताव और सहायता के वचन के बारे मे स देह था। ऐसे क्षण भी आये जब रासबिहारी बोस और मुझे उन असाधारण परिस्थितिया म उचित दृष्टि से देखने के लिए प्रतिनिधियो को मनवाने म बडी कठिनाई का अनुभव हुआ। मलाया स आये प्रतिनिधिया ने जापानियो के साथ भारतीयो के सहयोग और भारत को दासता स मुक्ति दिलाने की दिशा म जापानियो द्वारा दिए गये सहायता के वचन को लेकर अत्यधिक कानूनी रुख अख्तियार कर लिया था। प्राय वे एसा रुख दर्शाते थे मानो कचहरी म बहस कर रहे हो। युद्ध-बदियो के प्रतिनिधिया का जहा तक प्रश्न था मोहनसिंह इन बठको म प्राय मौन रहते थे। उन पर सदा ही फुजिवारा हावी प्रतीत हाते थे और बाहर आकर वे फुजिवारा से बात करते थे। उन्हान कभी भी अपने विचार हम पर या अन्य प्रतिनिधियो पर प्रकट नही किए। सम्मेलन के सदस्यो के बीच वे 'काला घोडा' कहलाते थे।

गिल का रवया ऐसा था माना व एक साथ दो नावो पर सवार हो। उन्हे इस बात का भी ज्ञान नही था कि किस पक्ष का साथ देना चाहिए। उन्होंने जापानिया के साथ लीग के सम्बन्धो के विषय मे विचार-विमश के लिए राजा महेन्द्र प्रताप को खोज निकालने की धृष्टता भी दिखायी। उन्हे इतना तो मालूम होना चाहिए था कि महेन्द्रप्रताप को जापानी अधिकारीगणो की कृपा सुलभ नही थी और उनके साथ सम्पक स्थापित करने पर गिल स्वय पुलिस के हाथो गिरफ्तार किये जा सकत थे। वास्तव मे लगभग ऐसी स्थिति आ भी गयी थी और बुदान के द्वितीय ब्यूरो म कुछ कह-सुनकर मैं गिल को किसी मुसीबत मे फँसने से बचा सका था।

रासबिहारी और मैं चाहत थे कि राजनीतिक मामलो के प्रति गिल का जो बचकाना रवैया था उसे दूर करने का उचित अवसर दिया जाय साथ ही उन्हे लीग का एक उपयोगी सदस्य बनाया जाय जिसकी हमारी दृष्टि मे उनम सम्भावना थी। उनका व्यक्तित्व अति प्रभावशाली था और वे मूलत उच्च-स्तर के व्यक्ति थे। यदि उन्हे उचित ढग से गढा जाता तो वे लीग के विशेष सहायक सिद्ध हो सकते थे। पर्याप्त सलाह-मशविरा के बाद वे हमार हम-खयाल बनते प्रतीत हुए किन्तु मोहनसिंह जो सदा ही फुजिवारा की छाया मे ढँके रहत थे हमेशा लडाका और असहयोग पूण रुख अपनाये रहे।

युद्धबदियो के इन दो प्रतिनिधियो के आचरण की एक विशेषता यह भी थी कि स्वय उनमे भी गहन सन्देह का आभास मिलता था। गिल ने यह स्पष्ट कर

दिया था कि उनके मन म मोहनसिंह तथा आजाद हिन्द फौज के गठन की उनकी योग्यता म कोई आस्था नही है।

रासबिहारी प्राय अपनी चिंता व शंका की बात मुझसे किया करते थ। वे चाहते थ कि काश मलाया म आए प्रतिनिधि थोडा और उदार रुख अपनाते। उनकी यह आशा थी कि सम्मेलन म भाग लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति एक रूप होकर सोचेगा। यह दुर्भाग्य की ही बात थी कि उन्होंने दृष्टिकोण के सन्दर्भ म आश्चर्यजनक विषमता का परिचय दिया। उनम म कुछ के मन म तो 'तोक्यो समूह' की राष्ट्रवादी विश्वसनीयता के प्रति ही सन्देह थ जो एक नितान्त भ्रामक बात थी।

हालांकि यह भावना मुखर तो न थी किन्तु उनका यह विचार कि रास बिहारी बोस एक जापानी नागरिक होने के नाते भारतीय स्वतंत्रता लीग के विश्वसनीय नेता नही हो सकते थ घटिया और गैर जिम्मेदाराना था। वे जापानी नागरिक मात्र इसलिए थे क्योंकि उनके जीवन का दारोमदार इसी पर था। किन्तु अपने रक्त की एक एक बूंद से व एक भारतीय थे कदाचित उन कुछ प्रतिनिधियो से कही बढकर भारतीय थे जिनका लालन-पालन व प्रशिक्षण ब्रिटिश जन के अधीन हुआ था और रासबिहारी ब्रिटिश जन को तहे दिल से नापसन्द करते थे। ये कोई बहुत रुचिकर यादें नही है किन्तु सच्चाई से आँखें नही मूदी जा सकती।

रासबिहारी बोस ने बहुत गरिमा और योग्यता के साथ सम्मेलन का संचालन किया। अन्य कोई व्यक्ति इस काम को इससे बेहतर ढग म नहीं कर सकता था। मलाया से आए कुछ प्रतिनिधियो द्वारा अप्रिय आचरण किए जाने के अलावा समस्त प्रतिनिधि आम तौर पर एक-दूसरे से भली प्रकार परिचित हो सके और हम तोक्यो वालो को उनके संपर्क म आकर कुछ लाभ ही हुआ। हमम स बहुतो को ऐसे मामलो के प्रति जिन्हे युद्ध-काल म कानूनी जामा नही पहनाया जा सकता था, उनके कुछ अव्यावहारिक रुख से चिंता अवश्य थी किन्तु रासबिहारी ऐसे व्यवहार-कुशल थे कि सवसम्मति से प्रस्ताव पारित किया जा सका जिसमे भारतीय स्वतंत्रता के लिए दुगने जोश के साथ योगदान करने के लीग के संकल्प पर बल दिया गया था।

यह निणय भी लिया गया कि भविष्य मे विचार विमश के लिए तोक्यो के बजाय किसी अधिक केन्द्रीय स्थान पर लीग का पूर्ण अधिवेशन किया जाये जिससे कि दक्षिण-पूर्व एशिया म निवास करने वाले भारतीय ज्यादा बडी संख्या म भाग ले सकें। ऐसी ही एक बैठक के लिए बैंकाक को चुना गया और आगामी छ महीनो के अन्दर इस अधिवेशन के आयोजन करने का निणय किया गया। एक कमचारी परिषद का भी गठन किया गया जिसके प्रधान रासबिहारी

बोस थे और एन० राघवन, के० पी० केशव मेनन, एस० सी० गोहो और कप्तान मोहनसिंह उसके सदस्य थे।

तीन दिन के स ना होटल सम्मेलन के बाद रासबिहारी बोस व अन्य सभी प्रतिनिधि जनरल तोजो के प्रति समादर व्यक्त करन के उद्देश्य से उनसे मिलने गये और उसके बाद यह दखकर बडा सतोष हुआ कि सिंगापुर व पिनाग स आये प्रतिनिधि काफी शात थे। कालान्तर म एन० राघवन ने बताया कि तोक्यो सम्मलन के दौरान मलाया से आये प्रतिनिधियो का यह मानना कि 'तोक्यो निवासी भारतीय' जापानी सरकार के हाथो की कठपुतली है अनुचित था। यह राघवन का गरिमामय आचरण ही कहा जायेगा कि उन्होने अपनी और अपने साथियो की मूल गलती का पश्चात्ताप सावजनिक स्तर पर व्यक्त किया।

बाद मे मुझे, राघवन व अन्य साथियो को जिन्होने सदेह की भावना के साथ हमारे साथ काम करना आरभ किया था, यह सलाह देन का अवसर मिला कि गर सैनिक लोगो के सामान्य चिन्तन व आचरण और युद्ध जैसी आपात स्थिति म सैनिको के आचरण म अन्तर हुआ करता है। मैंने उन्ह यह भी बताया कि यह मान लेना कोई अच्छी बात नही है कि केवल वही भले थे और अन्य सभी इसके विपरीत थे। मैंन जो कुछ कहा वह सक्षेप म या था—'हम अपनी दो आखा से दूसरो को देखते है किन्तु स्वय अपना चेहरा देखने के लिए हमे आईने का उपयोग करना पडता है। यदि आईना न हो तो हमे किसी अन्य के कथन पर विश्वास कर लेना पडता कि हम कैसे दिखाई देते है। जो लोग बिना किसी कारण के हर किसी पर अविश्वास करते है सभवत मद-बुद्धि हो सकते है। कोई भी भारतीय जा रासबिहारी बोस के देश प्रेम की विश्वसनीयता पर शका करता है स्वय को देश प्रेमी कहलाने का दम नही भर सकता है। इतना ही नही आम आपात स्थिति म आपसी विश्वास और आस्था के बल पर बोचो सिद्धान्त के अनुसार जबानी विचार विमश और आपसी समझ कलम और मोटी-चमडे की जिल्दवाली किताबा की तुलना मे कही अधिक फलदायी सिद्ध होती है।

युद्ध म यदि एक शक्तिशाली मित्र एक लिखित अनुबध के विरुद्ध आचरण करता है और आपके विरुद्ध हो जाता है तो उन दस्तावेजा का आप क्या उपयोग कर सकते हैं? दूसरी ओर यदि आपसी भाईचारा हो तो एक जबानी कही गयी बात भी लिखित वायदे के बराबर महत्वपूण हो सकती है। सशस्त्र युद्ध मे सलग्न सैनिका के पास इतना समय नही होता है कि वे कचहरियो की तरह ढेर सी कागजी कारवाई कर सकें। मेरी निश्चित रूप से अनेक बार जापानी अधिकारी गणा के साथ झडप हुई लेकिन फिर भी हम मिलकर काय कर सके क्योकि मूलत हमारे बीच आपसी विश्वास और आस्था विद्यमान थी। किसी को किसी दूसरे के हाथा की कठपुतली बनने की कोई आवश्यक्ता न थी। आवश्यक्ता थी तो बस

अपनी तरफ स दृढ धारणा की और अय पक्ष का भी वसी ही सुविधा प्रदान कर पान की हिम्मत की।

दृष्टिकोण म अतर स्वाभाविक है। परन्तु एक समान लक्ष्यवाल मित्र इस उलझन को निश्चय ही मिटा सकत हैं और यदि कुछ समस्याओं का निपटारा नही भी किया जा सके ता भी मत्री का ता बरकरार रखा ही जा सकता है। दूसर शब्दा म कहू तो यदि आवश्यक हो ता दाना पक्षा म असहमति को सहमति म बदला जा सकता है (जैसाकि मैं मचुको म अपन छात्रा स कहा करता था)। साथ ही यदि कोई व्यक्ति 'अनासक्त कर्म' के विचार म वास्तव म ही विश्वास करता है ता दूसरे पक्ष को भी अपने मत का बना लेना प्राय सम्भव हो जाया करता है।

स्वय अपनी बात कहूँ तो मरा यह विश्वास है कि बचपन ही स मैंन सदा उन सिद्धाता का पालन करने का प्रयास किया है जिन्ह मैं उचित और सही समझता था। बडे स्तर की राजनीति म भी, जो विश्वविद्यालय का स्नातक बनन के बाद मरे जीवन का अग बन गयी थी (या शायद ये कहना ज्यादा सही होगा कि मैं जिसका अग बन गया था) यही आदत मुझम बनी रही है। एस भी कुछ लाग थ जो अज्ञानवश यह समझत थे कि मैं जापानी सना के लाभ क लिए उसक साथ मिला हुआ था। तोक्यो स्थित ब्रिटिश राजदूतावास क कनल फिग्स जस अय लाग एक खतरनाक ब्रिटेन विरोधी उग्रवादी की भाँति मुझे भारत म बदी बनाने क दुष्ट प्रयासा म सलग्न थे। सच ता यह है कि मेर और जापानी अधिकारीगणा के बीच समझौता न कर पान के अनक मुद्दे थ फिर भी भारत के स्वतन्त्रता अभियान की दिशा म मैं उनक साथ अच्छे सम्बन्ध बनाय रख सका था।

रासबिहारी बोस की तरह ही मेरे बारे म भी इस बात का जरा भी सकेत कि किंचित मात्रा म भी मैं भारतीय स्वतन्त्रता सघर्ष के अपने मूल लक्ष्य के माग स हटा, ईश निंदा के समान होगा। बल्कि यह कहना अधिक सही होगा कि मैं भारतीय स्वतन्त्रता के लिए उच्चतम स्तर के बहुत से जापानिया का सहयोग प्राप्त करने म सफल हो सका था। इस अथ म युद्ध के बाद मेरे निकट के मित्रा म स बहुत से मेरे कानो म फुसफुसाया करत थे कि ब्रिटिश-जन के विरुद्ध लडन और अपने जापानी मित्रा को भी ऐसा ही करने के लिए मनवान के अपराध म मुझे प्रथम श्रेणी के युद्ध अपराधी की भाति गिरफ्तार किया जाना चाहिए था। मक आर्थर जाने क्या मुझे नजरदाज कर गये।

22

वैंगकॉक सम्मेलन

तोक्यो सम्मेलन के समापन पर लिए गये निणय के अनुसार, वगकाक सम्मलन की तैयारी का काम भी रासविहारी बोस ने मुझे ही सौंपा। इसका प्रबन्ध भी पहले से अधिक व्यापक और बढ चढकर किया जाना था। सम्मेलन की रूपरेखा को लेकर भी अनेक समस्याएँ सामन थी। महत्वपूण और व्यापक निणय लिये जाने थे इसलिए मैं चाहता था कि काय सूची और कायक्रम आदि जितनी जल्दी बनाये जा सकें उतना ही बेहतर रहेगा। जापान रेडियो के माध्यम से तोक्यो म जो प्रचार अभियान चलाया गया था उसे जारी रखा जाना था और वैंगकाक से अतिरिक्त प्रचार काय किया जाना वाछित था। रासबिहारी बोस और मै सन 1942 के अप्रैल स लेकर जून मास तक इसी तैयारी मे लगातार चौबीसा घण्टे काम करते रहे।

इस बीच युद्ध जापान के पक्ष म जाता प्रतीत हो रहा था। फरवरी 1942 म सिंगापुर द्वारा आत्मसमपण किये जान के बाद माच म रगून भी जापानियो के हाथ म आ गया। उसी महीने मे डच ईस्ट इडीज़ पर विजय हुई। उसके शीघ्र बाद ही बतान और कारेजीडोर की हार हुई। ग्वाडल कनाल का बहुत अधिक दवाव रहा और अतत अगस्त म उस पर भी कब्जा कर लिया गया।

जून के आरम्भ म देशपाडे, ए० एम० साह०, वी० सी० लिंगम राजा शेरमन व अय कुछ लोगो के साथ हम वैंगकाक पहुँचे। उसके शीघ्र बाद ही हमने प्रस्तावित विशाल सम्मलन के लिए तयारी आरम्भ कर दी। सवप्रथम रासविहारी बोस ने एक पत्रकार सम्मेलन के आयोजन का निणय किया जिसम अय लोगो के अलावा दो विशेष महत्व के सवाददाता भी सम्मिलित थे। इनमे से एक थे—एम० शिव राम जो दूसरे विश्व युद्ध मे जापान के शामिल होने तक एसोसिएटेड प्रेस के प्रतिनिधि थे और जो उसके बाद से वैंगकाक टाइम्स के सम्पादक के पद पर आसीन थे। वे थाईलड के नरेश और प्रधानमत्री माशल पिबुल सोग्राम के निकट के मित्र, थाईलड के मेडल फॉर होम डिफेंस (जोकि ब्रिटेन के जाज क्रास के बराबर माना जाता है) के विजेता थे और अति निपुण व सम्मानित पत्रकार थे।

हालाँकि मेरी उनसे प्रथम बार बगकाक म ही भेंट हुई, लेकिन मैंने उनके विषय म पहले सुन रखा था। मैंने रासबिहारी बोस को बताया कि यदि हम उन्हें लीग का काम करने के लिए राजी करा लें तो शिवराम हमारे लिए अमूल्य सिद्ध होंगे। रासबिहारी तुरत मान गये और उन्होंने शिवराम को लीग का प्रवक्ता और प्रचार अधिकारी मनोनीत कर दिया। रासबिहारी बोस के सौम्य व्यक्तित्व और मनवा लेने के आचरण से प्रभावित होकर शिवराम ने और सब काम छोड दिया और प्रचार की जिम्मेवारी सँभालने के लिए तन मन से लीग की सेवा म जुट गये।

बगकॉक म दूसरे प्रसिद्ध भारतीय पत्रकार थे— एस० ए० अय्यर, जो रायटर समाचार एजेंसी के प्रतिनिधि थे और जिन्हें पूर्व एशिया युद्ध के समाचार आदि भेजने के लिए बगकाक मे नियुक्त किया गया था। आरम्भ म शिवराम को उन्हें हमारे स्वतन्त्रता सघर्ष म मिलाने का प्रयास भले ही असफल रहा हो किन्तु अतत अय्यर अनमने भाव से ही सही, हमारे साथ आ मिले। स्वय अय्यर के कथनानुसार, रासबिहारी बोस ने उनसे कहा था कि वे मात्र रायटर ही के सवाददाता न बने रह बल्कि भारत के लिए स्वतन्त्रता अभियान को भी अपनी प्रतिभा का दान दें। वे रासबिहारी बोस के चुबकीय व्यक्तित्व और प्रबल देशभक्ति के प्रभाव से बचे न रह सके। वे हमारे साथ आ तो मिले फिर भी कहना होगा कि वे कुछ-कुछ ढुल मुल ही बने रहे।

सम्मेलन के आरभ से पहले जिन समस्याओं का समाधान वाँछित था, उनकी विविधता और व्यापकता शीघ्र ही स्पष्ट हो गई। पहली बात भिन्न राष्ट्रीय परिषदो से अनेक प्रतिनिधियो को आमन्त्रित किया जाना था और सम्मेलन म भाग लेनेवालो के लिए आवास व अन्य सुविधाओ का प्रबन्ध किया जाना था। एक सवाल यह था कि इस सम्मेलन म जापान की क्या भूमिका रहेगी ? निश्चय ही हम उनकी सहायता लेनी ही थी वर्ना कुछ भी न किया जा सकता था। लेकिन क्या उनके प्रतिनिधि को सम्मेलन के लिए आमन्त्रित किया जाय अथवा उनकी ओर से केवल प्रेक्षक ही पर्याप्त माना जाय और या फिर उन्हें सम्मेलन से अलग रखा जाय ? यदि उन्हें सम्मेलन म शामिल किया जाना था तो निमन्त्रण-पत्र म क्या लिखना होगा ? आम खुली सभाओ म किस सीमा तक गुप्त मामलो पर विचार विमर्श किया जा सकता है ? वास्तव म ठीक ठीक वे कौन सी बातें थी जिनके बारे म विचार विमर्श की प्रत्याशा की जा रही थी ? सम्मेलन के कार्यक्रम का निर्धारण कौन करेगा इत्यादि। सर्वाधिक नाजुक प्रश्न था—सैनिक पक्ष का प्रतिनिधित्व। बहुत सोच विचार के बाद आरम्भ म हमने एक तैयारी कमेटी की स्थापना की जो इन सब सगत मामलो पर विस्तारपूर्वक चर्चा करे।

इस बीच तोक्यो सम्मेलन से लौटने के बाद मोहनसिंह ने अपनी पूर्वनिश्चित योजना के अनुसार ही आजाद हिन्द फौज के लिए लोगो को भरती करने का

काम आरम्भ किया। इस काय मे स्वयसवको की मर्जी के बदले हम पता चला कि वे जबरदस्ती भी कर रहे थे। साथ ही भर्ती होनवाले स्वयसवको की सख्या सबधी सूचनाआ म काफी अस्पष्टता थी।

आरम्भ म, बहुत कम अधिकारी ही उसके साथ मिलना चाहत थे और अन्य सामान्य सनिको की सख्या भी चार हजार स अधिक न थी। मगर बाद म बताया गया कि यह सख्या वढकर कोई बारह हजार हो गयी है। एसा लगता था कि कोई सही सटीक सूची तयार नही की गयी है। मोहनसिंह के स्वेच्छाचारी आचरण की शिकायतें भी सुनन म आ रही थी। वे इस बात पर बल दे रह थे कि स्वय उनके नाम पर स्वामिभक्ति की शपथ ली जाय जोकि किसी भी सेना के लिए पूणतया असामान्य प्रथा के समान थी।

पूव एशिया तथा दक्षिण पूव एशिया के भारतीयो का सम्मेलन, जिसके अध्यक्ष रासविहारी बोस थ, 15 जन, 1942 को, बगकाक म औपचारिक रूप स उद्घाटित किया जाना निश्चित हुआ। उसके पहले दिन एक बहुत ही अशोभनीय और अप्रिय घटना हुई।

सम्मेलन के उद्घाटन से कुछ ही समय पूव, मलाया स आये कुछ वकील प्रतिनिधियो को यह सदेह हुआ कि सिल्पाकोण क्षेत्र का जहाँ यह सम्मेलन किया जानवाला था, नियत्रण करनेवाले जापानी सैनिक अधिकारीगणो न गुप्त रूप से सम्मेलन की कारवाई को सुनने का प्रबन्ध किया था। इसलिए वे चाहते थे कि सम्मलन के लिए निर्धारित स्थान बदल दिया जाय। मरा विचार था कि यह एक बेहद बचकाना रुख था।

इस बात का कोई प्रमाण न था कि ऐसी किसी कारवाई लेने का विचार किया गया था अथवा एसा कोई प्रबन्ध किया गया था। यह तो मात्र एक सन्देह था। दूसरी बात यह कि यदि जापानी सचमुच ही सम्मलन की चर्चाओ को जानना चाहत तो वे 'तार म जोड लगाकर सुनन' के बजाय अन्य अनेकानेक तरीके अपना सकते थे। उदाहरण के लिए, उनके लिए सम्मलन म अपने एजेण्टो को भेजना बहुत ही सरल था और यदि वे यह तरीका अपनाते तो किसी को खबर भी न हो पाती। अलावा इसके सम्मेलन के लिए समस्त सभास्तत्र और अन्य सभी प्रबन्ध उनकी सहायता ही से सम्भव हो सकता था, हमारे पास अन्य कोई वकल्पिक साधन न था। यदि वे चाहते तो सम्मलन की कारवाई म अपनी उपस्थिति का इसरार भी कर सकत थे या फिर सभा पर निषेध भी लागू कर सकते थे। किन्तु उन्होने ऐसा कुछ भी नही किया। सत्य तो यह है कि वे इस बात के लिए उत्सुक व चिंतित थ कि यह समारोह सफलतापूवक सम्पन्न हो और भारतीय समुदाय की एकता सुदढ बने।

लेकिन जब सम्मलन के लिए निर्धारित स्थान बदलने का प्रस्ताव राघवन

द्वारा रासबिहारी के सम्मुख रखा गया तो वे तुरत मान गय। हालांकि वे इसकी वांछनीयता के बिलकुल कायल न थे तो भी उन्होंने निणय किया कि चूकि राघवन को सुरक्षा के सन्दभ म खतरे की आशका है, इसलिए उनकी इच्छा का सम्मान किया जाना चाहिए। उन्होंने मुझसे वकल्पिक प्रबध करन को कहा। एक हद तक यह तमाम प्रकरण हास्यास्पद था। साथ ही इस प्रकार एन मौके पर परिवतन करना कोई आसान बात नही थी। तो भी मैं उसी थियेटर म एक अय उपयुक्त सभा कक्ष का प्रबध कर सका और सम्मलन निर्धारित समय पर आरम्भ हो सका।

राघवन ने कालातर म इस घटना का, जोकि तोक्यो के प्रति उनके पहल के अविश्वास का एक भिन रूप था, स्पष्टीकरण या किया कि रासबिहारी बोस एक सच्चे भारतीय थे जो सम्मलन के विचार विमश की गोपनीयता और परिणामत देश के हितो की सुरक्षा मे हल्के से हल्का जोखिम भी उत्पन न होने देना चाहते थे।

तोक्यो सम्मलन के तुरत बाद ही, तोक्यो स्थित सैनिक मुख्यालय ने सनो होटल के एक भाग मे एक विशेप कार्यालय की स्थापना की जिसका उद्देश्य बगकाक म प्रायोजित आगामी सम्मलन स सम्बद्ध मामला को लेकर भारतीय स्वतत्रता लीग अर्थात् आई० आई० एल० के साथ निकट का सम्पक बनाय रखना था। तमुराकिकन अपनी स्थिति के कारण ही स्वभावत सम्मेलन सबधी मामला के शीघ्र निपटारे के लिए अपर्याप्त था क्योकि वह तोक्यो के अधिकारीगणा स परामश के बाद ही कोई निणय ले सकता था। इस नव कार्यालय के अध्यक्ष थ—कनल हिदियो इवाकुरो जो अति माय अधिकारी थे और वे इससे पूव शाही अगरक्षको के कमाण्डर रह चुके थे। उनके उच्च राजनीतिक सम्बध भी थे और उन्हे व्यापक स्तर का अनुभव प्राप्त था। एस सिद्ध योग्यता सम्पन्न अधिकारी की नियुक्ति इस बात का सकेत थी कि जापान सरकार बगकाक सम्मलन की सफलता को कितना अधिक महत्व दे रही थी। जापान के प्रशासक लोग जानत थे कि इस सम्मेलन के परिणामस्वरूप दक्षिण-पूव एशिया म विद्यमान भारतीय समुदाय के साथ घनिष्ठ सम्बधो की स्थापना का माग प्रशस्त होगा और यह मामला उनके लिए काफी महत्व रखता था।

बगकाक सम्मेलन के लिए जब प्रबधादि लगभग पूरे कर लिये गये तो आई० आई० एल० द्वारा यह निणय लिया गया कि उसका मुख्यालय बगकाक मे स्थानातरित कर दिया जाय। यह एक तकसगत प्रस्ताव था क्याकि बगकाक ही ऐसा सर्वोत्तम केन्द्र था जहा से सम्मेलन मे लिये गये निणयो को कार्यावित करने की कारवाई आसानी से सम्पन की जा सकती थी।

अपनी सरकार के साथ परामश करके कनल इवाकुरो ने भी अपना कार्यालय बगकाक स्थानातरित कर लिया। तमुरा किकन बद कर दिया गया और उसका

स्थान इवाकुरो किकन ने ले लिया । इसके कुछ ही समय बाद कर्नल इवाकुरो द्वारा यह प्रस्ताव रखा गया कि उनके कार्यालय को किसी व्यक्ति विशेष के नाम से नही पुकारा इसका कोई भिन्न नाम रखा जाना चाहिए। उनकी इच्छानुसार इस कार्यालय का नाम बाद म हिकारी किकन रखा गया ।

हिकारी किकन के प्रमुख परामशदाता के पद पर श्री सेन दा को नियुक्त किया गया जो कोई 25 वर्षों तक भारत म मुख्यत कलकत्ता मे पटसन के व्यापार मे सलग्न थे। वे भारत से भली भाँति परिचित थे और हमारे देश के अच्छे मित्र थे। वे वस्तुत बहुत धनी थ कि्तु मितव्ययता का जीवन जीना बेहतर समझते थे।

हिकारी किकन की वास्तविक रूपरेखा की जानकारी सुरक्षा कारणो स आम जनता को नही दी गयी थी। लेकिन भारतीय स्वतन्त्रता लीग के प्रमुख सस्थापको की हैसियत से रासबिहारी बोस और मुझे उस कार्यालय के सभी पहलुओ के विषय म इवाकुरो न स्वय ही विस्तृत जानकारी दे दी थी। वे नही चाहते थे कि हम ऐसा अनुभव करें कि वे हमस कुछ महत्वपूण बात छिपा रहे हैं।

हिकारी किकन में एक विभाग राजनीतिक मामला का था और दूसरा सैनिक मामला का। गुप्तचरी और षड्यत्रो की जवाबी कारवाई व प्रचार विज्ञापन आदि के लिए एक तीसरा विभाग भी था जिसका एक उप-कार्यालय सिंगापुर मे था। प्रशासन काय चौथे विभाग का जिम्मा था। एक ऐसा अलिखित समझौता था जिसके अन्तगत बोचो की भावना के अनुसार आई० आई० एल० की ओर से रासबिहारी बोस के या मेरे और हिकारी किकन की ओर से स्वय कनल इवाकुरो के माध्यम स जापानी अधिकारीगण और भारतीय समुदाय के बीच मैत्री-सबधो को बढावा दिलान के लिए समस्त विस्तृत जानकारी का आदान प्रदान किया जाना था। नीति स सम्बद्ध गुप्त मामला और प्रश्नो पर हम तीनो के बीच विचार विमश किया जाना था। जबानी समझौता खूब अच्छा चला और कोई खीझ या परेशानी नही उठी। इसके विपरीत मलाया से आये हमारे वकील दोस्त जापानियो से लिखित समझौतो या जानकारी आदि की माग करके लगभग हमेशा ही झगडा खडा कर लेने की प्रवृत्ति दर्शाते थे।

भारतीय समुदाय के अनेक जिज्ञासु सदस्य मुझसे कनल इवाकुरो की गति विधियो के बारे म प्रश्न किया करते थे। हालांकि वे हरेक के साथ मिलनसारी का बर्ताव करते थे तो भी वे एक सशक्त व्यक्तित्ववाले सज्जन थ। भारतीय समुदाय ने यह देखा कि वे औपचारिक रूप स केवल मेरे साथ ही राहोरस्म रखते थे। बहुत स व्यक्ति यह जानने को उत्सुक थे कि हम दोनो के बीच कसी बहस अथवा विचार विमश हुआ करता था। मैं निश्चित रूप से हर बार के वार्तालाप की पूण जानकारी रासबिहारी बोस को दिया करता था, किन्तु अ्य लोगो को अपनी बात

चीत की जानकारी भला कस दे सक्ता था। मुये सावधानी बरतनी हाती थी और आमतौर पर मैं उन्ह काफी टालनेवाले उत्तर दिया करता था। मित्रा का एक विशेष समूह तो वहुत अधिक जोर दकर प्रश्नादि करन लगा और मुय बडी परे शानी और कुठाएँ सतान लगी। जब बहुत अधिक जार डाला गया ता बनावटी गभीरता के माथ मैंन उन्ह बताया कि हिकारी किकन एक पट्राल बक है। दर असल आई० आई० एल० की माटर गाडिया के लिए हम वहाँ स पट्रोल लिया करत है, इसलिए मुझ पर झूठ बोलन का आराप भी लगाया जा सकता था। जो भी हो निरन्तर प्रश्नो की बौछार स तो मरी जान छूटी।

योजना के अनुमार 15 जून को सम्मलन का उद्घाटन समारोह हुआ जो बहुत सादा था। रासविहारी बोस न सम्मलन की अध्यक्षता की और अपनी विशिष्ट गरिमा क साथ गतिविधि का सचालन किया। (कृपया परिशिष्ट दो देखें) जनरल तोजो स शुभकामना सदेश प्राप्त हा चुका था। कुल मिलाकर कोई 120 प्रतिनिधि आय थे जिनम स सर्वाधिक सख्या मलाया स आय प्रतिनिधिमडल की थी। इनकी सख्या लगभग पचास थी, जिसम जापानियो के आग आत्म समपण कर चुके भारतीय सैनिक भी शामिल थे। ताक्यो सम्मेलन म जिस प्रकार कायकारी परिपद के लिए प्रस्तावित सदस्यता का स्वीकार कर लिया गया था, उसी प्रकार रासविहारी बोस की आई० आई० एल० की अध्यक्षता को भी स्वीकृति मिल गयी। वर्मा से कोई 10 प्रतिनिधि आय थ और बाकी प्रतिनिधि भिन्न सख्याओ म जापान थाईलण्ड, चीन, मचुका, फिलिपीन और बोर्नियो आदि से आये थे।

पहले दिन की कारवाई मे मलाया के सैनिक समूह का प्रतिनिधित्व करने वाले कप्तान मोहनसिह द्वारा अनुचित रूप से उठाय गय कुछ मसला पर बहस के कारण विघ्न पडा। आरम्भ स ही वे अधिकाश प्रतिनिधियो के लिए काफी चिढ और खीझ का कारण बने हुए थ। उनका रुख बहुत दभी-सा था और आचरण अत्यधिक अवज्ञाकारी था। उन्हान दो प्रस्ताव रखे—

1 आई० एन० ए० यानी आजाद हिंद फौज का गठन जिसके गठन का दायित्व पूणतया उनका होगा और उस पर आई० आइ० एल० का कोई नियत्रण नही होगा।

2 उस फौज मे शामिल हानेवाले सभी अधिकारी और सनिक स्वय उनके आगे स्वामिभक्ति की शपथ लेंगे न कि किसी अन्य पदाधिकारी कमा डर या सस्था के आगे।

इससे गडबडी हुई मची और पूणतया अस्वीकाय उन सलाहो पर प्रतिकूल टिप्पणियाँ हुइ जिनका उद्देश्य केवल यही हा सकता था कि मोहनसिह एक एसे तानाशाह बनना चाहत थे जिन्ह किसी की जवाबदेही न करनी पडे। प्रतिनिधियो

न आम तौर पर इन प्रस्तावों के प्रति अप्रसन्नता दिखाई लेकिन एक व्यक्ति जिसने तुरन्त उठकर उनकी कड़ी आलोचना की, वे थे—पेनाग से आये प्रतिनिधि और कार्यकारी परिषद के सदस्य श्री एन० राघवन। उन्होंने मोहनसिंह के दोनों प्रस्तावों का विरोध किया और कहा कि ये दोनों प्रस्ताव पूर्णतया लोकतंत्र विरोधी है, इसलिए विचार करने के सर्वथा अयोग्य है। आई० एन० ए० पर पूरी तरह का नियंत्रण होना चाहिए और उसके सदस्यों की स्वामिभक्ति का पात्र भी कोई एक अकेला व्यक्ति या कमांडिंग अफसर नहीं, मानो वह उनकी कोई निजी सेना हो बल्कि आई० आई० एल० ही होगी। मोहनसिंह ने इन एतराजों के विरुद्ध काफी अधिक शोर मचाया और गरिमाहीन भाषा का उपयोग किया। एक क्षण तो ऐसा भी आया जब राघवन ने सम्मेलन के अध्यक्ष के सम्मुख घोषणा की कि प्रस्तुत किये गये उन प्रस्तावों के पक्ष में अगर सभा में विचार विमर्श किया जायेगा तो वे उस सभा से बाहर जाने की अनुमति चाहेंगे। रासबिहारी बोस ताड़ गये कि हंगामा खड़ा हो सकता है। अतः उन्होंने सभा स्थगित कर दी और यह घोषणा की कि विचार-विमर्श के पुनरारम्भ का समय बाद में घोषित किया जायगा।

अपनी पुस्तक 'सोल्जर्स कांट्रिब्यूशन टु इण्डियन इंडिपेंडेंस'[1] में मोहनसिंह ने बैंगकाक सम्मेलन से सम्बद्ध अनेक मामलों की चर्चा की है, लेकिन इस घटना का कोई हवाला नहीं दिया है। प्रसंगवश कहना चाहूँगा कि उसी पुस्तक में उनका यह यह कथन कि 'प्रथम दिन साढ़े सात घंटा तक सम्मेलन में आये प्रतिनिधि एकनिष्ठ होकर उनका भाषण सुनते रहे थे", झूठ है। वे मुश्किल से आधा घंटा भी नहीं बोले थे और वह भी ऊपर चर्चित उन दो ऊटपटांग प्रस्तावों को पेश करने के लिए ही। सम्मेलन में भाग लेनेवाले सब व्यक्ति उन पर क्रुद्ध थे।

एक घटना और भी है जिसका मोहनसिंह ने कोई उल्लेख नहीं किया है। सम्मेलन के आरंभ की राघवन की कटु भावना मोहनसिंह की असावधानी के कारण और भी बढ़ गयी थी। मोहनसिंह चाहते तो सीधे राघवन के साथ या मेरे या फिर रासबिहारी के माध्यम से मैत्रीपूर्ण ढंग से मामला सुलझा सकते थे किंतु इसके बजाय उन्होंने हिकारी किकन के सबसे छोटे सम्पर्क अधिकारी ले० कुनिसुका से सम्पर्क स्थापित किया। उस अधिकारी के माध्यम से उन्होंने आजाद हिंद फौज के गठन के अपने के विचार के लिए जापानी सेना की सहायता की मांग की।

कुनिसुका की औपचारिक भूमिका केवल यही थी कि वे जापानी भाषा न जाननेवाले सम्मेलन में आये प्रतिनिधियों और हिकारी किकन के प्रशासनिक

1 एम अतरसिंह नई दिल्ली 1975 पृ 122

विभाग के बीच सभार-तत्र विषयक दैनिक कार्यों क सम्बन्ध म एक कडी का काम करते थ। आई० आई० एल० और हिकारी किकन के बीच विचार विमश का कोई महत्वपूण विषय होता ता उसे या तो मैं या रासविहारी बोस, कनल इवाकुरो तक पहुँचाते थे। कुनिसुका की हिकारी किकन म उपस्थिति का मात्र कारण यही था कि उन्ह थोडी अँग्रेजी आती थी। वे कावे म कानमित्सु नामक ऊन का व्यापार करनेवाली एक विशाल कपनी के कार्यालय म क्लक थ। चूकि उस मूल सनिक प्रशिक्षण प्राप्त था (जो युद्ध पूव के दशक म समस्त जापान म कई स्कूल शिक्षा का अनिवाय अग हुआ करता था) अत उस सना म भरती करके हिकारी किकन म नियुक्त कर दिया गया था।

यह बात विचित्र थी कि मोहनसिंह जसे जनरल का ओहदा प्राप्त एक सनिक अफसर ने एक अति महत्वपूण मामले म हिकारी किकन की सहायता प्राप्त करने के लिए एक लेफ्टिनेन्ट की सवा लेन का निणय किया। इससे बढ़कर गर जिम्मदारी की कल्पना नही की जा सकती थी और यह बात तो और भी विचित्र थी कि कुनिसुका ने मोहनसिंह और राघवन क बीच के झगडे को निपटाने का जिम्मा अपन ऊपर ले लिया। किन्तु कभी-कभी तथ्य कल्पना से कहीं अधिक विचित्र होता है जसाकि कुनिसुका के निणय स सिद्ध होता है। उसन होटल म राघवन के कमरे म जाकर आई० एन० ए० के प्रश्न पर उनके रुख के विरुद्ध उनसे बहस करना आरभ कर दिया।

जिस दिन सम्मेलन म मोहनसिंह और राघवन के बीच झडप हुई उस दिन दोपहर के समय जब मैं राघवन के कमर के पास से गुजर रहा था तो मुझे कुछ तेज और तीखी आवाजें सुनाई दी। मैं राघवन की आवाज को पहचान गया किन्तु दूसरी आवाज नही पहचान सका। मैने कमरे म प्रवेश किया तो देखा कि राघवन और कुनिसुका के बीच बडे जोरा से बहस जारी थी। मुझे बेहद अचरज हुआ और दोना को लक्ष्य करके मैंने पूछा "क्या हो रहा है यह सब ? '

तब राघवन ने मुझे बताया कि मोहनसिंह क प्रस्तावो के विरोध के उत्तर म कुनिसुका शिकायत करने आया है और ऐसी स्थिति मे मैं बगकाक छोडकर पेनाग वापस जाने की तैयारी कर रहा हूँ।

मैं कुनिसुका की ओर मुखातिब होकर बोला, लेफ्टिनेट, यह मामला आपका सिर-दद नही है, इसे मैं देख लूगा। आप कृपया इस कमरे स बाहर चले जायें"।

लेफ्टिनेंट हक्का-बक्का रह गया। मुझे यह देखकर सतोष हुआ कि उसने मेरा आशय ठीक-ठीक समझ लिया था। तनकर खड होकर उसने सैल्यूट किया और कमरे स बाहर चला गया। मै नही जानता कि उस यह ज्ञात होगा कि जापानी सेना के साथ मेरे सबध के एवज म जापानी सैनिक हाई कमान ने मुझे लेफ्टिनेट

जनरल की पदवी से विभूषित करने का निर्णय किया हुआ था। मैंने यह बात कभी किसी से बताई भी नहीं थी। जो भी हो, उसके आचरण से यह स्पष्ट था कि उसने मुझमें कम-से-कम अपने से उच्च रुतबे को पहचाना। उस मौके के लिए इतना पर्याप्त था।

जैसे ही कुनिसुका वहाँ से गया मैंने राघवन के टेलीफोन द्वारा हिकारी किकन में कर्नल इवाकुरो के साथ सम्पर्क स्थापित किया। मैंने उन्हें बताया कि मैं उनसे एक अत्यावश्यक मामले को लेकर विचार विमर्श करना चाहता हूँ। साथ ही मैं श्री सेन दा से भी मिलना चाहूँगा। यदि सम्भव हो तो मैं उनसे खाना खाने जाने से पूर्व मिलना चाहूँगा। (टेलीफोन करते समय दोपहर के भोजन का वक्त था।) इवाकुरो से झट उत्तर मिला, "जी हाँ नायर जी, कृपया जल्दी आइये। हम दोनों आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं"। मैं अविलम्ब उनके कार्यालय में गया और उन्हें बताया कि कुछ ही समय पूर्व राघवन के कमरे में क्या देखा और सुना था। साथ ही सम्मेलन की प्रातःकालीन बैठक में हुई गड़बड़ी के बारे में भी बताया। मैंने इवाकुरो को सूचित किया कि राघवन इतने अप्रसन्न हैं कि पेनांग लौटने की तैयारी कर रहे हैं।

इवाकुरो ने श्री सेन दा के साथ परामर्श किया और तुरन्त ही एक निर्णय लिया। उन्होंने कहा कि "मोहनसिंह और कुनिसुका दोनों का ही आचरण आपत्तिजनक है। कुनिसुका को उसकी वास्तविक जिम्मेदारी की चेतावनी दी जायेगी और वह भविष्य में फिर कभी यह ग़लती नहीं दोहरायेगा। उन्होंने यह भी कहा कि मैं श्री राघवन तक उनकी क्षमा-याचना पहुँचाऊँ और उनसे अनुरोध करूँ कि सम्मेलन की अवधि तक वे यहीं रहें। इवाकुरो ने यह भी कहा कि मैं ये सब बातें रासबिहारी को भी बता दूँ और उनसे स्थगित बैठक पुनः बुलाने का अनुरोध करूँ जिसमें यदि वे चाहें तो एक आदेश के रूप में इस निर्णय की घोषणा की जा सकती है कि जब कभी आई० एन० ए० का गठन किया जाएगा वह पूर्णतया भारतीय स्वतन्त्रता लीग के अन्तर्गत होगी।

इवाकुरो के साथ मेरी वह बैठक उनके इस स्पष्ट और जोरदार वक्तव्य से सम्पन्न हुई कि यदि दो में से एक को दूर हटाने का प्रश्न उठेगा तो मैं चाहूँगा कि मोहनसिंह को वापस भेज दिया जाय। श्री राघवन से यह अनुरोध किया जाना चाहिए कि वे लीग के साथ संलग्न रहें। कृपया यह बात श्री रासबिहारी बोस तक पहुँचा दीजिये। मैं एक बार पुनः उनसे अनुरोध करता हूँ कि वे सम्मेलन को आगे बढ़ायें"।

मैंने मध्याह्न भोजन का विचार ही छोड़ दिया। सीधे रासबिहारी बोस के पास पहुँचकर उनको सारी बातों की जानकारी दी। तब उन्होंने दोपहर को सम्मेलन की बैठक पुनः बुलाने की स्वीकृति दी। होटल के प्रत्येक कमरे में जाकर

विभिन्न प्रतिनिधियो को ये सूचना और आश्वासन देकर कि "सम्मेलन भग नही हो रहा है, बल्कि वह जारी रहेगा", मैंने पुन बैठक का प्रबन्ध किया।

जब मध्याह्न भोजन के बाद सभी प्रतिनिधि मिले तो रासबिहारी बोस न यह कहकर कारवाई का उदघाटन किया कि उन्हे एक महत्वपूर्ण घोषणा करनी है और यह घोषणा वास्तव मे अध्यक्ष की ओर से एक आदेश होगी। यह आदेश आजाद हिंद फौज के गठन के प्रश्न पर सुबह हुई बहस स सम्बद्ध है। फिर उन्होंने कहा मैं अब इस निणय की घोषणा करता हूँ कि जब भी आजाद हिंद फौज का गठन किया जाएगा वह भारतीय स्वतन्त्रता लीग का सनिक अग ही होगी। वह हर सन्दभ मे पूणतया लीग के नियन्त्रण म काय करेगी। आशा है कि इस विषय पर और कोई चर्चा न की जायेगी"।

लेकिन इस विषय पर पुन चर्चा उठ खडी हुई। कप्तान हबीबुरहमान, जो युद्धबदियो के एक प्रतिनिधि तथा मोहनसिंह के समान एक अधिकारी थे, खडे होकर बोले 'अध्यक्ष महोदय, मैं कप्तान मोहनसिंह के प्रस्तावो का समथन करना चाहता हूँ। मेरा विचार है कि श्री ए० एम० नायर, कप्तान मोहनसिंह के लिए व्यथ परेशानी खडी करना चाहते है। जब तक मोहनसिंह के प्रस्ताव स्वीकार नही किये जाते, आजाद हिंद फौज का गठन कर पाना कठिन प्रतीत होता है"।

हालाकि मेरे मित्रो मे से कुछ मुझे बता चुके थे कि कभी-कभी मैं बडा 'कठोर' दिखाई देता हूँ लेकिन किसी ने कभी यह नही कहा कि मैं क्रुद्ध दिखाई देता हूँ। किन्तु मैं इतना स्वीकार करता हूँ कि हबीबुरहमान की बात सुनकर मुझे वाकई आग लग गयी। उन्होने अपनी बात समाप्त भी न की थी कि मैं अपनी कुर्सी से उठ खडा हुआ और जीवन म सिफ एक बार और वह भी अनजाने ही अध्यक्ष महोदय को सबोधित करने की मर्यादा का उल्लघन करके हबीबुरहमान की ओर उँगली उठाई और कहा, 'देखिए कप्तान साहब! आप एक युद्धबदी हैं, जिनकी भारतीय स्वतन्त्रता लीग तथा जापानी अधिकारीगण सहायता करने का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन आप हैं एक युद्धबदी ही, यह मत भूलिये। आपकी स्वामिभक्ति अग्रेजो क प्रति थी। हमने सोचा कि आप एक भारतीय अधिकारी की हैसियत पाना चाहते थे और इसीलिए आपको इस सम्मेलन म भाग लेन की इजाजत दी गयी। आप मेरे प्रति जो परोक्ष सकेत दे रहे है उसका मैं सशक्त विरोध करता हूँ। मैं एक देश भक्त भारतीय हूँ और अब मैं यह सोचने लगा हूँ कि आप कभी भी एक वास्तविक भारतीय स्वतन्त्रता सेनानी नही बन सकते। आप अध्यक्ष महोदय की आज्ञा की अवहेलना नही कर सकते। यदि आप ऐसा ही करना चाहते हैं तो सभा से बाहर चले जाइए। यदि आप उसे स्वीकार करते हैं तो कृपया बैठ जाइये"।

इतना कहकर मैं बैठ गया। फिर हबीबुरहमान भी बैठ गये।

विशेप सयम की भापा म कहा जाये तो सभा कक्ष म उस समय विस्मय की स्थिति व्याप्त थी। उस समय जो तनाव विद्यमान था उसे नपी-तुली भापा मे कह पाना कठिन है। लेकिन हर किसी व्यक्ति के मन म सबसे वढकर यह इच्छा विद्यमान थी कि सभा म विचार-विमश के विपय को तुरन्त ही वदल दिया जाना चाहिए। यह इच्छा पूण हो गयी। हबीवुरहमान और मेरे अपने-अपन स्थान पर वैठ जान के वाद, अध्यक्ष महोदय ने काय-सूची का अगला विपय पेश किया।

सौभाग्यवश, सभा मे उसके वाद कोई गडवडी नही हुई। नौ दिन के विचार-विमश के वाद, जिसम नीति तथा काय-सम्बन्धी अनेकानेक मामलो पर वहस की गयी सभा द्वारा अनक प्रकार के प्रस्ताव पारित किये गये, जिनमे मुख्य निम्नलिखित थ—

1 भारतीय स्वतनता लीग निम्नलिखित सिद्धान्ता स मागदशन प्राप्त करेगी—

(क) एकता, आस्था और वलिदान इसके नारे हागे।

(ख) भारत को एक और अविभाज्य माना जाना चाहिए।

(ग) इस अभियान की समस्त गतिविधियाँ किसी गुट व जाति या धार्मिक दृष्टिकोण स नही वल्कि राष्ट्रीय आधार पर सचालित की जायेगी।

(घ) भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ही एकमात्र ऐसी राजनीतिक सस्था है जो भारत के लोगो के वास्तविक हितो का प्रतिनिधित्व करने का दावा कर सकती है और इसलिए उस ही समस्त अतर्राष्ट्रीय चर्चा या वातचीत म भारत की ओर से वालने का अधिकार प्राप्त सस्था की मान्यता प्राप्त होनी चाहिए।

(ङ) भारत के भावी सविधान की रूपरेखा भारत के लोगों द्वारा तैयार की जाएगी।

(च) भारतीय स्वतत्रता लीग का उद्देश्य है—भारत को पूण स्वतत्रता दिलाना।

(छ) जापान की मैत्री भावना, सहयोग व समथन भारतीय स्वतत्रता लीग की उद्देश्य पूर्ति के लिए अमूल्य सिद्ध होंगे।

(ज) विदेशी सूत्रो से प्राप्त समस्त सहायता सगत सूना की ओर से किसी भी प्रकार के नियत्रण, दमन या हस्तक्षेप से मुक्त होगी।

2 भारतीय स्वतत्रता लीग म, (क) एक काय परिपद, (ख) एक प्रतिनिधि समिति, (ग) क्षेत्रीय शाखाएँ और स्थानीय शाखाएँ होगी।

3 अठारह वप स ऊपर की आयु के सभी भारतीयो को भारतीय स्वतत्रता लीग का सदस्य बनने का अधिकार प्राप्त होगा।

4 प्रतिनिधि समिति मे क्षेत्रीय समितियो द्वारा चुने गये नागरिक प्रति-

निधि होंगे (प्रत्येक क्षेत्र से चुन जानेवाले सदस्यों की एक सूची तयार की गयी)।

5 काय-समिति म भारतीय स्वतत्रता लीग के प्रधान रासबिहारी बोस होंगे और फिलहाल सवश्री एन० राघवन, के० पी० कशव मनन, एस० सी० गाहा और कप्तान मोहनसिंह इसके सदस्य होंगे।

6 प्रतिनिधि समिति की काय-परिषद पर प्रस्तावित नीति तथा काय आदि को पूरा करन का दायित्व होगा और वह उन सब मामला के सबध म भी काम करेगी जो समय समय पर उठ खड हो हैं और जिन्ह निश्चित रूप स प्रस्तावो आदि म शामिल न किया गया हो।

7 भारतीय स्वतत्रता लीग को भारतीय सनिका और भारतीय स्वतत्रता अभियान के लक्ष्य के लिए सनिक सेवा सन्नद्ध नागरिका को लेकर आजाद हिंद फौज का गठन करन का अधिकार सौंपा जाएगा।

8 प्रस्तावित आजाद हिंद फौज के सभी सदस्या की चाहे वे अधिकारी हो या सनिक, स्वामिभक्ति का पात्र लीग ही होगी और उनका उपयोग (क) केवल भारत की स्वतत्रता की प्राप्ति और फिर उसकी रक्षा या एस उद्देश्यो के लिए, जो इस लक्ष्य प्राप्ति म सहायक सिद्ध हो सकते हो, क लिए किया जाएगा (ख) सारा काय परिषद के सीधे नियत्रण म और परिषद के निर्देश के अनुसार एक कमाडिंग अधिकारी की कमान म ही किया जायगा।

9 भारत म ब्रिटिश या अन्य किसी विदशी शक्ति द्वारा किसी सनिक कारवाई की स्थिति म काय-परिषद का भारतीय तथा जापानी सनिक अधिकारियो की स्वीकृति से कमान के अधीन सुलभ सामरिक साधनो के उपयोग की स्वतत्रता होगी।

10 भारत म ब्रिटिश या अन्य किसी विदेशी शक्ति के विरुद्ध कोई सनिक कारवाई करन से पूव काय परिषद यह आश्वासन प्राप्त करेगी कि वह कारवाई भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की उदघोषित इच्छाओ क अनुरूप ही हो।

11 काय परिषद भारत म एक ऐसा वातावरण तयार करेगी जिससे कि वहा की भारतीय सेना और भारतीय जनता के बीच शाति का माग प्रशस्त हो और काय-परिषद द्वारा कोई भी कारवाई किये जाने से पूव, उस यह आश्वासन प्राप्त करना होगा कि भारत म ऐसा वातावरण विद्यमान था।

12 भारत मे और विदेशा म उपस्थित भारतीयो को इस अभियान के अथ और प्रयोजन की सूचना देने और उन्ह कायल करवाने की आवश्यकता और महत्व को देखते हुए प्रसारणो, पर्चो, भाषणो, समाचारपत्रो और अन्य जो भी व्यवहाय साधन हो, उनके माध्यम स सक्रिय प्रचार आदि के फौरन प्रयास किये जाने चाहिए।

13 किसी प्रकार की विदशी सहायता केवल उसी सीमा तक होनो चाहिए जिसकी काय परिपद द्वारा माग की गयी हो ।

14 भारतीय स्वतत्रता अभियान के लिए धन सुलभ कराने के उद्देश्य से काय-परिपद पूव एशिया और दक्षिण-पूव एशिया मे रहने वाले भारतीया म कोप एकत्र कर सकती है ।

15 जापान सरकार स उसवे नियत्रित क्षेत्र के भीतर प्रचार, यात्रा परिवहन और सचार आदि के लिए काय-परिपद द्वारा अनुरोध किया जा सकता है और भारत म राष्ट्रवादी नताओ, कायकर्ताओ ीर सगठना आदि के साथ सपक की समस्त सुविधाओ का भी अनुरोध किया जा सकता है।

16 ब्रिटिश साम्राज्य से भारत की मुक्ति के सवध मे जापान सरकार भारत की क्षेत्रीय एकता का मम्मान करेगी और किसी भी विदेशी प्रभाव या नियत्रण या राजनीतिक, सनिक अथवा आर्थिक हस्तक्षेप स मुक्त भारत की प्रभु-सत्ता को मान्यता दगी।

17 जापान सरकार, अ य शक्तियो पर अपना प्रभाव डालेगी और भारत की राष्ट्रीय स्वतत्रता तथा सम्पूण प्रभुसत्ता को मान्यता देने के लिए प्रेरित करेगी।

18 जापानी सेनाओ द्वारा अधिकृत क्षेत्रा म रहनेवाले भारतीयो को जब तक वे भारतीय स्वतत्रता लीग के लिए अहितकर कोई कारवाइ न करे या जापान के हिता के लिए विरोधी काम न करे शत्रु राष्ट्रिक ही माना जाएगा ।

19 भारत या अ य कही रहनेवाले भारतीया की चल या अचल सम्पत्ति को (जिमम भारतीय कपनिया और साझेदारीवाली कपनियो की सम्पत्ति भी शामिल थी) जब तक कि ऐसी मम्पत्ति के नियत्रण या प्रब ध म जापान म या फिर जापान द्वारा अधिकृत कि ही देशो या जिन देशो पर जापानी सेनाआ का प्रभाव या नियत्रण हो, ऐस स्थानो मे रहनवाले व्यक्ति या व्यक्तियो का निहित स्वाय न हो, जापान द्वारा शत्रु सम्पत्ति नही माना जाएगा।

20 भारतीय स्वतत्रता लीग ने भारत के वतमान राष्ट्रीय ध्वज को अपनाया है और समस्त मित्र शक्तिया स अनुरोध किया जा रहा है कि वे इसे मा यता दे।

21 सम्मेलन के प्रस्तावो आदि या विचार विमश आदि मे से किसी का अनधिकृत प्रचार न किया जाएगा।

(नोट—ऊपर लिखित सूची मे विभिन्न सस्थाआ और सरकारो से प्राप्त सहायता के लिए आभार प्रकटत अथवा कुछ निश्चित छोटे मोट मामला पर जापान की और थाईलण्ड की सरकारो स किये गये छोटे मोटे अनुरोधो आदि को शामिल नही किया गया है। विचार विमश के लिए प्रस्तुत और एकमत से पारित ये प्रस्ताव कही अधिक महत्वपूण है।)

भारतीय स्वतत्रता लीग के अध्यक्ष की हैसियत स रासविहारी द्वारा इन

प्रस्तावा की एक प्रति तास्यो म जापान सरकार तर पहुचान क उद्देश्य म कनल इवाकुरो को दी गई। लगभग एक पखवाडे के भीतर ही कनल इवाकुरो न लिखित औपचारिक रूप स रासविहारी का प्रधानमत्री तोजा द्वारा पूव घोषित, भारत क प्रति जापान की नीति की भावना के अनुसार यह पुष्टि-पत्र दिया कि जापान सरकार बगकाक सम्मेलन के प्रस्तावा का समथन करती है। जसा कि उन प्रस्तावा म से एक म अनुरोध किया गया था सम्मेलन के निणया और सिफ़ारिशा की जान कारी को सरकार द्वारा गुप्त रखा जाना था। इवाकुरो न भारतीय स्वतत्रता लाग के प्रधान स अनुरोध किया कि उनके उत्तर की गोपनीयता का भी सम्मान किया जाना चाहिए। रासविहारी न उन्ह बताया कि इस इच्छा का सम्मान किया जाएगा।

23 जून को सम्मेलन के समापन के अवसर पर सम्मेलन की कारवाइया पर गौर करे तो देखगे कि प्रतिनिधिया म स कुछ के मन म उद्घाटन दिवस म मोहनसिंह की कारगुजारी के परिणाम म हुई अनावश्यक बदमजगी को लेकर कुछ कडवाहट बच रही थी। किन्तु रासविहारी चाहत थ कि इस मामले को भुला देना बेहतर है। उनका और कुछ अन्य लोगो का (जिनम मैं भी शामिल था) यह विचार था कि इस अप्रिय घटना का कोई प्रचार न किया जाए। इसी धारणा के अनु सार हमन उन सब लागो स निजी अनुरोध किये जा भारतीय सना के प्रतिनिधिया के प्रति आलोचक भावना पाल रहे थे। मैंने उन्ह एक चीनी कहावत का स्मरण दिलाया— वडे-बडे झगडा को छोटे छोटे झगडा म, और छाटे छोटे झगडा का शून्य मे बदल देना चाहिए। मरी वास्तविक चिन्ता कवल यही थी कि यदि इस घटना का समाचार फल जाता है तो हर प्रकार की अटकलबाजी लगाई जाएगी। हम अपने निजी मामलो को सावजनिक मामला नही बनाना चाहिए। इतना ही नही ऐसा कुछ नही किया जाना चाहिए जिससे युद्धबदिया के बीच घबराहट या चिन्ता फले और उनके मनोबल को क्षति पहुँचे।

किन्तु रासविहारी और मेरे बीच ये मूक समझौता जसा था कि माहनसिंह को किसी जिम्मेदारीपूण पद पर न रखा जाए। उनकी गतिविधिया पर कडी नजर रखी जाए और कालान्तर मे यदि बाछनीय होगा तो उचित कारवाई का भी सकल्प किया गया था।

23

आजाद हिन्द फौज

भारतीय स्वतन्त्रता लीग के अथक प्रयासा के परिणामस्वरूप जापान सरकार के अधिकारियो के साथ एक उचित सौहाद की स्थापना मे सफलता प्राप्त हो चुकी थी। उस अधिकारी वग द्वारा बार-बार यही कहा जाता था कि उनकी न तो भारत के अहित की कोई मशा और न ही वे भारतीय स्वतन्त्रता लीग का निजी स्वाथ के लिए उपयोग करेंगे।

एम० शिवराम की सहायता और एस० ए० अय्यर के समथन के बल पर हमने बैंगकाक मे समाचारपत्र जगत और रेडियो, दोना के ही माध्यम से एक बढिया प्रचार अभियान चलाया। भारत मे होनेवाली घटनाओ सबधी सूचनादि के लिए लदन तथा नई दिल्ली आदि से 'शाट वेव' पर प्रसारित सामग्री ही मात्र सुलभ साधन थी। भारत म राजनीतिक उथल-पुथल स्पष्टतया सशक्त होती जा रही थी। बगकाक सम्मेलन से पूव ही हमने सुना था कि विन्स्टन चर्चिल द्वारा भारत को भेजे गये सर स्टफड क्रिप्स के मिशन ने गतिरोध को मिटाने का प्रयास किया था, जो असफल हुआ।

अप्रैल 1942 म बर्मा पर अधिकार करने के तुरत बाद जापान ने बगाल की खाडी की ओर बढे और अडमान और निकोबार द्वीपा पर कब्जा कर लिया। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस, निहित खतरे के कारण भारत मे जापान के 'सह समद्धि क्षेत्र' के किसी भी विस्तार के पूणतया विरुद्ध थी।

8 अगस्त 1942 को हमने प्रसिद्ध 'भारत छोडो' प्रस्ताव की गाधीजी की घोषणा सुनी। "सभी भारतीयो को भारत की पावन भूमि से ब्रिटिश शासन को खदेड देने के लिए एकजुट हो जाना चाहिए"। ब्रिटेन ने उत्तर मे गाधीजी व अन्य नेताआ को गिरफ्तार कर लिया। गाधीजी ने उससे पूव कहा था कि 'यदि ब्रिटिश जन, भारत को उसके भाग्य पर छोड देते है, जैसा कि सिंगापुर के सन्दभ म किया गया था, तो अहिंसा के समथक भारत की कोई हानि नही होगी और जापान भी कदाचित भारत को परेशान नही करेगा"। गांधीजी की दृष्टि मे

ब्रिटिश सरकार की उपस्थिति ही भारत मे जापान के आगे बढने का कारण हो सकती थी।

यह बडे दुर्भाग्य की बात थी कि बगकॉक से लौटने के शीघ्र बाद कप्तान मोहनसिंह ने आजाद हिंद फौज के गठन के सम्बन्ध म सम्मेलन द्वारा पारित प्रस्तावो का खडन करना आरम्भ कर दिया। उन्होने काय परिषद से कोई अनुमति लिये बिना पूरे जोश-खरोश के साथ सेना के लिए स्वय सेवको की भरती आरभ कर दी। बहुत से अधिकारियो और सनिको की ओर स अनिच्छा दर्शायी जा रही थी जिन्हे मोहनसिंह की निजी महत्वाकांक्षा के प्रति कुछ सन्देह था। लोगो को भरती करने के लिए वे जो तरीके अपना रहे थे उनका बहुत अधिक विरोध किया जा रहा था।

हमने बगकाक म सुना कि वह सिंगापुर और अन्य स्थानो पर विभिन्न युद्ध बदी शिविरो म जा रहे थे और इच्छुक सनिकों को अनिच्छा दर्शानेवाले सनिकों से अलग कर रहे थे। इतना ही नही, इच्छा दर्शानेवाले सनिको के साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार होता था तथा अनिच्छा दिखानेवाले सनिको को परेशान किया जाता था—उदाहरण के लिए उन्हे केवल उतना ही भोजन मिलता था जिससे वे सदा भुखमरी के शिकार रहे। कहा जाता था कि उनम स कुछ को यातनाएँ भी दी गयी थी। एक रिपोर्ट के अनुसार जिन अफसरो व सैनिको ने उन्हे समर्थन देने से आनाकानी की उन्हे काटेदार तारो की बाडवाले युद्धबदी शिविर मे बदी रखा गया और उन्हे पीटे जाने का आदेश भी दिया गया। एक अन्य रिपोर्ट म कहा गया कि वह और भी कठोर उत्पीडन की विधि अपना रहे थे। हमने सुना कि काजि नामक एक शिविर म, जहाँ स्वय सेवको की संख्या बहुत कम थी उन्होने मशीन गन लगवा दी जिससे कि वहाँ के बदियो के दिलो म आतक बैठ जाए और एक या दो बार गोलाबारी भी की गयी और कुछ लोग हताहत भी हुए। इस प्रकार भारतीय युद्धबदी बेहद डरे हुए थे।

दूसरी ओर मोहनसिंह तथा जापानी अधिकारियो के बीच तनाव बढ रहा था। बैंगकॉक स्थित हिकारी किकन से हमे पता चला कि मोहनसिंह भारतीय और जापानी पक्षो के बीच अच्छे सम्बन्धो के विकास म बाधक बनते जा रहे थे।

यह सुस्पष्ट था कि पनाग और सिंगापुर मे काय परिषद के सदस्य एन० राघवन और के०पी० केशव मेनन मोहनसिंह को नियत्रण म रख पाने मे असमर्थ थे। एक जापानी मेजर की बेहूदा हरकत के कारण ही कप्तान मोहनसिंह को अनुचित रूप से तथाकथित जनरल का रुतबा मिला था जिसके अधीन काम करने की स्थिति मे प्रत्यक्षत खिन्न कर्नल गिलानी कदाचित निजी स्वार्थ परायणता के कारण ही उनका साथ देता रहा।

ये सब बहुत ही परेशान करने वाली बातें थी। बढ़ता हुआ यह तनाव यदि

कभी खुली झडप का रूप ले ता इसम कोई सन्देह न था कि विजेता कौन होगा और विजित कौन। लम्बे विचार विमश के बाद हमन रासबिहारी बोस से यह अनुराध किया कि वे तुरन्त सिंगापुर जायें और स्थिति को सँभाले। वे सहमत हो गये। हिकारी किकन ने अपने मुख्यालय को सिंगापुर स्थानांतरित करने का निणय किया।

रासविहारी बोस को पाक व्यू होटल म ठहराया गया था। तोक्यो निवासी अति योग्य दो युवा भारतीयो को उनकी सहायता के लिए नियुक्त किया गया। उनम स एक डी० एस० देशपाडे वडे विद्वान और अध्यवसायी होने के साथ-साथ जूडो के भी विशेषज्ञ थे। इस कला म उन्ह द्वितीय श्रेणी का दर्जा प्राप्त था जो अति उच्च योग्यता मानी जाती है। आवश्यकता पडने पर वे रासबिहारी बोस की शारीरिक रूप से भी रक्षा कर सकते थे। युवा व्यक्ति वी० सी० लिंगम, मलाया के एक समद्ध चेट्टियार घराने स थे। अँग्रेजी तथा जापानी के अलावा उनका तमिल भाषा का ज्ञान भी निश्चय ही सहायक सिद्ध हो सकता था।

समस्याओ की सही तथा मौके की जानकारी के वाद यह स्पष्ट हो गया कि मोहनसिंह का मनमाना आचरण असह्य हो चला था और यदि उसने भारतीय युद्धबंदियो और जापानियो के साथ अपन सम्बन्धो मे सुधार न किया तो मामला हाथ स निकल सकता था। काय परिषद के अन्य सदस्य एकदम अशक्त प्रतीत होत थे। कनल इवाकुरो, जो एक अच्छे व्यक्ति थे, अत्यधिक निराश थे। मोहनसिंह हिकारी किकन तथा अन्य जापानी अधिकारियो को, जिनके सम्पक मे वह आता था, यह आभास दिलाता था कि सिंगापुर मे, जापानियो की विद्यमानता का कारण मोहनसिंह का उन पर उपकार है। यह सही है कि कोई भी नही चाहता था कि मोहनसिंह जापानियो का पक्ष ले, किन्तु यह वात आम समझदारी और विवेक के समस्त मानको के विरुद्ध थी कि उन्होने उनके साथ सीधी तकरार का माग अपना लिया था। इवाकुरो स्वय उसके साथ व्यवहार करना एकदम असभव मानत थे।

रासविहारी ने मामले को सुलझाने की चेष्टा की और जापानियो के साथ व्यवहार म अपने निजी प्रभाव और साख का उपयोग किया किन्तु एन० राघवन को छोड, काय परिषद के सदस्य उनकी कुछ सहायता नही कर पा रहे थ। फिर जो कुछ भी वे करते उसका परिणाम प्रतिकूल ही प्रतीत होता था।

स्थिति बद से बदतर हो गयी। इवाकुरो और मोहनसिंह के बीच तनाव बढता जा रहा था। बैंगकाक सम्मेलन क निणयो के एकदम प्रतिकूल मोहनसिंह काय परिषद की पूणतया अवहेलना करते जा रहे थे। भारतीय स्वतत्रता लीग की काय परिषद के साथ किसी भी प्रकार विचार विमश किए बगर ही उन्होने बहुत बडी सख्या म भारतीय राष्ट्रीय सेना के सनिको को मलाया से बर्मा ले आने

का प्रब ध किया जिसका उद्देश्य प्रशिक्षण दिया जाना था और य सब अनुमानत जापानियो के आदेश पर किया जा रहा था। भारतीय स्वतत्रता लीग क मुख्यालय को आजाद हिंद फौज के बहुत स अधिकारियो व सनिका पर किय गये अत्याचार और उत्पीडन की अनक खबरें प्राप्त हुइ जिसके लिए मोहनसिंह ही जिम्मदार थे।

राघवन ने 4 दिसम्बर का लिखे गय एक पत्र म रासबिहारी के सम्मुख काय परिषद से त्याग पत्र का उल्लेख किया। जापान सरकार से उनकी एक शिकायत थी कि जापान सरकार काय-परिषद की इच्छा के अनुरूप लिखित आश्वासन नही देती है। उनकी दूसरी मुख्य शिकायत मोहनसिंह के खिलाफ थी जो बगकाक सम्मेलन के निणया के अनुसार काय परिषद से विचार विमश किये बिना ही कायशील है।

यदि एक तानाशाह की सी भूमिका अपनान के बजाय मोहनसिंह अपन काय को एक जिम्मदार और तकसगत रूप स अजाम दत तो कोई परेशानी न उठती। वह भारतीय स्वतत्रता लीग अर्थात आई० आई० एल० क अध्यक्ष रासबिहारी के प्रति अवहलना का व्यवहार करते थे और आई० एन० ए० स सम्बद्ध अति महत्वपूण मामलो पर भी उनके साथ विचार विमश नही करते थ। कनल इवाकुरो के साथ भी उनका बर्ताव बहुत बुरा था। शायद वह इस बात स भी बेखबर थ कि मनमाना आचरण करके उनका अछूता बचना भी सभव नही है। इवाकुरो ने मोहनसिंह को अपन कार्यालय म बुलाया (विडबना देखिये कि एक तथाकथित 'जनरल' मोहनसिंह के पास एक कनल' इवाकुरो की आज्ञा का पालन करन के सिवाय कोई चारा नही था।) और कहा कि जनरल तोजो द्वारा की गई घोषणा को दृष्टि म रखते हुए भारतीय पक्ष द्वारा तोक्यो स लिखित उत्तरा की माँग पर लगातार बल देने की कोई आवश्यकता नही है क्याकि वहाँ सभी बहुत व्यस्त हैं। अतएव जो भी स्पष्टीकरण उन्ह चाहिए, वह आई० आई० एल० के अध्यक्ष रासबिहारी बोस से जिनके अधीन उसे काय करना चाहिए, प्राप्त किया जा सकता है। उन्हाने मोहनसिंह को आश्वासन दिया कि यदि मोहनसिंह अपनी उद्दण्डता का त्याग कर दे तो दोनो पक्षा के लिए मिलकर काम करना अब भी सभव है।

इतनी बात कनल इवाकुरो ने मोहनसिंह से गुप्त रखी कि रासबिहारी को पहले ही अर्थात जुलाई 1942 ही म एक लिखित उत्तर दिया जा चुका था कि बिना किसी शत के जापान सरकार बगकाक मे आई० आई० एल० का समथन करती है। इवाकुरो ने मोहनसिंह को इस बारे म इसलिए नही बताया था कि उनके और रासबिहारी बोस के बीच एक समझौता था कि इस पत्राचार को गुप्त रखा जाएगा। रासबिहारी द्वारा इस बात को प्रकट न किया जाना भी उक्त समझौत के सम्मान का द्योतक ही था। किन्तु रासबिहारी ने

ने समस्त सगत सदस्या को काफ़ी स्पष्ट सकेत द दिया था कि पूव घोपित नीति की सीमा म रहते हुए जापानियो के साथ अच्छे सबध बिना किसी कागजी जडगे बाजी के स्थापित करना सम्भव है। किन्तु खेद के साथ कहना पडता है कि कार्य परिपद के तीन सदस्य (राघवन को छोडकर) यथाथ को पहचानने का कोई सकेत न दे रहे थे।

मोहनसिंह की असावधानियो के कारण वगकॉक मे हम सभी दग रह गये थे। सम्मेलन के स्पष्ट प्रस्ताव के बावजूद कि, आई० एन० ए० के सदस्य, आई० आई० एल० के प्रति ही अपनी स्वामिभक्ति का पालन करेंगे, वह सेना मे भरती होन वाले प्रत्येक सनिक से अपने ही नाम पर स्वामिभक्ति की शपथ दिला रहे थे। वहुत से लोगा का विचार था कि एसा आचरण करन वाले व्यक्ति को तुरन्त जिम्मेदारी के पद से अलग कर दिया जाना चाहिए। वास्तव मे जनेक मुस्लिम सनिको ने एक सिख के नाम पर स्वामिभक्ति की शपथ लेना अस्वीकार किया था और इसके परिणाम मे सनिको व अधिकारियो के बीच काफ़ी मतभेद भी उठ खडा हुआ। यह तो रासविहारी के धय और सहनशक्ति का ही प्रताप था कि मोहनसिंह के अत्यन्त बचकानापन के बावजूद उन्होने उसे सुधरन के यथासभव अवसर दिये।

कदाचित मोहनसिंह जो सदा-सवदा रासबिहारी व जापानियो की निन्दा करने म सलग्न रहत थे जान-बूझकर परपीडक मानसिकता के प्रभाव मैं एक वडा झगडा खडा करने म लग हुए थे। उनकी वहुत सी गतिविधियो का कोई तर्क-सगत कारण ढूढ पाने म हम असफल रहे।

दिसम्वर मास के दूसरे सप्ताह म केशव मेनोन, गिलानी और मोहनसिंह न काय परिपद से इस्तीफा दे दिया। उनकी शिकायत थी कि जापान सरकार आई० एन० ए० की स्वायत्तता की माग के विभिन्न प्रश्नो को लेकर लिखित आश्वासन नही दे रही थी। उन सब मामला पर वस्तुत अति विस्तारपूवक विचार विमश किया जा चुका था और जहा तक जापान सरकार का प्रश्न था, उनका सतोषप्रद समाधान किया जा चुका था। अतिम प्रयास के रूप म रास बिहारी ने मोहनसिंह के साथ निजी रूप से मामला साफ करना चाहा जो, ज्ञात जानकारी के अनुसार, इस सामूहिक त्याग-पत्र को उकसाने वाले प्रमुख व्यक्ति थे। किन्तु मोहनसिंह ने उनसे मिलने से इनकार कर दिया। उन्होने अपना प्रतिनिधि भेजना तक स्वीकार नही किया। यह सब घटना अधिकार व्यवस्था की अवज्ञा का प्रथम श्रेणी का उदाहरण थी।

ऐसी स्थिति म रासबिहारी के सामन मोहनसिंह के विरुद्ध अनुशासनात्मक कारवाई करन के अलावा और कोई चारा नही था। उन्होंने 29 दिसम्वर 1942 को कनल इवाकुरो के स्थान पर एक सभा बुलायी। सभा म भाग लेन

के लिए कनल इवाकुरो की ओर स मोहनसिंह का बुलावा भेजा गया और वह आया भी। रासबिहारी न मोहनसिंह स कहा कि चूंकि वह आई० आई० एल० क हितो के लिए हानिकर और भारतीय स्वतन्त्रता अभियान क लिए भी अनिष्टकर तरीके से आचरण कर रह हैं इसलिए उस लीग तथा आई० एन० ए० की कमान स भी अलग किया जा रहा है। लकिन उसकी देखभाल अच्छी तरह की जाएगी। उसे निवास स्थान दिया जायगा जेल नही भेजा जाएगा। इतना ही नहीं, उस वित्तीय भत्ता निजी सुरक्षा और अन्य सुविधाएँ भी प्रदान की जाएगी। लकिन उसे घर म नजरबद रखा जाएगा। कनल इवाकुरा रासबिहारी क निणय स सहमत थे।

मोहनसिंह को सिंगापुर के निकट एक द्वीप म ल जाया गया और तमाम सुख सुविधाओं के साथ बदी बनाकर रखा गया।

काय परिषद से मोहनसिंह व अन्य लोगो द्वारा त्याग-पत्र दने की घटना स एक या दो दिन पूव ब्रिटिश पक्ष की ओर से गुप्तचरी के आरोप म कनल गिल गिरफ्तार कर लिये गये थे। यह बडे दुख की बात थी। रासबिहारी व मुझ आई० आई० एल० मे गिल की भूमिका से बहुत प्रत्याशा थी। अत हमने उन्ह अन्य युद्ध बदियो से अलग करने का प्रबन्ध कर लिया। उन्ह बगकाक म ही रखने का भी प्रबन्ध कर लिया गया जिससे कि सनिक सपक काय म व सस्था की सवा कर सकें। हमारा विचार था कि ऐसा होने पर वे शाघ्र ही आई० एन० ए० और आई० आई० एल० म नता श्रेणी की एक उच्च पदवी पर आसीन होन की योग्यता प्राप्त कर लेंगे। बगकाक के अपन मुख्यालय से सिंगापुर की यात्रा के अवसर पर बगकाक मे उनके लिए एक बढिया घर और एक युवा व होशियार कप्तान ढिल्लों की सेवाएँ भी सुलभ करायी जा चुकी थी। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया था। दुर्भाग्य ही कहेंगे कि इन दोनो सनिक अधिकारियो ने हमारी आस्था को ठेस पहुँचाई।

हम बताया गया था कि लीग की सहायता के बजाय वे ब्रिटिश अधिकारियो को गुप्त सूचना पहुँचाने के प्रयास किया करते थे। सिंगापुर तथा बगकाक मे हिकारी किकन के साथ एक सुरक्षा सस्था भी कायरत थी। इसके अध्यक्ष थ, कनल सकाई। वे मचूरिया म अपनी गतिविधियो के अतिरिक्त जापान सरकार द्वारा उदघाटित सनिक अकादमी नकानो गक्को के सर्वाधिक मेधावी और दक्ष प्रशिक्षार्थियो मे से एक थे। मचुको मे अपने अनुभव के आधार पर जापान सरकार को यह आवश्यकता अनुभव हुई कि एक ऐसे सनिक कालिज की स्थापना की जानी चाहिए जहाँ से श्रेष्ठ योग्यता प्राप्त सनिक अधिकारी तैयार होकर देश की सना का मान बढा सकें। वहाँ का पाठ्यक्रम अति उच्च स्तर का होना था और उसमे गुप्तचरी के प्रशिक्षण और अन्य विशिष्टताओ पर बल दिया जाना था। श्रेष्ठता का उच्चतम स्तर जिन्हे प्राप्त हो वही इस कालिज मे भरती हो सकते थे।

फिर उच्चतम परिणाम प्राप्त करके सेना कार्यों मे सलग्न हो सकते थे। सकाई, नकानो गक्को नामक सैनिक प्रशिक्षण सस्था से उत्तीण होने वाले प्रथम अधिकारी समूह मे से एक थे।

उनके कार्यालय का प्रमुख काय सनिक पक्ष के लिए महत्वपूण जानकारी के साथ, आई० आई० एल० की सेवा करना था। साथ ही वे भारतीय समुदाय तथा भारतीय युद्धबदियो के बीच होने वाली घटनाओ पर सुरक्षा की दष्टि से अप्रत्यक्ष नजर भी रखते थे। चूकि कनल गिल तथा कप्तान ढिल्लो दोना ही आई० आई० एल० द्वारा चुने गये थे, इसलिए सकाई के कायालय का उन पर बहुत अधिक भरोसा था। वे सामान्यत उनकी गतिविधिया पर नजर तो नही ही रखत थे बल्कि उन्ही के माध्यम से समय समय पर मूल्यवान गुप्त सनिक कागजात आदि भी हमे भेजा करते थे।

एक दिन यह पता चला कि कप्तान ढिल्लो कही ग़ायब हो गया था। [illegible] सकाई के कार्यालय म यह सूचना पहुँची उसने छान-बीन शुरू कर [illegible] तथा ढिल्लो दोनो के प्रति उनके मन मे सन्देह पैदा हो गया। [illegible] कि सकाई के पास काफी हद तक विश्वसनीय सबूत मौजूद थे कि [illegible] अधिकारी ब्रिटिश पक्ष के लिए गुप्तचरी मे सलग्न थे। [illegible] भारत पहुँच चुका था अत उसके बारे म कुछ भी नही किया [illegible] सकाई ने सगीन की नोक पर गिल को रोक लिया। [illegible] अनुसार गिल बहुत भारी मुसीबत म फँस सकता था। [illegible] डाला जाता। लेकिन आई आई० एल० और जापानी [illegible] समझौते के आधार पर यह व्यवस्था की गयी थी कि [illegible] के साथ कठोर बर्ताव न किया जाएगा। इस प्रकार [illegible] नजरबद रखने तक ही सीमित रखा गया।

वह समय रासबिहारी के लिए [illegible] पद से अलग होने और नजरबद हान म [illegible] को आदेश दिया था कि जिस दिन उन [illegible] ए० विघटित हो जाएगा। उन सनिका [illegible] कौन करेगा या उन्हे आदेश आदि [illegible] आई० एन० ए० पूरी तरह स [illegible]

वर्मा म भी गडबडी हुई [illegible] रहे थे, हिकारी किकन [illegible] नेता न था। श्री बालरवर [illegible] कर रही थी। हमन [illegible] कुछ घोषित नताओ की [illegible]

जाने वाले भारतीयो की सम्पत्ति पर कब्जा करने की चेष्टा की। भारतीय पक्ष चाहता था कि सम्पत्ति बालेश्वर प्रसाद तथा देशपाडे के नेतत्व म भारतीय समूह को सौप दी जाये किन्तु किताबे थोडा सिर फिरा व्यक्ति था। उसन यह दलील दी कि यह मामला वहा कब्जा करने वाली जापानी अधिकार व्यवस्था द्वारा निपटाया जाएगा।

हमन यह भी देखा बर्मा कि म सगठन क्रियाक्लाप के अभाव क अलावा बालेश्वर प्रसाद तथा किताब की आपस म भी नही बन रही थी। तनाव कम करन की मान व्यावहारिक दृष्टि से हमने बालेश्वर प्रसाद स कहा कि वह किताब क साथ कोई सम्बन्ध न रखे। देशपाडे द्वारा यह काम सभाल लिये जान के बाद स्थिति कुछ बेहतर हो गयी। वे एक योग्य और समर्पित व्यक्ति थे। दुर्भाग्य की बात है कि युद्ध की समाप्ति के कुछ ही समय पूव नागासाकी के निकट अवा मार नामक जापानी पोत पर अमरीकी आक्रमण के दौरान उनकी मत्यु हो गयी।

बगकाक म अपने प्रवास के दौरान वहाँ पहुचने वाले विभिन्न समाचारो को सुनकर मुझे बहुत दु ख होता था। विशेषकर सिंगापुर म तो सभी कुछ गडबड चल रहा था। मै चाहता था कि वहाँ जाऊँ और देखू कि स्थिति म सुधार लाया जा सकता है कि नही। किन्तु जब तक यह निणय न हो पाता कि आई० आई० एल० के मुख्यालय का सचिवालय को सिंगापुर म स्थानातरित किया जाए मैं वहाँ स नही जा सकता था। मोहनसिंह से सम्बद्ध घटना के बाद रासबिहारी न भी अनुभव किया कि मलाया मे रहकर देखभाल का पूरा काम कर पाने म वे असमथ हो रहे है, विशेषकर इसलिए कि उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा नही रहता था। इसीलिए उन्होने मुख्यालय को सिंगापुर म स्थानातरित करने का निणय किया। सभार सबधी बहुत सी समस्याएँ थी। फिर भी समस्त सबद्ध लोगो के सहयोग स मैं अल्प अवधि म इस स्थानातरण काय म सफल हो गया।

सिंगापुर म हमारा पहला काम था आई० एन० ए० की प्रशासन व्यवस्था का पुनगठन। उस सस्था म सिवाय अव्यवस्था के और कुछ नही था। इतना तो स्पष्ट हो गया था कि हजारो सनिको न जो आई० एन० ए० म शामिल हुए थे, मोहनसिंह और उसके समथको के दबाव के कारण ही ऐसा किया था। मोहनसिंह न दावा किया था कि उस सेना मे लगभग चालीस हजार सनिक थे। हमने पाया कि यह सख्या केवल दस हजार के आस-पास थी। बाकी लोग, पुन युद्धबदी शिविरो म लौट गये थे। हिकारी किकन के साथ हमारे समझौते के अनुसार सभी भारतीय युद्धबदियो को तरजीही बर्ताव मिलता रहा। (ब्रिटिश आस्ट्रेलियाई और न्यूजीलण्ड निवासियो की स्थिति कही अधिक खराब थी) भारी सख्या म इन भारतीय सनिको की देखभाल आदि के लिए आई० आई० एल० द्वारा निर्मित सस्था को मोहनसिंह ने एक ही झटके म तहस-नहस कर दिया था। उस सस्था का पुनर्निमाण

अत्यावश्यक था। एक नये कमान अधिकारी और व्यवस्थापक कर्मचारियों के एक नये दल का गठन किया जाना था। यह आश्वासन प्राप्त करना भी आवश्यक था कि वे सब लोग आई० आई० एल० के अन्तगत काम करने के इच्छक है। दूसरी बात यह है कि सैनिको व अधिकारियो की बडी सख्या द्वारा नये नेताओ को स्वीकार किया जाना था ताकि पुन कठिनाइयाँ न उठ खडी हो। रासबिहारी ने इस विषय पर मेरे साथ दीघ विचार विमश किया। हम चाहते थे कि हम अच्छे सलाहकारो की सहायता प्राप्त हो। किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा कोई भी व्यक्ति वहा नही था।

के० पी० केशव मेनन, जिनका हम सब बहुत आदर करते थे हमारी पर्याप्त सहायता कर सकते थे, किन्तु हम सबका दुर्भाग्य ही था कि वे अभी भी मोहनसिंह के पक्ष मे थे और परिणामस्वरूप स्वय को खतरे मे झाक रहे थे। राघवन ने हमारी सहायता बहुत की। चूकि उन्होने, काय परिषद से इस्तीफा दे दिया था इसलिए हमने उनसे कोई विशेष सलाह नही चाही थी। तो भी हम उनके हृदय परिवतन से बडा प्रोत्साहन मिला और मोहनसिंह के चले जाने के बाद उनमे जागत सहयोग की भावना से भी सतोष हुआ।

आई० एन० ए० के नये नेताओ के लिए दो व्यक्तिया के नाम सोचे जा रहे थे, एक थे कनल भासले और दूसरे कनल जी० क्यू० गिलानी। रासबिहारी, मैं और शिवराम (जो वहाँ का विज्ञापन विभाग सँभालने के लिए मुझसे पहले ही सिंगापुर आ चुके थे) इस बात पर सहमत हुए कि इन दोना म से भासले अपेक्षतया अधिक उपयुक्त रहेगे। उन्हे अधिकाश सनिका व अधिकारीगणा का समथन प्राप्त होगा। एक अधिकारी के रूप म उन्हे प्राप्त उच्च सम्मान प्राप्त होने के अलावा वे कदाचित कमाडरो मे वरिष्ठतम भी थे। आई० एन० ए० के नेतृत्व के लिए ऐसे व्यक्ति का चयन सवश्रेष्ठ बात थी।

हम यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि स्वय गिलानी भी नये नेता के रूप मे भोसले के चयन का समथन करत थे। राघवन का भी यही मत था। सेना के (नागरिक नेताआ के भी) विभिन्न विभागो के साथ अधिक अनौपचारिक विचार-विमश के बाद, भोसले को आई० एन० ए० का नया कमान अधिकारी नियुक्त किया गया। उनकी सहायता के लिए अति योग्य अधिकारिया का एक दल भी था जिसम ए० सी० चटर्जी, ए० जी० लोगनाथन, एम० ज़ेड० कियानी और एहसान कादिर उल्लेखनीय हैं। चटर्जी और लोगनाथन चिकित्सकीय दल के अधिकारी थे। कादिर को विज्ञापन व प्रचार आदि के कार्यों का अनुभव था क्योकि वे साइगोन मे वहाँ वे फ्री इण्डिया रेडियो से प्रसारण किया करते थे। कियानी को एक वीर सेनानी और लोकप्रिय नेता की ख्याति प्राप्त थी।

इस नये दल ने आपस मे तालमेल रखा और अन्य लोगो के साथ भी बढ़िया सबध कायम रखा। आई० एन० ए० के विघटन के बाद जो सैनिक युद्धबदी शिविरो

को लौट गये थ उनम से अनेक पुन इस सस्था म शामिल हो गय। भासल का हिकारी किकन के साथ सबध-व्यवहार बहुत ही अच्छा था। खोई मत्री पुन प्राप्त कर ली गयी।

बहुत स लेखक है जिनमे से एक हैं एस० ए० अय्यर, जिन्होने पाठको को ऐसा आभास दिलाया है कि आई० एन० ए० सुभाष च द्र बोस द्वारा बनायी गयी एक सस्था थी। यह बात भ्रामक है। आई० एन० ए० और आई० आई० एल० के प्रधान और सुदूर पूव तथा दक्षिण पूव एशिया म भारतीय स्वतन्त्रता अभियान के नता की हैसियत से रासबिहारी बोस द्वारा सनिका की यह अनुशासित तथा सुग ठित सस्था सवप्रथम स्थापित की गयी थी। उनक सुयोग्य सहयोगी थे, कनल भोसले और उनके कार्यालय के कमचारीगण। यह सन् 1943 के आरम्भ की बात है। जिस दिन इन नय नायका ने पद सँभाला नगर-कायालय के सम्मुख मदान मे बडा-सा जुलूस निकाला गया और आई० एन० ए० के अधिकारिया व सनिको स एक सलामी रासबिहारी ने ली थी।

रासबिहारी ने उ हे ये आश्वासन देने के लिए प्रोत्साहित किया कि वह सस्था एक समरसतापूण और कायक्षम इकाई की भाति काय करे। हि दुस्तानी भाषा मे बडे गरिमामय ढग से बोलते हुए उ होने भारत की स्वतत्रता के लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा मे पुनगठित आई० एन० ए० की भूमिका के महत्व के बार म विशाल सभा को सबोधित किया। उ होने इस बात को स्पष्ट किया कि आई० एन० ए०, आई० आई० एल० की सैनिक शाखा है जोकि नीति और निर्देश दोनो के स दभ म सर्वोच्च इकाई है। आई० एन० ए० के सनिका का धम है कि आई० आई० एल० को अपनी मातृ सस्था मानकर उसके कायक्रम को निष्ठा स अमल म लायें।

लेकिन रासबिहारी को एक प्रभावकारी सनिक शक्ति के रूप मे आई० एन० ए० के गठन की व्यवहार्यता पर सदेह था। उनकी दलील बिलकुल सीधी सादी थी कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वाछित अस्त्र, गोला-बारूद, खाद्य और सेवा सुविधायें यानी कि सभी कुछ जापानियो से प्राप्त किया जाना था और उस प्रकार की निभरता कोई बहुत सुखकर बात नही है। आई० एन० ए० के सदस्य भारतीय सनिको क बल पर भारत पर सशस्त्र आक्रमण करके भारत को मुक्ति दिलाने के प्रयास सफल होग—उनके मन म ऐसा कोई भ्रम कतई नही था। यदि ऐसी कोई सभावना होती तो ब्रिटेन विरोधी आतकवादी पृष्ठभूमि के कारण वे इस स्थिति का लाभ उठान वाले अग्रणी व्यक्ति होत। किन्तु वे सच्चाई को पहचानते थ। जापानिया से प्राप्त अस्त्रा के बल पर आई० एन० ए० द्वारा भारत को स्वतन्त्रता दिलाना सभव न था।

साथ ही, यह भी आवश्यक था कि सिंगापुर और मलाया के अ य स्थानो म

जिन भारतीय सनिको न आत्मसमपण कर दिया था उनकी देखभाल के लिए एव एसी सस्था की स्थापना की जाय जिसके समस्त कमचारी भारतीय हो। इस प्रकार की व्यवस्था का भारत के गर-सैनिक समुदाय के मनोबल पर भी हित कर प्रभाव पड सकता था। रासबिहारी भारत के भीतर स्वतत्रता अभियानो के लिए मनोबल सबधी समथन के एक महत्वपूण साधन के रूप म आई० आइ० एल० और आइ० एन० ए० की भूमिका की उपयोगिता को पहचानत थे। य बात कि दक्षिण पूव एशिया म बडी सख्या म उनके स्वदशी भाई उनका समथन कर रहे हैं और यथासभव उनकी सहायता के लिए तत्पर हैं देश के भीतर विद्यमान स्वतत्रता सेनानियो क लिए सशक्त प्रेरणा का स्रोत सिद्ध हो सकती थी और इसस उन्ह बहुत बल मिल सकता था।

रासबिहारी की इस नीति के सुपरिणाम निकले। आई० आई० एल० को जापान सरकार की ओर स यह आश्वासन प्राप्त हुआ कि भारतीय सेना क किसी भी कमचारी स अन्य युद्धबदियो के समान कडा शारीरिक श्रम नहीं करवाया जायगा। यह कोई कम महत्वपूण उपलब्धि न थी। आई० एन० ए० के बहुत स सदस्य आई० आई० एल० के काय-कलाप के विभिन्न क्षेत्रो म अनेक प्रकार स सहायता करत थे। उदाहरण के लिए, उनम से कुछ ने शिवराम के अधीन प्रचार विभाग म अनुवादको, उदघोषको और टाइपिस्टो की भांति अमूल्य सेवाएँ अर्पित की। एक अन्य लाभ भी था। इन सबके कारण दक्षिण-पूव एशिया और भारत के भीतर के भारतीयो की नजरो म जिनम ब्रिटिश कमान म सेवारत भारतीय सनिक भी शामिल थ, स्वतत्रता अभियान को एक समान आधार दिलाया जा सका। समस्त दक्षिण-पूव एशिया म भारत के पक्ष म जनमत को जीत पाना आई० आई० एल० की एक महान उपलब्धि थी।

24

भारतीय स्वतन्त्रता लीग का स्थानातरण सिगापुर को

पहले कहा जा चुका है कि रासबिहारी के वगकाक से सिंगापुर स्थानातरित हो जाने के बाद, आई० आई० एल० के मुख्यालय को एक नए स्थान पर स्थापित करने की जिम्मवारी मरे कधा पर आ गयी। शिवराम तथा एस० ए० अय्यर को रासबिहारी के साथ परामश करके प्रचार-काय के लिए विमान द्वारा सिंगापुर भेज दिया गया था।

मुख्यालय के स्थानातरण के साथ अनेक समस्याएँ जुडी थी किन्तु मुझे शेपन का अमूल्य सहयोग प्राप्त था जो केरल से आये एक ओजस्वी युवा ब्राह्मण थ और लीग के कार्यालय मे रासबिहारी के सचिव के रूप मे कायरत थे। यह वडी सुखद स्मृति है कि जब स्वतत्र भारत म क्नल भासले कुछ काल के लिए मन्त्री पद पर आसीन थे तब शेपन ने उनके साथ भी काम किया था। वे हर लिहाज स योग्य व्यक्ति थे।

वैंगकॉक स मनाया की सीमा तक हमने एक यात्री रलगाडी म यात्रा की जिसके साथ लीग की सम्पत्ति यानी मेज-कुर्सियां अय दपतरी उपकरण और दस्तावेज आदि से भरे पांच डिब्बे सलग्न थे। शेपन तथा मुझे उसी रेलगाडी के अफसरा के डिब्बो मे प्रथम श्रेणी की सुविधा दी गयी। वैंगकाक स्टेशन से हमारी रवानगी स पूव हिकारी किकन के एक वरिष्ठ अधिकारी न हमारे साथ यात्रा करने वाले जापानी अधिकारियो को आदश दिया था कि हमारा ध्यान रखे और लीग के सामान वाले माल के डिब्बो की हिफाजत करें।

लीग के सामान मे बहुत वडी धनराशि भी थी। वगकाक की मुद्रा मलाया मे बेकार थी और इसलिए हिकारी किकन ने उस समस्त राशि को सिंगापुर की सनिक विनिमय मुद्रा म परिणत करवाने म हमारी सहायता की। इपो पहुँचने से पूव कही किसी स्थान पर हम अपन माल के डिब्बो के साथ दूसरी माल गाडी मे

सवार होना था क्योकि उसके आगे यात्री गाडियाँ चलायी नही जा रही थी। हम मालगाडी के ही एक डिब्बे म सोना भी पडा था।

जब इपो स्टेशन पर हम अपने दमघोटू डिब्बे से बाहर खुली हवा म साँस लेन के लिए निकले तो मैन देखा कि वहा बहुत से लोग कायरत थे, जिनमे मलयायी, चीनी, भारतीय और लका के लोग थे। उन कारीगरा मे से कोई 80 प्रतिशत भारतीय या लका के प्रतीत हो रह थ। यह एक विचित्र दश्य था। कदाचित एक हवलदार या शायद उसस भी नीचे के ओहदे वाला एक जापानी सनिक उन सभी कमचारियो को प्लेटफाम पर कतार म खडा होने को कह रहा था और कुछ विचित्र प्रकार के आदश दे रहा था। मैंन उन कमचारियो म से एक स, जो केरल निवासी प्रतीत होता था, पूछा कि यह सब क्या हा रहा है? मैन उसस मलयालम भाषा म बात की और उसी भाषा म उसका उत्तर सुनकर मुझे बडा सुखद आश्चय हुआ। मरा अनुमान सही था। मुझे पता चला कि प्लेटफाम पर दैनिक कारवाई के अग के रूप म जापानी चाहते थे कि सभी कतार बाधकर खडे हो, पूव की ओर मुह करे, जापानी अधिकारी के आदेशानुसार जापानी सम्राट के सम्मान म अभिवादन करने के लिए झुके। कोइ भी इस आदश के उल्लघन की जुरत नही कर सकता था क्याकि ऐसा होने पर तुरन्त ही कडी सजा मिल सकती थी जिसम कदाचित सिर कटवाना भी शामिल था।

यह बात एकदम अचभाकारी थी। मुझे तुरन्त ही जापान के युद्ध म शामिल होने के कुछ ही दिन बाद हांगकांग म कनल हारा के साथ अपने अनुभव की याद हा आयी। उन्हाने बडे दभपूवक कहा था कि 'हर काम मुझे सम्राट के नाम पर करना होगा"। हाँ, यह सही है कि उक्त कथन भारतीयो या भारतीय स्वतन्त्रता लीग के विरुद्ध किसी भावना से प्रेरित नही था, किन्तु इससे जापान अधिकृत क्षेत्रा म प्रचलित प्रशासन तत्र की गतिविधिया का आभास अवश्य मिलता था। सम्राट भक्ति, जापानी सैनिको के लिए अवश्य ही अनिवाय थी और वे अपन कतव्य के अग के रूप म इसका पूण निष्ठा स पालन किया करते थ। किन्तु उनम से जो अवर पदा पर आसीन थे, वे अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर के समस्त अन्य राष्ट्रिका को भी एसा करन पर विवश करत थे। यहाँ उनका अधविश्वास प्रकट होता था।

उच्च अधिकारिया की ओर से इस प्रकार के आदेश दिये गय हा या न दिय गये हा, उस काल के जापानी सनिका की मनोवृत्ति एसी ही थी। यह एक बहुत बडी कमजोरी थी कि उनका दिमाग एक ही दिशा म चला करता था। उन्ह इतनी समझ नही थी कि उनकी एसी कारवाई की प्रतिकूल प्रतिक्रिया भी हा सकती है। विशेषकर युद्धकाल म तो यह तथ्य उनकी आम प्रवृत्ति का एक प्रमुख अग था जिसका अतत उनके पतन म काफी बडा योगदान रहा।

जापानियो द्वारा सिंगापुर को पहले ही पोनाण नाम दे दिया गया था। पोनाण शब्द का आशय था सम्राट शावा अथात् हिरोहितो की दक्षिणी राजधानी'। मैंने हिकारी किकन के साथ सम्पक स्थापित किया और लीग के नय कार्यालय की स्थापना का दिशा म काय आरम्भ कर दिया। हमे जो स्थान दिया गया वह बुकित तिमा क्षेत्र म मालकम रोड से थोडा हटकर चासरी लेन मे स्थित था। हिकारी किकन का कार्यालय भी वहा से बहुत दूर नही था। रासविहारी बोस को एक निजी मकान दिया गया था और कुछ अय घर भी थ जहाँ वरिष्ठ अधिकारीगण मिल कर रहत थे। कनल भौसले और उनके निजी कमचारियो को रासविहारी के घर की बगल म एक अलग बगला दिया गया। मेरे साथ शिवराम तथा अय्यर टिके थे और हमारा मकान मुख्यालय के दफ्तर की बगल म था। ये व्यवस्था हमारे काम के लिए बहुत अनुकूल थी क्योकि हम लगभग चौबीसो घटे मुस्तदी बरतनी होती थी। शिवराम विदेशी प्रसारण केन्द्रो स प्रस्तुत समस्त महत्वपूण रेडियो प्रसारणो को सुनते और लीग के रेडियो स्टेशन से प्रसारित किये जाने वाले समाचार बुलेटिनो की सामग्री तयार करते थे।

रेडियो द्वारा प्रचार के अलावा हमने अँग्रेजी, हिन्दी तमिल तथा मलयालम इन चार भाषाओ मे एक समाचार-पत्र निकालने का काम भी आरम्भ किया। ये समाचार-पत्र हमारे ही प्रवध मे छपता था और मलाया भर की विशाल भारतीय जनसख्या म वितरित किया जाता था। हमारे रेडियो प्रसारण जो प्रतिदिन औसतन लगभग छ घटे की अवधि के होते थे अग्रेजी भाषा के अतिरिक्त कोई 15 भारतीय भाषाओ मे हुआ करते थे। वे प्राय रात को देर तक चला करत थे। बहुत ही कम साथियो व कमचारियो की सहायता से शिवराम यह कठिन और महत्व पूण काय किया करते थे। मै कई बार अचभे म आ जाता था कि पतली-दुबली और दुबल-सी काया वाला यह व्यक्ति कस इतना श्रम कर लेता है। वे बहुत ही कृपकाय थे और उस पर शाकाहारी भी। मेरा विचार है कि व अपनी समस्त शक्ति व पोषण बीयर स प्राप्त किया करत थे। जहाँ भी वे जाते वही बहुत लोकप्रिय हो जात थ।

अय्यर भी बहुत अच्छा काम कर रहे थ। लेकिन उनका मिजाज गम था जिसकी वजह स उनके स्टाफ के बहुत से लोग उनस नाराज व दुखी रहते थे। ऐसे अवसर भी आय जब कि मुझ उनके कार्यालय म जाकर बीच-बचाव कराना पडा था। मेरे अमध्य सिरदर्दो म से एक यह भी था। एक तरवाड कारनवन (परिवार का मुखिया) की सी भूमिका थी मेरी जिसे एक परिवार को एकजुट करके रखना होता है।

भारी अभाव के उस काल म लीग क कार्यालय के कमचारियो के लिए आवश्यक खाद्यान्न व अय सामग्री उपलब्ध कराना एक अति गभीर समस्या थी।

चावल, चीनी और यहाँ तक कि शिवराम के लिए बीयर भी पर्याप्त मात्रा मे सुलभ न थी। सौभाग्यवश मेरे कुछ अच्छे जापानी मित्र थे। उनम से एक थे यमाकाता जिला के श्री सुगावारा जो 500 टन भार तक की लकडी की नौकाएँ बनाने के व्यापार मे सलग्न थे जिनका जापान तथा सिंगापुर के बीच माल लान लेजान के लिए उपयोग किया जाता था। वे और उनके साथी बिना किसी शुल्क के ही ये ध्यान रखते कि हमे कोई कमी न हो। हमारे स्थानीय मित्र भी थे जो हमारी बहुत सहायता करते थे। 'तस्करी' करना एक बहुत बुरी बात है। कितु मैं यह अवश्य मानता हूँ कि कभी-कभी हम सुगावारा की नौकाओ के माध्यम से किन्ही अनियमित स्रोतो स माल सामान प्राप्त होता था। मैं जानता था कि यह गलत बात थी, किन्तु मै यह कहकर स्वय को दिलासा दे लिया करता था कि अपने निजी लाभ के लिए नही बल्कि सस्था को चलाते रहने के उद्देश्य स उच्च सिद्धान्तो का छोटा-मोटा उल्लघन परिस्थिति की विवशता की नज़र स क्षम्य था।

कामकाज का हमारा तरीका बहुत सादा था। शिवराम, अय्यर और मैं प्रतिदिन सवेरे रासबिहारी के पास जाया करत, दिन भर के लिए प्रस्तावित प्रचार-कार्य सम्बन्धी सूचना उन्ह देते व उनकी स्वीकृति प्राप्त करत। एक मोटी रूपरेखा स्वीकार करने के बाद ब्यौरेवार काम वे हम तीनो पर छोड दिया करते थे। रासबिहारी को हम तीनो पर पूरा भरोसा था। कायक्रमो का नीति निर्धारण मेरे निर्देश के अनुसार किया जाता था। मोस तार से सन्देश प्राप्त करने व भेजने की क्रिया भी मेरे ही अधीन थी क्योकि हम तीनो म से दोमे न्यूस ऐजेन्सी के साथ मेरे निकटतम सम्बन्ध थे जिसका इन सेवाओ पर नियत्रण था। इस सस्था का सिंगापुर मे एक कार्यालय था जो तोक्यो मे उसक मुख्यालय से सलग्न था। यह एक बहुत महत्वपूर्ण स्रोत था और यदि बेहतर नही तो कम-से-कम एसोसियेटेड प्रेस या यूनाइटड प्रेस समाचार व्यवस्थाओ के समान कायक्षम ता अवश्य था।

रासबिहारी द्वारा आई० एन० ए० के पुनगठन की एक विशेषता यह थी कि उसमे मलाया भर म विभिन्न भागो म फले युवजनो म स बडी सख्या म ग़र सैनिक स्वयसेवक भी आ मिले। उनके मन म मोहनसिंह द्वारा की गयी ज्यादतियो की कटु स्मतियाँ ताज़ी थी जिसन भारतीय युद्धबन्दियो के साथ ऐसा व्यवहार किया था मानो व उसकी निजी सम्पत्ति हो। रासबिहारी का विचार था कि आई० एन० ए० मे मलाया म निवास करनेवाली भारतीय जनसख्या के बहुत बडे भाग को शामिल किया जाना महत्वपूर्ण था। क्वालालम्पुर, इपो, सरावन और सिंगापुर म भी उनके लिए प्रशिक्षण शिविर स्थापित किय गय। उन हृष्ट पुष्ट भारतीयो के लिए जो अन्य कोइ नियमित पेशा तो करते थ किन्तु स्वतन्त्रता अभियान म सहायता देने को उत्सुक थे, अशकालिक सनिक प्रशिक्षण के प्रबध भी किय गय। इसके अलावा, सामरिक व अन्य उच्चतर प्रशिक्षण दिलाने के लिए अफसरो का एक स्कूल भी

चालू किया गया। आम रुचि के विषयो पर प्रशिक्षण देने का काम प्रचार-काय क अश के रूप म मेरे जिम्मे था।

हम समय समय पर और जल्दी-जल्दी इन शिविरा के निरीक्षण के लिए जाया करते। यहाँ यह बताना महत्वपूण है कि ऐसे अनक अवसरा पर हम पेनाग स एन० राघवन के सहयोग का लाभ भी प्राप्त हुआ जो हमारे साथ यात्रा किया करते थे। राघवन स्वेच्छा और ईमानदारी स हमारे साथ मिलते जुलते और काय करते थ जबकि वे लीग की काय परिषद के सदस्य भी नही रहे थ। खेद की बात है कि के० पी० केशव मेनन हमसे दूर रहते थे और यह आभास दिलाते थे कि वे अभी भी मोहनसिंह ही के पक्ष म है जिसने आई० एन० ए० को तबाह करने म कोई कसर नही छोडी थी और परिणाम म भारतीय सनिको के ही नही, अपितु समूचे प्रवासी भारतीयो के हित को खतरे म डाल दिया था। हमम स अनेक मेनन की इस असहयोगपूण प्रवत्ति से दुखी थे। राघवन के प्रारम्भिक असहयोग न बाद म सक्रिय समथन का रुख अपना लिया मगर मेनन का दिल नही बदला।

आई० आइ० एल० के कुछ एसे हिमायती थे जिनका विचार था कि केशव मेनन द्वारा मोहनसिंह को प्राप्त समथन का कारण यह है कि मेनन को काय परिषद की सदस्यता मूलत आई० एन० ए० के सदस्यो के वोटो के कारण उपलब्ध हुई थी। यह बात यदि पूणत गलत नही तो कम-से कम मेनन द्वारा बढा चढाकर तो कही ही गयी थी। व मलाया मे इतने अधिक विख्यात और प्रतिष्ठित थ कि मोहनसिंह होता या न होता उन्हे काय परिषद या अन्य किसी भी जिम्मेदार पद के लिए अवश्य चुन लिया जाता। वास्तव म ऐसा कुछ भी न था जिसके लिए उन्हे मोहन सिंह का आभार मानने की आवश्यकता थी।

लेकिन श्री एलप्पा से मुख्यालय को बहुत सहायता प्राप्त हुई, वे आई० आइ० एल० की सिंगापुर शाखा के अध्यक्ष थे। एक दिन उनके सम्मुख एक विचित्र समस्या आयी। मैं किसी काम से उनके कायालय म गया हुआ था। वहाँ मैंने उन्हे बडी उलझन और परेशानी की हालत म पाया। वे किसी भी काम म ध्यान लगा पाने म असमथ थे और उनकी दशा विचित्र-सी हो गयी थी। मने उनसे कारण पूछा तो उन्होने बताया कि स्थानीय सनिक टुकडी के कुछ लोग उनके पास आये थे और यह माँग की थी कि कोई तीन हजार भारतीयो को एकत्र कर पोनाण जिजा यानी सिंगापुर के बाह्यांचल मे जापानी सेना द्वारा निर्मित एक जापानी शितो मदिर म पूजा करने के लिए भेजा जाए। उन्हे अगली प्रात चार बजे तक मदिर पहुँच जाना था। अन्य अनेक समुदायो को भी एसे ही निर्देश प्राप्त हुए थे। चीनियो को अन्य किसी भी समुदाय की तुलना म कही अधिक बडा समूह भेजना था।

म स्तभित रह गया और मने यल्लप्पा से कहा कि चाहे कोई भी क्यो न हो किन्ही जापानी सनिक अधिकारियो के आदेश पर कुछ भी नही करना है। मुझे

वह दृश्य स्मरण हो आया जो बैंगकाक से सिंगापुर जाते हुए मार्ग में इपो नामक स्थान पर मैंने देखा था। स्पष्ट था कि येल्लप्पा को इस बात का पूर्ण ज्ञान न था कि जापानी सेना किस प्रकार कार्य सचालन करती थी किन्तु मुझे इसका थोडा ज्ञान हो चुका था। मैं आसानी से ही भाँप गया था कि इस प्रकार बडे बडे समूहो को भेजे जाने की बात अवश्य ही किसी अवर जापानी अधिकारी के दिमाग की सनक होगी जो अपनी हेकडी दिखाना चाहता होगा।

येल्लप्पा को बहुत अचरज हुआ। उन्हे दिये गये आदेश के 'वीटो' की बात मुझसे सुनकर वे कुछ चिंतित भी हुए। उन्हे ये भय हुआ कि यदि निर्देशो का पालन न किया गया तो न केवल उनकी बल्कि भारतीय समुदाय की जान मुश्किल मे पड सकती है। जापानी सेना द्वारा उनकी गर्दन भी काटी जा सकती है। यह सुनकर मै मन-ही मन हँसा और अपने मित्र येल्लप्पा से बोला कि वे चिंता न करे। यदि कोई सैनिक या अन्य कोई भी व्यक्ति गर्दन काटने के लिए आया भी तो पहले उसे मेरी गर्दन काटनी होगी। उनके चेहरे पर हालाकि अभी भी चिंता की रेखाएँ थी, तो भी लगा कि मेरे इस कथन से उन्हे कुछ सात्वना मिली है। मै अपनी बात पर अडा रहा और इस बात पर बल देता रहा कि किसी ऐरे गैरे सेनाधिकारी के कहने मात्र से भारतीय समाज का कोई भी सदस्य वहाँ नही भेजा जाएगा। मैंने उन्हें बताया कि वह भारतीय मदिर नही और इसलिए कोई भी जिम्मेदार जापानी ऐसा आदेश नही दे सकता था। यह सब हगामा किसी महत्वहीन अवर अधिकारी की ही करामात होगी। इसलिए उसे नजरअदाज कर दिया जाना चाहिए।

कोई भारतीय वहा नही गया। यह समाचार फैल गया कि मैने येल्लप्पा को आदेश के उल्लघन की सलाह दी थी। वस्तुत वह किसी अवर अधिकारी की अनधिकार चेष्टा ही थी। इस मामले को भुला दिया गया। येल्लप्पा ने यह कहना शुरू किया था कि मै एक 'रहस्यमय व्यक्ति हूँ। 'रोड टु डेल्ही' नामक अपनी पुस्तक मे भी एम० शिवराम ने मुझे रहस्यमय व्यक्ति' कहा है। इस वाक्याश के सृजक वास्तव मे येल्लप्पा ही थे।

हाँ, शिवराम को कालान्तर मे ज्ञात हुआ कि मेरे साथ न कोई रहस्य है और न जादू। तथ्य तो यह था कि उच्च स्तर के जापानी अधिकारियो को मेरी सदाशयता मे पूर्ण विश्वास था। स्वय भी देशभक्त होने के नाते जब भी वे अन्य किसी व्यक्ति मे ऐसी भावना देखते तो उसे तुरन्त ही पहचान लेते थे। उनके साथ की मित्रता के लिए मुझे कोई चापलूसी नही करनी होती थी। दो व्यक्तियो के बीच ईमानदारीपूर्ण मतभेद हो सकता है। फिर भी, यदि उन दोनो के बीच आपसी सम्मान और वास्तविक सदभाव हो तो वे एक-दूसरे के मित्र बने रह सकते हैं। इसी आधार पर सैनिक तथा असैनिक जापानियो के साथ मैंने अपना सबध क़ायम

रखा था। मेरा विश्वास था कि यही सही व उचित आधार बन सकता है। जापानी पक्ष भी सदा इसी रूप का कायल रहा।

पूर्व गठित आई० एन० ए० के लिए रासबिहारी के बड़े-बड़े योगदानों में से एक यह भी था कि विभिन्नता के बावजूद उन्होंने जवानों के मन में एक मूलभूत एकता की भावना बैठा दी थी। आई० एन० ए० में आए ये विभिन्न प्रान्तों, विभिन्न धर्मों, रीति रिवाजों, आचार विचारों के लोग थे। इस पचमेल समूह में रासबिहारी यह चेतना जगाने में सफल हुए कि समस्त अन्तरों के बावजूद वे सब एक ही देश के हैं और न केवल उनकी जिम्मेदारी एक समान थी बल्कि उनमें ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष करने की एक समान योग्यता भी थी। उदाहरण के लिए, 'वीर-जाति' या 'गैर वीर जाति' जैसी कोई बात न था। ये सब ब्रिटिश लोगों द्वारा जान-बूझकर गढ़ी गयी कल्पित बातें थीं जिनसे कि उनके साम्राज्य वादी उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। बराबर का अवसर दिए जाने पर कोई भी भारतीय लड़ने का अन्य किसी योग्यता के सन्दर्भ में बराबर योग्य सिद्ध हो सकता था। उत्तर दक्षिण या पूर्व व पश्चिम का भेद प्रश्न ही नहीं था। इस प्रकार के रासबिहारी के उपदेशों का न केवल आई० एन० ए० के सदस्यों पर बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया तथा मलाया के आम भारतीय समुदाय पर भी बड़ा हितकर प्रभाव पड़ा। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि यहाँ के बहुसंख्यक भारतीय दक्षिण भारत से आए थे।

25

सुभाषचन्द्र बोस का आगमन

सुभाषचन्द्र बोस के आरम्भिक जीवन काल मे इग्लैण्ड मे अध्ययन, फिर प्रतिष्ठित 'भारतीय नागरिक सवा' का उनके द्वारा इसलिए त्याग कि उपनिवेशवादी ब्रिटन के चगुल से भारत को स्वतन्त्र करवाने के लिए सघप कर सके आदि उनकी जीवनी सम्बन्धी पहले ही लिखित बहुत सी सामग्री म और वृद्धि करना मेरा उद्देश्य नही है। यह सवविदित है कि वे एक महान देश प्रेमी थे और राजनीतिक विचार-धारा मे गभीर मतभेद उत्पन्न हो जाने स पूव अनेक वर्षों तक गाधीजी जवाहर-लाल नेहरू और भारतीय स्वतन्त्रता अभियान के अन्य बहुत से नेताओ के साथ उन्होने काम किया था।

भारत से उनका वेष बदलकर नाटकीय ढग से अन्यत्र चले जाना एक ऐतिहासिक बात बन चुकी है। उस दुस्साहस का विस्तृत विवरण प्रकाशित भी हो चुका है। ब्रिटिश भारतीय पुलिस की आखो म धूल झोक्कर 'जियाउद्दीन' नाम से पहले व कलकत्ता से अफगानिस्तान गये। बाद मे एक झूठा इतालवी कूटनीतिक पार-पत्र लेकर, सिग्नार आर्लाडो मजाता नाम से मास्को व समरकन्द होते हुए बर्लिन पहुँचे।

यहाँ मेरे विषय की परिधि समिति है। दक्षिण पूव एशिया म द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान रासबिहारी ने जो भारतीय स्वतत्रता अभियान सचालित किया था जिसमे मैंने भी सक्रिय योगदान दिया था उसका नेतत्व रासबिहारी ने अपनी गम्भीर अस्वस्थता के कारण सुभाष को सौप दिया गया था, उसम सुभाष की भूमिका ही मेरा प्रतिपाद्य विषय है।

भारतीय नेशनल काग्रेस के साथ सम्बन्ध विच्छेद करने के बाद सुभाष ने फारवड ब्लाक नाम से अपनी एक वामपथी राजनीतिक पार्टी बनायी थी जिसे काग्रेस के मुकाबले म अधिक समथन प्राप्त न हुआ और कालान्तर मे वे स्वय लगभग 'राजनीतिक अलगाव' के शिकार बन गये। उनके जसे शक्तिशाली व्यक्तित्व का यह चिंतन कि भारत की स्वतत्रता प्राप्ति के क्रान्तिकारी प्रयास के

लिए उन्हें विदेश म स्थानान्तरित हो जाना चाहिए—स्वाभाविक ही था। कुछ लेखकों न उनकी तुलना सन-यात-सेन डी-वलेरा, गरीबाल्डी और मसारिक से की है। स्पष्टतया मुझे यह स्वीकारना होगा कि उन व्यक्तियों से सुभाष का सादृश्य विशेष सगत नही है। भारत के सन्दभ म स्थिति बहुत भिन्न थी।

सुभाष नि सदेह एक महान देश-प्रेमी थ और सर्वाधिक समर्पित स्वतन्त्रता सेनानियो म स एक थे लेकिन कोई भी व्यक्ति जो गाधीजी या नहरू, वल्लभभाई पटेल या फिर उन दिनों के काग्रस के अन्य अनुयायियों के नेतृत्व को चुनौती देता हो वास्तव म स्वतन्त्रता अभियान के सन्दभ म समथन हासिल नही कर सकता था। आम भारतीय जनता के लिए स्वतन्त्रता सघष का ही दूसरा नाम था काग्रस।

जो भी हो सुभाष एक वष स अधिक समय तक बर्लिन म रह और खद की बात है कि उस काल म वहाँ कुछ भी उल्लेखनीय उपलब्धि प्राप्त नही कर सके। उन्होंने जमन और इतालवियो द्वारा युद्धबन्दी बनाये गये भारतीय सनिको म स एक सेना गठित करन का प्रयास किया किन्तु असफल रहे। हिटलर की लगभग सारी प्राथमिकताएँ यूरोप के सदभ म थी। उसकी भारत म कोई रुचि नही थी। सुभाष जो बहुत बडी बडी आशाएँ लेकर जमनी गय थ, बहुत निराश हुए। कहा जाता है कि हिटलर के साथ केवल भेंट करन के लिए ही उन्हें लम्बी प्रतीक्षा करनी पडी थी। इसलिए जमन अधिकारीगणो के साथ उनके अधिकाश सपक अपेक्षतया निचले स्तर पर ही स्थापित थे। उन्होंने पाया कि बर्लिन से एक अल्प अवधि क रेडियो प्रसारण के अलावा जमनी म उनके प्रवास स और कोई लाभकर उद्देश्यपूण नही हो सका।

दक्षिण पूव एशिया म, भारतीय स्वतन्त्रता अभियान का नेतृत्व करन के लिए सुभाष के जापान आगमन से पूव की परिस्थितियो को लेकर विभिन्न कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। मेरी नजर म वे कहानियाँ या तो पूणतया झूठी हैं या फिर आधी झूठी। उनम कुछ तो वास्तविक जानकारी के अभाव म लिखी गयी होंगी। किन्तु कुछ अन्य ऐसी है जो जान बूझकर विकृत रूप म प्रस्तुत की गयी हैं।

मोहनसिंह न कहा है कि जापानियो के साथ अपने प्रथम औपचारिक विचार विमश के दौरान उसने यह अनुरोध किया था कि सुभाष को सुदूर-पूव ले आया जाय।[1] यह एक पूणत एकतरफा वक्तव्य है। उसने यह नही कहा कि उसने किसके साथ बातचीत की थी। जहाँ तक मेरी जानकारी है मोहनसिंह और जापानियो के बीच कभी भी कोई औपचारिक विचार विमश नही हुआ था। जापानी सपक समूह न सदा इस बात पर बल दिया कि भारतीय मामलो क सबध मे कोई भी औपचारिक विचार विमश केवल भारतीय स्वतन्त्रता लीग के प्रधान रास

---

1 सोल्जस कन्ट्रीब्यूशन ट इण्डियन इण्डिपेन्डन्स'—ओप सिट प 228

बिहारी बोस या फिर उसके प्रमुख सपर्क अधिकारी के साथ ही, जो कि मैं था, किया जाना चाहिए किसी अन्य व्यक्ति के साथ नही। यदि मोहनसिंह ने चर्चित प्रश्न पर फुजिवारा के साथ विचार विमर्श किया हो तो उसे किसी भी हालत मे औपचारिक नही माना जा सकता और फिर फुजिवारा ने भी जापान सरकार को इस बारे म कोई सदेश नही दिया था क्योकि उसे इन मामलो मे दखल देने का अधिकार नही था। अत वह ऐसा करने का साहस भी नही कर सकता था।

खैर, जो भी हो, मोहनसिंह ने पूर्वचर्चित अपनी पुस्तक मे अनजाने ही स्वय अपनी प्रकृति के विषय म एक रोचक पक्ष प्रस्तुत किया है। यह पढकर आश्चर्य होता है कि दिसम्बर 1943 (?) म जब वह नजरबद था, एक बार सुभाष से मिला था, तो इस प्रश्न के उत्तर म कि 'क्या मोहनसिंह, भारत मे सुभाष को अपना नेता स्वीकार करेगा ? मोहनसिंह ने कहा कि उस स्थिति म वह ऐसा नही करेगा।'[1] भारत मे उसके नेता थे जवाहरलाल नेहरू, जिनकी रचनाएँ 'गिलम्प्सस ऑफ हिस्टरी' और 'आटोबायग्राफी' आदि वह पढ चुका था। इन सब का स्पष्ट अर्थ यही रहा होगा कि जब कि मोहनसिंह सुभाष को (कदाचित, जापानियो के कब्जे के काल म) सुदूर-पूर्व म, अपना नेता स्वीकार करता, किन्तु भारत पहुँचते ही वह अपनी स्वामिभक्ति बदल लेता, सुभाष का साथ छोडकर नेहरू के साथ जा मिलता। धोखा देने की जानी-बूझी क्रिया की कितनी स्पष्ट स्वीकारोक्ति है यह। अवसरवादिता कदाचित कुछ लोगो के चरित्र का ही अग होती है। इस आश्चर्य की बात नही कहा जा सकता कि जिस मोहनसिंह सुभाष के साथ अपनी भेंट होने का दावा करता है, वही, शायद उसकी उनके साथ अन्तिम भेट भी रही होगी। मलयालम भाषा की एक कहावत है—

'पालम कटक्कुपोल नारायणा,
पालम कटन्नाल पिन्न कूरायणा।'

इस कहावत म एक खतरनाक पुल पार करने वाले एक व्यक्ति का जिक्र है। पुल पार करते समय तो वह बडा धार्मिक भक्त हो जाता है, और 'नारायण नारायण' जपता है, किन्तु जैसे ही सही सलामत पुल के पार पहुँचता है वह पूर्णतया भिन्न प्रकार का व्यक्ति बनकर नारायण का परिहास भी करता है कि 'अब तुम भाड मे जाओ।

सत्य तो यह है कि सुभाष को एक वैकल्पिक नेता स्वीकार करने की सलाह मैंने जनवरी, 1942 म ही दी थी। यह परामर्श मैंने जापान के द्वितीय विश्व युद्ध म प्रवेश के तुरन्त बाद दिसम्बर 1941 म सिंगापुर से बधाई पहुचने पर जनरल तोजो के सम्मुख प्रस्तुत किए जाने के लिए जापान सरकार के युद्ध-मत्रालय

1 मोहनसिंह कन्स्टीटयूशन टु इण्डियन इण्डिपे डन्स—सोल्जर मिठ प 264

को भेजे जाने वाले अपने एक संदेश में दिया था।

मेरे प्रस्ताव का सारांश यह था कि रासबिहारी को तुरन्त ही जापान तथा दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय स्वतंत्रता अभियान पर सर्वोच्च नियंत्रण कर लेना चाहिए, किन्तु युद्ध काल में स्वाभाविक रूप से ही यह बात बुद्धिमानापूर्ण ही होती है कि किसी भी आकस्मिकता को ध्यान में रखते हुए एक विकल्पी नेतृत्व का प्रबन्ध किया ही जाए। तत्कालीन स्थिति में ऐसे व्यक्ति का ही चयन किया जा सकता था जो पहले ही भारत से बाहर हो क्योंकि प्रत्यक्षतः गांधीजी या जवाहरलाल नेहरू जैसी राष्ट्रीय हस्तियों के लिए देश से बाहर आना असंभव था। सुभाषचन्द्र बोस, जो जर्मनी में मौजूद थे, असल में मात्र ऐसे व्यक्ति थे जो आकस्मिकता के संदर्भ में नम्बर दो का स्थान ग्रहण कर सकते थे।

ज्यों ही मैं शंघाई से तोक्यो पहुँचा और रासबिहारी से मिला उन्हें जो कुछ मैंने किया था, उसकी सूचना दी। उन्होंने पूर्ण सहमति दर्शाई।

जापान सरकार ने यह सलाह बर्लिन में अपने सैनिक सहचारी को पहुंचा दी और उन्हें आदेश दिया कि सुभाषचन्द्र बोस के साथ सम्पर्क बनाये रखें। किसी भी निश्चित कारवाई के लिए वे तोक्यो से आनेवाले अगले आदेश की प्रतीक्षा करें। मुझे तथा रासबिहारी बोस को यह ज्ञात था कि जापानी सैनिक सहचारी (कर्नल यामातोतो) इसी आदेश के अनुसार सुभाषचन्द्र बोस के साथ सम्पर्क बनाये हुए थे किन्तु उसके आगे और कोई कारवाई नहीं की गयी थी। वास्तव में, यही वाकया, इस विचार का सृजक था कि भविष्य में कभी भी सुभाष से पूर्व एशिया में भारतीय स्वतंत्रता अभियान का नेतृत्व सँभालने के लिए कहा जा सकता था। इस विषय में कही गयी अन्य कोई भी बात असत्य मानकर उसकी अवहेलना की जानी चाहिए।

सन 1943 के आरम्भ में रासबिहारी बोस का स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा था। काम के बेहद तनाव के कारण उनकी हालत बहुत बिगड़ गयी थी। वे बहुत अरसे से मधुमेह से पीड़ित थे। कार्याधिक्य व परेशानी के कारण बीमारी बिगड़ गयी। दुर्भाग्यवश उन्हें फेफड़े की तपेदिक भी हो गयी। सन 1943 के आरम्भ में वे बहुत रुग्ण हो गये थे।

कुछ काल तक रासबिहारी को यह ज्ञात न था कि उन्हें तपेदिक रोग हो गया था। हिकारी किकन के साथ संलग्न जापानी सैनिक चिकित्सकीय दल के एक युवा चिकित्सक डा० अबोकि ने उनकी जाँच के बाद बताया था कि उन्हें ऐसी भयानक बीमारी थी। यह बड़ी भयानक स्थिति थी। रासबिहारी ने डाक्टरी निदान का समाचार पाते ही मुझसे अपनी परेशानी की चर्चा की। सुभाष को पूर्व एशिया लाने के लिए कुछ सकारात्मक यत्न अति आवश्यक हो गया।

अपने प्रिय नेता की गम्भीर हालत का समाचार पाकर मैं बहुत चिंतित हो

उठा। किन्तु सच्चाई का सामना करना ही था। मैने तुरन्त हिकारी किकन से अनुरोध किया कि तोक्यो म जापानी सैनिक हाई कमान तक यह सदेश पहुँचादे कि जमन पक्ष के साथ सलाह करके सुभाष को शीघ्र जापान और वहा से सिंगापुर लाये जान का तरीका खोजा जाए।

स्थिति की गम्भीरता को पहचानत हुए हिकारी किकन ने तुरन्त एक सदेश तोक्यो भेजा। जापान सरकार तथा हिटलर के प्रशासन तत्र के बीच तुरन्त ही विचार-विमर्श हुआ। वर्लिन म जापानी राजदूत (जनरल ओशिमा) और जमन विशेषज्ञ के बीच दो-तीन महीने तक सयुक्त मत्रणा हुई और उसी के अनुरूप सुभाष को जापान पहुँचाने की विधि आदि का निर्धारण किया गया। यह निणय किया गया कि जमनी की नौसना हिन्दमहासागर म एक निर्धारित स्थल तक के लिए एक पनडुब्बी सुलभ कराएगी और वहा से सुभाष को ले जाने की जिम्मेदारी जापानी अधिकारियो की होगी।

यह एक ऐतिहासिक यात्रा थी। जमन और जापानी नौसेनाओ के बीच सहयोग का एक शानदार नमूना। यह यात्रा वेहद खतरनाक भी थी और इसस सुभाष के शारीरिक साहस का भी स्पष्ट प्रमाण मिलता है। उनके साथ दो भारतीय साथी भी यात्रा कर रहे थे, वे थे—आबिद हसन और स्वामी। जमन यू-बोट (पनडुब्बी) इग्लिश चनल और वे ऑफ बिस्के' से होकर आयी और अटलाटिक सागर मे पश्चिम अफ्रीका के तट से होकर दक्षिण अफ्रीका के जल-प्रागण से गुजरती हुई हिन्द महासागर म प्रविष्ट हुई, जहाँ मडगास्कर टापू के दक्षिण म एक स्थल पर वह यात्रा समाप्त हुई। वहाँ भारी जोखिम उठाकर सुभाष को एक जापानी पनडुब्बी पर सवार कराया गया जो उन्ह सुमात्रा ले गयी जहाँ वे 1 मई 1943 को उतरे। 16 मई को उन्हे विमान द्वारा तोक्यो लाया गया।

तोक्यो म कुछ समय रहने के बाद और जनरल तोजो से शिष्टाचार-भेंट के बाद सुभाष 2 जुलाई, 1943 को सिंगापुर पहुँच गये। उनके आने की घटना का समस्त दक्षिण-पूव एशिया और विशेषकर मलाया के भारतीया द्वारा भारी स्वागत किया गया क्याकि यह एक निर्विवाद तथ्य था कि हालाँकि एक उग्रवादी व्यक्ति होने के नाते सुभाष को लोकप्रिय भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के प्रति गलतफहमी थी तो भी उनम भारी आकषण था।

उनके आगमन से सवाधिक आनदित हुए स्वय रासबिहारी। अस्वस्थता और बेहद काम के बावजूद वे सुभाष को लान के लिए तोक्यो तक गय। वे मर्यादा व शिष्टाचार के घोर आग्रही थे। इसलिए चाहते थे कि उनके उत्तराधिकारी के साथ यथासम्भव सौजन्यपूण व्यवहार किया जाए। दोनो एक साथ एक ही विमान म सिंगापुर पहुँचे।

उनके साथ सिंगापुर पहुँचने के दो दिन बाद रासबिहारी न कात हाल म

दौरान जर्मनी के साथ मिलकर लडाई म भाग लिया था तो भी जापानियो के बीच हिटलर की नीतियो के प्रति एक सदह अदर-ही-अदर विद्यमान था। जापान एक राजतत्रीय देश था जहाँ के लोग सम्राट को दिव्य व्यक्ति मानते थे। हिटलर का, जाकि नाजी पार्टी का नेता था, एक पूर्णतया भिन्न व्यक्तित्व था। नाजी व्यवस्था और जापानी परम्परा दो मूलत भिन्न बाते थी।

यह जानकर कि शिवराम को कुछ परेशानी हा रही थी, मैंने हिकारी किकन म सवाददाताओ के साथ अलग से एक अनौपचारिक सभा करने का निर्णय किया। वहाँ भी आरम्भ म तो बडी कठिनाई हुई। न जाने क्यो जापानी समाचारपत्र जगत न सुभाष का पसद नहीं किया था। वे एक विचित्र प्रकार की प्रतिकूल प्रतिक्रिया दर्शा रहे थे। लेकिन किसी ने कोई निश्चित शिकायत नहीं की। तो भी धीरे धीरे सभा म शाति का वातावरण छा गया। बाद म शिवराम न बताया कि जापानी भाषा म मेरी पारगतता ही सभा का वातावरण बदलने म सहायक हुई थी।

सर्वप्रथम तो वह घोषणा समस्या का कारण बनी जो सुभाष न स्वतत्र भारत की अन्तरिम सरकार बनाये जाने के सम्बन्ध म कातै हाल की सभा म की थी। जापानियो को इससे कुछ परेशानी हुई हो, ऐसी बात तो प्रतीत नहीं होती थी किन्तु 'नेताजी' शब्द उन्हे लगातार परेशान कर रहा था। उनका विचार था कि सुभाष दक्षिण-पूर्व और पूर्व एशिया म जापानियो के स्थान पर नेता बनने का प्रयास कर रहे हैं। तथ्य यह था कि उन्होने पनडुब्बी की अपनी यात्रा के दौरान यह विशेष नाम अपने लिए चुन लिया था और शिवराम न अनजाने ही उसे प्रचारित भी कर दिया था। अब यह जिम्मा मेरा था कि जापानी समाचारपत्र-जगत के प्रतिनिधियो से इस नाम को स्वीकृति दिलावें।

मैंने इस शब्द के मासूम अर्थ के बारे म बहुत व्याख्यान आदि दिये। हिन्दी भाषा म इस शब्द का किसी भी प्रकार के नेता के लिए उपयोग किया जा सकता है। इस शब्द का तात्पर्य इतना ही है कि सुभाष भारतीय समुदाय के नेता हैं। पत्रकारो म से कुछ तो पूर्णतया असतुष्ट थे। फिर भी अतत किसी ने विरोध पर कोई खास बल नहीं दिया।

आतरिक स्वरूप की एक अन्य समस्या भी थी। मलाया म और भारतीय राष्ट्रीय सेना म भी बहुत से मुसलमान थे जो हिन्दुत्व की प्रतीक किसी भी बात से खुश न थे और उसे सदेह की दृष्टि म देखते थे। नेताजी संस्कृत भाषा का शब्द था किन्तु कहना ही होगा कि यह सुभाष की ही महानता का प्रताप था कि गुरू-गुरू की थोडी नाराजगी के बाद मुस्लिम बधुओ के इस बारे म मन का सदेह भी जाता रहा।

रासबिहारी से उत्तराधिकार प्राप्त करने के दिन म ही सुभाष का नारा

के बल पर भारत का स्वतन्त्रता दिलाने वाली शक्ति के रूप म आजाद हिंद फौज के निर्माण व दढीकरण की धुन सताने लगी। इसलिए उनके प्रयास पूरी तरह आई० एन० ए० से सलग्न लगभग 10 हजार जवानो के लिए प्रशिक्षण व अन्य सुविधाएँ अधिक मात्रा म बेहतर माल-सामान आदि प्राप्त करन की दिशा म ही होने लग। साथ ही युद्धबदी शिविरा और मलाया की असनिक आबादी म से ताजा भरती के बल पर आई० एन० ए० की सदस्य-सख्या को बढान के भी प्रयास किये जान लग।

5 जुलाई को अर्थात काते हॉल की सभा के अगले दिन उन्होंने नागरिक वेश भूपा त्याग दी और सनिक वर्दी और बूट पहन लिय (अगस्त, 1945 म उनके तिरोधान काल तक यही उनकी औपचारिक वेशभूपा रही।) सिटी हॉल के मदान म सम्पन्न भारतीय सैनिका व नागरिका की एक विशाल सभा म उन्होंने बहुत आवेश के साथ घोपणा की कि आई० एन० ए० द्वारा एक सशस्त्र आक्रमण के बल पर भारत को स्वतन्त्रता दिलायी जानी चाहिए और इस काय म सहायक सभी साधनो को अपने म शामिल कर लिया जाना चाहिए। उन्हाने सनिका को दिल्ली चलो' का नारा दिया।

उन्होने चर्चिल की भापा मे कहा कि 'स्वतनता प्राप्ति की प्रक्रिया जसे काय म शहादत के एवज मे वे अपने अनुयायिया को भूख, प्यास, कठिनाई जबरन यात्रा और मृत्यु" का उपहार दे रहे थे। खेद की बात है कि वह भापण भयानक रूप से भविष्यसूचक सिद्ध हुआ जिसका प्रमाण एक वप से भी कम समय के इफाल अभियान म मिल गया।

6 जुलाई का आई० एन० ए० के सदस्या की एक औपचारिक परेड आयो जित की गयी जिसम सुभाप ने सलामी ली और फिर वसा ही भापण किया। जनरल तोजो, जो उस समय मलाया के जापान अधिकृत क्षेना की निरीक्षण-यात्रा पर सिंगापुर आय हुए थ इस सभा मे आये। विभिन्न क्षेत्रो की यात्रा के दौरान व मनीला से आये थे। उन्होंने ब्रिटेन से स्वतन्त्रता जीतने म भारत की सहायता के लिए जापान की तत्परता की पुन पुष्टि की।

इस परेड के दौरान हुई एक दुघटना ने दशका के बीच के अधविश्वासी लोगो को बहुत परेशान कर दिया। आगे-आगे चलने वाले एक जापानी टक पर एक भारतीय राष्ट्रीय झडा लगा था, सयोगवश वह झडा सडक के आर-पार लगे तारो म उलझकर अपने डडे से अलग हो गया और धरती पर गिर गया तथा पीछे आन वाले वाहन के नीचे कुचला गया। सुभाप बहुत क्रुद्ध हो गय। जनरल तोजो न कोई भाव नही दर्शाया।

छह मास की अवधि म आई० एन० ए० की सदस्य-सख्या बढकर 30 हजार तक पहुच गयी। लेकिन खेद इस बात का था कि कनल भोंसले और उनके

कार्यालय के कमचारियो के बढिया काम के बावजूद इतनी बडी सदस्य सख्या का सभार-तत्र और अय सगठनात्मक व्यवस्था लगातार कमजार पडती गयी। भारतीय समुदाय के हजारा गर सनिक नागरिक जो युद्ध विषयक जानकारी स वचित थे, केवल आई० एन० ए० की यूनिफाम धारण कर सल्यूट करना और अकडकर चलना सीख गये थे। वे या घमत फिरत थ माना नव विस्तारित सेना के सदस्य हो। व केवल जापानियो स विशेष लाभ आदि प्राप्त करन के उद्देश्य स ऐसा किया करते थे। इस प्रकार सुभाष की आई० एन० ए० के ऐसा आचरण करन वाला के कारण सेना की प्रभावकारी शक्ति पहल से कही कम हो गयी थी। वास्तव म सही सख्या क्या थी, यह कोई भी नही जानता था।

जब सन् 1945 म, ब्रिटेन न पुन बमा व थाईलैंड आदि पर कब्ज़ा कर लिया, हिन्द चीन सयुक्त शक्तियो की सेना के हाथ आ चुका था, उस समय आई० एन० ए० की सदस्य-सख्या कोई 23 हज़ार थी जिसम सभी श्रणियो के कमचारी शामिल थे।

सुभाष तथा हिकारी किकन व जापान सरकार के अय अधिकारीगणा के बीच सपक केवल आई० एन० ए० की ओर से किये जान वाले अनुरोधो तक ही सीमित था। जापान के सम्मुख उपस्थित अपनी कठिनाइयो के कारण मागे मुख्यत तो अपूण ही रह जाती थी। ज्या ज्या जापान के खिलाफ युद्ध का दबाव बढता गया स्थिति दिन ब दिन खराब होती गयी। सुभाष न प्रशसनीय साहस व दढता का परिचय दिया।

लेकिन खेद की बात यह थी कि गर सनिक भारतीय समुदाय के सभी मामलो को उच्चतम नेता द्वारा नज़रअदाज किया जा रहा था। इसलिए जापानी अधिकारियो के साथ विचार-विमश करके इन मामलो का निपटारा करना पूरी तरह मेरा ही जिम्मा बन गया।

डाक्टरा की सलाह के अनुसार रासबिहारी को पेनाग मे, जहाँ की जलवायु सिंगापुर की तुलना म बेहतर थी, कुछ दिन विश्राम करने को राजी कर लिया गया। वहा मै उनके साथ ही रहा। लेकिन एक मास के भीतर ही हम वहा से लौट आये और रासबिहारी ने तोक्यो लौटने के लिए तयारी आरम्भ कर दी।

उनकी रवानगी की पूव सध्या को म पूरा दिन उनके घर पर ही रहा था। उन सभी के लिए, जो उनके साथ काम कर चुके थे, यह एक अति हृदय विदारक दिन था। सुभाष से विदा लेने की इच्छा से रासबिहारी ने अपने सचिव शेषन से कहा कि टेलीफान द्वारा सुभाष को सूचित कर दे कि व शाम को उनके बगले पर आएँगे और बगाली शैली का भोजन भी करेंगे। सुभाष ने एकदम उत्तर दिया "नही-नही, मैं स्वय आकर उन्ह लिवा ले जाऊँगा, कृपया उनसे कहे कि मेरी प्रतीक्षा करे"। वे शाम को छह बजे अपनी शानदार चेवरले गाडी म आए और

रासबिहारी को अपने घर लिवा ने गय ।

रासबिहारी ने मुझस पूछा था कि अतत तोक्यो लौटन स पूव सुभाष को क्या सलाह देना उचित रहगा। मैं जानता था कि यह रासबिहारी का काम करन का तरीका था। अगर कभी उन्हे किसी निणय के लिए अय किसी की सहायता की आवश्यकता नही भी हुआ करती थी, फिर भी वे (यह ऐसा ही एक अवसर था) अपने विश्वासपात्र साथियो स उनका मत पूछ लिया करते थ। मैंने क्वल इतना कहा कि 'आप जानत है कि उनस क्या कहना चाहिए, मरे लिए कुछ भी कहने की आवश्यकता ही कहाँ है?' 'रासबिहारी क मुख पर बडी समझदारी की मुस्कान छा गयी और वे बोले, 'हाँ ये बात तुम्हारी प्रवत्ति के अनुकूल ही है। मैं जानता था कि तुम यही कहोगे'' ।

बाद म उन्हान सुभाष क साथ अपनी बातचीत का साराश मुझे कह सुनाया। उन्हाने युद्ध के बारे म सुभाष का विस्तार स समझा दिया था। जापान बडी गभीर कठिनाई म था, हर स्थान पर खाद्यादि का भारी अभाव था और निर्धारित राशन आदि म भारी कटौती की जा रही थी। आपातकालीन युद्ध प्रशिक्षण स्त्रियों क लिए भी लागू कर दिया गया था। शस्त्रास्त्र की कमी होने लगी थी, राइफलों और सगीनो क स्थान पर बास के बने अस्त्रो का प्रशिक्षण क अभ्यास के लिए उप योग किया जा रहा था। उन्हान सुभाष का बताया कि इस विचार का त्याग ही श्रयस्कर होगा कि आई० एन० ए० सना ब्रिटेन के साथ युद्ध करेगी और विजयी होगी।

उन्होन सुभाष से कहा 'हमारे पास दो जोडी आखें होनी चाहिए। एक चेहरे पर सामन और एक पीछे की ओर'। पीछे की ओर वाली आखे पृष्ठभूमि की गति विधि देखने के लिए हो यानी युद्ध स्थल म और स्वय जापान म क्या हो रहा है और सामन की आखें, वतमान म देखे और इस बात का फसला करें कि भविष्य मे क्या होने वाला है ।

रासबिहारी ने सुभाष को यह चेतावनी भी दी कि उन्हे मचुको और अय जापानी अधिकृत क्षेत्रो की कहानी (विशेषकर चीन की) अवश्य स्मरण रखनी चाहिए। जापानियो की अति नतिक मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति क कारण बहुत कठि-नाइयाँ उठ सकती थी। इतना ही नही, यदि व किसी देश म कोई बलिदान करेगे ता उसक आधार पर विभिन्न दाव भी उठाएँगे। यदि जापानी सेना ब्रिटेन से जूझने के लिए भारत म प्रवेश करती है तो तोक्यो स्थित सरकार अवश्य ही इस प्रकार सोचगी कि उसे बदले म कुछ पाने का अधिकार प्राप्त हो जाए तो ठीक रहेगा। यह स्वाभाविक मनोवैज्ञानिकता थी किन्तु बात दरअसल यह थी कि हम नही चाहत थे कि भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए कोई विदेशी सनिक या नागरिक अपनी जान खतरे म डाले। भारत का मात्र अपने लागो के बल पर

स्वतन्त्रता प्राप्त करनी चाहिए। सामग्री आदि के रूप मे प्राप्त सहायता का स्वागत हो सकता था। लकिन चूंकि सुभाष के मन म आई० एन० ए० तथा जापानियो द्वारा भारत पर सयुक्त आक्रमण के बडे-बडे इराद थ इसलिए रासबिहारी उनस एमे इरादा के त्याग का गभीरतापूवक अनुरोध कर रह थे क्याकि आई० एन० ए० कभी भी प्रभावकारी ढग स लडाई नही कर सकती थी और न ही भारत म मित्र-शक्तिया की सनाआ के विरुद्ध सनिक कारवाई मे जापानी सफल हो सकत थ।

मैं चुप रहा, कि बिना बाधा के रासबिहारी अपनी बात पूरी कर सके। उन्हान कहा कि उन्होन सुभाष को गाधीजी का 'भारत छोडो' अभियान का स्मरण दिलाया। ब्रिटेन का निश्चित रूप स इस बात पर क्रोध तो था। लेकिन भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की नीति थी कि भारत को ब्रिटिश सत्ता स मुक्ति दिलायी जाए, ऐसी स्थिति म किसी अन्य दश द्वारा भारत मे आकर ब्रिटेन का स्थान लन की बात का प्रश्न ही नही उठता था। कुल मिलाकर रासबिहारी न सुभाष को यह हार्दिक सलाह दी कि स्वय अपनी देखभाल म और भारत के भीतर स्वतन्त्रता सेनानिया का मनोबल बढान के लिए एक प्रभावकारी तथा अनुशासित सगठन के रूप म आइ० एन० ए० का अस्तित्व अवश्यमेव उपयोगी है। किन्तु इसे कभी भी एग्लो-अमरीकन शक्तिया के साथ युद्ध करने की सभावनापूण शक्ति न माना जाय।

रासबिहारी कुछ देर क लिए रुके। कदाचित यह जानने के लिए कि मै उनस पूछूगा कि सुभाष की प्रतिक्रिया क्या थी किन्तु मैंने जान बूझकर प्रश्न नही किया जसा कि मैने अनुमान लगाया था, शीघ्र ही उन्होने स्वय मुझे बताया कि 'सुभाष ने कोइ टिप्पणी नही की'। रासबिहारी ने अपने खास अदाज म यह भी कहा कि 'सुभाष की मुख मुद्रा से वे बहुत प्रसन्न नही लगते ये। यह स्पष्ट था।

सुभाष रासबिहारी का सम्मान करते थे किन्तु उनकी सलाह नही मानते थे। वे निश्चय ही पूरी ईमानदारी के साथ कडा श्रम करते थे, किन्तु खेद की बात यह है कि प्रस्तुत स्थिति के प्रति अनदेखी प्रवृत्ति अपनाकर और स्वतन्त्र मत रखन वाले सहकर्मिया की वस्तुपरक सलाहो का अनसुनी करके ही व ऐसा करते थे। व अपनी मनमानी करते रह और तीन मास के भीतर आजाद हिन्द की अन्तरिम सरकार का सविधान भी तैयार कर लिया। ये सब कम से कम, सिद्धान्त के स्तर पर तो बगकाक सम्मेलन के सर्वाधिक महत्वपूण प्रस्ताव का उल्लघन था जिसमे कहा गया था कि भारत के भावी सविधान की रूपरेखा भारत के लोगा यानी भारत मे रहन वाले लोगो के द्वारा तैयार की जाएगी।

21 अक्टूबर, 1943 को काते सभा भवन की एक विशाल सभा म उन्हाने इस सविधान का सक्षिप्त रूप घोषित किया। 13 मन्त्रिया के एक मन्त्रिमडल के गठन की भी घोषणा की गयी। उनम ये कप्तान डॉ० लक्ष्मी जो महिलाओ की

सस्थाओ की प्रभारी अधिकारी थी, आइ० एन० ए० के अध्यक्ष कनल जे० क० भोसले और प्रचार मत्री एस० के० अय्यर आदि। 'इश्वर क नाम पर' शपथ ग्रहण कराते हुए सुभाष ने इस अन्तरिम सरकार का भार सभाला और उनके कुल पद थे राज्याध्यक्ष प्रधानमत्री युद्ध मत्री विदशमत्री, और आई० एन० ए० क सुप्रीम कमाडर। रासबिहारी को जोकि तोक्यो म थ, 'सर्वोच्च परामशदाता' नियुक्त किया गया था।

इन सब नयी परिस्थितियो के सम्बध म भारी बहस आदि का अड्डा था मेरा घर। किसी को सुभाष की योग्यता या विश्वसनीयता पर कोई सदह नही था। किन्तु जिन लोगो ने आई० एन० ए० का जन्मत और पलत बढत दखा था और जो यह भी जानत थे कि युद्ध क्या रूप लेता जा रहा है, वे जापानियो की सहायता से सशस्त्र कारवाई क बल पर भारत का स्वतत्रता दिलाने की सुभाष की सनक को शुरू से ही गलत मानत थ। उनकी योजना मूत रूप न ले सकी। यदि यह मान भी लिया जाता कि जापानी सनाओ का उपयोग किया जा सकता था तो भी वह अव्यवहाय ही होता क्योकि हर क्षेत्र मे युद्ध स्थिति जापानियो के लिए अत्यधिक प्रतिकूल होती जा रही थी।

सुभाष हमारे विचार भली भाति जानत थे। शिवराम और मैंने कई बार उन्ह अपने विचार बदलने के लिए राजी करना चाहा था। किन्तु उनका स्वभाव हालाकि वे बहुत ही ईमानदार और कतव्यनिष्ठ थे इतना हठीला और दुराग्रही था कि व अपने विचार बदलने को बिलकुल भी तयार नही थ। हमे एक मलयालम कहावत की याद हो आयी जिसम एक एसे व्यक्ति का वणन है जो इस बात पर बल दिए जाता है कि जो घोडा उसने पकडा है उसके दो साग हैं हालाकि किसी को एक भी सीग दिखायी नही देता था।

एक दिन उन्होने अचानक ही स्वय भारत के लिए प्रसारण करने का निश्चय किया। उन्होने स्वय ही उस वार्ता की पाडुलिपि भी तयार कर ली। आई० आई० एल० के प्रचार विभाग की निर्धारित प्रथा के अनुसार जो अभी भी मरे ही नियत्रण म थी, वह वाता मरे पास लायी गयी ताकि मैं उस पढ लू। उस वाता म महात्मा गाधी, जवाहरलाल नेहरू व अन्य सम्मानित भारतीय राष्ट्रीय नेताओ के लिए अपमानसूचक कुछ अशा को दखकर मैं आश्चयचकित रह गया। वह सब ऐसे ढग से लिखा गया था जो अशोभनीय था। मैं इस प्रकार की वार्ता के प्रसारण की कभी भी अनुमति न दे सकता था जिसम निजी प्रतिकार भावना की बू आती हो। बिना कोई बतगड बनाये, जिसके परिणाम मे बेकार की विरोध भावना खडी हो सकती थी मैंने कवल आपत्तिजनक अशो को काट कर उस पाडुलिपि का पुन टाइप करवा दिया और सुभाष को भेज दिया।

जब वह प्रसारण आरम्भ करने वाले थ तो परिवतनो पर उनका ध्यान गया

और वे आश्चर्यचकित रह गय। उन्हान अय्यर से पूछा कि कुछ काटा गया था या रह गया था या कि प्रचार विभाग म किसी ने परिवतन किया था? अय्यर को निश्चिय ही सब कुछ ज्ञात था और उसन उन्हे सच सच बता दिया कि मैंने उसम से कुछ अश काट दिए थे। सुभाष न टिप्पणी की 'ओह! नायर साहब ने उन्हे काटा है?" आग कुछ न कहा और जो पाडुलिपि मैंन भेजी थी उसी को प्रसारित कर दिया।

अगले दिन उन्होंने अय्यर के (जो न जाने कस, सुभाष के निकटतम के कृपा-पात्र बन चुके थे और आइ० आई० एल० के उचित कार्यों को छोड और सभी कुछ कर रह थे) हाथा मुने सन्दश भेजा कि वे जानना चाहते थे कि उनके मसौदे मे से कुछ अश क्या मैंन काट दिये थे। मैंन अय्यर को बाते स्पष्ट करते हुए बताया कि चर्चित अश हरगिज शामिल नही किये जाने चाहिए। यह लीग की नीति न थी कि भारत के राष्ट्रीय नताआ मे से किसी पर आक्षेप किया जाए। मैंने अय्यर से सुभाष को य भी स्मरण करान को कहा कि जबकि उन्हे शानो शौकत और आराम से रहने का सौभाग्य प्राप्त है और वे एक अति शानदार महल मे रह रहे हैं भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के नेता जिन्हे वे अपशब्द कहने का हक समझते है भारत म ब्रिटिश जेला मे सड रह है। हम अमर्यादित और असतुलित कोई काय नही करना चाहिए और न ही अपने देश के नेताआ के विरुद्ध कुछ कहना चाहिए। मामला वही समाप्त हो गया।

सुभाष का काम काज का तरीका रासबिहारी से बहुत भिन्न था। रास बिहारी हालाकि गभीर अवसरो पर एक कडे अनुशासन प्रेमी थे मगर निजी रूप स बडे अनौपचारिक थ। अपने साथिया के साथ हँसी मजाक भी किया करते थे। किन्तु सुभाष सदा अपन साथिया से एक फासला बनाये रखते थे। उनके व्यवहार म एक प्रकार की मालिक नौकर की सी भावना दिखायी देती थी। इतना ही नही, यह भी खेद की बात थी कि वे उन सबके प्रति जो रासबिहारी के निकट सम्पर्क म काम करते रह थे, एक अस्पष्ट सदेह पाले हुए थे, उन व्यक्तियो म मैं और शिवराम भी थे।

मुझे सूचना मिली थी कि जमन गुप्तचर विभाग मुझे इसलिए पस द नही करता था कि उनकी तुलना म जापानी हाई कमान म मेरी कही अधिक सुनवाई हुआ करती थी, सुभाष के मन म उन्हान ही मेरे विरुद्ध द्वेष भावना जगा दी थी। साथ ही उन्हाने सुभाष को बताया था कि मेरे जसे आई० आई० एल० के मुख्य सम्पर्क अधिकारी की अवहेलना करना अच्छा न होगा। इस प्रकार हमारे नये नेता एक द्विविधा म थे कि मेरे साथ क्या व्यवहार किया जाए। उन्हे परेशान होने की कोई आवश्यकता न थी। मैं सदा उनके और लीग के साथ था, जब तक कि वगकाक म, निर्धारित नीतियो का पालन किया जा रहा था। मै सुभाष का प्रति-

द्वन्द्वी नहा था, वल्कि रामबिहारी व अन्य जना द्वारा जिसम मुख्यत मैं भी था, स्थापित सस्था का एक सच्चा सेवक था। मै मोहनसिंह न था जिसके मन म नतत्व हडप लेने की चाह थी या जो अपने मन मे एक तानाशाह बनन की आकांक्षा पाल रहा था। यह बडे ही खेद की बात थी कि सुभाप ने मरे और शिवराम जस व्यक्तियो को आरम्भ मे ठीक से पहचाना ही नही। काला तर म अलवत्ता व हम पहचान गये।

मैं तथा उस अभियान मे मेरे निकट के साथी चापलूसी की कला म पारगत नही थे। कुछ लोग एसे थे जो अपन निजी लाभ के लिए एसा कर लिया करत थे। उनम थे एस० ए० अय्यर ए० एम० साहे और डा० (कनल) ए० सी० चटर्जी। कनल डी० एस० राजू को सुभाप का निजी चिकित्सक चुने जान का सम्मान प्राप्त था। दुर्भाग्यवश नये विश्वासपात्रो मे से अधिकाश 'जी हुजूरी' का पाट वखूबी निभा रहे थ, जिनका मूल काम ही था नेता का वह सब वताना, जोकि वह सुनना चाहता था। वे निष्पक्ष सलाह प्रस्तुत करने मे रुचि नही रखते थे।

प्रचार विभाग के काय-कलाप मे, जिस शिवराम और मैंन इतना कष्ट उठा कर, एक अति कायक्षम व्यवस्था का रूप दिया था—गत्यावरोध उत्पन्न हो गया। विभिन्न भापाआ म वितरित हमारे समाचार बुलेटिनो और रेडियो प्रचार तत्र के माध्यम से हमने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के समथन मे प्रचार की एक योजना चला रखी थी। सुभाप के अधीन इस स्थिति म परिवतन आ गया। व प्रचार की दिशा म किसी भी नीति के अनुसार काम करने म रुचि नही रखत थे। उनका रुख कवल युद्धप्रियता ही दर्शाता था जो रह रहकर उजागर हो उठता था।

इसम स देह नही कि उनके निजी आकपण के कारण सदा ही बहुत वडी सख्या म लोग उ ह सुनन आया करत थे। लेकिन विशाल श्रोता समूह और उनकी आराधना भावना व प्रशसा से प्राय वे उत्तेजित हो उठते थे और वह उत्तेजना उस सीमा को पहुँच जाती जब अनजाने ही वे समझदारी का त्याग कर बडी भावुक लहरा म बह जाते और परिणाम की परवाह नही करत थ। सन 1943 की सर्दियो म एक सावजनिक भापण के दौरान उ होन घोपणा की कि वप का अ त होन म पूव आइ० एन० ए० सेना भारत की धरती पर कदम रखेगी। इस भापण का आम जनता म बहुत सशक्त प्रभाव पडा। किन्तु यह बात एकदम बुद्धिमत्तापूण नही थी। एक तो यह कि आई० एन० ए० सन् 1943 के अ त स पूव भारत की धरती पर कदम रखने योग्य बिलकुल न थी। दूसरी बात यह कि यदि भारत पर आक्रमण करने के लिए उसकी तयारी का ही प्रश्न था तो एक सेनाध्यक्ष के लिए घटना से पूव उसकी घोपणा करना वांछनीय न था। सुभाप ने शत्रु पक्ष को पूव सूचना का एक उपयोगी समाचार दिया जिसन उसका सम्पूण लाभ उठात हुए प्रतिरक्षा का पर्याप्त प्रब ध कर लिया।

शिवराम और मैंने इस समाचार को दबाने का बहुत प्रयास किया, जो समाचार-जगत समस्त विश्व में फैला रहा था, किन्तु हम पूर्ण सफलता प्राप्त न हुई। हानि हो चुकी थी। श्रोताओं की एक विशाल और जय जयकार करती भीड़ को देखकर सुभाष उत्तेजना की लहर में बह गये। भाषणबाजी के एक ही झोंके में अनजाने ही उन्होंने इम्फाल और कोहिमा की अपनी प्रिय योजनाओं की सफलता के सभी अवसरों की संभावना का गला घोट दिया था। संयुक्त दक्षिण-पूर्व एशिया कमान' में, इस चुनौती का सामना करने के उद्देश्य से बहुत वृद्धि कर दी गयी जिसका उद्देश्य इस चुनौती को पूर्णतया मिटा देना था।

अय्यर एक अति कुशल पत्रकार और प्रचार विशेषज्ञ थे। यदि सुभाष को मेरी या शिवराम की आवश्यकता न रहती तो भी संस्था की भलाई के लिए वे अय्यर की सेवाओं का सदुपयोग कर सकते थे। चूंकि हमारा विचार किसी भी बात में एकाधिकार स्थापित करने का न था इसलिए हम इस बात पर कोई आपत्ति भी नहीं हो सकती थी। हमारे पास करने को और बहुत से काम थे। हमारा लक्ष्य यही था कि अभियान को सफलता मिले। किन्तु यह विचित्र बात ही कही जायेगी कि अय्यर, जोकि एक 'मन्त्री' थे, दूतकार्य सम्पन्न किया करते थे। हां, उन्हें एक अति उच्च व सम्मानित सम्बोधन यानी 'प्रथम मन्त्री' कहकर पुकारा जाता था। यह बात नहीं थी। मालूम नहीं, इस खिताब का अर्थ क्या था। वे दुनिया भर के काम लिये फिरते थे। वे काम क्या थे, किसी को भी इसका ठीक ठीक ज्ञान न था।

सुभाष वास्तव में जर्मनी के समर्थक है या नहीं यह मत व्यक्त कराने के लिए मुझे बाध्य करने या उकसानेवाले लोगों के कारण मुझे कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। सत्य तो यह था कि मुझे भी कुछ सन्देह था कि वे जर्मनी के समर्थक थे। किन्तु प्रत्यक्ष रूप से उन लोगों को कुछ भी नहीं बता सकता था जो गलतफहमी के शिकार हो सकते थे। खेद की बात है कि सुभाष ने आरंभ से ही यह आभास दिलाया था कि वे जर्मनी के भारी समर्थक थे। इसका अर्थ यह था कि वे हिटलर की राजनीतिक सैनिक और प्रशासनिक व्यवस्थाओं को पसन्द करते थे। एक साधारण किन्तु महत्वपूर्ण उदाहरण यह था कि सिंगापुर पहुँचते ही उन्होंने आदेश दिया कि जर्मन सैनिक अधिकारी के वेश के समान ही एक सैनिक यूनिफार्म उनके लिए तैयार की जाए। जब मुझे और मेरे साथियों को इस बात का पता चला तो हमने ऐसा वेश धारण न करने की उन्हें सलाह दी। कुछ जापानी अधिकारियों को इसकी जाने कैसे भनक पड़ चुकी थी और उनमें से कुछ मजाकिया लोगों ने सुभाष को 'नव फ्यूरर' कहकर पुकारना आरंभ कर दिया था। दर्जी ने वह यूनिफार्म ला तैयार कर दी लेकिन पुनर्विचार के पश्चात सुभाष ने उसे न पहनने का निश्चय किया। बदले में उन्होंने एक भारतीय सैनिक अधिकारी की

वेशभूषा से कुछ कुछ मिलता जुलता परिधान धारण करने का निर्णय किया।

सैनिक साज सामान या अधिकार सूचक अन्य वाह्याडम्बर का रासबिहारी की दृष्टि म कोई महत्त्व न था। वे 'जन्मजात नेता' थ, जिन्हें दिखावे या आडम्बर की कोई आवश्यकता नहीं थी, किन्तु सुभाष को यह सब बहुत प्रिय था। सुभाष एक सशक्त रक्षक दल मे घिरे सागर तट पर स्थित कटाग क्षेत्र म एक विशाल व शानदार भवन मे रहते थ और सहायको की (जिनम एक निजी खिदमतगार भी था) एक टुकडी के साथ बडी शानोशौकत के साथ यात्रा किया करते थे। उन्होंने अपने निजी उपयोग के लिए जनरल तोजो से 12 सीटो वाला एक विमान भी प्राप्त कर लिया था। विमान सम्बन्धी इस कहानी का एक अति रोचक पहलू यह था कि सुभाष ने एक भारतीय विमान चालक की नियुक्ति की माग की। जनरल तोजा ने मुस्कराकर यह कहते हुए उनका यह अनुरोध नामजूर कर दिया कि मैं यह जोखिम उठाना नही चाहता कि विमान गलत दिशा म उडाकर ले जाया जाए। हमारे नेता द्वारा पद व स्थिति के प्रतीको के उपयोग का लेकर हमम से किसी को कोइ आपत्ति न थी। वास्तव मे हम तो यह चाहते थे कि उन्हे हर तरह का आराम व सुविधा प्राप्त हाने ही चाहिए। लेकिन इस बात को एक पूजा वस्तु' की-सी मान्यता क्यो दी जाए जिससे लोगो को कुछ अप्रिय कहने का मौका मिले।

मैं यह सब दोषारोपण की भावना से नही कह रहा हूँ बल्कि केवल इस दृष्टि स कि मेरे पाठक कदाचित जानना चाहग कि जिस व्यक्ति न अत्यधिक सक्रियता पूवक आई० आई० एल० आर आइ० एन० ए० को एक ठोस आधार पर गठित किया था आर उसे अपने उत्तराधिकारी का अच्छी हालत म और बिना किसी बतगड के सौप दिया था, उन दोना क व्यक्तित्व मे कितना अन्तर था।

अगस्त 1943 मे, कनल इवाकुरो का सिगापुर से स्थानातरित कर दिया गया और उनके स्थान पर कनल सताशी यामामोतो नियुक्त कर दिये गये, जो उससे पूव बर्लिन म जापान के सनिक अताश' रह चुके थे आर जिन्हे सुभाष जानत थे। यह दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि हालाकि सुभाष का उनके साथ बर्लिन मे परिचय था ता भी सिगापुर म उनकी बहुत नही पटी। हिकारी किकन की मनो दशा भी इवाकुरो के काल की तुलना म कुछ बदलती जा रही थी। पूवकालीन सौहार्द कुछ घटता जा रहा था।

जब सुभाष ने स्वतन्त्र भारत की अस्थाई सरकार को जापान सरकार द्वारा औपचारिक मान्यता दिय जाने का अनुरोध किया तो यामामोतो ने इस मामले को सिफ यह कहकर टाल दिया कि फसला तोक्यो स्थित सरकार तन्त्र द्वारा किया जायेगा। द्वितीय ब्यूरो क 8वे विभाग के कनल नागी को मौके के निरीक्षण और सुभाष के साथ विचार विमश आदि करने क लिए भेजा। नागी बहुत अधिक तो प्रभावित नही हुआ किन्तु उसने भाड म जाओ' जैसी प्रवृत्ति अपनायी और

'मान्यता' की सिफारिश कर दी। तब तोजो ने अपनी सम्मति दी और उसके बाद 21 अक्तूबर को काते हॉल म सुभाष ने सगत औपचारिक घोषणा की।

इस बीच कनल भासले के नेतत्व म आई० एन० ए० का पुनगठन काय धीमी गति से चलता रहा और उन्ह माल-सामान भी बहुत निम्न स्तर का मिलता रहा। यह सब अपरिहाय था क्योंकि जापानी स्वय भी सैनिक व राजनीतिक सन्दभ म किसी अच्छी स्थिति म न थे। उन्ह गभीर पराजय उठानी पड रही थी। आइ० एन० ए० को दिये जानेवाले अधिकाश अस्त्र सिंगापुर म उसके समपण के अवसर पर ब्रिटिश व भारतीय सेनाओ से जब्त किय गये सामान मे से थे।

पुनगठित आई० एन० ए० की सदस्य सख्या सुभाष के लक्ष्य अर्थात तीन लाख तक कभी भी नही पहुँच सकी जिसकी चर्चा वे अनक बार कर भी चुके थे। (एक बार तो भावातिरेक म बहकर उन्हाने इसी सख्या को वास्तव म तीस लाख भी घोषित कर दिया था किन्तु बाद म उन्होन स्वय ही अपनी भूल स्वीकार कर ली थी।) सर्वाधिक बडी सख्या 25 से 30 हजार के बीच थी और वह भी मुख्यत केवल कागज पर यक्ति आकडा क रूप मे ही। आवश्यकता पडने पर वास्तव म युद्ध कर सकने याग्य सनिक सख्या, जिनके पास पुराने तथा हल्के स्तर के अस्त्र भी थ 12 और 15 हजार के भीतर ही थी।

25 अगस्त, 1943 को सुप्रीम कमाडर के रूप मे सुभाष ने आई० एन० ए० का सम्पूण नियत्रण सभाल लिया। सेना के नियमा आदि की एक नव सहिता तयार की गयी थी। लेकिन जापानी सेना से भिन्न एक स्वतत्र और अलग' इकाई के रूप म आई० एन० ए० को जापान की मान्यता प्राप्त कराना कठिन सिद्ध हुआ। 'सदन एक्सपेडिशन फोसस' के कमाडर इन चीफ फील्ड माशल कौन्ट जुइची तेराउची इसके विरुद्ध थे। उनका विचार था कि एक युद्धक शक्ति के रूप मे आई० एन० ए० अपर्याप्त है। अत उसे केवल गौण सहायक भूमिकाएँ ही दी जा सकती है। उन्हे यह भी भय था कि यदि इस सेना को कही युद्धस्थल मे अकेले भेज दिया जाय और यदि वह ब्रिटिश पक्ष से जा मिलने का निणय करे तो जापानी पक्ष उस पर कोई नियत्रण नहो रख पायेगा। इसलिए उन्होंने जापानियो के निरीक्षणात्मक अतिम अधिकारो का त्याग अस्वीकार कर दिया।

कुछ पीछे मुडकर देखे तो पता चलेगा कि सुभाष पूव एशिया मे उस काल म आये थे जब जापान को युद्ध म भारी पराजय उठानी पड रही थी। वास्तव मे, आरभ म प्राप्त सफलताएँ बीच मे ही रुक गयी थी। एडमिरल इसाराकू यामामातो के सनिक बेडे को अमरीकी नौसेना के हाथा भारी हार खानी पडी थी। यह घटना 1942 के आरम्भ की है। जापानी पक्ष को क्षति उठानी पडी थी, चार विमान वाहक पोत एक अति विशाल युद्धक गश्ती पोत और 300 से अधिक विमान नष्ट हो गय थे जबकि अमरीकी पक्ष के बेडे को बहुत ही कम हानि हुई थी।

मिड वे पर जापानी सना री हार का समाचार सनिक सेंसर व्यवस्था क माध्यम स आम जनता का नही बताया गया था। उत्तरी व दक्षिणी लगभग सभी मोर्चों पर अमरीकी उग्र हात जा रह थ। फरवरी 1943 म ग्वादल कनाल म जापानी सना का बहुत क्षति उठाकर पीछे हटना पडा था। उसक कुछ ही समय पश्चात् सर्वाधिक भयकर दुघटना हुई जिसम 14 अप्रल, 1943 को एक अमरीकी विमान न एडमिरल यामामातो के विमान का मार गिराया। अमरीका न जापानी सनिक गुप्त सक्ता आदि का समझ पान म सफलता प्राप्त कर ली थी। व अपन शत्रु (जापान) की थल सना, नौ सना तथा वायु सना की लगभग सभी दनिक गतिविधियो की जानकारी रखते थ।

यूरोप म जमनी का बहुद कठिनाई का सामना करना पड रहा था। पहली फरवरी को स्तालिनग्राद म जमनी की सनसनीखेज हार हुई जिसके बारे म हिटलर ने यह साच रखा था कि उस पर वह आसानी स विजय प्राप्त कर लगा। स्तालिनग्राद असख्य जमन सनिको की कब्रगाह सिद्ध हुआ आर रूसी मुकाबल क इतिहास म एक स्मरणीय अध्याय बन गया।

इन सबके बावजूद, सुभाष आइ० एन० ए० को बडा बनाने के लिए अधिक शस्त्रास्त्र तथा अन्य सुविधाओ की मांग जापानियो के सम्मुख बराबर करत रह। दूसरी तरफ सुभाष के बारे म यह धारणा जोर पकडती रही कि या तो वे यह नही जानते थे कि उनके इर्द-गिर्द क्या हो रहा था या फिर उनके मन म अति आत्म विश्वास की भावना भरी हुई ह। फिर भी सुभाष म ऐसी कुछ बात थी जिसस जापानियो ने बहुत खुलकर कभी उनकी निन्दा नही की और जहाँ तक मानवीय सदभ म सभव था व उनकी मागो को पूरा करन का प्रयास करत रहे।

भीतर ही भीतर, सुभाष आई० एन० ए० की सदस्य सख्या के विस्तार के लिए एक सशक्त अभियान मे सलग्न थे। उन्होन कप्तान डॉ० लक्ष्मी के नेतत्व म रानी झासी रेजिमेन्ट नाम से नारियो की एक टुकडी का गठन भी किया। सुभाष बहुत बढिया वक्ता थे और अपने श्रोताओ मे बहुत प्रबल भावना जगा सकत थे। वे समय समय पर कोष एकत्र करन के अभियान पर निकलत थे। उनका लक्ष्य था, तीन करोड पाउड' और उनका दावा था कि मैं वह धनराशि एकत्र कर लूगा"। वास्तव मे काफी बडी मात्रा म माल एकत्र करने मे वे सफल भी हुए थे क्योकि गरीब श्रमिक वर्ग की नारियाँ भी जो कुछ उनके पास होता था दे देती थी। उन्हे यह लगता था कि वे अपनी मातभूमि के लिए कुछ कर रही है। वह बडा ही मार्मिक दश्य होता जब उनम से बहुत सी स्त्रिया अपना मगल सूत्र तक सुभाष की युद्ध-पेटी मे डाल दिया करती थी।

किन्तु धन एकत्र करने के प्रयासो का सर्वाधिक दुखद प्रसग यह था कि वे

उक्त काम का उचित ढग से लेखा जोखा रखने का कष्ट नही करते थे। कोई नही जानता कि उस राशि म से कितना उन लोगो द्वारा हथिया लिया गया जो उनके इद गिर्द मॅडराया करते थे। इसके अलावा विडम्बना की अति इस तथ्य से हुई कि धनी लोग जो काफी मात्रा म धन दे सकते थे थोडा-सा धन देकर खिसक जाते जबकि सुभाष गरीब लोगो को नही छोडते थे। मैंने एक बार जब सुभाष से कहा कि धनी लोगो से ज्यादा और गरीबो से कम धन वसूला जाए तो उन्होने मेरा अनुमोदन करते हुए यह आश्वासन दिया कि वे स्थिति को सुधारने का प्रयास करेंगे। दुर्भाग्यवश इस स्थिति मे कोई सुधार नही हुआ।

उन दिनो की याद करके मुझे वेदना होती है। विशाल स्तरीय धोखाधडी की चर्चा हुई थी। दु ख की बात तो यह थी कि स्थिति को बेहतर बनाने के लिए सुभाष कुछ नही कर रहे थे। गरीब भारतीय श्रमिक, जिनमे से अधिकाश तमिलनाडु के थे, जितना दे सकते थे उससे कही अधिक देते थे। मगर उन्हे यह ज्ञात न था कि उनके खून-पसीने की कमाई का बडा भाग कोई अन्य व्यक्ति उडा ले जायगा। सुभाष म देश प्रेम कूट कूटकर भरा था। लेकिन खेद की बात यह है कि अपनी मडली के कुछ सदस्यो को अपने पाप छिपाने के लिए सुभाष ने अपनी प्रशस्ति की आड लेने की अनुमति दे रखी थी। ये आम तौर पर कहा जाता था कि सोने के जेवरात और अन्य मूल्यवान वस्तुएँ एस० ए० अय्यर की निगरानी म थी और केवल वही जानते थे कि कितना माल है और सब कहा रखा हुआ है।

नवम्बर, 1943 म रूजवेल्ट, चर्चिल स्तालिन और चियाकायशेक यह निर्णय करने के लिए काहिरा म मिले कि जापान को फोरमोसा, मचूरिया पेस्करार व जापान द्वारा जबरन हथियाये गये समस्त अन्य क्षेत्रो से, जिनमे कोरिया भी शामिल था, खदेड बाहर किया जाय। बाद म यही नेता तेहरान म भी मिले जहा यह गुप्त निर्णय किया गया कि यूरोपीय युद्ध म विजय प्राप्त करते ही जापानियो पर आक्रमण के लिए रूस, अमरीका तथा ब्रिटेन के साथ आ मिलेगा।

मित्र राष्ट्रो की इन कारवाइयो के सतुलन के रूप मे जनरल तोजो ने उसी मास म तोक्यो म एक सम्मेलन बुलाया था जिसे 'वृहत्तर पूर्व एशिया सम्मेलन' का नाम दिया गया था।

एक तथ्य जो विश्व की नजरो से छिपा न रह सका यह था कि जबकि काहिरा सम्मेलन म चार स्वतंत्र विश्व शक्तियो के नेताओ ने भाग लिया था, वृहत्तर पूर्व एशिया सम्मेलन के लिए उन्ही क्षेत्रो स प्रतिनिधि आये जिन पर जापान का कब्जा था। सिंगापुर से सुभाष आये, बर्मा स डॉ० बामा, थाईलैण्ड से पिबुलसौग्राम, इण्डोनेशिया से सुकरनो, फिलिपीन से लारल और चीन स वाग चिंग वे आये। एक अन्य प्रतिनिधि थे—मचूको के प्रधान मन्त्री। जनरल तोजो ने सभापति का पद सभाला। वहा लिये गए निर्णय काफी एकतरफा थे अर्थात वृहत्तर पूर्व एशिया

सह समृद्धि योजना के अतगत आनवा
विजय प्राप्त न कर ली जाए तब तक प
काहिरा सम्मेलन का समाचार
गया था। इसके विपरीत तोक्यो सम्म
था—जाता के मनोबल को ऊँचा उठा
दौरान सुभाष बहुत लोकप्रिय रहे और
लिखा-कहा गया। उन्होंने स्वय बहुत
जिनमे जनरल तोजो भी थे, खूब धा
परिस्थिति मे इन सबका कोई विशेष म
सुभाष को राजनीतिक बढ़ावा वि
तोजो ने यह घोषणा की कि जापान द्व
निकोबार द्वीप स्वतत्र भारत की अस
चचिन सरकार को अस्थाई रूप म एव
निश्चय ही यह एक 'नाम मात्र का' प्रव
महत्व के सामरिक द्वीपो का नियत्रण
घोषणा का निस्सन्देह दक्षिण-पूर्व ए
पडा।
तोक्यो सम्मेलन से पूर्व की एक
क्योकि इससे सुभाष के अपने उन सह
महत्वपूर्ण पदो पर आसीन थे सवधा
तो उन्हे पता चला कि मै वहा पहले से
पूर्व वे मुझे सिंगापुर म देख चुके थे और
मै उनसे पहले ही तोक्यो कैसे पहुच गय
स्थिति के कारण सामान्य जिज्ञासावश
पूछा जाना चाहिए था ही कि मैं वहाँ
मेरी यात्रा के विषय म कुछ भी जानने
इस प्रकार की अवहेलना का मुझे
रह सका कि रासबिहारी कैसी मानर्व
बोझ क्यो न हो ऐसा स्नेही भाव दिख
कभी कभी तो अवश्य ही सुभाष अपन
थ कि उनके और सुभाष के बीच बफ
मै इतनी जल्दी कैसे पहुँच गया
जापान सरकार उत्सुक थी कि इस सम्
तोक्यो म उपस्थित रहूँ और इसलिए स

अधिकारी देने म असमथ थ । यह इस बात का स्पष्ट सक्त था कि जापानियो के पास सामरिक साधनो का विशेष रूप से अभाव है।

युद्ध के दौरान गुप्त सूचना को गुप्त ही रखा जाना होता है। चर्चित कागज वहा नही होना चाहिए था जहाँ मैंने उसे पाया था। बिना किसी वितडावाद के मैंने उसे गुम करने का प्रबन्ध किया। तत्कालीन परिस्थिति म भी कदाचित उस गुप्त पाडुलिपि का महत्व अधिक नहीं था। खैर, मैं चाहता था कि विशिष्ट गुप्त कागजो की सुरक्षा की आवश्यकता पर बल दिया जाए। मैंने उस कागज पर अकित जानकारी को रटकर याद कर लिया और इस बात का इत्मीनान हो जाने पर कि आवश्यकता पडने पर मैं उसे स्मरण कर पाऊँगा, उसे नष्ट कर दिया। बाद मे एक दिन, जब मैंने सुभाष को वही कागज खोजते देखा तो सोचा कि उन्हें सच बता दिया जाना चाहिए। मैंने ऐसा ही किया और यह जानकर मुझे खुशी हुई कि उन्होंने इस मामले को आगे नही बढाया और अय्यर, जो कि समस्त गुप्त फाइलो के प्रभारी माने जाते थे, काफी शर्मिंदा हुए।

हिकारी किकन की प्रत्येक बैठक म सुभाष का प्रिय विषय होता था—भारत पर आक्रमण। श्री सेन दा सदा ही इस योजना का सशक्त विरोध करते थे। उन्हें इस बारे म कोई शक न था कि जापानी या आइ० एन० ए० के सैनिको द्वारा भारत पर सशस्त्र आक्रमण अत्यधिक घातक सिद्ध होगा। किन्तु सुभाष इससे सहमत न थे। विरोध प्रकट करते हुए श्री सेन-दा तोक्यो जाने के लिए सिंगापुर से रवाना हो गये और हिकारी किकन से कह गये कि उस विषय मे आवश्यक परामर्श आइन्दा तोक्यो से ही भेजा जाएगा।

अक्तूबर 1943 मे शिवराम और उनके अधीन कुछ प्रचार कर्मचारी सुभाष के आदेशानुसार, प्रचार-कार्य पुनर्गठित करने के लिए रगून रवाना हुए। बर्मा स्थित हिकारी किकन के अध्यक्ष लेफ्टिनेन्ट कर्नल कितावे ने इस कार्य म विशेष दिलचस्पी नहीं दर्शायी। लेकिन शिवराम ने शीघ्र ही अपने व्यवहार-कौशल से उन्हें जीत लिया और रेडियो रगून से कार्यक्रम प्रसारित करने के लिए एक प्रभावकारी प्रचार-सगठन की स्थापना करने मे वे सफल हो गये। यह एक खतरनाक नियुक्ति थी क्योंकि उस समस्त क्षेत्र पर ब्रिटेन के विमान बमवर्षा कर सकते थे। एक हवाई हमले मे शिवराम के घर पर बम गिर पडा था। यह चमत्कार ही कहा जाएगा कि शिवराम जीवित बच गये थे।

शिवराम पाच छह महीने तक रगून मे रहे और सुभाष के मुख्यालय के साथ जोकि जनवरी 1944 म वहा स्थानातरित कर दिया गया था, सलग्न रहे। सुभाष के कार्यालय मे काम के दौरान प्रचार-मत्री अय्यर के कारण उन्हें बडी कठिनाई उठानी पडी। उनका एक मात्र काम था—सुभाष को खुश रखना। जैसी कि सामान्य प्रत्याशा की जा सकती है वे न तो कोई सकारात्मक परामर्श पाते थे

और न प्रचार सबधी मामलो मे शिवराम की अच्छी सलाह को सुनते थे। विभिन्न मत्रियो के बीच काफी मात्रा मे अन्दरूनी कहा सुनी चला करती थी और अन्य कुछ वरिष्ठ कर्मचारियो मे भ्रष्टाचार भी फैला था। उनमे से एक तो सुभाष के आदेशानुसार आई० एन० ए० के गुप्तचर विभाग द्वारा गिरफ्तार भी किया गया था। शिवराम ने एक बार मुझे बताया कि अपने जीवन भर मे ऐसा बुरा प्रशासन उन्होंने कभी नही देखा था जैसाकि रगून मे सुभाष के मुख्यालय मे कार्य-कलाप के दौरान देखा।

मैं आई० आई० एल० के मुख्यालय के प्रभारी की हैसियत से सिंगापुर मे ही रहा। मेरा कार्यालय अभी भी तोक्यो स्थित जापान सरकार के साथ सम्पर्क का प्रमुख माध्यम था। यह स्थान (आई० आई० एल०) ही एकमात्र साधन था जिसके द्वारा दक्षिण-पूर्व एशिया के भारतीय निवासियो को युद्ध के मोर्चों और भारत मे होनेवाली घटनाओ की जानकारी मिलती। सिंगापुर से समाचारो का वितरण और प्रचार प्रसार जारी रखे गये। सुभाष के पास जिनका ध्यान 'दिल्ली चलो' की सैनिक योजना पर ही केन्द्रित था, जापानी सेनाओ के साथ भारतीय गैर-सैनिक समुदाय के सबधो से जुडी असख्य समस्याओ पर नजर डालने का समय न था। ये समस्यायें सदा ही खीझ और रोष का कारण बनी थी। मैं काफी हद तक हिकारी किकन की सहायता से इन समस्याओ के समाधान का प्रयास करता रहा। प्रति वर्ष नव वर्ष के बाद का पहला सप्ताह जापान मे बहुत उत्सव व आनन्द का समय होता था और अब भी है। किन्तु जनवरी, 1944 मे लोग उदास और निराश थे। सेंसर व्यवस्था के बावजूद जापान की पराजय के समाचार स्वदेश मे पहुँच रहे थे।

प्रशात क्षेत्र के सभी युद्धस्थलो पर थल सेना और नौसेना को वापस लौटना पड रहा था। सप्लाई तथा सेवा आदि की व्यवस्था कर पाना कठिन था। हवाई सेना को भी बुरी तरह मार खानी पड रही थी और एक समय तो ऐसा भी आया जब विमान बर्मा से मँगाये गये एक विशेष गोद से प्लाई वुड का जोड जोडकर तैयार किये जा रहे थे। जब मित्र राष्ट्रो की सेनाओ द्वारा समुद्री मार्गों मे सुरगे बिछा दिये जाने के कारण इस वस्तु की सप्लाई मे भी रोक लग गयी तो जापान की वायु सेना की दशा वास्तव मे शोचनीय हो गयी। भारी कठिनाइयो को सह सकने की विशेष शक्ति से सम्पन्न होने के बावजूद लोगो की सहनशक्ति जवाब देने लगी। हर चीज का नितान्त अभाव था।

इतना ही नही सरकार ने सम्पूर्ण भरती की योजना अपनायी जिसमे 12 से 60 वर्ष के भीतर के सभी पुरुषो का सेना मे शामिल होना था और 12 से 40 वर्ष के बीच की अविवाहिता और विधवा नारियो को भी। एक अति निराशापूर्ण स्थिति मे ताजा ने 'युद्ध प्रयास के समजन' को बेहतर करने के बहाने से स्वय

प्रधान मत्री, युद्ध मत्री और सेनाध्यक्ष आदि के अनक पद सँभाल लिय जैसाकि इतिहास म पहल कभी नही हुआ था और इस प्रकार उन्ह एक नया उपनाम भी मिला 'टोटल तोजो' अर्थात् 'सम्पूण तोजो'।

लगभग सम्पूण हताशा का समय था जब तोजो न बमा की सीमा क पार मित्र राष्ट्रा की सेनाआ के विरुद्ध सुभाष के आक्रमण के सनकी अनुरोध को स्वीकृति द दी। जापानी प्रधान मत्री निश्चित रूप स जानते थे कि उसकी सम्पक-व्यवस्था पर पहले ही बहुत अधिक बोझ हाने और सप्लाई व सवाआ की गभीर कमी की स्थिति मे जापान, दूरस्थ भारत पर आक्रमण कर सकने की स्थिति म बिलकुल नही था। इसलिए यह सब ऐसा प्रतीत हुआ मानो डूबता व्यक्ति तिनक का सहारा लेने का प्रयास कर रहा हो।

एक सनिक होने के नात जो बात आत्मघाती थी उसकी अनुमति देत हुए तोजा को केवल दो ही बाता से प्रेरणा मिली होगी। एक, भारत पर आक्रमण स ही कदाचित बर्मा की प्रतिरक्षा का सर्वोत्तम प्रयास हो सकता था जिसे मित्र शक्तियाँ पुन अपने अधिकार म लेने की तैयारी म थी। दो, जापानी जनता क मनोबल को एक भिन्न दिशा म मोडने के लिए नया मोर्चा खडा करक एक भ्राति उत्पन्न की जा सकती थी कि जापान अब भी टूटने के बजाय जीवित और सघषरत है। सभवतया एक यह धुधली आशा भी थी कि यदि उत्तर पूर्वी भारत का रौंदकर ऐंग्लो-अमरीकी सेनाओ को वहाँ से खदेडा जा सक तो वहाँ स विमान द्वारा भारी मात्रा में चीन भेजी जानेवाली सामग्रियो की सप्लाई को रोका जा सकता है और इस प्रकार चीन के उस क्षेत्र मे जापानी सना पर दबाव को घटाया जा सकता है।
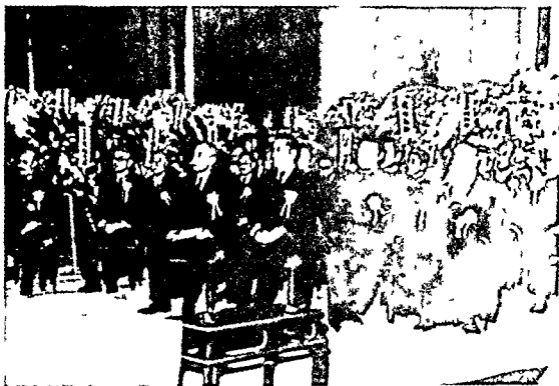
शोक प्रकट करते हुए सुविख्यात व्यक्ति रासबिहारी बोस की अन्त्येष्टि मे आर० एल० कुजु ससई, श्री कोकी हिरोता (दाये से तीसरे) अन्त्येष्टि समारोह के अध्यक्ष जनरल अराकी और (सबसे बाइ ओर) जनरल तोजो।

जनरल तोजो रासबिहारी बोस की अन्त्येष्टि मे एक शोक सदेश पढ़ते हुए।

श्री के० के० चेतूर, तोक्या म आसाही समाचार पत्र म भारतीय सम्पक मिशन के तत्कालीन प्रमुख (बाद म राजदूत) बाये से दायें—स्टाफ़ का एक सदस्य श्री गिची इमाई (मुख्य सपादक, विदेश विभाग)। लेखक, श्री चेतूर और श्री वाडा (सहायक सपादक, विदेश विभाग)

श्री शितारोड्यू प्रधान सपादकीय लेखक, आसाही शिमबन (छायाकार—आसाही शिमबन)

न्यायमूर्ति डॉ० राधा विनोद पाल के साथ लेखक हिराशिमा मेमोरियल मे (1952 मे)। उनके पीछे हैं श्री सेन, बगला द्विभाषिया और श्री मसाहिदे तनाका (जिन्होंने न्यायमूर्ति पाल के विसम्मत निणय के प्रकाशित भाग का अनुवाद किया)।

न्यायमूर्ति डॉ० राधा विनोद पाल (बाइ ओर) और श्री मासाबुरो शिमोनाका

लेखक (स्व०) प्रधानमन्त्री श्रीमती इदिरा गाधी का तोक्या के स्वागत-समारोह म रासबिहारी बोस की पुत्री श्रीमती हिमुची स परिचय कराते हुए।

महारानी एलिजाबेथ ओर ड्यूक आफ एडिनबग (1974 मे) के सम्मान म तोक्यो म राष्ट्र मडल देशा के राजदूतावासा द्वारा शिजुकु गाडन मे आयोजित स्वागत समारोह म—श्रीमती नायर महारानी का स्वागत करते हुए उनके साथ खडे हैं लखक। महारानी के साथ खडे हैं—
त क तत्कालीन राजदूत श्री एस० थान।
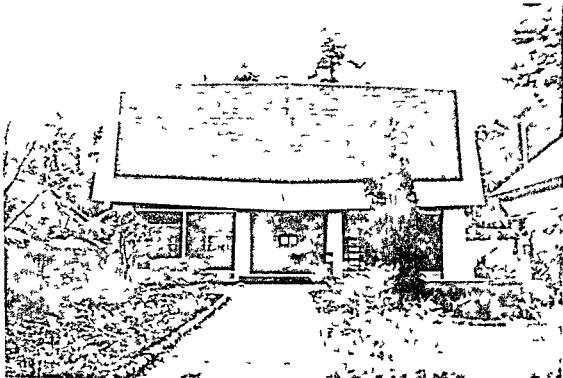
हकोने मे पाल शिमोनाका मेमोरियल हॉल (1974)।
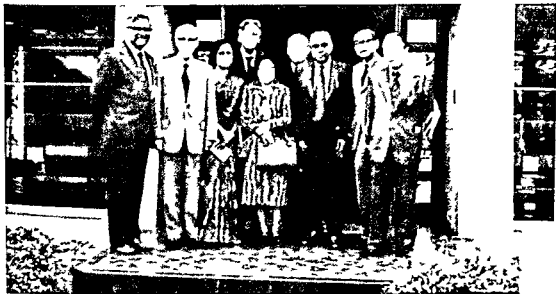
पाल शिमोनाका ममोरियल हॉल के एक समारोह के अवसर प्रथम पक्ति, बायें से दायें भारत के तत्कालीन राजदूत और मुख्य अतिथि श्री एरिक गोन्सालवेज, प्रख्यात स्कालर-दार्शनिक डा० तनीकावा, (होसई विश्वविद्यालय क भूतपूव अध्यक्ष तथा पाल मेमोरियल समिति के अध्यक्ष), श्रीमती गोन्सालवेज, श्रीमती कोरा (जापान म टगोर सोसाइटी की अध्यक्षा), लेखक और (सबसे बाइ ओर) श्री तनाका, डॉ०
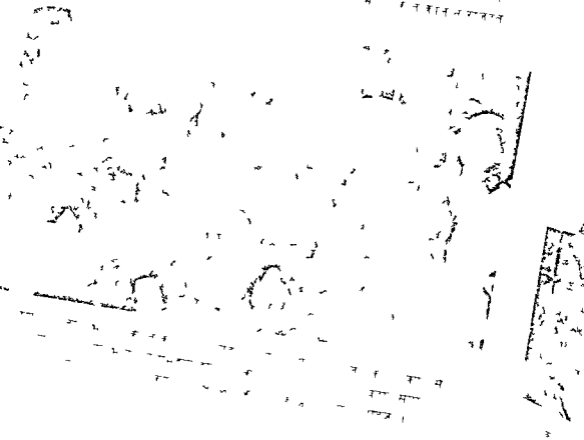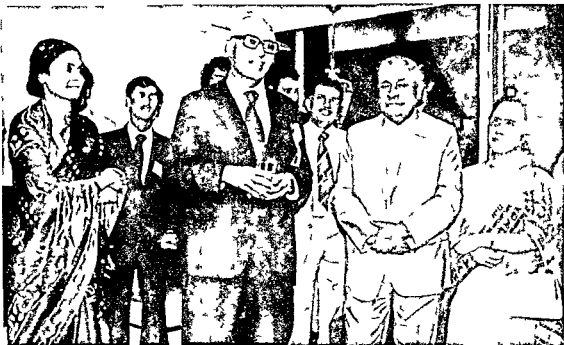
भारतीय समुदाय के स्वागत समारोह म (16 सितम्बर 1981) म तत्कालीन भारतीय राजदूत श्री के० पी० एस० मेनन के साथ लेखक। बाये से दाये—श्रीमती मेनन श्री के० पी० एस० मेनन, लेखक और श्रीमती नायर।

तोक्यो म भारतीय राजदूतावास म आयोजित एक स्वागत-समारोह (15 अक्तूबर, 1
म भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री एम० हिदायतुल्ला के साथ लेखक।
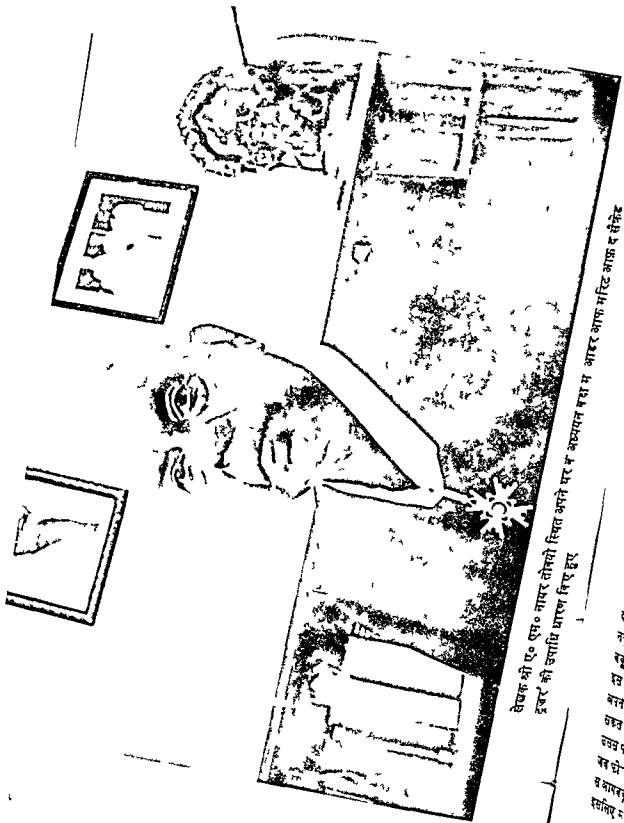
लेखक श्री ए० एम० नायर तोक्यो स्थित अपने घर के अध्ययन कक्ष में 'आर्डर आफ मेरिट आफ द सैकेड ट्रेजर' की उपाधि धारण किए हुए

(8)

26

इम्फाल का मोर्चा

इस परियोजना के गम्भीर सैनिक दोषो पर ध्यान दिये बिना ही सुभाष ने भारत पर आक्रमण के प्रश्न पर तोजो की सहमति को अपनी निजी विजय समझा। उन्होने 'स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार' के कार्यालय को जनवरी, 1944 के आरम्भ मे ही रगून स्थानातरित कर लिया था। उससे कुछ समय पहले उन्होने औपचारिक रूप से अण्डमान पर अधिकार कर लिया था। ले० कर्नल ए० डी० लोकनाथन ने जो अण्डमान तथा निकोबार दोनो द्वीपो के चीफ कमिश्नर के पद पर आसीन किए गये थे, पाया कि 'क्षेत्र का हस्तातरण' नाममात्र की ही बात थी, दोनो द्वीपो मे से किसी पर उनका किसी तरह का कोई प्रभावकारी नियन्त्रण नही था।

भारत मे की जानेवाली आक्रमक कारवाई को आपरेशन यू का गुप्त नाम दिया गया था। तोजो से इसकी अनुमति पाने के तुरन्त बाद सुभाष ने बर्मा क्षेत्र मे जापानी सेना के कमाडर ले० जनरल ममाकाजू कवावे और ले० जनरल रेन्या मुतागिच्च के साथ, जो भारत मे उस अभियान के प्रभारी होनेवाले थे बडे दीर्घ विचार विमर्श किए। सुभाष ने प्रस्ताव रखा कि आई०एन०ए० आक्रमण का नेतृत्व करेगी और जापानी सेना उसके पीछे आ सकती है। कवावे क्रोध से आग बबूला हो गए। सुभाष ने जापानी मानसिकता की नासमझी का परिचय दिया। इस घटना से समस्त योजना पर लगभग पानी ही फिर गया। जापानी सैनिक अपने सम्राट के आराधक थे। वे किसी भी गैर जापानी कमाडर के पीछे नही चल सकते थे। सुभाष का प्रस्ताव उनके राष्ट्रीय गर्व को ठेस पहुँचाने के समान था। वे उससे पहले ही 'हारा कीरी' (यानी पेट चीरकर आत्महत्या) बेहतर मानते थे। जब फील्ड मार्शल तेराऊची ने इस बारे मे सुना तो वे भी कवावे की भाँति ही क्रोध से आगबबूला हो गये। लेकिन चूकि सुभाष ने तुरन्त ही अपना रुख बदल लिया था, इसलिए मामला वही समाप्त हो गया।

कवावे इस मामले मे अधिक-से-अधिक यह छूट देने को तैयार थे कि जापानी कमान के व्यापक नियन्त्रण मे एक भारतीय कमाडर के अधीन, आई०एन०ए० की

एक रेजिमट को लडने के लिए भेजा जा सकता था। आई० एन० ए० क सनिका की लडाई की भूमिका, इस प्रकार प्रयोग के आधार पर तैनात रेजिमट की उपलब्धिया पर निभर करती थी। बाकी सहायक कार्यों क लिए सयुक्त कारवाई के तौर पर कुछेक विषया म अस्थायी सहमति हो गयी। किन्तु वस्तुत सुचारु रूप स कुछ भी नही हुआ।

इसके प्रतिकूल बहुत गडबडी और आरोप प्रत्यारोपा का सिलसिला चलता रहा। अतत कवाबे तथा मुतागुची न यह भी स्वीकार किया कि इस रेजिमट के अलावा सौ-दो सौ सनिका वाली आई० एन० ए० की छोटी छोटी टुकडिया को भी जापानी कमानो के साथ सलग्न कर दिया जाए लकिन उनका काम विशेष रूप से कवल सहायक श्रणी का हागा जसकि सडका व पुला का निर्माण, उनकी मरम्मत करना राशन आदि लाना-ल जाना सप्लाई मार्गा की सुरक्षा करना जगल की आग आदि को बुझाना, बलगाडियाँ चलाना और ऐस ही कुछ औ काम। मगर इस रजिमट का औपचारिक उपयाग बाद म नही के बराबर हुआ।

सनिक कारवाई की गई। पहले अरकान पहाडियो और इम्फाल म की गई। 4 फरवरी 1944 को शुरू की गई अरकान की लडाई जापानियो क पक्ष म कुछ देर जारी रही किन्तु मित्र राष्ट्रो की कमान ने जसे ही उस सेना का सामना करना आरभ किया तो आक्रामक सना को वापस लौटने और अपनी गतिविधि को दक्षिणी क्षत्र मे भारत बर्मा सीमा पर जवाबी हमले को रोकने की दिशा म सीमित रखन पर बाध्य कर दिया।

इम्फाल पर चढाई 21 माच को की गयी थी, किन्तु वह तीन मास म ही समाप्त हो गयी। इस घटना को कुछ युद्ध इतिहासकारो ने विश्व के पारपरिक भू-युद्ध के इतिहास मे सर्वाधिक त्रासदीपूण घटना कहा है।

जापानियो ने करीब एक लाख बीस हजार सनिक युद्धक्षत्र मे भेज दिये थे किन्तु उनकी तयारी बहुत अपर्याप्त और बेतरतीब थी। उनके पास पर्या मात्रा म भारी उपकरण नही थे और हल्के शस्त्रास्त्र आदि की सप्लाई भी बहु कम थी। परिवहन आदि के लिए कुल मिलाकर केवल 4 टन वजनवाले 26 ट्रक थे जिनम से अधिकाश खराब हालत म थ कुछ तो रवाना होने से पूव ही बेकार हो गये थ। राशन का कुछ अश बलगाडियो पर ढोया जा रहा था और बाकी पदल सनिको के सिर पर लाद कर भेजा जाता था। प्रस्तावित युद्ध क्षेत्र सर्वाधिक रोग पीडित क्षेत्रो मे स एक था जहाँ नाम मात्र को ही चिकित्सा सुविधाए उपलब्ध थी।

उस क्षेत्र के कमाडर जिनम सुभाष भी थे, भारतीय पक्ष की हालात के बारे म पूणतया अनभिज्ञ थ। एस० ई० ए० सी० यानी सयुक्त दक्षिण पूव एशिया

कमान ने, जिसकी स्थापना एडमिरल लुई माउटबेटन की सुप्रीम कमान के अधीन की गयी थी, न केवल भारत मे जापानियो के प्रवेश को रोकने, बल्कि अराकान और मितकियाना से आरभ कर फिर चिंदविन घाटी और अन्य स्थलो पर, यानी समस्त बर्मा क्षेत्र को पुन कब्जे मे कर लेने के उद्देश्य स एक अतिविशाल और शक्तिशाली सेना एकत्र कर ली थी। जापानी गुप्तचर विभाग अतिशय अपर्याप्त था। जब जापानियो की बर्मा क्षेत्र की सेना ने इम्फाल अभियान चलाने का आदेश दिया तब उसे यह मालूम न था कि उस क्षेत्र की एस० ई० ए० सी० जो कि सिर से पाव तक सशक्त स्थिति म थी और जिसकी सैनिक सख्या भी तिगुनी थी उस पर झपट पडने को तयार खडी थी। जापानी सेनाओ को वायु सेना का सरक्षण लगभग दुर्लभ था। कार्यक्षम विमानो की सख्या, जो उसे सुलभ थी, एस० ई० ए० सी० द्वारा प्रयुक्त विमानो की तुलना म दसवा भाग भी नही थी। रणक्षेत्र भी माउण्टबेटन की कमान का भलीभाति पहचाना हुआ था लेकिन आई०एन०ए० और जापानियो के लिए एकदम अनजाना।

सिंगापुर म जापानी सेना का प्रचार-कार्य दयनीय स्तर तक निरर्थक प्रतीत होता था। जापानी तथा आई० एन० ए० की सेनाओ की सफलता की झूठी खबरे फैलायी जा रही थी। जो चित्र वितरित किये जा रहे थे और जिनम जापानी सेनाओ की इम्फाल विजय के फोटो चित्र थे उनमे से एक मे आई०एन०ए० सैनिक सुभाष का चित्र थामे था। दूसरे एक चित्र मे उन्हे विजित क्षेत्र मे भारतीय ध्वज फहराते दिखाया गया था। ये वास्तव म मलाया के जाने-पहचाने क्षेत्र म लिये गए पहले के फोटो थे।

इम्फाल की लडाई आदि के सम्बन्ध म विभिन्न कथाए प्रचलित है। कुछ का कहना है कि जापानी तथा आई० एन० ए० की सेनाओ ने ऐसा घोर युद्ध किया कि आरभ म ब्रिटिश सेनाओ को इम्फाल से हटना पडा था। इसलिए उस नगर पर वास्तव म कुछ समय तक आक्रमणकारी रेजिमेन्टो का अधिकार रहा था। अन्य विवरणो मे कहा गया है कि आक्रमण को सफलता मिलने ही वाली थी कि जापानी सेना और आई०एन० ए० के पास समस्त सप्लाई, जिसमे गोला-बारूद भी सम्मिलित था, समाप्त हो गई। उन्हे, ब्रिटिश सेना, विशेषकर गुर्खा रेजिमटो द्वारा पीछे खदेड दिया गया था। कोई भी निश्चयपूर्वक नही कह सकता कि वास्तव म क्या हुआ था सिवाय इसके कि अन्त म यह समस्त अभियान जापानी तथा आई० एन० ए० के सैनिको के लिए एक भयकर दुर्घटना सिद्ध हुआ।

अपने कुछ जापानी परिचितो से, जो उस युद्ध म क्षेत्र कमाडर थे, मुझे पता चला है कि जापानी तथा आई०एन०ए० के सैनिको के पास सामान और शस्त्रास्त्र आदि का गभीर अभाव था और शत्रु पक्ष की तुलना म उनकी सख्या बहुत ही कम थी। वही अधिक शस्त्र सज्जित ब्रिटिश सेना के मुकाबले म उनकी स्थिति

वेहद खराब थी। यह अफवाह कि आरभ म ब्रिटिश सेनाओ पर बहुत अधिक दबाव था, जान बूझकर मित्र राष्ट्रो की कमान द्वारा फैलायी गयी थी। इम्फाल तथा कोहिमा दोनो ही क्षेत्रो म एक चतुर चाल की भाँति ब्रिटिश पक्ष न आक्रामक सेनाओ को कुछ समय के लिए आग वढने दिया और फिर उन्हें घेरकर उनकी नाकाबदी करके उन्हें नष्ट कर दिया। जापानी सना तथा कनल एम०जेड० कियानी के अधीन एक आई० एन० ए० की टुकडी न भी कुछ समय तक डटकर मुकाबला किया लेकिन उनका मुकाबला बहुत भारी और सशक्त सेनाआ स था।

इम्फाल अभियान म जापानियो की हानि आश्चयजनक थी। लगभग 64 हज़ार सनिक मारे गय थे, और अन्य असख्य जगलो के रास्ते पीछे हटते हुए मलेरिया, हैज़ा, टायफाइड और अन्य रोगो के कारण मर गये थे। यह एक प्रकार की मरण-यात्रा थी जिसका परिणाम अति दुखदायी था। वनो म वर्षा के कारण जगह जगह दलदली क्षेत्र फल थ और उफन कर उमडती और अति जोखिम भरी नदियो से अवरुद्ध ये दलदली तथा पहाडी क्षेत्र एकदम अगम्य थे। बहुत बडी सख्या म लोग ज़हरीले साँपो के काटने से और अन्य अनेक गुप्त खतरो के कारण प्राण खो बैठे। भूख, प्यास, रोग, मृत्यु—वर्मा के अड्डा तक क माग म यही सब था और कुछ नही। बहुत से सनिक ता मुख्यालय के अस्पतालो तक, किसी प्रकार बचकर पहुचने के वाद भी मर गये क्योकि वे असाध्य रोगो के शिकार हो गये थ।

अपेक्षाकृत अज्ञात एक तथ्य यह है कि तीनो फील्ड डिविजन कमाडर लेफ्टिनेंट जनरल यानागिदा यामागुची और सातो ने अपने ऊपर के अधिकारी लेफ्टिनेन्ट जनरल मुतगुची तथा लेफ्टिनेन्ट जनरल कवावे से और बाद मे फील्ड माशल तेरा उचि से भी मूल कमान द्वारा समस्त अभियान के सम्पूण कुप्रबन्ध के बारे म शिकायत की थी। मुतगुची ने कडा रुख अपनाया और सभी सगत अधिकारियो की बदली कर दी। किन्तु इस सबसे स्थिति म कोई सुधार नहा हुआ। लेफ्टिनन्ट जनरल कोतोकू सातो ने जिन्होने अपने सैनिको मे स 25 हज़ार के करीब सर्वोत्तम व्यक्ति खो दिए थे, मुतगुची के आदेश का उल्लघन किया और बाकी बच रह 10 हज़ार लोगो के साथ वापसी यात्रा आरम्भ कर दी और वही लडने की आज्ञा की अवहेलना की। मुतगुची की इस धमकी का कि उन्ह कोट माशल कर दिया जाएगा सातो का निभय तथा कडा उत्तर यही था "मैं उस आदश का उल्लघन इसलिए कर रहा हूँ कि मेरे विचार मे यह समस्त योजना 'बेहूदा और पागलपन भरी' है। जापानी सनिक इतिहास मे एक फील्ड माशल अथवा अन्य किसी भी सनिक द्वारा खुली अवज्ञा की यह अकेली घटना थी। इससे इम्फाल अभियान की त्रासदी की भयकरता का पता चलता है।

आई० एन० ए० की क्षति के सम्बन्ध म अनुमान था कि कोई 6000 व्यक्ति मारे गय थे और भूख व रोग के कारण अन्य दो हज़ार मृत्यु का ग्रास बन गये

थे। जो लोग बमा लौटकर अस्पताल म भरती हो पान मे सफल हो सके उनकी सख्या कोई ढाई हज़ार ही थो। युद्ध के दौरान, लगभग दो हज़ार सनिक ब्रिटिश पक्ष म जा मिले। यह घटना सुभाप के लिए बहुत बडा सदमा थी, क्याकि सुभाप ने वडे ज़ोर शोर स घोपणा की थी कि जिस क्षण आई० एन० ए० के सैनिक भारत की धरती पर पाँव रखेंगे ब्रिटिश कमान के अधीन युद्धरत भारतीय सेना उनसे आ मिलगी और 'दिल्ली की ओर कूच' म शामिल हो जायगी। कि तु परिणति सारी विपरीत दिशा मे हुई। विपक्षी सेना से जा मिलने वाला न नि सदेह दिल्ली की ओर कूच किया, शायद रेलगाडी अथवा विमान द्वारा कदी की हैसियत से। कि तु आई० एन० ए० को कभी भी उस आर आग वढन का अवसर नही मिला। आई० एन० ए० के सैनिक जापान की पराजय और युद्ध की समाप्ति के वाद ही वहाँ जा पाये थे।

इस भयकर विनाश के शिकार सनिको के प्रति हमारे मन म निश्चय ही दुख भर आता है। 70 हज़ार से भी अधिक युवको को एक ऐसे तकहीन निणय की कीमत अपने खून से चुकानी पडी जिस पर उनका कोई नियत्रण न था।

हमने सिंगापुर मे ये समाचार वडे विस्मय के साथ सुना कि इन सब त्रासदियो के वाद भी सुभाप आशावादी थे और पुनसगठन और भारत पर द्वितीय आक्रमण की तैयारी करना चाहते थे। जब हमने यह रिपोट सुनी कि सुभाप ने कवावे को बताया था कि वे जापानी सना की कुमुक के रूप मे झासी की रानी रेजिमट की नारी-सनिका को भी मोर्चे पर भेजेंगे तो यह भय हुआ कि कदाचित वे अपना सतुलन खो वठे है और शीघ्र ही उनका इलाज किया जाना चाहिए। सौभाग्यवश कवावे ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। अपनी ओर से, मैंने हिकारी किकन से कहा कि बर्मा क्षेत्र की सेना को यह परामश पहुँचा दिया जाए कि यदि एक और आक्रमण का प्रयास किया गया तो उनकी कमान म एक भी व्यक्ति नही बचेगा और आने वाली पीढिया इसके लिए उन्ह कभी क्षमा नही करेंगी। एस०ई०ए०सी० के आक्रमणो के दवाव के कारण वर्मा क्षेत्र की समस्त सेना लगभग समाप्त हो चुकी थी फिर भी वह अपन पाव जमाये थी। जापानियो को दृढता उल्लेखनीय थी क्याकि कई मास के प्रयासा के बावजूद ब्रिटिश सेनाएँ बर्मा की प्रमुख सुरक्षा पक्ति को पार करने मे असमथ रही थी।

इम्फाल की दुर्भाग्यपूण अभियान-योजना अपने विनाशकारी अत की ओर पहुँच गयी थी, तभी सिंगापुर मे एक दुघटना हो गयी। 24 अप्रैल, 1944 को के० पी० केशव मेनन को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया।

केशव मेनन इस गलतफहमी मे थे कि जापानी नागरिक होने के नाते महान भारत प्रेमी रासविहारी बोस भारतीय स्वतत्रता अभियान के एक प्रभावकारी नेता बनने मे असमथ हैं। इस वजह से मेनन उनसे अनुचित व्यवहार करते थे। तो

भी आई० आई० एल० का प्रत्येक व्यक्ति जिनमे रासबिहारी भी थे, मेनन की ईमानदारी और सत्यनिष्ठा का सम्मान करता था। वे एक कट्टर राष्ट्र प्रेमी थे और गाधीजी के नेतत्व मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की नीतिया के प्रबल समथक थे। मैं उन्ह जानता था। कुछ समय तक मैंने उनके साथ काम भी किया था। उस समय मे तिरवनन्तपुरम मे एक छात्र था।

जहाँ कही, थोडी सी सौजन्यता वाछनीय होती वहाँ भी व कुछ कडा रख अपनाते थे। यह जीवन मूल्य सम्बन्धी उनके निजी निणयो की कठोरता के कारण था जिन्हे वे दढता से अपनाये हुए थे। यह प्रवृत्ति उनके सशक्त व्यक्तित्व का ही एक अग थी। जो उन्ह अच्छी तरह जानत थे, जैसाकि रासबिहारी और मैं, वे उनकी भलाई को भी भली प्रकार पहचानते थे।

जहा तक मुझे ज्ञात है, के० पी० केशव मेनन या आई० एन० ए० या आई० आइ० एल० के विषय म अब तक जितने भी लोगो ने लिखा, उनम से किसी ने भी यह चर्चा नही की है कि सिगापुर म वे जापानी सेना द्वारा क्यो बदी बनाए गए थे। प्रत्यक्षत उन लेखको को इसका कारण ज्ञात न था। कदाचित स्वय श्री मनन को भी इस विषय म कोई निश्चित जानकारी न थी क्योकि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान मलाया म उनके जीवन के विषय मे उनके अनेक जिल्दोवाले सस्मरणो म भी इसकी कोई चर्चा नही मिलती है। इसका सही कारण मुझे और रासबिहारी को इसलिए ज्ञात था कि हम दोनो की पहुँच जापानी सेना के भीतरी हल्का तक थी और मुझे पता चला कि केशव मेनन को खुद सुभाषचन्द्र बोस के कहने पर गिरफ्तार किया गया था।

युद्धकालीन असामान्य वातावरण मे भी अपने विचारो को सशक्त ढग से व्यक्त करने की केशव मेनन की प्रवत्ति के कारण अनेक बार मुझे चिता होती थी। वे लापरवाही बरतने के भी आदी थे और इस बात का ध्यान नही रखते थे कि किन अत्यन्त नाजुक मामलो पर वे किससे बात कर रहे है और जिससे बात कर रहे है वे उनके विश्वास-पात्र भी हैं या नही ? सुभाष की नीतियो के विशेषकर उनकी भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस विरोधी नीतिया के केशव मनन कडे आलोचक थे। सुभाष के सरक्षण और दख रेख मे जापानी सेना तथा आई० एन० ए० की सेना द्वारा भारत पर आक्रमण की भयानक दुघटना के समाचार मेनन को भी बहुत कष्ट दे रहे थे। इससे सुभाष के नेतत्व के प्रति उनकी कडवाहट मे और वद्धि हुई।

उस समय अपने घर आए एक अतिथि से बात करते हुए उन्होने अन्य बातो के साथ यह भी कहा कि सुभाष को, जिन्हाने गाधीजी नेहरू और पटेल आदि की महत्ता को कम करके अपने आप को भावी स्वतत्र भारत का राजनेता' घोषित कर लिया है और भारत पर आक्रमण की आत्मघाती दिशा म अग्रसर हैं,

चाहिए कि अपन मस्तिष्क का परीक्षण व ठीक-ठीक इलाज कराएँ। उन्होंने ये भी कहा कि य राजनेता' जिन्हाने एक बार भारत मे समाजवादी होन का दावा किया था, वास्तव म फासिस्ट वन रहे हैं, जसाकि दक्षिण-पूव एशिया में उनकी गतिविधिया के तानाशाही रख से प्रमाणित हो गया है।

जासूसी सस्कार क उन अतिथि महादय ने पचमागी वनकर मेनन की टिप्पणी का ज्या-का त्यो सुभाष को जा सुनाया। क्रोध और प्रतिशोध की आग म जलते हुए सुभाप न वर्मा क्षेत्र की सना को भडकाया कि सिंगापुर स्थित जापानी सनिक पुलिस को आदेश दिया जाय कि केशव मेनन को एक एम खतरनाक व्यक्ति की हैसियत स गिरफ्तार कर लिया जाय जो जापानी युद्ध प्रयासो म अडगा लगा रहा है।

ऐसे भी कुछ लोग हैं, जो सोचत हैं कि केशव मेनन को सिंगापुर स्थित जापानी अधिकारीगणो के आदेश पर गिरफ्तार किया गया था, जिसका प्रतिनिधित्व हिकारी किकन करता था। यह सच नही है। उनकी गिरफ्तारी का आदेश सुभाष चन्द्र बोस के अनुरोध पर सीधे रगून से ही आया था जो वर्मा क्षेत्र की सेना की ओर से सिंगापुर स्थित सैनिक पुलिस कमान को एक सीधे सिगनल के रूप म प्राप्त हुआ था। हिकारी किकन तथा आई०आई०एल० के मुख्यालय को इस घटना की सूचना मनन की गिरफ्तारी और उन्ह जेल मे डाल दिय जान के बाद ही प्राप्त हुई।

रगून से आने वाले सदेश पर तुरत' का सकेत था और सनिक पुलिस ने बिजली की सी गति से उस पर अमल किया। वे सवेरे चार बजे मेनन के घर गये और उनके परिवार के सभी सदस्या को पुलिस की निगरानी म एक कमरे म बद कर दिया और अपनी पत्नी या बच्चा स एक भी शब्द कहने की अनुमति के बिना, जिन्ह इस विपय म कोई जानकारी न थी, उन्ह पकड कर ले गए। यह समस्त गतिविधि न केवल सामान्य शालीनता का अपमान थी बल्कि हिकारी किकन तथा आई० आई० एल० के लिए भी बहुत अनादर सूचक थी। इस गिरफ्तारी के समय केशव मेनन आई० आई० एल० के सदस्य थे।

जिस किसी व्यक्ति ने रासबिहारी बोस के नेतृत्व मे भारतीय स्वतन्त्रता लीग का उद्भव और उसे परवान चढत देखा था उसके लिए यह अकल्पनीय था कि एक ऐसा समय भी आएगा जब उनका उत्तराधिकारी जापानी सनिक पुलिस से केशव मनन जैस दश भक्त की गिरफ्तारी का अनुरोध करेगा। और नितान्त निदयतापूण तथ्य यह था कि उन्हे एक ततीय श्रेणी के अपराधी जैसा वर्ताव मिला था। पहले तो उन्ह पूछताछ आदि के लिए जेल ले जाया गया और फिर अत्यधिक कठोर परिस्थितियो मे वदी बना दिया गया था। उन्ह इतना अधिक कष्ट उठाना पडा था कि उनका बचे रहना उन सभी लागो के लिए आशका का विषय था जो

जानते थे कि क्या कुछ भुगत चुके थे। मोहनसिंह तथा कनल गिल जैसे लोगो से भी, जिन्होने आई० आई० एल० को बहुत अधिक हानि पहुँचाई थी, गिरफ्तार किए जाने पर भद्र व्यवहार किया गया था और समस्त सुख चैन की सुविधाओ के साथ घरा मे रखा गया था और यह सब आई० आई० एल० के आदेश पर हुआ था। मगर सुभाष, केशव मेनन को एक प्रकार से हत्यारो व विक्षिप्ता की श्रेणी के बदियो के बीच रखे जाने के लिए फेंक रहे थे।

सैनिक पुलिस व्यवस्था, हिकारी किकन की नियत्रण परिधि स बाहर थी। अत हम उन आदेशा के प्रत्यादेश जारी करवाने मे असफल थे। निजी स्तर पर मै सैनिक पुलिस व्यवस्था म कुछ मित्रो के माध्यम से अपना प्रभाव डालकर केशव मेनन को उस अत्याचार से बचाए रख सका जो व लोग सामान्यत अन्य बदियो पर करने के आदी थे। फिर भी उनके परिवार का कोई सदस्य या अन्य कोई भारतीय उनस नही मिल सकता था। उनके पुत्र को एक बार मिलने की अनुमति केवल इसलिए दी गयी कि मनन की पुत्री की मत्यु का समाचार उन्हे दे सके जो सिंगापुर म उनके परिवार के साथ रहती थी।

के० पी० केशव मेनन की गिरफ्तारी की घटना दक्षिण पूव एशिया म सुभाष के जीवन-काल की एक अधकारमय घटना ही कही जाएगी।

27

आजाद हिन्द फौज का विघटन

इफाल की पराजय के बाद शिवराम जो रगून म बहुत दुखी थे सिंगापुर लौट आये। उन्हे इस बात की बहुत प्रसन्नता थी कि सुभाप ने लीग के प्रवक्ता की भूमिका निभाने और मेरे साथ अपना पहले का सा प्रचार-काय चलाने के लिए उन्ह वापस भेज दिया था। स्वाभाविक रूप से मुझे भी इससे बडी प्रसन्नता हुई।

किन्तु एक बार फिर उनके लिए कठिनाइयाँ उत्पन्न होने लगी। उन्ह रगून से हर प्रकार के क्लेशकर निर्देश प्राप्त होत रहे कि उन्हे क्या करना चाहिए और क्या नही। उन्हे यह निर्देश दिया गया कि ऐसे कायक्रम तयार करें जिनमे गाधीजी की जिन्ना के साथ वार्ता (सितम्बर, 1944 म) की भर्त्सना की गयी हो, नहरू को ब्रिटिश लोगो का मित्र तथा राजाजी को वायसराय (फील्ड माशल वेवल) का एजेन्ट दिखाया गया हो। सरदार पटेल तथा भूलाभाई दसाई जस अन्य नेताओ की भी सिंगापुर स्थित आई० आई० एल० के रेडियो केन्द्र से प्रसारित कायक्रमो मे निन्दा की जाए।

इस पर शिवराम को बेहद क्रोध आया और उन्होन सुभाप को लिखा कि वे आई० आई० एल० की सदस्यता और प्रचार विभाग म अपन पद—दोनो स मुक्ति चाहते है। जहा तक मेरा प्रश्न है मैन एसी कोई कारवाई नही की। मरी यह निश्चित धारणा थी कि यदि एसा हुआ तो रगून से आनवाले एस किसी भी आदश की अवहेलना करूँगा क्योकि वे बगकाक सम्मलन म पारित आई० आई० एल० की नीतियो के खिलाफ होंगे। मैंने शिवराम को वसा कायक्रम तयार करन से रोक दिया। आश्चय ही कहा जायेगा कि रगून से कभी एसा कोई विशिष्ट आदेश मुझे प्राप्त नही हुआ या ऐसा भी कहा जा सकता है कि यह उतनी आश्चयजनक बात नही है, क्योकि सुभाप, अय्यर तथा उनके साथियो को यह अवश्य मालूम होगा कि मैं रगून या अन्य किसी भी स्थान से प्राप्त किसी भी तकहीन सलाह को स्वीकार नही करूँगा।

शिवराम के पत्र से सुभाप को बहुत चिन्ता हुई। शिवराम को अपने नेता से

मिलने के लिए रगून बुलाया गया। शिवराम वहाँ गये और उनकी नेताजी से इस सम्बन्ध मे लम्बी बातचीत हुई। उस गत्यावरोध का कोई उचित समाधान प्राप्त नही किया जा सका और शिवराम ने इस बात पर बल दिया कि उसका इस्तीफा स्वीकार किया जाए।

उस समय सुभाप ने एक तरीका खोज निकाला जिससे कि किसी प्रकार लीग से सम्बन्ध तोडे बिना ही शिवराम को अन्यत्र भेजा जा सकता था। इस बात पर सहमति हुई कि वह प्रचार विभाग का काम छोड सकता था क्योकि वह, जैसा कि उसे सहन करना पड रहा था, अपने काम काज म दखलन्दाजी बर्दाश्त नही कर सकता था लेकिन सुभाप न उनके लिए तोक्यो मे एक काम निर्धारित किया। उनसे कहा गया कि वे जापानी कूटनीतिक प्रथाओ तथा काय विधि आदि की जानकारी पाने के लिए अध्ययन करे। कदाचित सुभाप की यह धारणा रही होगी कि उनके भारत देश का 'राजनेता' बनने के बाद जब अन्य देशो के राजदूता तथा प्रतिनिधियो आदि का स्वागत-सत्कार करना होगा और बदले मे अन्य देशो को अपने राजदूत भेजने होगे उसके लिए शिवराम का यह ज्ञान उपयोगी सिद्ध होगा। पहले ही से यह अफवाह गरम थी कि एक सज्जन श्री हाचिया, जापान सरकार द्वारा सुभाष की स्वतत्र भारत की स्थायी सरकार के लिए राजदूत के रूप मे चुन लिये गये थे हालाकि यह कभी ज्ञात नही हो सका कि वे क्या काम करत थे।

शिवराम ने सोचा कि दक्षिण पूव एशिया से निकल जाने का यह बढिया अवसर है। इसलिए व रगून स सिगापुर लौट आये और तोक्यो जाने की तयारी करने लगे। यह सन 1944 की शरत ऋतु का समय था।

यह दैवयाग ही था कि लगभग उसी समय मुझे हिकारी किकन द्वारा जापान सरकार की ओर से एक सदेश मिला जिसमे यह कहा गया था कि मै तोक्या म आई० आई० एल० का प्रचार-काय सभाल लू क्योकि उसकी अब तक की व्यवस्था सतोपजनक नही है। मुझे यह भी पता चला कि शीघ्र ही सिंगापुर स्थित हिकारी किकन का अपना कार्यालय भी बद होने जा रहा है।

मुझे एक कठिन निणय लेना था। आइ०आई० एल० से विलग होना, जिसकी स्थापना के लिए मने रासबिहारी बोस के साथ मिलकर इतना कडा श्रम किया था, एक दुखदायी प्रस्ताव था। साथ ही इस तथ्य को नजरअदाज करना भी ठीक न था कि नव नेतत्व की छाया म वह सस्था लगभग छिन्न भिन्न हो चुकी थी। सुभाप न चेष्टा की थी कि लीग की शाखाआ की अतिविस्तत सरचना के स्थान पर, स्वतत्र भारत की अस्थायी सरकार के नियत्रण म नयी इकाइया स्थापित कर दी जाएँ जिनके कमचारी आई०एन०ए० के सदस्य हा और जिन्हे दक्षिण-पूव एशिया के गर सनिको म से लिया गया हो। इसका परिणाम था—घोर अस्तव्यस्तता। आइ०एन०ए० के सदस्या को ऐसे कार्यालय चलाने का कोई अनुभव न था। य एसा

आचरण करत थे माना वे जापान की आधिपत्य सेना के अग हो। उनके आचरण से उस भारतीय समुदाय को आपत्ति थी जो स्वय अपनी देखभाल करना चाहते थे।

सुभाष दक्षिण पूव एशिया म विभिन्न स्थानो की यात्रा करते और वडी जोशीली भाषा मे भाषण देने और लोगो को 'करने या मरने' का आह्वान करने उकसाते थे। उनके कार्यकलाप से कुछ ऐसा आभास मिलता था मानो समुदाय का काम-काज केवल भाषणा से ही चलाया जा सकता था। बहुत से लोगो ने उन घिसी पिटी नीरस बाता म रुचि लेना बन्द कर दिया क्याकि उन्हे बार बार केवल वही सब सुनने को मिलता था। कुछ अन्य लोग असमजस म थे। वे यह नही समझ पाते थे कि स्वतत्र भारत की अस्थायी सरकार और आई० आई० एल० मे भला क्या अन्तर है। वास्तव मे ऐसा अभिमान ता समाप्त ही हो चुका था। भारतीय अकेले या अपनी पसन्द के समूहो मे, सीधे ही जापानियो के साथ सम्पक करने लगे थे। सुभाष अपनी यात्राओ म आई० एन० ए० के लिए अधिकाधिक स्वमसेवको की माग करत थे क्योकि वे चाहते थे कि भारत पर एक और आक्रमण किया जाए। किन्तु इन आह्वाना की प्रतिक्रिया क्षीण होती गयी और अन्तत शून्यमे बदल गयी।

बहुत भारी मन से मैंने एक सुबह शिवराम से कहा कि मैं भी सिंगापुर छोड कर तोक्यो जा रहा हूँ क्याकि वही से मैं किसी सार्थक उपलब्धि की आशा करता हूँ। मैंने सलाह दी कि उन्हे चाहे जिस किसी भी काम के लिए भेजा जा रहा हो वे और मैं मिलकर तोक्यो से सचालित प्रचार काय म कुछ सुधार अवश्य कर सकते हैं। शिवराम इस पर सहमत हो गये और रेडियो तोक्यो तथा जापान के अन्य समाचार-माध्यमा से सम्पक बनाने म सहायता की आशा मे कुछ युवको को भरती करने के काम मे लग गये।

मैंने अक्तूबर के प्रथम सप्ताह म सिंगापुर छोडा और कुछ दिन के बाद तोक्यो पहुँच गया। प्रचार-काय मे अपने लगभग दस सहायको को साथ लेकर शिवराम भी अक्तूबर के दूसरे सप्ताह म मुझ से आ मिले।

तोक्यो पहुँचते ही, मैंने अपनी पत्नी व पुत्र की खोज-खबर ली और य जानकर सतोष हुआ कि वे गाँव म पहुँच गए थे और सकुशल थे। अन्य वडे जापानी नगरा की भाँति तोक्यो भी मित्र राष्ट्रो की सेनाओ द्वारा अधिकार म ले लिया गया था और विभिन्न प्रशात क्षेत्रीय द्वीपो से उडनेवाले अमरीकी बमवर्षको की मार का शिकार हो चुका था। सुरक्षा की दृष्टि से उस समय सिंगापुर से तोक्यो आना 'कुएँ स निकलकर खाई म गिरने' के समान था। 9 जुलाई, 1944 को जिस दिन इम्फाल अभियान को औपचारिक रूप स रद्द कर दिया गया था, (हालाकि वास्तव म वह बहुत पहले ही समाप्त हो चुका था) अमरीकिया द्वारा, मरियाना द्वीप समूह म सहपान कर कब्जा किये जाने का समाचार भी मिला था।

उस द्वीप की रक्षा करनेवाले 25 हजार जापानी सैनिको म से एक भी नहा बचा था। उ ही म थे एडमिरल नगुमो, जिन्होंने दो वष पूव पल हावर के आक्रमण म एक सेना की कमान सँभाली थी। साइपान द्वीप पर उतरने के कारण जापान की मुख्य भूमि अमरीका के बी० 29 सुपर फोरट्रेस बमवषको की मार की सीमा के भीतर आ गयी थी। उसी महीने जापान न न्यू जार्जिया को भी खो दिया था।

इन भारी पराजयो के कारण तोजो की स्थिति विकट हा गयी थी। उन्हें और उनके मन्त्रिमडल को, 18 जुलाई, 1944 को त्यागपत्र देन पर बाध्य होना पडा। अवकाशप्राप्त जनरल कुनिकाई कोयसो नए प्रधान मन्त्री बनाये गये। उन्हें कोरिया से बुलवाया गया जहा वे गवनर जनरल के पद पर आसीन थे। इसके पूव वे क्वानतुग सेना के कमाडर रह चुके थे। जब वे मचुको म थे तब मेरा उनसे परिचय था।

किन्तु प्रधान मन्त्री के परिवतन के बावजूद स्थिति मे कोई सुधार नहो आया और इस निणय म भी कोई फेर बदल न हुई कि कोयसो की सत्ता को एडमिरल योनाई के समान स्तर पर ही रखा जाएगा (जिससे कि नौसेना को सतुष्ट रखा जा सक)। युद्ध मे जापान का पराजय का सिलसिला जारी रहा। सितम्बर आते-आते, गिलबट द्वीप भी अमरीकियो के हाथ म चला गया और अक्तूबर मे मैक आथर की सेना न लेइते खाडी मे भीषण युद्ध के बाद फिलिपीन के लूजोन नामक स्थान पर अपनी जग-विख्यात विजय प्राप्त की, जहाँ मित्रराष्ट्रो की सेनाओ ने उसी वष जून मे फ्रास के नोरमण्डी क्षेत्र के बाद, सर्वाधिक बडी मात्रा म जल-थली विमान उतारे थे। लेइते के युद्ध मे जापानी नौसेना ने लगभग अपने दो तिहाई पोत गवा दिये। जापान उस सदमे से कभी नहीं उबर सका।

अपने थोडे से सहयोगियो के साथ, मै और शिवराम आवश्यकता के अनुरूप तोक्यो म ठहरे रहे और खतरा की छाया म बने रहे। कि तु मैंने इस बात पर बल दिया कि मेरी पत्नी तथा पुत्र गाव म ही रह। वास्तव म यह मेरी पत्नी की ही करामात थी कि हम भुखमरी का शिकार होन से बचे रहें, जो पहले ही तोक्यो की जनसख्या के कुछ भागा को अपनी लपट म ले चुकी थी। विभिन्न असाधारण और प्राय खतरनाक जरियो स वे किसी-न किसी प्रकार हम पर्याप्त मात्रा म आवश्यक खाद्य पदाथ आदि भेजती रही जिससे हमारी सस्था के लिए एक रसोई चलाई जा सकती थी और हम भोजन मिल जाता था। शिवराम तथा मैंने जा कुछ बन पडा, अपने कार्यालय के लिए किया। हमने रेडियो तोक्यो से अपने प्रसारण जारी रखे और उनम उस समय जहा तक सम्भव था, घटनाओ

की ईमानदारीपूर्ण और सच्ची जानकारी देते रहे। हम जानते थे कि अ त निकट है।

नवम्बर 1944 तक, रासबिहारी अत्यधिक बीमारी के कारण शैयाग्रस्त हो चुके थे। उनके घर म केवल एक नौकरानी रहा करती थी और मैंने देखा कि उसमे हालांकि कतव्यनिष्ठा तो थी लेकिन वह बहुत अधिक सहायक सिद्ध नही होती थी। इसलिए मैं दिन म तो प्रचार-कार्यालय का काम सभालता था और रात म रासबिहारी की सेवा-सहायता के लिए उनके घर मे जाने लगा। सिंगापुर से उनके आने के बाद की घटनाओ के समाचारो से उन्हे इतना क्लेप होता था कि कुछ समय बाद मैंने उनका ध्यान युद्ध की घटनाओ से हटाने का प्रयास किया। हालांकि मेरे डाक्टर मित्र, जो भी वहाँ मिल सकते थे, यथासभव सहायता करते थे, तो भी डाक्टरी सुविधा प्राप्त कर पाना अति कठिन था।

पहली नवम्बर 1944—तोक्यो का आकाश बी 29 बमवपक विमानो की एक के बाद एक आनेवाली लहरो के हवाई हमले के बाद स्वच्छ हुआ ही था, जब एक छोटा-सा विमान जिस पर सुभाप तथा बर्मा म हिकारी किकन के अध्यक्ष जनरल साबुरो इसोदा सवार थे, राजधानी के हवाई अड्डे पर उतरा। वे दोनो सम्मानित अतिथि सनिक मामलो के विपय म नए प्रधान मन्त्री तथा शाही जनरल स्टाफ के लोगो से परामश आदि के लिए आए थे।

तोक्यो म कुछ सप्ताह के प्रवास के दौरान सुभाप ने अनेक सावजनिक भाषण दिये जिनम अन्त मे जापान की विजय की भविष्यवाणी की गयी। उन्होने ये घोपणा भी की कि दक्षिण पूव एशिया म, भारतीयो की विशाल स्तरी भरती के बल पर आई० एन० ए० का विस्तार किया जाएगा और यह भी वि ब्रिटिश सत्ताधारियो को खदेडकर बाहर करने के लिए भारत पर एक अन्य आक्रमण किया जाएगा। दोमे समाचार एजेन्सी से सलग्न मेरे एक मित्र इन भाषणो को सुनकर अवाक् रह गये और उन्होने धीरे से मेरे कान म कहा कि 'ये वे व्यक्ति है जिन्हे निश्चय ही अलफ्रेड महान का अवतार माना जाना चाहिए"। उनके द्वारा की गयी तुलना की उपयुक्तता के विपय म सन्देह था किन्तु यह अवश्य कहना होगा कि सुभाप एक अति विचित्र और भयकर आशावादी थ। उनकी विचारधारा की विवेकपूणता के विपय मे मतभेद हो सकता है लेकिन उनकी ओजस्विता का भडार, जिसके बल पर वे एक के बाद भापण दिया करते थे, वास्तव म असाधारण था। मैंने उनके कुछ भापण सुने लेकिन बाद म मैने जाना बद कर दिया था क्योकि ऐसी बाते सुनने का कोई लाभ न था जो उस समय कोई राजनीतिक या व्यावहारिक अथ नही रखती थी।

शाही हाई कमान, सुभाप की सनिक योजनाए या अन्य किसी भी प्रकार की योजनाएँ सुनने म रुचि नही रखती थी। हाई कमान ने उन्हे पीगेमित्सु क पास भेज

दिया जो तत्कालीन विदेश मंत्री थे। कदाचित यह उनसे छुटकारा पाने का ही एक तरीका था। किन्तु पीगमितसु के पास भी उनसे मिलने का समय न था। फिर सुभाष ने जनरल कोइसो से मिलने के प्रयास किए। अपने प्रयासों के बावजूद जब वे मिलने का समय न ले पाये तो मुझसे पूछा कि क्या मैं उनकी सहायता कर सकता हूँ?

मैं अपने पुराने मधुर काल के परिचय का लाभ उठाते हुए कोइसो से बात कर सकता था किन्तु मैंने अपने जनरल मित्र योनाई के माध्यम से जो नामके प्रधान थे और सरकार के किस मंडल के सदस्य होने के नाते जिनका सरकारी हल्कों में बहुत प्रभाव था प्रयास करना बेहतर समझा। मैंने सुभाष का परिचय उनसे कर वाया और योनाई से अनुरोध किया कि जनरल कोइसो के साथ सुभाष की भेंट का प्रबंध करवा दें।

यह बात बड़ी रोचक थी कि योनाई से उनका परिचय करवाने के बाद सुभाष ने मुझे सलाह दी कि उन्हें उनके साथ अकेला छोड़ दिया जाए। इसका अर्थ था कि मुझे कमरे से बाहर निकल जाना चाहिए था। मुझे बड़ी जोर की हँसी आयी किन्तु मैंने अपने पर काबू पा लिया और धीमी गति से बाहर चला गया।

योनाई ने सुभाष की इच्छानुसार जनरल कोइसो के साथ उनकी भेंट का प्रबन्ध करा दिया। विचार विमर्श का उद्देश्य जैसाकि मुझे शीघ्र ही योनाई से पता चल गया आई० एन० ए० के लिए और अधिक अस्त्र व गोला बारूद की माँग से सम्बद्ध था। यह बात आश्चर्यजनक थी कि कैसे एक महान नेता, अपने मेजबान देश की अति गंभीर स्थिति की वास्तविकता की पूर्ण अवहेलना कर छोटे स्तर का आचरण कर सकता था। कोइसो की प्रतिक्रिया अनुमान के अनुकूल ही थी, उन्होंने इस अस्वीकृति के साथ तुरन्त ही उस बैठक का अन्त कर दिया कि सुभाष या अन्य किसी भी व्यक्ति द्वारा, बर्मा सीमा के पार किसी भी सैनिक कारवाई की अनुमति नहीं दी जा सकती। दूसरी ओर कोइसो ने सुभाष से कहा कि समस्त सुलभ आई० एन० ए० संसाधनों को एकत्र करके वे बर्मा में एस० ई० ए० सी० के विरुद्ध जापानी प्रतिरक्षा प्रयासों में मददगार बनें। सुभाष के समक्ष हामी भरने के सिवा कोई विकल्प न था और अधिक बहस की भी गुंजाइश नहीं थी। जापान के लिए स्थिति अत्यधिक निराशापूर्ण थी।

नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में रंगून के लिए रवाना होने से पूर्व सुभाष मेरे साथ रासबिहारी से मिलने के लिए गये जो बहुत बीमार थे। बातचीत के दौरान रासबिहारी ने उन्हीं के शब्दों में सुभाष को 'अन्तिम परामर्श' दिया। आई० आई० एल० के रेडियो प्रसारणों और अन्य प्रचार प्रयासों की चर्चा करते हुए रासबिहारी ने सुभाष से कहा कि तोक्यो से किये जानेवाले प्रसारण ठीक-ठाक थे किन्तु सुभाष को चाहिए कि अपनी ओर से कोई अन्य शत्रु पैदा न करें। जिन लोगों को

इन सबका सन्दर्भ विदित था वे इस 'सलाह' का अर्थ भली भाँति समझ सकते थे। यह टिप्पणी अय्यर की सहायता से सुभाष द्वारा वर्मा से किये जानेवाले प्रचार-कार्यक्रमों के लिए थी। उन कार्यक्रमों में ब्रिटेन के साथ साथ अमरीका पर भी काफी चोट की जाती थी। रासविहारी सुभाष को यह जताना चाहते थे कि हमारा शत्रु केवल ब्रिटेन ही है।

यह अवश्य उल्लेखनीय है कि सुभाष ने रासविहारी की अंतिम सलाह को माना। उन्होंने अमरीका के विरुद्ध प्रचार करना बंद कर दिया।

रंगून लौटने पर उन्होंने जो कुछ देखा वह निरुत्साहित कर देनेवाला था। माउण्टबेटन की एस० ई० ए० सी० सेना वर्मा पर पुनः कब्जा करने की तैयारी कर रही थी। जापानी सेना की 15वीं डिविजन इस आक्रामक लहर को रोकने के वीरतापूर्ण प्रयास कर रही थी किन्तु उसकी स्थिति बहुत अनुकूल न थी। जो कुछ आई० एन० ए० की सेना में बच रहा था उसे सुभाष ने जापानी सेना की सहायता के लिए अर्पण कर दिया। उन्होंने मलाया का दौरा किया और यथासंभव चेष्टा की कि और अधिक लोग सेना में भरती हों। किन्तु स्वाभाविक रूप से ही कोई अनुकूल प्रतिक्रिया परिलक्षित नहीं हुई। उलटे जैसाकि मैंने बाद में सुना, बहुत से स्थानों पर तो उनका काफी विरोध हुआ। इसका स्पष्ट कारण यह था कि भारतीयों को इस उद्देश्य से भरती किया जा रहा था कि वे जापानियों की ओर से किराये के सिपाहियों की भाँति युद्ध करें। जब दक्षिण पूर्व एशिया के देश भक्त भारतीय रासविहारी के नेतृत्व में आई० आई० एल० संस्था में शामिल हुए थे तो उनका इरादा यह कतई न था।

कार्यक्षमता में सुधार लाने के उद्देश्य से सुभाष ने अपने मंत्रिमंडल में विस्तार किया। एन० राघवन को वित्त मंत्री का कार्यभार सौंपा गया। इस सन्दर्भ की एक रोचक बात यह थी कि यह पद स्वीकार करने से पूर्व राघवन ने रासविहारी बोस को तार भेजकर उनकी स्वीकृति माँगी। उन्होंने ऐसा इसलिए किया क्योंकि इससे पूर्व वे रासविहारी की कार्य-परिषद से त्याग पत्र दे चुके थे जिसका उन्हें पश्चाताप था। यह राघवन की नैतिक महानता थी कि उन्होंने रासबिहारी से परामर्श करना उचित समझा जो आई० आई० एल० के भूतपूर्व नेता होने के अलावा अभी भी सुभाष की संस्था के सुप्रीम कमांडर थे। रोग-ग्रस्त देश भक्त रासविहारी स्वयं टेलिग्राम भेज पाने की स्थिति में न थे और इसीलिए उनकी ओर से, मुझे टेलिग्राम भेजने का आदेश हुआ जिसमें कहा गया कि राघवन मंत्रिमंडल में शामिल होना स्वीकार कर लें। मैंने यह संदेश भेज दिया। राघवन मंत्री बन गये। किन्तु वह स्थिति आ चुकी थी जब कोई या कुछ भी आई० एन० ए० अथवा जापानियों को बचा नहीं सकता था।

रासविहारी की इहलीला 21 फ़रवरी, 1945 को समाप्त हो गयी। मैं उनके

घर पर रात को ठहरा करता था और उनके अन्त स पूर्व जल की अन्तिम बूंद उनके कठ म डालने का अप्रिय काम भी मुझे ही करना पडा। जब उन्ह यह भान हो गया कि मृत्यु उनका जीवन-द्वार खटखटा रही थी तो उन्होने मुझस कहा कि वे भारत की स्वतत्रता का सघष आग बढाने क लिए पुन जन्म लेंगे। उनकी अन्तिम दृष्टि सामन की दीवार पर टँगी तख्ती पर टिकी थी, जो सदा वहाँ रहती थी और जिस पर लिखा था वन्दे मातरम्'।

एक महान जीवन की इति हो गयी थी। भारतमाता न अपना एक महान पुत्र और अपनी स्वतत्रता के सग्राम का एक अग्रणी सनानी खो दिया था। निजी रूप स मेरे लिए उनकी मृत्यु एक बडा आघात थी। वह दुख अभी भी मेरे हृदय म बना है।

कप्तान मोहनसिंह ने बहुत ही घटिया और ओछा रुख अपनाया है जबकि उन्होंने अपनी पुस्तक म रासबिहारी के खिलाफ अनक निन्दात्मक बातें लिखी हैं जो भारत के महानतम स्वतत्रता सनानियो म स एक थे। अन्य अभद्र टिप्पणियो क अलावा, उसने उन्ह बौना' कहकर सबोधित किया है। उस व्यक्ति स बढकर ओछा या बौना' और कोई व्यक्ति नही हो सकता, जो महानायक रासबिहारी बोस के लिए जो भारतीय देश प्रेमियो के बीच महान थ, ऐस अपशब्दो का प्रयोग करता हो। यही गनीमत है कि मोहनसिंह ने अपनी पुस्तक म स्वय अपनी लम्बाई की एवरेस्ट पवत से तुलना नही की।

रासबिहारी की मृत्यु स कुछ ही क्षण पूव जापान के सम्राट ने उन्ह एक अति विशिष्ट सम्मान से विभूषित किया था। सकेण्ड आडर आफ राइसिंग सन' नामक पदक उन्ह सम्राट की ओर से शाही मुख्यालय के लेफ्टिनन्ट जनरल मइजो अरिसूये के कर कमलो द्वारा प्रदान किया गया।

जापानियो ने एक शालीन और गरिमामय अन्त्येष्टि सभा का आयोजन किया जिसकी अध्यक्षता अन्त्येष्टि समिति के प्रधान के रूप म, भूतपूव प्रधानमत्री कोकि हिरोता न की। बडी सख्या मे जापानी गण्यमान्य व्यक्ति तथा समस्त भारतीय समुदाय वहा उपस्थित था। उनका अन्तिम सस्कार तोक्यो के शिबा नामक स्थान पर जोजाजी मदिर म सम्पन्न हुआ और जो जापानी उन्ह अन्तिम श्रद्धाजलि भेंट करने आय, उनम थे जनरल तोजो और मत्रिमडल के अन्य अनेक सदस्य, जो अतीत मे पदस्थ रह चुके थे या उस समय पदासीन थे। मदिर का विशाल भवन व अहाता शोक मनानेवालो स खचाखच भरा था और बहुत से लोग स्थानाभाव के कारण बाहर खड रह थे।

माच, 1945 तक बर्मा म माउण्टबैटन के आक्रमण के कारण जापान की पश्चिमी सीमा की सुरक्षा पक्ति को गभीर खतरा पैदा हो गया था। अप्रैल म बमा क्षेत्र की सना के प्रधान का स्थान जनरल हेइतारो किमुरा ने ले लिया जो पहले

कवावे के अधीन थी। लेकिन उससे अत्यधिक आक्रांत जापानी सेनाओं को किसी प्रकार की राहत न मिली। वह अत्यधिक कठिन स्थिति में थी। बर्मा में घोर अस्तव्यस्तता फैली थी। किमुरा के सैनिक वीरतापूर्वक लड़े किन्तु एस० ई० ए० सी० की सेनाओं के दबाव को सहन करने में असमर्थ रहे। जापानी सेनाओं के एक लाख से भी अधिक सदस्य मार गए। जापान ने आइ० एन० ए० की अनेक टुकड़ियों को जापानी सेनाओं के साथ कंधे से-कंधा मिलाकर लड़ने के लिए भेजा था और उसमें से बहुतों की जान गयी। किन्तु बहुत बड़ी संख्या में वे ब्रिटेन की 14वीं सेना से जा मिले जिससे सुभाष को बेहद क्रोध आया और उन्होंने प्रतीक्षा की कि समय आने पर उन देशद्रोहियों को मजा चखायेंगे।

जापान समर्थित आजाद बर्मा के अध्यक्ष भागकर मोउल्मेइन जा पहुंचे थे और उनके परिवार को थाईलैंड भेज दिया गया था। जनरल आँग सान के गुरिल्ला सैनिक जापानियों की सहायता करने के बजाय, जैसाकि किमुरा ने की थी उल्टे उन्हें परेशान कर रहे थे। सुभाष की स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार का मुख्यालय और आई० एन० ए० भीतरी परेशानियों से बुरी तरह ग्रस्त था। आई० एन० ए० से सैनिकों का अपसरण बदस्तूर जारी था।

किमुरा ने बर्मा छोड़कर थाईलैंड जाने का निर्णय किया। सुभाष अभी भी और अधिक संख्या में आई० एन० ए० में सैनिक भर्ती कर पाने और लड़ाई जारी रखने की आशा पाल रहे थे और ताजा सैनिक भर्ती करने के उद्देश्य से एक बार फिर मलाया गये। किन्तु इस सब का कोई नतीजा नहीं निकला। अन्ततः उन्होंने बैंकाक लौट जाने की किमुरा की सलाह मान ली। आई० एन० ए० के सदस्य कुछ सौ सैनिकों और झांसी की रानी रेजिमेंट की कुछ महिला सैनिकों के साथ 7 मई 1945 को यानी जर्मनी के आत्मसमर्पण और यूरोप में युद्ध की समाप्ति का समाचार आने के एक दिन पूर्व सुभाष बैंकाक पहुंचे।

जब जापानी सेनाएँ बर्मा से हटीं तब तक स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार, आई०एन० ए० और आई० आई० एल० सभी छिन्न भिन्न हो गयी थीं।

सिंगापुर से आनेवाले मित्रों द्वारा मुझे यह समाचार मिला कि बर्मा की पराजय के बाद और थाईलैंड से जापानियों के शीघ्र ही निकाल जाने पर सुभाष एक बार पुनः सिंगापुर गये। उनका उद्देश्य था आइ० एन० ए० में और संख्या में भरती करना जिससे कि वे कम-से-कम मलाया पर तो अपना कब्जा रख सकें जो उनकी आखिरी उम्मीद थी। उनका विचार अभी भी यही प्रतीत होता था कि कोई चमत्कार ऐसा होगा कि जापान अन्ततः विजयी होगा।

इससे भी अधिक बेचैनी का कारण यह था कि वे इस सिद्धांत को ही मान जा रहे थे कि उनके द्वारा दक्षिण-पूर्व एशिया में चलाई जानेवाली समग्र क्रांति के माध्यम से ही भारत को स्वतंत्र कराया जा सकता है। चूंकि प्रचार का अन्य

कोई प्रब ध न था अत सुभाप स्वय, रेडियो सिंगापुर से प्रसारण किया करत और भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का, उसकी पराजयवादी प्रवृत्ति' के लिए दोषी ठहराते हुए एक अ य सशस्त्र आक्रमण का विचार प्रस्तुत किया करत थे। मलाया म हर स्थान पर वे भारतीय सनिको से खून और बाकी समुदाय स धन व वस्तुआ आदि की माग किया करत थ। व बहुत अधिक श्रम किया करत थे, किन्तु लोगो के बीच बहुत अधिक असन्तोष और डर फल गया जि ह यह भय लगा रहता था कि उ हे कदाचित कही अधिक भयानक सकट की ओर धकेला जा रहा था बनिस्वत उस आफत के जो मित्र देशो की सेनाओ द्वारा मलाया पर पुन अधिकार के लिए आक्रमण किये जाने के समय उन पर टूट सकती थी।

ये सब समाचार इतन कष्टकर थे कि एक समय ऐसा भी आया जब मई 1945 मे मैने सोचा कि मुझे वहाँ के भारतीय समुदाय की विपदाआ को बाँटने के लिए और यह जाचने के लिए कि क्या उनकी सहायता के लिए कुछ कर पाना सम्भव है पुन एक बार बगकाक या सिंगापुर जाना चाहिए। मैंने यातायात सुविधा के सन्दभ मे शाही मुख्यालय म एक कनल मित्र से विचार विमश किया किन्तु मुझे बताया गया कि यदि मैं बल दू तो व सुविधाएँ तो मिल सकती थी, मगर जापान युद्ध की दष्टि से सम्पूण विनाश के कगार पर खडा था और एसे प्रयास किये जा रहे थे कि युद्ध को किसी तरह एक सम्मानपूण अन्त दिया जा सके।

इस स्थिति के कारण मैन तोक्यो म ही रहकर जो कुछ बच रहा था, उसे देखन और, हालांकि स्थिति वास्तव मे एकदम निराशापूण थी, कुछ भी व्यवहाय हो करने के लिए तत्पर रहने का निणय किया।

लगभग उसी समय मुझे एक समाचार प्राप्त हुआ, जो काफी कुतूहलजनक था। मुझे पता चला कि एस० ए० अय्यर न, जो उस समय बगकॉक मे थे, सुभाप के साथ वहाँ के पुतगाली वाणिज्य दूतावास के प्रमुख के साथ निरन्तर सम्पक बना रखा था। वहाँ के कौसिल जनरल हालाकि पुतगाली राष्ट्रिक थे किन्तु उनका ज म गोआ म हुआ था। यह बात समझ से परे थी कि एक भारतीय व्यक्ति जो स्वतत्र भारत की अस्थायी सरकार म एक उच्च पद पर आसीन था, पुतगालियो के साथ सम्ब ध क्यो बनाये था। बात कुछ स दिग्ध रग लिये थी। किन्तु मैंने निणय किया कि अय्यर पर खामखाह स देह न करूँ और साचा कि कदाचित ये उनका कोई निजी मामला था और उसमे स देह की कोई बात न थी।

आई० एन० ए० की बाकी कहानी आम तौर पर सवविदित है। बहुत से लोगो के स्वतत्रता अभियान से सन 1947 म भारत को स्वतत्रता प्राप्त हो सकी। उस सेना के प्रभाव के बारे म बहुत कुछ लिखा जा चुका है। आई० एन० ए०

तथा सुभाष का हमारे स्वतंत्रता संघर्ष में निश्चय ही अति सम्मानित स्थान है, किन्तु प्रमुख भूमिका केवल उन्हीं के द्वारा निभायी गयी, ऐसा कहना ग़लत होगा। मेरी दृष्टि में भारतीय स्वतंत्रता मख्यत भारत के भीतर के नेताओं के प्रयासों और देश के भीतर के भारतवासियों के आत्मबलिदान के बल पर प्राप्त की गयी। यह भी सही है कि आई० एन० ए० तथा विश्व के विभिन्न भागों से भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों की ओर से भी उन्हें भारी मात्रा में नैतिक समर्थन मिला। किन्तु हम इन समस्त गतिविधियों के विवरण को उचित परिप्रेक्ष्य में ही देखना चाहिए। यदि व्यावहारिक बुद्धि पर भावना और उत्तेजना को हावी न होने दिया जाता और यदि उसे रोक पाते तो इम्फाल की पराजय की भयंकर त्रासदी भी रोकी जा सकती थी। यह तथ्य भी नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता।

मित्र देशों की सेनाओं के सम्मुख आई० एन० ए० सेना के आत्मसमर्पण के बाद उसके सदस्यों को भारत भेजकर ब्रिटिश शासकों ने उनके कुछ सैनिकों पर अनेक अपराधों के आरोप में मुकदमा चलाया गया। अपराध थे कि साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध, हत्या, हत्या की प्रेरणा और अपने साथी युद्धबन्दियों को अपने साथ मिलाने में जो तरीके अपनाये गये तत्सम्बन्धी अमानुषिक क्रूरता आदि। शासकों को इस बात का एहसास हुए बिना ही आम जनता के सम्मुख इस तरह ब्रिटिश के मुकदमा के चलाये जाने की क्रिया ने भारत में राष्ट्र प्रेम को और भी अधिक भड़का दिया।

ब्रिटेन का युद्ध लड़ने के उद्देश्य से विशाल स्तर पर की गयी भारतीयों की भरती के परिणाम में ब्रिटिश इण्डिया की सशस्त्र सेना में भारतीयों की संख्या पहले से बहुत अधिक हो चुकी थी और अपने ब्रिटिश सहकर्मियों की तुलना में पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण असन्तोष से भरे ये नए अफसर तथा सैनिक अब और अधिक मौन नहीं रह सकते थे। जब तक इंग्लैंड से लाखों की तादाद में सशस्त्र सैनिक आदि भारत में लाये जाते ब्रिटेन भारत को और अधिक दासता की बेड़ियों में जकड़े नहीं रख सकता था।

आई० एन० ए० के मुकदमों के प्रश्न ने अत्यधिक राजनीतिक रूप ले लिया। नेहरू, भूलाभाई देसाई, तेजबहादुर सप्रू और अन्य अनेक नेताओं की प्रेरणा के बल पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने आई० एन० ए० के सैनिकों की पैरवी करने का निर्णय किया। देश भर में राष्ट्रीय स्तर पर एक गहन देश प्रेम की लहर फैल गयी। ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध रोष अपनी चरम सीमा को पहुँच गया। बम्बई में नौसेना के भारतीय अंग ने ब्रिटिश कमाण्डरों के विरुद्ध विद्रोह किया।

आई०एन०ए० के लोग नायकों की भांति महान करार दिये गये। लेकिन इस प्रक्रिया के दौरान जैसा कि ऐसी स्थिति में प्रायः हुआ करता है, अनेक अयोग्य व्यक्तियों को भी ख्याति मिल गयी। आई० एन० ए० के भूतपूर्व सैनिकों ने भारत

की स्वतत्रता प्राप्ति के अवसर पर नौकरियाँ आदि के अनुरोध किये या कह दुहाई दी और अपनी महानता के वशीभूत होकर जवाहरलाल नेहरू ने, बिना यह जानने की चेष्टा किय कि कौन वास्तविक स्वतत्रता सेनानी था और कौन मात्र मिथ्या दावा कर रहा था उन्ह नौकरियाँ व सुविधाएँ आदि प्रदान की। ऐसे भी कुछ लोग थे जिनमे कोई सम्मान आदि पाने की योग्यता ही नही थी लेकिन जिन पर सम्मान प्रतिष्ठा थापा गयी थी। मरे विचार म ऐसी घटना कनल शाह नवाज खाँ स सम्बद्ध थी जि ह नहरू के अधीन स्वतन्त्र भारत की सरकार मे एक मत्री का पद मिला था। युद्ध के आरम्भिक कष्टपूण दिनो म सिगापुर म सभी यह सोचत थे कि उनका बर्ताव अत्यधिक असहायतापूण था। वे केवल अलग बैठकर दूर से तमाशा देखनवाले थे और इस बात के प्रति काफी अनिश्चित थे कि जापानियों के अधीन युद्धबन्दी बने रह या भारतीय स्वतत्रता लीग म शामिल हो जाएँ। (बाद म व सुभाष के कृपाभाजन बन गये थे।)

स्वय अपनी सेवाओं के सही मूल्याकन स वचित होकर किसी शिकायत के आधार पर य सब नहीं कह रहा हूँ। एकदम नही। वास्तव म जैसाकि उन कुछेक भारतीयो की भाँति जोकि आई० आई० एल० और आई० एन० ए० से सलग्न थे और जि ह बाद म भारत की विदेश सेवा म भर्ती कर लिया गया था, मुझे भी ऐसा करने का प्रस्ताव प्राप्त हुआ था। यह वचन भी मिला था कि कालातर म उचित समय आने पर मुझे कही पर राजदूत बनाकर भेज दिया जायगा किंतु मैंने अपने मन म भारतीय स्वतत्रता सघष म अपनी भूमिका को एक और ही नजरिये स देखा था। आइ० आई० एल० के मूलभूत सिद्धातो म स एक था 'अनासक्त कम'। स्वतन्त्र भारत की नौकरशाही व्यवस्था म एक सम्भावित नौकरी पाना मेरे लिए प्रेरणा का कारण नही रहा था। और जब मुझे स्वतत्र भारत के अफसरो के नववग का अग बनाये जाने पर विचार किया जा रहा था तो मैंने उन सब म कोई रुचि नहीं दर्शायी। एक राजनीतिक नियुक्ति की भाँति यदि मुझे सीधे ही एक दूतावास का वरिष्ठ अध्यक्ष बनाकर भेजा जाता तो बात कुछ और होती। किन्तु पेशेवर कूटनीतिकों के चक्र म एक उम्मीदवार की भूमिका जो मेरे मित्रो म स कुछ न स्वीकार की मुझे बहुत पसन्द नही आया।

इसी कारण स स्वतत्रता सेनानियों की खुभी के समान उग आनेवाली पौद के सम्बन्ध म जिन्होंने नेहरू के सम्मुख सलामी दी और नौकरी व अन्य सुविधाओं के उपहार प्राप्त किये अभिव्यक्त मेरे विचारो का स्वय मेरे जीवन व पेशे से कोई सम्बन्ध नही है। जहाँ तक जापान म मेरे कोई कूटनीतिक पद अपनाने का प्रश्न था भारत सरकार मुझ तोक्यो म अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर पाने म सफल नहीं होती क्योंकि मैं मित्र शक्तियों की, कम-से-कम उसके ब्रिटिश अग की, बहुत अधिक वामपथी विचारों वाला व्यक्ति था।

लेकिन मैंन यह नही सोचा कि मक आथर गीर उसके दल के ताक्यो की दायि इचि भवन म अड्डा जमाने और जापान पर आधिपत्य आरम्भ करन के साथ जापान म एक गर सरकारी व्यक्ति की भाँति मेरा काय समाप्त हो गया था। कभी-न-कभी पराजित देश तथा मित्र राष्ट्रा के बीच शाति सधि तो हानी ही थी। मरे मन म न जाने क्या यह विचार हुआ कि उस दिशा म मुझे एक कतव्य का पालन करना था। मैं उत्सुक था कि भावी घटनाओ पर नजर रखू और परिवर्तित स्थिति म भारत तथा जापान के बीच के सबधो की दिशा म एक उपयोगी भूमिका निभाऊँ।

28

जापान द्वारा आत्मसमर्पण

सन 1944 के अन्त तक तोक्यो तथा जापान के अन्य नगरा पर अमरीकिया द्वारा भारी बम वर्षा की जा चुकी थी। स्थिति दिना दिन बिगडती ही जा रही थी। कष्ट तथा विपन्न सहन कर पाने की जापानियो की घोर क्षमता का ही प्रताप था कि राजधानी तथा अन्य स्थाना म ग़र सनिक नागा के बीच सामान्य गतिविधि का कुछ आभास दिखायी देता था। हालाँकि हमन हथियार पूरी तरह नही डाले थे, तो भी शिवराम के लिए और मेरे लिए यानी हम दानो क लिए अपना काम जारी रखना अधिकाधिक कठिन होता जा रहा था।

तोक्यो म बन रहना निरथक दखकर द्वितीय ब्यूरो स मर अनुराध किय जाने पर बडी कठिनाई से परिवहन का प्रबन्ध करवाने के बाद बडा जोखिम उठाकर शिवराम सिंगापुर के लिए रवाना हो गय। व रासबिहारी बोस के निधन म कुछ ही समय पूव रवाना हुए। हालाँकि इस बात म कोई सन्देह न था कि युद्ध जापान की पराजय के साथ समाप्त हो जाएगा, तो भी मैं वही बना रहा। मक आथर की सनाएँ 9 जुलाई, 1944 को लूज़ोन म उतर चुकी थी जसाकि पहले भी कह चुका हूँ और उन्हाने मनीला की आर बढना आरम्भ कर दिया था। 16 फरवरी 1945 का अमरीका के पाचवें बडे के जो पश्चिमी जापान क समुद्री क्षेत्र म 200 मील तक की सीमा म प्रवेश कर चुका था, कोई डेढ हज़ार विमाना ने ताक्या तथा योकोहामा पर बम वपा की। चूकि जापानी वायु सेना की ओर स कतइ कोइ विराध प्रस्तुत नही किया गया था इसलिए यह एक प्रकार स बाधाहीन बम वर्षा थी। जापानी वायु सेना म जो कुछ बच रहा था, वह मात्र उसका कामी काज़े नामक विभाग ही था, जो बी-29 बमवषका के मुकाबले म कुछ भी नही था।

इवोजिमा द्वीप पर अमरीकिया का दवाव बढता जा रहा था। माच मास मे उस द्वीप की सुरक्षा क्षमता पूणतया खडित हो गयी। जापानी तथा मित्र देशा की सेनाआ म हताहता की सख्या बहुत बडी थी। ओकिनावा के लिए भी माच म युद्ध आरम्भ हो गया था और 4 अप्रल को जब जनरल कोइसा न त्याग पत्र दने का

निणय किया और एडमिरल कान्तारो सुजुकी न पद सँभाला तब यह और भी सख्त होता जा रहा था। सुजुकी जिन्होंन, रूस जापान युद्ध म बहुत ख्याति पायी थी, कुछ आनाकानी कर रहे थे, क्योंकि उनका विचार था कि व बहुत वृद्ध हो चुके थे। (वे 77 वष के थे) फिर भी उन्होंने सम्राट की इच्छा के आगे सिर झुका दिया। वह कदाचित ओकिनावा की रक्षा के लिए जापान की ओर से अतिम प्रयास था। किन्तु उसका कोई लाभ न हो सका। जापानी नौसेना ने अपना सर्वोत्तम युद्ध-पोत 72 हजार टन भार का 'यामोतो' जोकि उस समय विश्व म सबसे बडा सागरगामी पोत था, खो दिया और अन्य पन्द्रह युद्ध-पोत भी नष्ट हो गये। सर्वाधिक भयकर व खूनी युद्ध-शृखलाओ म स एक म 12 हजार से भी अधिक व्यक्ति मारे गये थे। मृतका म रासबिहारी के पुत्र मासाहिदे भी थे। अनुमान था कि अमरीकी पक्ष म मतको की सख्या 13 हजार थी।

उधर तोक्यो पर, 9 माच को घोर बमवर्षा की गयी जो अपनी किस्म की घोरतम बमवर्षाओ मे से एक थी। यह रात्रिकाल म आग लगानेवाले बमो का हमला था और इसका उद्देश्य था तोक्यो के उत्तर-पूर्वी बाह्याचल म स्थित जापान की शस्त्रास्त्र फक्टरी को नष्ट कर दिया जाए। कोई साढे तीन सौ बी 29 बमवषको ने 5 हजार फीट की ऊँचाई से तोक्यो पर उडानें भरी और 2 हजार टन से भी अधिक नापाम, मैगनीशियम और फोसफोरस गिराया। जापानी वायुसेना के पास रात्रि को उडान भर सकनेवाले विमान न थे और न ही अधकार मे मार करनेवाले शत्रु विमाना के विरुद्ध कोई रेडार नियत्रण व्यवस्था थी। उस एक रात म, एक लाख से भी अधिक लोग मृत्यु को प्राप्त हुए थ और पाँच लाख लोगो न अपने घरो को राख होते देखा था।

कुछ दिनो के अन्तराल म एक के बाद एक बमवर्षा जारी रही और मई मास तक आधा तोक्यो नगर तबाह हो चुका था। सम्राट यह देखन के लिए कि क्या हो रहा है, अपने महल से बाहर निकले। और जो कुछ उन्होंने देखा, उसस निश्चय ही उन्ह बहुत कष्ट हुआ। लेकिन आम जापानियो न अविश्वसनीय आत्म-सयम का परिचय दिया। वे अभी भी सम्राट के आगे नम्रता से झुकत रहे और शिकायत म चू तक न की।

ओकिनवा के पतन के साथ जापानी द्वीपसमूह पर मित्रदशा की सनाओ की जकड एक निकट सभावना का रूप ले चुकी थी। लगभग दम घुटकर समाप्त होन वाले देश पर यह जकड घातक रूप से मजबूत हो गयी थी। सम्राट क महल अथवा नगर पर असख्य बम गिरानेवाले नीची उडानें भरनेवाले मित्र दशा की सनाओ के युद्धक विमानो द्वारा जानबूझकर बचाई गयी कुछ इमारतो को छोडकर समस्त तोक्यो जल रहा था। अकेले तोक्यो म असख्य लोगो के मर जान क अलावा 50 लाख से भी अधिक जापानी बेघर-बार हो चुके थ। यहबात काफ़ी आश्चयजनक

है कि नगर की लगभग आधी जनता जा वेघर-बार हो चुकी थी, कैंस जीवित बच रही कदाचित इसलिए कि वह ग्रीष्म काल था। यदि शीत काल हाता ता घर-बार विहीन लागा म स बहुत स सर्दी के शिकार हा जात।

शाति की दिशा म बातचीत क प्रयासा के अलावा, युद्ध निर्देशन की सुप्रीम परिषद और कुछ भी नहा कर सकती थी। पिगनोरी तोजो न जिन्हांने पिगेमित्सु के स्थान पर विदश मत्री का पद सँभाला था, सावियत पक्ष द्वारा मध्यस्थता किये जाने की कोशिश की किन्तु रूसी पक्ष की आर स टाल मटाल दिखायी गयी। फरवरी, 1945 म यालटा सम्मलन में सावियत सघ न अमरीका तथा ब्रिटेन को गुप्त रूप स वचन दिया था कि वह यूरोपीय युद्ध क अन्त के तीन महीन बाद जापान के विरुद्ध युद्ध म शामिल हो जाएगा। वास्तव म, प्रशात क्षेत्र म होनवाली घटनाओ के साथ साथ रूस द्वारा युद्ध म शामिल हो जाना अमरीका के लिए बमानी होता जा रहा था जो जुलाइ, 1945 तक रूस की सहायता के बिना ही युद्ध म विजय पान की क्षमता पा चुका था। वस्तुत सावियत सघ स्वय उस सम्मिलित हमल म शामिल हाना चाहता था। अतत जुलाई 1945 म पाटसडाम सम्मेलन न अमरीका ब्रिटेन व चीन का घोषणापत्र जारी किया गया, जिसम जापान स बिना शत आत्मसमपण करन की माग का गयी। प्रधानमत्री सुजुकी न इस अतिम निणय को अस्वीकार किया किन्तु स्थिति पूरी तरह जापान के हाथा म बाहर होती जा रही थी।

6 अगस्त, 1945 का हिरोशिमा पर अणुवम गिराया गया और 9 अगस्त को नागासाकी पर भी एसा ही किया गया। दोनो नगर पूण रूप स नष्ट भ्रष्ट हो गये। उम समय अमरीका के पास हालाँकि एस और बम न थे तो भी खबर गम थी कि ऐसे ही और बम भी गिराये जायेंगे।

जिस दिन नागासाकी पर अणुवम गिराया गया उसी दिन रूस भी जापान के विरुद्ध युद्ध म शामिल हो गया और एक एसे समय पर जब जापान हर दृष्टि स पराजित हा चुका था। वह एक तटस्थ दश के सम्मुख बातचीत के द्वारा युद्ध विराम के लिए समझौता कराने का प्रयास कर रहा था।

समस्त बम वर्षाओ क दौरान म तोक्यो म ही रहा और यही आश्चय करता रहा कि मैं जीवित और सलामत बचे रहन मे सफल कसे हा सका था। मुझे अपना निवास स्थान बार बार बदलना हाता था। म जब और जितनी जल्दी सभव हा पाता गाव अपन परिवार स मिलने अवश्य जाता लेकिन सनिक कमान क साथ सम्पक बनाय रखने के उद्देश्य स, जिसस कि घटनाओ की जानकारी प्राप्त कर सक अधिकाश समय म ताक्यो म ही रहा।

युद्ध मत्री अनामि यद्यपि जापानी सना का हौसला बढा रहे थे और अगस्त 1945 के प्रथम सप्ताह तक उन्ह लडाई जारी रखन का प्रोत्साहन दे रहे थे लेकिन

शाही सना क लाग वडी सख्या म प्रतिदिन मारे जा रह थे। गर सनिक जनसख्या का भी यही हाल था। बी 29 वमवपका की एक के बाद एक आनवाली लहरो की एकदम सही निशाना पर वमवर्षा के परिणामस्वरूप नगर तवाह हा रहे थे। थल माग स स्वदश की द्वीपा की प्रतिरक्षा के उद्देश्य से जापानी पूणस्तरीय भर्ती के प्रयास अभी भी कर रह थ किन्तु उनके य सभी प्रयास निरथकसिद्ध हो रह थे।

15 अगस्त, 1945 को प्रात रडियो सुननवाला न पहले तो किमि गायो (जापानी राष्ट्रीय गान) सुना और फिर अपन सम्राट की आवाज—

अपनी भोली भाली और देशभक्त प्रजा के लिए विश्व की आम स्थिति पर गम्भीर विचार करन और अपन साम्राज्य की मौजूदा वास्तविक स्थिति को देखन के बाद हमने इस स्थिति क निपटारे का एक अति असाधारण कदम उठाकर एक प्रयास करन का निणय किया है। यदि हम यह युद्ध जारी रखते है ता इसस न केवल जापानी राष्ट्र के अतिम विध्वस और सम्पूण नाश की स्थिति उत्पन्न हागी वल्कि समस्त मानव सभ्यता का ही सम्पूण विनाश हो जाएगा। समय तथा *नियति के आदेशानुसार हमन जो कुछ असह्य है उस सहन करक जो कुछ बर्दाश्त के* परे हैं उस वदाश्त करके आनेवाली पीढ़िया के लिए महान शाति का माग अपनान का निणय किया है। भविष्य के निर्माण के लिए समर्पित होन की खातिर अपनी कुल शक्ति को एकजुट कर लीजिये ।"

शाही राजाज्ञा वहुत लवी थी और उसम स कुछ अश ही उद्धत किया गया है। सक्षेप म सम्राट पाटसदाम घाषणा-पत्र को जापान द्वारा स्वीकार कराके जिसम विना शत आत्मसमपण की माग की गयी थी, युद्ध की समाप्ति की घाषणा कर रह थे।

मित्र देशो न 14 अगस्त, 1945 को अपना विजय दिवस मनाया था। एक अति क्रूर तथा त्रासदीपूर्ण युद्ध का असख्य लोगा की मृत्यु और अकल्पनीय कष्टा के वाद, अन्त हो गया था। सत्ता व शक्ति के उच्चतम शिखर स गिरकर एक देश, सम्पूण पराजय और जनता के लिए उसके परिणाम म उत्पन्न होन वाली वणनातीत कठिनाइया के गर्त म पहुँच गया था।

यह घाषणा हालांकि सम्राट द्वारा 15 अगस्त को सुबह को गयी थो लेकिन पाटसदाम घाषणा-पत्र को स्वीकार करन तथा बिना शत आत्मसमपण करन का निणय, वास्तव म 10 अगस्त को, यानी नागासाकी नगर पर बमवषा और उसकी पूण तवाही के अगले ही दिन ल लिया गया था। समस्त सना के विभिन्न अगा की इन दलीला का रद्द करके कि सना को लडन दिया जाए और आवश्यक हा तो समस्त सनिका की वलि दिय जान तक युद्ध जारी रखा जाए, अन्तत निणय लन म उन्ह चार दिन का समय लगा। युद्ध मत्री जनरल कारेचिका अनामी न सम्राट क सम्मुख निणय म परिवतन करन की याचना की। व चाहत थ कि रक्त की

अतिम बूद तक युद्ध जारी रखा जाय। किन्तु सम्राट अडिग रहे। सम्राट का यह निर्णय कि जापान बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण करने को तैयार है, मित्र देशों के प्रतिनिधियों को 14 अगस्त को पहुंचा दिया गया था। अनामी के सम्मुख, जिनका विश्वास था कि जापान की सशस्त्र सेना को कभी भी आत्मसमर्पण नहीं करना चाहिए अपने साथियों को यह बताने का अप्रिय काम था कि वे सम्राट का अपना निर्णय बदलने के लिए राजी करने में असफल रहे हैं। उन्होंने सभी को सूचित कर दिया कि भविष्य में उन्हें पत्थर मारे जाने चाहिए।

युवा अधिकारियों के एक दल ने विद्रोह किया। जनरल तोजो के दामाद, मेजर हिदेमासा कोगा और एक अन्य मेजर कजी हतानका शाही अंगरक्षक विभाग में गये और जबरदस्ती कमांडर के कार्यालय में घुस गये। जनरल मोरी वहाँ उपस्थित थे। विद्रोही चाहते थे कि वे उनके साथ मिलकर सुजुकी मन्त्रिमंडल के विरुद्ध विप्लव खड़ा कर दें। जब मोरी ने इनकार किया तो हतानका ने उन्हें गोली मार दी। इसके बाद मोरी की मुहर का उपयोग करके उन्होंने एक झूठा आदेश गढ़ लिया और शाही अंगरक्षकों को अपने साथ चलने के लिए कहा। वे सम्राट की आत्मसमर्पण संबंधी घोषणा के प्रसारण की प्रति लेने के लिए महल में गये। उन्हें इस घोषणा की प्रति वहाँ नहीं मिली। 14 अगस्त को वे उसकी रिकार्डिंग का टेप हासिल करने के उद्देश्य से प्रसारण केन्द्र में जा घुसे किन्तु पुनः असफल रहे। सम्राट का भाषण योजना के अनुसार प्रसारित किया गया।

14 अगस्त को सामुराई परम्परा के अनुसार जनरल अनामी ने सम्राट के प्रति एक क्षमायाचना लिखी और सप्पुकु (हाराकिरी) यानी आत्महत्या कर ली। जब अनामी अंतिम साँसें गिन रहे थे पूर्वी क्षेत्र की सेना के कमाण्डर, जनरल तनाका ने शाही अंगरक्षकों के देश भक्तों की एक टुकड़ी का नेतृत्व किया और युवा सैनिक अधिकारियों के विद्रोह को दबाने में सफल हुए। कहा जाता है कि वे हो उन विद्रोहियों द्वारा प्रसारण केन्द्र में प्रत्येक व्यक्ति को गोली का शिकार होने से बचाये रख सके जिसके लिए दोनों पूर्व चर्चित मेजर एक सशक्त दल को भरती कर चुके थे।

जब लोगों ने सम्राट का भाषण सुना तो वे रो पड़े फिर भी उन्होंने महल की ओर मुखातिब होकर झुककर सम्मान प्रकट किया।

अगले कई दिन तक, सशस्त्र सेना के युवकों के दल बड़ा असंतोष प्रकट करते रहे और झगड़ालू रुख अख्तियार किये रहे। किन्तु शीघ्र ही स्थिति सामान्य हो गयी। मेजर कोगा उनके साथी हतानाका तथा अन्य बहुत से युवा अधिकारियों ने अपनी ही बंदूकों से आत्महत्या कर ली और बहुत बड़ी संख्या में सैनिक अधिकारियों ने योयोगी सैनिक स्थल पर अनुष्ठानपूर्वक आत्महत्या (हाराकीरी) कर ली थी। अन्य अनेक ने एक साथ आत्महत्या करने के लिए सम्राट के महल के निकट की एक

पहाडी पर हथगोला का उपयोग करके अपनी जान द दी।

राजकुमार हिगाशिकुनी न शुजुकि के स्थान पर अतरिम प्रधान मत्री का पद सभाला क्योकि अधिकाश सनिक प्रसारण पर विश्वास नही करत थ, इसलिए शाही परिवार के अन्य सदस्यो को विभिन्न क्षेत्रो म जाकर जापानी सनिको को आत्मसमर्पण का आदेश स्वीकार करवाने के लिए भेजा गया।

नौसना की कामि काज़े टुकडी के कमाडर एडमिरल मातोमे उगाकी ने अपने विमान को ओकिनावा की दिशा म उडाया और फिर लौटकर नही आये। स्पष्ट है कि उन्होने स्वय अपना विमान गिराकर आत्महत्या कर ली थी। उन्होने एक सदेश लिखकर छोडा था जिसम उनकी कमान के अधीन असख्य युवा पाइलटो की मृत्यु के लिए जिनम किशोर भी शामिल थ, स्वय को दोषी ठहराया था और वायुसेना के वडे के एडमिरल इसोरोक यामामोतो की जान बचा पान म असमर्थता के लिए भी उन्होन अपन आप को ज़िम्मेवार ठहराया था।

कामि काज़े विचारधारा के सृजक वाइस एडमिरल ताकिजिरा आनिषि न तलवार स आत्महत्या कर ली थी। आत्महत्या करन वालो की सख्या बहुत बडी थी जिनम गरसनिक प्रशासन व्यवस्था के अनेक उच्चाधिकारी थ और साथ ही सशस्त्र सनाओ के जनरल व अन्य वरिष्ठ कमाडर भी। पराजय का सदमा और उसक बाद होनवाली भयकर त्रासदी का उन पर इतना अधिक प्रभाव पडा कि वे अपनी इहलीला समाप्त करके राष्ट्र की बुनियादो की भावना को तो कम-से-कम सम्मानित रखना ही चाहत थे।

29 अगस्त स जापान म अमरीकी सेनाओ का प्रवश शुरू हो गया था। 30 अगस्त की सुबह जनरल एखल बरगर विमान अडडे पहुँचे और उसी दिन दोपहर को जनरल मक आथर का सी०-54 विमान बतान अत्सुगी हवाई अड्डे पर उतरा। अमरीकियो के बीच काफी भय था कि उस क्षेत्र म मेक आथर की जान को जापानी सनिको या कामि काज़े विचारवालो म स कुछ स जो हवाई अड्डे के निकट रहत थ, खतरा हो सकता था। इसके विपरीत 15 मील के समस्त सडक-मार्ग पर यानी योकोहामा स जहाँ मक आथर अस्थाई तौर पर ग्राण्ड होटल म ठहरनवाले थ, लेकर अमरीकी राजदूतावास की आकाशोका स्थित इमारत तक जापानी सनिक उनकी रक्षा के लिए तनात थ और उन्ह उसी स्तर का सम्मान दत प्रतीत हो रह थे जोकि सम्राट को दिया जाता था। मक आथर चकित रह गय थ।

रूस न 2 सितम्बर को, जापान के साथ अपना छह सप्ताह का युद्ध समाप्त कर दिया था। रूस न अनुभव किया कि वह जापान के हाथो 1904 म उठाई पराजय का बदला ल चुका था। सावियत सघ न दक्षिणी सखालिन और कुरैल द्वीपो पर कब्जा कर लिया। लेकिन जो कुछ जमनी म हुआ था, उसके विपरीत

जापान की मुख्य भूमि पर रूसी सेनाओं का कब्जा नहीं करने दिया गया था। वस्तुत जापान पर अमरीकी सेनाओं का ही आधिपत्य था जिसमें नाम-मात्र को कामनवल्थ देशों का भी दखल था।

जापानी प्रतिनिधिमण्डल का नेतृत्व करते हुए मामोरु शिगेमित्सु और इम्पीरियल हाई कमान की सशस्त्र सेनाओं का प्रतिनिधित्व करते हुए, लेफ्टिनेंट जनरल योषिजिरो उमेजु ने तोक्यो खाड़ी में ठहरे, अमरीकी युद्ध पोत मिसौरी पर जनरल मेक आथर की उपस्थिति में, 2 सितम्बर को आत्मसमर्पण संबंधी कागज़ात पर हस्ताक्षर किए। आरंभ में उमेजु बहुत क्रुद्ध थे और हस्ताक्षर करने से इनकार कर रहे थे किंतु बाद में उन्होंने सम्राट की इच्छा का पालन किया।

उस अवसर पर बोलते हुए मेक आथर ने आशा व्यक्त की कि 'अतीत के रक्तपात और हत्या आदि की घटनाओं के बाद एक बेहतर विश्व का उदय होगा। आज तोपें मौन हैं, एक भयंकर त्रासदी का अन्त हो गया है। आइये, हम सब मिलकर प्रार्थना करें कि अब विश्व में शांति की पुनर्स्थापना की जा सकेगी और प्रभु की कृपा से वह शांति सदा बनी भी रहेगी, यह कार्रवाई यहीं समाप्त होती है।'

चार सौ से भी अधिक बी 29 विमानों और विमान वाहक पोत पर सवार, डेढ़ हज़ार से भी अधिक विमानों ने इस आयोजन के समापन के उपलक्ष्य में मिसौरी के ऊपर उड़ान भरी जिससे समस्त जापानी जनता की आँखों से अविरल अश्रु धारा बह उठी।

8 सितम्बर को मेक आथर औपचारिक रूप से तोक्यो स्थानांतरित हो गये और दाईइचि भवन में अपना कार्यालय खोल लिया। उसके तीन दिन बाद यानी 11 सितम्बर को अमरीकी सैनिक-पुलिस जनरल तोजो के निवास स्थान पर गयी और उन्हें गिरफ्तार कर लिया। तोजो ने पिस्तौल से गोली चलाकर आत्महत्या करने की कोशिश की। हालांकि वे गंभीर रूप से जख्मी हो गये थे लेकिन अमरीकी डॉक्टरों ने उनकी जान बचा ली। अंतत मेक आथर द्वारा स्थापित 'युद्ध अपराध' न्यायालय ने उन्हें मृत्यु दंड दिया और 23 दिसम्बर को उन्हें फांसी दे दी गयी।

अप्रैल 1951 में (कोरियाई युद्ध के संबंध में ट्रूमन नीति के विरोध के परिणाम में) राष्ट्रपति हारी ट्रूमन द्वारा डिसमिस किये जाने से पूर्व मेक आथर ने कहा था कि उसने जापान का लोकतंत्रीकरण कर दिया था। सम्राट की दिव्यता उनसे छीन ली गयी थी। मेक आथर द्वारा की गयी भविष्यवाणियों में से एक यह भी थी कि जापान आनेवाले 25 वर्षों के भीतर ईसाई धर्म का अनुयायी बन जाएगा। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। मेक आथर के जाने के बाद जनरल मैथ्यू रिजवे ने उनका पद सँभाला। जापान की पुनर्स्थापना तथा पुन निर्माण के लिए प्रदत्त अमरीकी

सहायता वास्तव म महान थी जो वित्तीय और अन्य अनक रूपा म दी गयी थी। उस सहायता के बल पर किन्तु मुख्यत जापान के दक्षता प्राप्त लोगो के कडे तथा सतत श्रम के फलस्वरूप जापान म चमत्कारिक ढग स औद्योगिक व आर्थिक पुनर्स्थापना हुई। 28 अप्रैल, 1952 को सानफ्रान्सिस्को सधि हान स पूव 6 वष तक जापान अमरीका क आधिपत्य म रहा। जापान की युद्धात्तर विकास-उपलब्धि जो उसन एक आर्थिक महाशक्ति के रूप म अर्जित की है, एक ऐसी घटना है जो किसी भी पराजित देश के इतिहास म अभी तक कभी नही देखी गई।

29

सुभाषचन्द्र बोस का अन्तर्धान

वी० जे० दिवस यानी 14 अगस्त, 1945 को बीते 40 वर्ष से अधिक समय हो चुका है जब मित्र राष्ट्रों ने जापान को हराया था और बिना शर्त आत्मसमर्पण करने के लिए उसे बाध्य किया था। भारत में आज भी सुभाषचन्द्र बोस को भारतीय राष्ट्रीय सेना का एक नायक और इम्फाल की भयानक पराजय के बाद एक ऐसा व्यक्ति माना जाता है जिसने ब्रिटिश दासता से भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति को गति दिलायी थी। लेकिन उनकी तथाकथित मृत्यु के बारे में बहुत विवाद रहा है।

इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि वहत्तर पूर्व एशिया युद्ध ने स्वतन्त्र भारत के उद्भव की प्रक्रिया को गति दिलायी। और इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि सुभाष एक महान देशभक्त और स्वतन्त्रता सेनानी थे। ये सब स्वीकार करने के बाद हम एक क्षण रुककर भारतीय स्वतन्त्रता लीग और उससे संलग्न संस्थाओं के उनके नेतृत्व की वास्तविकता और उसके परिप्रेक्ष्य आदि पर दृष्टिपात करना चाहिए। इन सब संस्थाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी आजाद हिन्द फौज। हम सभी भावनात्मक दृष्टिकोण त्यागकर जापानी साम्राज्य के पतन के समय की परिस्थितियों के सन्दर्भ में तथ्यों पर विचार करना चाहिए।

एक रिपोर्ट के अनुसार, सुभाष ने दक्षिण-पूर्व एशिया में जापानी सैनिक अधिकारियों से एक विमान की माँग की थी जो उन्हें तथा उनके सहकर्मियों में से कुछ को जापान नियन्त्रित क्षेत्रों से रूस अधिकृत क्षेत्र मंचूको तक ले गया जिसने युद्ध विराम से कुछ दिन पूर्व ही यानी 9 अगस्त 1945 के दिन जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की थी। विश्वास किया जाता है कि अपने परामर्शदाताओं के कहने पर उन्होंने ऐसा किया था।

एक नेता के गुणों की परीक्षा संकटकाल में ही होती है। उसे अपने अनुयायियों के साथ ही जीना या मरना होता है। यदि अपने साथियों की सलाह पर या स्वयं

अपनी इच्छा से सुभाष की दक्षिण-पूर्व एशिया से निकल भागने के प्रयास की कथा सही है तो इसका अथ यह होता है कि उस घोर विपदा की घडी मे जबकि दक्षिण पूव एशिया के करीब 20 लाख प्रवासी भारतीयो को एक साहसी नेता की अत्यन्त आवश्यकता थी, उन्होंने अपने अनुयायियो तथा आई०एन०ए० को मँझधार म छोड दिया था। मुझे यह विश्वास करने मे कठिनाई होती है कि सुभाष जैसे नता ने एसा अपकार किया होगा। इसलिए उनके भाग निकलने की इस कहानी पर जिसे ऐसा लगता है कि आमतौर पर विश्वास योग्य माना गया है, यकीन करन मे मुझे झिझक होती है।

ऐसे लोग भी है जिन्होने परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप स इस बात का समथन किया है कि, जबकि मित्र राष्ट्रो की विजयी सेना, विशेषकर ब्रिटिश सेना, जो निश्चित रूप से उस क्षेत्र पर पुन कब्जा करने के लिए कृतसकल्प थी, सुभाष के लिए अपना अमूल्य जीवन जापान के हाथो म सौपने की बनिस्बत दक्षिण पूव एशिया से बाहर निकल जाना कही बेहतर था। अन्यथा ताजो की तरह उनको भी मृत्युदड मिलता। उन्ही लोगो का यह भी कहना है कि सुभाष इसलिए भाग निकलना चाहते थे कि उनका विचार था कि वे कदाचित अन्य वैकल्पिक अडडे से भारत के लिए सग्राम जारी रखन म सफल हो सकेंगे। मैं ऐसी किसी भी विचारधारा को स्वीकार करन मे स्वय को असमथ पाता हूँ क्योकि ये विचार कतई तकसगत नही है। विपदाग्रस्त क्षेत्र से भागकर वे कोई उपलब्धि प्राप्त नही कर सकते थ। इस स्थिति की तुलना उन स्थितियो से नही की जा सकती थी जबकि अन्य स्वतत्रता सेनानियो को विदेश मे जाकर स्वदेश के लिए सघष करने की प्रेरणा मिली थी। यानी रास बिहारी बोस तथा राजा महेन्द्रप्रताप जैसे लोगो के स्वदेश छोडने की प्रेरणा से यह स्थिति भिन्न थी।

कोई भी व्यक्ति सुभाष को ऐसा नता नही मानगा जो किसी भी स्थिति म अपने लोगो का साथ छोडकर अपनी सुरक्षा के लिए भाग जायेंगे। उनम अत्यधिक साहस था तथा एसी कारवाई उनक लिए बहुत घटिया होती। उनका गतव्य स्थान रूस या रूस द्वारा नियत्रित क्षेत्र भी नही हो सकता था क्योकि भारत की स्वतत्रता के सघष के लिए किसी नई कारवाई का निश्चित रूप स रूस ऐसा इसलिए अनुकूल स्थल नही हो सकता था क्योकि रूस सुभाष के शत्रु ब्रिटेन का मित्र था और जापान क साथ युद्ध मे सलग्न था जोकि सुभाष का मित्र देश था। इसलिए उस परिस्थिति मे मास्को के तत्वावधान म एक नव भारतीय स्वतत्रता केन्द्र की स्थापना की योजना की दलील मे कोई दम नही दिखायी देता।

यह भी कहा जाता है कि वे जापानियो की सहायता स अपन प्रयाण के प्रबन्ध की कोशिश कर रह थे कि उन्हे विमान द्वारा रूस या रूस नियत्रित किसी क्षत्र म भेज दिया जाय। जापानियो के मनोविज्ञान का लेश मात्र ज्ञान रखन वाला

व्यक्ति यह विश्वास नही कर सकता कि कोइ जापानी पाइलट एक रूसी अडडे तक या फिर रूस द्वारा अधिकृत वायु क्षेत्र म उडान भरना स्वीकार करेगा। एसा करने स पहले ही वह अय किसी विधि स, जिनम म सर्वाधिक सभावना जापानी पारपरिक हाराकिरी की है या फिर एक कामी काज की भाँति शत्रु व निशान पर स्वय अपना विमान गिराकर आत्महत्या करना कहा बेहतर समझगा। और कोइ जापानी कमाडर ऐसी उडान के लिए एक विमान तभी भेजगा जब वह उस विमान को धरती पर लौट आने या इसके सवारो क जीवित रहन की कोई आशा न रखता हो।

कहा जाता है कि एक विमान पर जिस पर कुछ जापानी अधिकारी भी उडान भर रहे थ सुभाष क लिए और उनके एक सहायक कप्तान हबीबुरहमान के लिए सीटें सुलभ कराई गयी थी। यह भी कहा जाता है कि उस विमान पर सुभाष के सामान के अश के रूप म बडी सख्या म बक्स भी मौजूद थे जिनम स्वण और अन्य मूल्यवान वस्तुएँ भरी थी। माग म ताइपह म वह विमान दुघटनाग्रस्त हो गया और जलत विमान म सुभाष की मृत्यु हो गयी। एक रिपोट के अनुसार हबीबुरहमान को भी कुछ चोट पहुँची थी और यह तब हुआ था जब वह तथाकथित सुभाष के कपडा मे लगी आग बुझान की कोशिश कर रह थे। दूसरी ओर हाल तक ऐसे लोग भी रह हैं जिनका विचार था कि सुभाष अभी भी जीवित है और कही छिपे हुए हैं। इस सदभ म अनेकानेक बेतुकी अटकलें लगायी जाती रही है जिनम से कुछ तो अति रोमाचकारी है और एक चल चित्र के लिए बढिया सामग्री सिद्ध हा सकती है।

मेरे विचार म सुभाष के लापता होन के सबध म जितनी भी रिपोर्टें प्रचलित है वे सब अविश्वसनीय है।

मैने पहल ही चचा की है कि किसी जापानी विमान द्वारा सुभाष को रूसी क्षत्र म उडा न जाने की बात एकदम बचकाना है। अन्य बातो की चर्चा करत हुए, भारी मात्रा म धन व स्वण आदि का जोकि रिपोट के अनुसार विमान पर ले जाया जा रहा था, प्रश्न भी विचारणीय है। कहा जाता है कि यह धन-सम्पदा दक्षिण पूव एशिया के लोगो विशेषकर मलाया के गरीब श्रमिको द्वारा चदे म दिय गये मूल्यवान आभूषणा क रूप म थी। जसाकि मैं पहले भी कह चुका हूँ, विवाहित स्त्रियाँ अपना मगलसूत्र तक उतारकर सुभाष के युद्ध-कोष के लिए अपण कर दिया करती थी। उन समस्त आभूषणो का क्या हुआ ?

कहा जाता है कि यह विमान दुघटना फारमोसा मे हुई जिसम सुभाष जलकर मर गये। यह बात भी काफी सदेहात्मक प्रतीत होती है। बताया गया कि सुभाष के अलावा कुछ अय व्यक्ति भी तथाकथित दुघटना मे मारे गय थे, किन्तु जहाँ तक मुझे ज्ञात है जिन जापानी यात्रिया के मरन का समाचार दिया गया था व

जीवित रहे थे। और यह भी विश्वसनीय नही है कि एक विमान के करीब एक दजन यात्री और क्रू म से दुघटनाग्रस्त होने पर केवल एक व्यक्ति यानी सुभाष की ही मत्यु हुई। अय कोई इस बात का कुछ भी समझे म तो इसे मात्र मन गढत विवरण ही मानता हूँ।

जहा तक आभूषणा से भरे अनेक बक्सो का प्रश्न है वह और भी रहस्य मय है। उस समय की जो भी जानकारी मुथे प्राप्त हुई है, उसमे इसका कही काई प्रमाण नही मिलता। तथाकथित विमान दुघटना म वच रहे कुछ आभूषण और अय वस्तुएँ युद्ध के वाद जापान सरकार द्वारा भारत सरकार को सौपी गयी थी। ये मामूली वस्तुएँ वास्तव म, भारतीय समुदाय के एकत्र युद्ध-कोष का एक भाग थी या नही—यह कुछ निश्चित नही है। मुझे निजी रूप से इस विषय मे भी सदेह है। वे वस्तुएँ कही से भी उठायी गयी हो सकती है। जो भी हो, बाकी आभूषणा आदि का क्या हुआ जो मोटे अनुमान के अनुसार सैंकडा किलो ग्राम वजन के थे। अब तक इस प्रश्न का सतोषजनक उत्तर प्रस्तुत नही किया जा सका है।

विमान दुघटना, सुभाष की तथाकथित मत्यु और जा धन तथा आभूषण वे ल जा रह उसके गायब होन की समस्त घटना के कुछ अति सदेहपूण पहनू है।

इस बात पर तो आम सहमति प्रतीत हाती है कि आरम्भ म एस० ए० अय्यर तथा हबीबुरहमान दानो ही के सुभाष के साथ जान की बात थी किन्तु स्थाना भाव के कारण यह निणय किया गया कि केवल हबीबुरहमान ही उनके साथ जायेंगे। किन्तु तथाकथित विमान दुघटना के वाद दो या तीन दिन के भीतर ही एस० ए० अय्यर तोक्यो पहुँच गये। वे कुछ दिना के लिए तोक्यो के शिबापी क्षत्र म दाइ इचि होटल मे भी ठहरे थे।

आई०आई०एल० के प्रचार विभाग के कुछ सदस्या ने जो उसी होटल म ठहरे हुए थ, उनम भेंट करने की चेष्टा की कितु वे टाल मटोल करते रहे या कतराते रह। लेकिन एक जापानी ले० कनल कदामत्यु साय देर तक अनक घटा के लिए उनके साथ उनके कमरे म थे। उनके बीच क्या बातचीत हुई इसकी कोई प्रामा-णिक जानकारी तो प्राप्त नही है, लेकिन यह अफवाह खूब गरम थी कि सुभाष के लोप होने और भारतीय स्वण-सम्पदा के बहुत बडे भाग के गायब हो जान के सबध म क्या कहानी गढी जाये इस दिशा मे बहुत योजनादि बनाई गयी थी।

अगस्त 1945 के अन्तिम सप्ताह मे ए०एम० साहे के निवास स्थान पर अय्यर से मेरी भेंट हुई जहा मैने साहे द्वारा लाया गया एक विशाल धातु का बक्सा भी देखा। मैं उसका आकार देखकर उत्सुक हो उठा था और उम हिलाकर उसके वजन

का अदाज करना चाहता था। वह बक्सा इतना भारी था कि लाख कोशिश करन पर भी (और मैं कोई कमजोर व्यक्ति न था) वह टस से मस न हुआ। तब मुझे यकीन हो गया कि उस बक्से म क्या भरा था। कपडे तो कतई नहीं थे, कदाचित कोई और भारी धातु भरी थी। मैंने अय्यर स पूछा, उस बक्से म क्या था। वे पूणतया चालाकी भरा रुख अपनाकर केवल इतना बोले, 'कुछ महत्वपूण है"। जो भी हो वह मजाक करने का अवसर तो कतई न था।

अय्यर के गोलमाल जवाब का अथ केवल यही हो सकता था कि उस बक्से के साथ कोई रहस्य जुडा था जो वे मुझे बताना नही चाहत थे। भारतीय स्वतत्रता अभियान के एक महत्वपूण सदस्य तथा भूतपूव सहकर्मी के नात मेरे प्रति उनका आचरण बेहद विचित्र था।

साहे के घर से अय्यर ब्रिटिश राजदूतावास के प्रमुख गुप्तचर-अधिकारी कनल फिग्स के पास गया और आत्मसमपण कर दिया। उस घटना के दो-एक दिन बाद ही हबीबुरहमान भी कनल फिग्स के पास गया और आत्मसमपण कर दिया। अय्यर तथा हबीबुरहमान को बाद म ब्रिटिश अधिकारियो द्वारा भारत भेज दिया गया। मुझे बताया गया कि अय्यर को राइटर सस्था की ओर से समस्त 'बकाया तनख्वाह' दी गयी और हबीबुरहमान को भी ब्रिटिश सरकार की ओर म उसका समस्त दातव्य प्राप्त हुआ जिसके उपरान्त उसने पाकिस्तान मे जाकर सेवा करने की इच्छा व्यक्त की। सुभाष के सर्वाधिक विश्वासभाजन इस सहयागी ने भारत मे बन रहने को अवाछनीय माना।

आजाद हिंद फौज की कहानी' नामक स्वय अपनी पुस्तक मे अय्यर ने कहा है कि जब वह तोक्यो मे था तो जापानी विदेश मत्रालय द्वारा उससे अनुरोध किया गया था कि विमान दुघटना और सुभाष की मत्यु के समाचारवाली रेडियो सूचना की रूपरेखा तयार करने म सहायता करे। मेरे विचार म इस सबसे षड्यत्र की बू आती है। पहली बात तो यह कि विदेश मत्रालय (जापान प्रसारण निगम) एन० एच० के० का सचालन नही करता था। दूसरी बात यह कि अय्यर की सहायता की माग भला क्या की जाती ? यदि सहायता पान के लिए किसी स पूछा भी जाता तो हबीबुरहमान निश्चय ही अपेक्षतया अधिक तकसगत विकल्प था। जब वह तथाकथित दुघटना स्थल पर मौजूद ही न था तो उस उस सबकी जानकारी कस हो सकती थी।

सुभाष के गायब हो जाने की घटना की छानबीन के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा दो आयोगो की नियुक्ति की गयी थी। एक था शाह नवाज खाँ आयोग तथा दूसरा जस्टिस खासला आयोग। मुझे निजी जानकारी है कि जापान म इन आयोगो की गतिविधि क्या रही। वे इस रुख से अपना काम करते रहे मानो उनका कतव्य यह सिद्ध करना था कि सुभाष की तथाकथित विमान दुघटना म

मृत्यु हो गयी थी और इसीलिए अपनी रिपोर्ट में उन्होंने लिखा कि वे दुर्घटना में मारे गये। उन्होंने सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा सबद्ध व्यक्तियों से बातचीत करने का कष्ट नहीं किया जो सच्चाई में गवाही दे सकते थे और आसानी से जिन तक पहुँचा भी जा सकता था। मेरा विचार है कि जिन गवाहों को बुलाया गया और जो प्रश्न पूछे गये उनमें से अधिकांश ने अपनी जानकारी के बजाय जी हुजूरी का ही परिचय दिया। तथ्य यह था कि उनके पास जानकारी थी ही नहीं। मेरे विचार में वह सब नकली या दिखावे भर की कारवाई थी।

जस्टिस खोसला ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि चूंकि भारत सरकार व फॉरमोसा सरकार के साथ राजनयिक सबध न थे, इसलिए वे ताइपेह जहाँ दुर्घटना हुई बताइ गयी थी नहीं गये। जज महोदय के प्रति पूर्ण सम्मान के साथ मैं कहना चाहूँगा कि यह तर्क एकदम बचकाना था। यदि ताइवान सरकार से अनुरोध किया जाता तो वे समस्त सभव सहायता सुलभ कराते। इस सबंध, कोई कूटनीति का चक्कर न था, वाँछित यह था कि भारत में आम रुचि के एक महत्वपूर्ण विषय के बारे में सत्य का पता लगाने की चेष्टा की जाती। रिपोर्ट में इस बात का कोइ संकेत नहीं कि आयोग ने कभी फोरमोसा अधिकारियों तक कोई प्रस्ताव पहुचाया हो। फोरमोसा सरकार तथा भारत सरकार के बीच आज भी कोइ राजनयिक सबध नहीं है, फिर भी भारतीय फोरमोसा जाते आते हैं। मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि आयोग की कारवाई के प्रति मेरे मन में विशेष आदर नहीं है।

सन 1950 51 में मैंने सलाह दी थी कि सच्चाई जानने की मात्र आशा यही थी कि पूछताछ के लिए सयुक्त भारत जापान आयोग की नियुक्ति की जाय। जापानी तथा भारतीय दोनों ही देशों के समाचारपत्र इस प्रयास के प्रति काफी उत्साह दिखा रहे थे और उनमें से कुछ में सपादकीय लेखों में ये परामर्श भी प्रस्तुत किया गया कि यही एक मात्र तरीका था जिसके द्वारा किसी सार्थक परिणाम तक पहुँचा जा सकता है। वास्तव में इतना लबा अर्सा बीत जाने की वजह से सत्य की खोज निकालना एक सयुक्त आयोग के लिए भी सभव हो सकेगा, इसका भी कोई आश्वासन न था, लेकिन यदि कुछ भी सभव था तो वह ऐसे ही आयोग के माध्यम से ही उपलब्ध किया जा सकता था। भारतीय सिविल-सेवा के भूतपूर्व सदस्य तथा ससद सदस्य, श्री एच० वी० कामत ने, जिन्होंने राजनीति में प्रवेश करने की इच्छा से नौकरी से त्याग पत्र दे दिया था और जो कम से कम अपने राजनीति काल में सुभाष के परम भक्त थे इस परामर्श का समर्थन किया था जो भारतीय ससद में उनके एक भाषण के रूप में प्रकाशित किया गया था। उन्होंने कहा कि मेरी सलाह को कार्य रूप दिया जाना चाहिए।

भारत सरकार ने जापान सरकार का सहयोग प्राप्त करने के प्रयास किये।

एक भारतीय जांच आयाग को समस्त सुविधाएँ सुलभ कराने का वचन न्नवाला जापान सरकार न सयुक्त आयोग के प्रस्ताव के मामले म कतरान की प्रवत्ति दिखायी। इसका कारण भांप लेना कठिन बात नहा। यदि व अछूत बच रह सकते थ, ता उन्हान अपनी गदन आग करन की बात का ठीक नही समझी। मरा विचार है कि भारत सरकार द्वारा इस बात पर बल न दिया जाना एक भूल थी। इन सबका कुल परिणाम यह हुआ कि दोना आयोगा पर बहुत अधिक व्यय खच हुआ जिनकी रिपोर्टें मेरे विचार म एकदम अविश्वसनीय हैं।

जब शाह नवाज आयोग क लोग तोक्यो म थ तब एक बार आयाग के एक सदस्य श्री मित्रा न मुझस सम्पक स्थापित किया था कि अपनी निजी हैसियत म मैं इस विषय पर अनौपचारिक रूप से प्रकाश डाल। शाह नवाज न स्वय मर साथ मिलन का कोई प्रयास नही किया और मैं इसका कारण आसानी स समझ सकता था। आई० एन० ए० के आरभिक काल म शाह नवाज दूर बैठकर तमाशा देखन वाला म स था और भारतीय स्वतनता अभियान के लिए भी उसन केवल आशिक योगदान ही दिया था। मैंन श्री मित्रा को बताया कि जिस प्रकार आयोग अपनी कारवाइ कर रहा है वह सब गलत है। किसी भी जाँच आयोग को एक निश्चित धारणा के साथ नही आना चाहिए और फिर उसी बात का सिद्ध करन के प्रयास नही करने चाहिए जो वह पहले ही निणय कर चुका हो। यदि वे खुला दिमाग़ रखते तो उन्हे अनक अनुमानो के साथ काम आरम्भ करना चाहिए, उदाहरण के लिए (क) जावित ? (ख) मृत ? (ग) पकड़कर बन्दी बनाय ? (घ) खोय या लापता ? (ङ) आत्महत्या ? (च) हत्या ? इन सभी सभावनाआ म स कोई भी असभव न थी इसलिए प्रत्येक प्रश्न के सम्बन्ध म पूण विस्तृत छान-बीन की जानी चाहिए थी जो नही की गयी।

मैंन जो कुछ लिखा है वह लागा को शायद बहुत अथपूण प्रतीत न हो, किन्तु यदि मरी टिप्पणियो स जिम्मेदार हल्का मे, कम-स-कम कुछ निष्पक्ष विचार ही जागत हैं, ता मुझे बडा सतोष होगा। निजी रूप म मुझे कतई यकीन नही है कि सुभाष ने वाकई जापानी आत्म-समपण क काल मे तहस-नहस हुई सस्थाओ से दूर भागने का कोई प्रयास किया होगा और यदि किया भी हागा तो उन्हें उसम सफलता प्राप्त हुई होगी। दुर्भाग्यवश मेरे पास भी अपने सन्देहो के समथन मे कोई ठोस प्रमाण नही हैं, किन्तु मैं सोचता हूँ कि एक तकहीन मस्तिष्क ही मेरे द्वारा प्रस्तुत प्रश्नो की सभावनाओ का असगत मानेगा।

इस सन्दर्भ म मुझे स्पष्ट याद है कि सन 1951 की गर्मियो म एक दिन दिवगत वी० के० कृष्ण मनन जवाहरलाल नेहरू के विशेष प्रतिनिधि के रूप मे विभिन्न स्थला की यात्रा के दौरान जिसम पीकिंग भी शामिल था, कुछ समय के लिए तोक्यो आये थे। वे इम्पीरियल होटल म ठहरे थे, जहा कुछ समय के लिए

दुघटना 18 अगस्त, 1945 का हुइ (जब स्वय उसी क वचनानुसार, वह स्वय सुभाश्र म था) और यह कि उस दुघटना म सुभाष री मृत्यु हा गयी, क्योकि हबीबुरहमान न उस एमा बताया था, और हबीबुरहमान, बडी कुलान मना वत्ति वा व भगवान को मानने वाल' व्यक्ति थ। मैं, मोहनसिंह द्वारा किय गय हबीबुरहमान के वणन स कतई सहमत नहा हूँ। माहनसिंह री सत्यनिष्ठ बाता क प्रति भी मरी काई आस्था नही है। यदि उसकी पुस्तक म स झूठ अयथाथ विषय विवरण, तथ्या के विरूपण और मनगढत बाता की सूची बनायी जाय ता मेरे विचार म वह बहुत ही लम्बी हागी।

युद्धकाल म जापानी या अय किसी भी पग द्वारा विभिन्न षडयन्त्रकारी अथवा छिपी छद्म गतिविधियाँ सम्पन्न की ही जाती हैं। असामान्य स्थिति म किसी को भी पूण विश्वास नहीं हा सकता कि कौन जीवित ह, कौन शत्रु द्वारा पकडा जा चुका है या मारा जा चुका है या खो गया है। इसी तरह यह भी ठीक-ठाक पता नहीं चलता कि एक विमान जिस क, ग या ग काय सौंपा गया था उसने उस पूण किया है या नही आदि। एक व्यक्ति यह विश्वास भी कम करें कि एक विमान जिसका नाम, 972 यासाली या फिर कुछ भी हा, वास्तव म था भी या नहा। फिर उसके धरती स उडान भरन की बात ता बहुत दूर रही।

कदाचित कई लोग ऐस थ जा नकली भेष म रहते थ, अवसरवादी और दल बदलू थ। व मित्र, शत्रु, एजेंट डबल एजेंट कुछ भी हो सकत थ। युद्ध अजी बोगरीब स्थितियाँ उत्पन्न करता है जिनकी बिसात पर मोहरे जमकर मनुष्य चाले चलता है। और यदि धन या अय सत्ता सम्पन्न व्यक्ति या सस्थाएँ, विशेष प्रकार से व्यक्ति पर प्रभाव डाले तो जसाकि कभी कभी होता भी है, एक झूठी और मिथ्या कथा को एकदम सत्य व यथाथ का लिबास पहना दना बच्चा क खल क समान ही सहज होता है।

कुछ लोग अपनी स्वामिभक्ति भावना के इतन पक्क हात हैं कि वे अपन साथियो का साथ छोडने या उनस दगा करने की बनिस्बत आत्महत्या को बेहतर मानते हैं। कुछ ऐसे भी होत है जिनकी आत्मा पर इन सबका कदाचित कोइ प्रभाव नही पडता। ऐसे लोग किसी खास दश के हा हा, ऐसा नही है। वे किसी भी स्थान, किसी देश म हो सकते है जिनम भारत व जापान भी शामिल है। उदाहरण के लिए युद्ध के दौरान जो गुप्तचर ब्रिटेन व अमरीका के विरुद्ध षड्यन्त्रकारी गति विधिया में सलग्न थ, बताया जाता है कि जापान के आत्मसमपण के बाद उन्ही गुप्तचरो न विभिन्न प्रकार की गुप्त सूचना देकर विजेता अधिकारियों की बडी सहायता की थी।

ऐस व्यक्तियो का किसी खास कठिनाई के बिना ताक्यो म भी पाया जा सकता है और वस ही लोग अय स्थानो पर भी अवश्य हागे। 1940 के दशक के अन्त में

और 1940 के दशक के प्रारंभिक काल म मारु नाच्चि क्षेत्र मे नायगाई भवन की चौथी मजिल पर एक कार्यालय था, जहाँ सुदूर पूव के अतर्राष्ट्रीय युद्ध अपराध यायालय के कायकलाप म अमरीकी अभियोक्ताओ द्वारा, जिनका नतत्व जोसफ कीनम के हाथ म था, जापान के विरुद्ध सामग्री तयार व एकत्र करन का काम किया जाता था। उसी भवन की पाँचवी मजिल पर भारतीय सम्पक मिशन का कार्यालय भी था। किन्तु पाँचवी मजिल पर सामा यत वहाँ के गुप्त कार्यालय म जिसे आम तौर पर 'युद्ध इतिहास कार्यालय' कहा जाता था, कायरत लोगो के अलावा अ य किसी व्यक्ति को जान की मनाही थी। कि तु उस कार्यालय के एक महत्वपूण सदस्य थे मेजर फुजिवारा इवाईइचि जो कप्तान मोहनसिंह को सरक्षण देते रहे थे और जिन्होने आई० एन० ए० के गठन का दावा भी किया था। मेरा विचार है कि यह वही कार्यालय था, जिसने जापानी सूत्रो स 'कोई पाच लाख' सर्वाधिक मूल्यवान ऐतिहासिक दस्तावेज, पुस्तके और सामग्री आदि एकत्र करके, जिनम सरकारी सग्रहालयो और विभिन्न विश्वविद्यालयो स सामान इकट्ठा किया गया था, अमरीका भेजने म सहायता की थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ लोगा को सभी कुछ उचित लगता है, न केवल प्रेम व युद्ध म बल्कि शातिकाल म भी। ऐस लाग कदाचित विमान दुघटनाआ या अन्य दुघटनाआ म हताहत लोगा की लम्बी सूचियाँ भी तयार कर सकते ह जो कभी हुई ही न हो। उनम से कुछ तो महान जादूगरा के समान दिन मे रात और रात म दिन दिखा सक्त ह। कौन कह सकता है कि ऐसे असाधारण व्यक्तियो म स कुछ न सुभाप के अतर्धान की घटना म योगदान न दिया हा ?

सुभाप के बच भागने की कहानी को मैं झूठ ही समझना चाहता हूँ (क्योकि मैंने उ ह कभी भी डरपाक के रूप म नही देखा)। अत उन लोगो के साथ बहस मे नही पडना चाहता जा इस सच मानते है। मानव प्रकृति अज्ञेय होती है। भिन्न लोग भि न प्रकार स साचते है, भि न आचरण करते है जो उ ह स्वाभाविक प्रतीत होने ह। उदाहरण क लिए भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के नेतागणो से मतभेद के कारण सुभाप एक अथ म भारत से भाग गये' थे। (यह वाक्य एक मित्र द्वारा सुभाप के बारे मे बिना किसी अपमान भावना के कहा गया था)। राजनीतिक आचार विचारो मे बहुत लोग ऐसा आचरण नही करत। साधारणतया एक व्यक्ति अपनी दृढ धारणाओ की प्रतिष्ठा के लिए चाहे वह हारे या जीते स्वदेश म रहकर लडना श्रेयस्कर मानता है। जिस मित्र की चर्चा मैंने अभी की उन्होंने ये भी कहा कि 'सुभाप ने स्वय को जब बर्लिन म गलत पक्ष म पाया तो बर्लिन से दक्षिण-पूव एशिया के लिए उनका आपातिक प्रस्थान हुआ, हालाकि वह प्रस्थान तत्कालीन परिस्थितियो म, मेरे और रासबिहारी बोस के साथ-साथ आई० आई० एल० के अ य सभी लोगो के लिए भी शुभ था, कि तु सुभाप के लिए एक प्रकार का

पलायन' भी कहा जा सकता है।

ऐसी पृष्ठभूमि म कुछ लोगा के अनुसार यह बात असम्भव थी कि जब स्थिति प्रतिकूल थी और अ य कोई चारा दिखाई नही द रहा था ता सुभाष न दक्षिण-पूव एशिया स भाग निकलन की कोशिश की होगी। इस प्रकार का आचरण किसी यक्ति की गहन प्रवत्ति या धारणा के अनुकूल भी किया जा सकता है। एसी धारणा या विशेषता अच्छी होती है या बुरी यह विवाद का विषय नही है। यह तो मूल्या के आकलन अथवा मूल्या की मा यता का मामला है जिस लेकर मैं बहस मे नही पडना चाहता।

जो लोग भाग निकलन (या पलायनवाद ?) की बात को स्वीकार करते है (मगर आश्चय की बात तो यह है कि उनम स कुछ ता यदि ऐसा हुआ भी था तो उसे एक बुद्धिमत्तापूण कदम की सज्ञा दते है) उ हे कदाचित एक और तथ्य अपनी धारणा की पुष्टि क लिए मिल गया। वह तथ्य यह था कि सुभाष अपने पीछे बर्लिन म अपना परिवार छोड आये थे और किसी स उस विषय म बात तक नही करना चाहत थ। उनके विलापन' के काफी अम्म बाद, यह बात मालूम हुई कि उ होने जमनी म फरवरी 1942 मे, अपनी जमन सक्रेटरी एमिलि पकल म विवाह कर लिया था और यह भी कि उनके एक पुत्री भी थी, जिसका नाम था अनिता'। मुझे कुछ मित्रो से पता चला जो उस बच्ची का देख चुक थ और सुभाष को भी अच्छी तरह जानत थ कि यह बच्ची हू ब-हू अपन पिता पर पडी थी। जब वह बच्ची एक किशारी थी, तो स्वतन भारत म जवाहरलाल नहरू न, अपनी अतिथि की भाति अनिता का स्वागत सत्कार किया था। कि तु सुभाष ने दक्षिण पूव एशिया मे हर किसी का यही बताया था कि वे अविवाहित हैं।

यह बात समझ म आना मुश्किल है कि एक विवाहित व्यक्ति क्या नही कहना चाहता कि वह विवाहित है। विवाह करना कोई गलत बात तो नही है। और कैसा भी राजनीतिक दबाव या परेशानी क्यो न हा सामा यत कोई भी व्यक्ति अपने परिवार म जुडे होने म गव का अनुभव करता है। यह कहना भी जायज हा सकता ह कि विवाह व्यक्ति का निजी मामला होता है, किन्तु यह दलील साधारण लोगा के बारे म लागू होती है। (वास्तव म मैं तो यह भी नही मानता कि यह बात साधारण लागा के सदभ म भी सही हो सकती है)। महान नता सदा ही प्रमुख हात है और लाक प्रसिद्धि का के द्र होते है। उनका निजी जीवन भी पूणतया जन-जीवन की आखो स उनकी शख्सियत स जुदा नही हो मकता। जा आप देखत है अगर उसे ही सच मानत है तो जो आप जानत है वह कस अविश्वसनीय हो सकता है ?

हालांकि मैं सुभाष के साहस और दश प्रेम के प्रति अपमान कतइ नही दर्शाना चाहता तो भी समझता हूँ कि उक्त तथ्य भी काई निहित पलायनवादी प्रवत्ति

का ही प्रमाण रहा होगा। मेरा विचार है कि इस कहावत म काफी सचाइ है कि मानवता (और उसकी सनक भी) की बेहतरीन मिसाल मानव ही है। यह भी कहा जाता है कि प्रतिभा तथा उसकी नितात विपरीत प्रवत्ति के बीच की विभाजन रखा अत्यधिक सूक्ष्म हाती है।

मैं सुभाष का आदर करता हूँ और उन्ह एक महान भारतीय मानता हूँ। किन्तु मैं उन्ह, जसाकि कुछ अन्य लोग कहते ह शहीद' नही मानता। विश्व म बहुत स महान नता हुए हैं जिनमे सुभाष भी एक थे। किन्तु यह जरूरी नही है कि सभी महान शहीद की श्रेणी मे आवे। कुछ महान नेताओ ने बडी बडी गलतिया की ह। मैं कहूँगा कि सुभाष भी उन्ही म से एक थे। उनकी पहली गलती यह थी कि उन्होंने इस आशा म भारत छोडा कि विदेश मे रहनेवाले भारतीयो की एक सना का गठन करेंगे जिसके बल पर शक्ति का सहारा लेकर ब्रिटेन स युद्ध करके भारत का स्वतन्त्रता दिलाई जा सकेगी। उनकी सबस बडी गलती उनका यह विचार था कि व जापानी तथा आई० एन० ए० की सेना के आक्रमण के बल पर भारत का स्वतन्त्रता दिला पायेग। एसी योजना के मस्तक पर उसके जन्म स पूव ही असफलता शब्द' स्पष्ट और खुलासा लिखा हुआ था। कि तु उससे सुभाष क दश प्रेम का महत्व नही घटता। इसका अथ केवल यही है कि अपन राजनीतिक बोध तथा मूल्याकन म और अपनी विशाल ओजस्विता और प्रभावकारी व्यक्तित्व क उपयाग का जो तरीका उन्होन अपनाया उसम उन्होन गलती की। म पुन यही कहता हूँ कि यह मरा निजी मत ह और मैं इसकी पूरी जिम्मदारी स्वीकार करता हूँ। अपना मत किसी पर थोपन का मेरा कोई इरादा नही है।

कहावत है कि आम जनता की स्मृति की अवधि बहुत छोटी होती है। पहले क एक अध्याय म मैंन उल्लेख किया है कि एक अति सुगठित और सक्रिय सस्था के रूप म आई० एन० ए० का सृजन भारतीय स्वतन्त्रता लीग द्वारा किया गया था जिसका नतत्व रासबिहारी बोस के हाथो म था। बहुत विनम्रता के साथ कहना चाहता हूँ कि सुदूर पूर्व और दक्षिण-पूव एशिया म भारतीय स्वतन्त्रता अभियान क दौरान मैं उनका निकटतम और समर्पित सहयोगी था। सुभाष को पहल म ही तयार और अति कायक्षम सस्था मिली थी।

रासबिहारी आत्म प्रचार और दिखावे आदि की बिलकुल भी इच्छा नही रखत थ, उलटे उनसे दूर भागत थ और अपनी समस्त महान ओजस्विता को सक्रिय और कायक्षम सकारात्मक गतिविधियो म लगात थ। सुभाष न केवल नतत्व करना पसन्द करत थे बल्कि एसा दर्शात भी थ और वास्तव म वे एसी भूमिका स मलग्न ताम-झाम व आडम्बर तथा अति उच्चकोटि के शारशराबवाले प्रचार आदि के साथ सबसे अग्रिम पक्ति म रहत थ। कदाचित यही कारण है कि आज भारत के जन मानस म आई० एन० ए० तथा दक्षिण-पूव एशिया म कुल मिलाकर किय जान-

30

जस्टिस आर० बी० पाल का युद्ध अपराधो पर विसम्मत निर्णय

जापान ने जब बिना शर्त मित्र देशा की सेनाओ के आगे आत्मसमपण किया गया उस समय भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था। बी० सी० ओ० एफ० अर्थात ब्रिटिश कामनवेल्थ आधिपत्य सेनाओ के अग के रूप म ब्रिटिश इण्डिया सेना की एक छोटी सी टुकडी जनरल मेक आथर के आधिपत्य शासन के प्रारभिक काल म जापान म तनात थी। भारतीय समुदाय के हितो की रक्षा के उद्देश्य स ब्रिटिश भारत की सरकार न तोक्यो स्थित ब्रिटिश सम्पक कार्यालय के साथ परामश करके श्री एल० पी० जैन को भारतीय सम्पक मिशन का प्रधान नियुक्त किया। जापान के स्थानीय भारतीय निवासी भी, जो युद्ध से पूव एक समृद्ध समुदाय था, अन्य लोगा की भाति अमरीकी वायु सेना द्वारा तोक्यो तथा अन्य नगरा पर बमवर्षा के परिणाम म भारी कठिनाई और गहन वित्तीय हानि क शिकार हुए थे। उन लोगा की सख्या कोई साढे सात सौ थी जिनम से अधिकाश व्यापार म सलग्न थे। य लाग मुख्यत याकाहामा कोबे तथा ओसाका नामक नगरो म थे। तोक्यो निवासी भारतीयो की सख्या अपेक्षतया छोटी थी। कुछेक छात्र भी थ जो जापानी विश्वविद्यालया म पढत थे, लेकिन युद्ध की गडबडी मे फँस कर रह गय थे और भारत लौट जाने मे असफल रहे थ।

भारतीय मिशन प्रधान के सम्मुख भारतीय समुदाय के पुनर्वास के तात्कालिक प्रश्न के साथ-साथ भारत तथा जापान के बीच व्यापार का पुनर्जीवन दिलाने की जिम्मेवारी भी थी जो उनमे स अधिकाश के जीवनयापन के लिए धनोर्पाजन का मुख्य साधन था। जापान की पराजय के बाद काफी अरस तक जापान के साथ कोई अतर्राष्ट्रीय व्यापार नही हो सका था क्योकि समुद्री मार्गों पर मित्र देशो की सनाओ द्वारा सुरगें बिछा दी गयी थी और कोई भी यात्री या माल-वाहक पोत उन मार्गों से आ जा नही सकता था। सुरगा को साफ करके उन मार्गों को निरापद

बनान म कुछ समय लगा।

लकिन इसी बीच एम० सी० ए० पी० अथात मित्र दशा की सनाआ क सुप्राम कमाडर द्वारा एक कार्यालय की स्थापना की गयी जिसका काम था जापान व अन्य दशा क बीच व्यापार सबधी नीति निधारण आदि क मामल निपटाना। हालांकि इस बात म सन्देह है कि श्री जन आधिपत्य सनाआ के अधीन ताक्या स्थित अय मिशनो क अध्यक्षा के समान कुशल या उद्यमी थ लकिन उन्हाने भारतीया क व्यापारिक हिता की रक्षा की दिशा मे इस कार्यालय के साथ मिलकर कुछ आरभिक तैयारी का काम सम्पन्न किया। भारत द्वारा स्वतत्रता प्राप्ति क बाद भारतीय सम्पक मिशन के प्रथम अध्यक्ष थे, भारतीय सिविल सवा के श्री रामराव।

चीन म तत्कालीन भारतीय राजदूत श्री के० पी० एस० मनन न अपन कायकाल म राष्ट्र सघ की आर स कोरिया की तथ्यान्वेषण यात्रा की थी और माग म वे ताक्यो रुके थे तथा जनरल मक आथर स मिल थ। तोक्यो तथा सियोल म(जहाँ सिगमन री राष्ट्रपति थ) स्थिति का दखन के बाद श्री मनन न पत्रकारा के लिए एक वक्तव्य दिया कि उन्हान कोरिया म जो 'री-ग्रटिग' की वह तोक्यो म लक्षित मक आथर पूजन म कही बेहतर था। मक आथर इस बात से बहुत नाराज हुए और के० पी० एस० मनन के वक्तव्य की कफियत मागन और क्षमा-याचना किय जान क उद्देश्य स रामराव का बुला भेजा।

मुझे बताया गया कि रामराव न मक आथर स कहा कि भारत अब ब्रिटेन के शासन के अधीन नही रहा है और एक स्वतत्र दश बन चुका है। वास्तव म मेक आथर को भारत से शिकायत थी क्याकि उनक प्रसगा म भारत ने बराबरी तथा पक्षपात विहीनता के स्तर पर जापान क साथ मैत्री की नीति अपनायी थी। मक आथर का विचार था कि भारत जापान के सन्दभ म अपनी निजी सबध नीति निर्धारित कर रहा है और एस० सी० ए० पी० की नीतियो को फ़रमान की भाँति मान नही रहा है। वस्तुत उनका विचार एकदम सही था।

श्री रामराव क बाद भारतीय मिशन प्रमुख क रूप म और भी कई महानुभाव आये जिनम श्री बी० एन० चक्रवर्ती भी थ। उन्ह पीकिंग से स्थानान्तरित करके भेजा गया था। यह सन् 1948 की बात है, मक आर्थर द्वारा स्थापित सुदूर पूव के अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध अपराधा के न्यायालय म तथाकथित जापानी युद्ध अपराधिया का मुकद्दमा जारी था। मुझे याद पडता है कि श्री चक्रवर्ती ने कलकत्ता हाई कोट के जस्टिस राधा विनोद पाल की बहुत सहायता की थी जो उस न्यायालय मे भारतीय जज की हैसियत से तोक्यो बुलाये गय थे।

ताक्यो मे जस्टिस आर० बी० पाल का आगमन वास्तव म भारत सरकार के अधिकारीवग क साथ मरे सपक की शुरुआत कहा जाना चाहिए। मुकद्दमे स सबद्ध पृष्ठभूमि की सामग्री क गहन अध्ययन के दौरान जस्टिस पाल ने युद्ध स पूव तथा

युद्ध के पश्चात की स्थिति की यथासभव जानकारी प्राप्त करने की काशिश की और साथ ही जापानी रीति रिवाज, रहन-सहन व आचरण तथा उनकी राष्टीय मानसिकता आदि का यथासभव ज्ञान प्राप्त करना चाहा। वे मचुका की एकदम वास्तविक तथा आँखा देखी या प्रत्यक्ष सूचना भी प्राप्त करना चाहते थे। उन्होन जापान तथा मचुका म मेरे प्रवास और काय-कलाप के बारे म और रासबिहारी बोस तथा सुभाष के साथ दक्षिण-पूर्व एशिया म भारतीय स्वतत्रता अभियान म मेरे योगदान के बारे म सुन रखा था। मेरी भूमिका यह थी कि अपने अध्ययन एव जाच आदि के उद्देश्य से उन्होन स्वय विश्व भर म जो विस्तत जानकारी एकत्र कर रखी थी उसकी सगत और पूरक जानकारी प्रस्तुत करूँ।

डॉ० पाल तथा मैं काफी निकट आ गय। हम लोग जल्दी जल्दी मिलते थे और कभी-कभी तो य भेट कई-कई घटा तक चलती थी। वे प्रश्न पूछते और मेरे उत्तर सुनते कभी नही थकते थ। विडम्बना ही कहेंगे कि एक भारतीय वकील को अभियोग पक्ष द्वारा एस पद पर नियुक्त किया गया था कि उसे जापानियो के विरुद्ध दलीलें पेश करनी थी। वे थे केरल के श्री पी० गोविन्द मनन जो मद्रास सरकार म सरकारी वकील के पद पर आसीन थे। सक्षिप्त विवरण व अन्य दस्तावेज आदि तयार करन म सहायता के लिए उनका एक सहयोगी भी था। लकिन कुछ समय पश्चात् श्री गोविन्द मेनन उस काम को करत करते जिसे व अनुचित मानत थ, थक गय। वे जापान के विरुद्ध ब्रिटेन तथा अमरीका की ओर से दलीलें देना नापसद करन लगे और उन्होन भारत लौट जान का निणय किया।

इस सम्बन्ध म एक तथ्य ऐसा है जो अब तक किसी भारतीय या अन्य सूत्र द्वारा प्रकाशित नही किया गया है और वह यह है कि जब श्री गोविन्द मेनन ने भारत लौटन का निणय किया तो उन्होन जस्टिस पाल के साथ निजी और गुप्त वार्तालाप किया जिसम उन्होने जापानी नेताओ के विरुद्ध जो जेल म थ, दलीलें पेश करन म अपनी कठिनाइयो की चर्चा की थी और जस्टिस पाल से यह भी पूछा कि उस अदालत की कारवाई म शामिल रहन के बारे मे उनके क्या विचार है और यह भी कि क्या व ठहरना चाहते भी है या नही। जस्टिस पाल इस विषय मे ठडे दिल से सोचना चाहते थे और जल्दबाजी म कोई निणय लेना नही चाहते थे। इसलिए उन्होने गोविन्द मेनन स कहा कि वे अपनी भावी कारवाई के विषय म शीघ्र ही निणय लेंगे।

सावधानीपूण सोच विचार के बाद श्री चक्रवर्ती के साथ परामश करके उन्होने निणय किया कि भारत का उस मुकदमे म प्रतिनिधित्व न हो, यह बात उचित नही होगी। अत उन्होने फैसला किया कि हालांकि गोविन्द मेनन वापस लौट जाने का सकल्प लिये बठे थे तो भी एक जज होने के नाते वे जापान ही म रहेंगे और खुला दिमाग रखेंगे जैसी कि एक जज से अपेक्षा की जा सकती है।

अपने जीवन में, न्यायिक प्रतिभापूर्ण जिन विभूतियों से मैं मिला हूँ, जस्टिस पाल उनमें से एक थे। आयु व अनुभव की दृष्टि से मैं उनसे कहीं छोटा था और साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय कानून का विशेषज्ञ भी न था। किन्तु उनके इस निर्णय से कि वे न्यायालय की कार्यवाहियों में भाग लेते समय ध्यान और परिणाम के सम्बन्ध में कोई पूर्व धारणा कायम नहीं करेंगे, मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ। एक बार उन्होंने मुझे बताया कि एक जज का कार्य एक वकील के कार्य से भिन्न होता है, उसे कार्यवाही से तब तक अलग नहीं होना चाहिए जब तक वह पूरी न हो जाए। इस धारणा के अनुरूप ही वे समस्त सुनवाई के काल में अन्य दस जजों के साथ बैठे रहे। अन्तर्राष्ट्रीय विधिशास्त्र विशेषकर युद्ध तथा युद्ध अपराधों के सम्बन्ध में उनकी अन्तर्दृष्टि असाधारण स्तर पर गहन थी। अमरीका तथा ब्रिटेन आदि के विरुद्ध जापान की युद्ध घोषणा की पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त करने के लिए उन्होंने बहुत समय लगाया। इम्पीरियल होटल में उनके कमरे कानूनी दस्तावेजों और अन्य विभिन्न पुस्तकों से भरे पड़े थे। अन्य किसी काम में उनकी सामान्य भी रुचि न थी।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने 10 नवम्बर, 1948 को अपना फ़ैसला सुनाया। ग्यारह जजों में से जस्टिस पाल एकमात्र ऐसे जज थे जिन्होंने उस मुकदमे की तर्कसंगति पर असहमति दिखाई। यों तो अन्य जजों की ओर से, कुछ महत्वहीन तकनीकी विरोध सम्बन्धी प्रश्न भी उठाये गये किन्तु, जस्टिस पाल की ओर से सम्पूर्ण विसम्मति के कारण काफ़ी खलबली उत्पन्न हुई थी। इसका कारण यह भी था कि न्यायालय में नियुक्त ग्यारह जजों में से एकमात्र वे ही अन्तर्राष्ट्रीय विधि शास्त्र के विशेषज्ञ थे जिनमें आम कानूनी योग्यता से अलग स्पष्ट विद्वत्ता दिखायी थी।

उन्होंने इस विषय का गहनतम अध्ययन किया था और इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि विश्व के इतिहास में किसी भी समय ऐसा नहीं हुआ था कि एक देश के साथ दूसरे देश के युद्ध को एक अपराध माना गया हो। जो भी हो, ऐसे कार्य के लिए कभी किसी पर मुकदमा तो नहीं ही चलाया गया था।

उनके द्वारा प्रस्तुत एक अन्य मूल विरोध यह था कि सुनवाइयों के दौरान, अभियोग-पक्ष अपने संक्षिप्त विचाराधीन विषयों से कहीं आगे निकल गया है। मैक आर्थर ने उस न्यायालय की स्थापना इस निश्चित उद्देश्य से की थी कि यह निश्चित किया जाय कि जापानी नेता, जिन्हें सुगामो बंदीगृह में कैदी बनाकर रखा गया था पर्ल हार्बर कांड के बाद से लेकर युद्ध समाप्ति के काल तक युद्ध अपराधों के दोषी थे या नहीं। सुनवाइयों के दौरान ऐसा हुआ कि अभियोग पक्ष ने एक पूर्व धारणा लेकर कारवाई आरम्भ की और उसकी पुष्टि के लिए प्रमाण आदि जुटा कर वह उस सुनिश्चित विचार को साबित करने का प्रयास करता रहा। अभियोग

पक्ष ने मुकदमे के घटना के काल से ही जबकि जापान ने मचूरिया पर कब्ज़ा किया और तदनतर मचुको राज्य की स्थापना हुई जापान पर दोषारोपण किया था।

जस्टिस पाल ने अपन फैसले म कहा कि मचूरियाई प्रश्न एव तत्सम्बधी मामले उस यायालय के अधिकार क्षेत्र स बाहर थे। उहे ताजो तथा अय अभियुक्तो के सदाशय पर सदेह करने मे कोई कानूनी औचित्य दिखायी नही दिया जिहोंने (तोजो व अन्य बदियो ने) अमरीका तथा ब्रिटेन की ओर से पक्षपात पूण और वैरपूण व्यवहार और आत्मरक्षा के जापान के राष्ट्रीय अभिप्राय को युद्ध आरभ करने का कारण बताया। डॉ० पाल ने यह कहा कि 'हम कुल मिला कर इस सभावना की अवहेलना नही करनी चाहिए कि कदाचित (इन सब काडो की) ज़िम्मेदारी मात्र पराजित नेताओ पर ही नही थी"।

उहोने यह भी कहा कि "जब समय भावातिरेक और पूर्वाग्रह को शिथिल बना देगा और तक मिथ्या निरूपण का पर्दाफाश कर देगा तब अपनी तराजू के पलडो को बराबर सीधा थाम हुए न्याय की देवी, अतीत की निंदा और प्रशसा का स्थिति म काफी बदलाव की अपक्षा करेगी"। उहोने यह भी कहा कि यायालय न अनेक प्रतिवादियो को इन आरोपा के आधार पर जेल म डाला था कि उहोने मित्र शक्तियो की सेना के युद्धबदियो और नागरिका पर अत्याचार करन का आदेश दिया, उसे प्राधिकृत किया या उसकी अनुमति दी। किन्तु जस्टिस पाल कोई भी ऐसा प्रमाण न पा सके जिससे ये सिद्ध होता कि बदी बनाये गय अभियुक्तो मे से कोई भी व्यक्ति निजी रूप से एस किसी अपराध का वास्तव मे दोषी था।

इसलिए यायालय के सम्मुख निणय के लिए प्रस्तुत प्रश्न अभियोग पक्ष द्वारा सिद्ध नही किया जा सका है। अपने पुनर्विवेचन के समाहार म जस्टिस पाल ने कहा ' मैं यह कहना चाहता हूँ कि अभियुक्तो म से प्रत्येक व्यक्ति अभियोग म शामिल प्रत्यक दोष स मुक्त तथा निर्दोष करार दिया जाना चाहिए और सभी आरोपा से बरी कर दिया जाना चाहिये"।

जस्टिस पाल द्वारा की गयी एक अन्य ऐतिहासिक घोषणा इस चेतावनी के रूप म थी कि 'प्रतिकार' शब्द के निमत्रण की अनुमति नही दी जानी चाहिए। विश्व को वास्तव म उदार मानसिकता और समय बूझ तथा सद्भाव की आवश्यकता है। एक वास्तविक जिज्ञासु मानस म उठनवाला वास्तविक प्रश्न यह था कि क्या मानवता सभ्यता और विनाश के बीच लगी होड को जीतन के लिए उचित रूप म शीघ्र ढल सकती है या नही ? एक यायिक अदालत की हैसियत स हम ऐसा आचरण नही कर सकते जिसस इस भावना को यायोचित ठहराया जाय कि सगत न्यायालय की स्थापना माथ एस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए की गयी थी

जो चाहे ऊपरी तौर पर न्यायिक जामा पहन लें किन्तु अमल में राजनीतिक है'।

युद्ध आरंभ करने के जापान के षडयन्त्र की चर्चा करते हुए जस्टिस पाल ने कहा कि 'बहुत से शक्तिशाली देश, इस प्रकार का जीवन जी रहे हैं और यदि यह कार्य अपराधपूर्ण है तो समस्त अन्तराष्ट्रीय समुदाय अपराधपूर्ण जीवन जी रहा है"। उन्होंने कहा कि 'किसी भी देश ने आज तक ऐसे कार्यों को अपराध नहीं माना है। सभी शक्तिशाली देश अन्य देशों के साथ निकट का संबंध बनाये हुए हैं जिन्होंने ऐसे कार्य किये हैं"।

आगे उन्होंने चर्चा की कि सशस्त्र युद्ध की एक अनिवार्य सहवर्ती भावना है— उस युद्ध में संलग्न प्रतिद्वंद्वियों के मन में पनपने वाली घृणा। देश प्रेम की भावना ने जिसने आवश्यकता के समय में अपने देश की पुकार सुनने के लिए उस देश के वासियों को प्रेरित किया उन लोगों के मन में उस देश के शत्रु के प्रति कटुतम विरोध को जगाया और शत्रु घोरतम घृणा का पात्र बन गया। शत्रु में, उनके समान गुण न रहे और भाषा, जाति या संस्कृति संबंधी उसकी विशेषताएं विलगाव का अति स्पष्ट रूप ले बैठी जो सामाजिक व्यवस्था में गड़बड़ी का, जो कि युद्ध के कारण उत्पन्न हुई स्वाभाविक परिणाम थी। वह मनोवृत्ति और उसी मनोवृत्ति के फलस्वरूप अत्याचार व उत्पीडन आदि की कहानियों पर विश्वास किया जाना कोई कठिन कार्य न था। डा० पाल ने कहा, 'वे सभी तत्व, जो इस प्रकार का प्रचार सुलभ करा सकते हैं न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत मुकदमे में विद्यमान थे"।

डा० पाल ने कहा 'एक और दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य भी है जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। जापानियों के अधिकार में जो बंदी थे उनकी संख्या बहुत बड़ी थी। इसमें ये संकेत मिलता था कि ये एक ऐसा युद्ध था जिसे प्रत्येक श्वेत, जापान के विरुद्ध लड़ा जाना आवश्यक मानता था क्योंकि उनकी दृष्टि में जापान श्वेतों की सर्वश्रेष्ठता का भांडा फोड़ना चाहता था। जिन अन्य तथ्यों के आधार पर उन्होंने विसम्मति जाहिर की वे ये थे कि युद्ध अपराधों के लिए वास्तव में जिम्मेदार अपराधियों के कसूर का निपटारा भिन्न मंचों पर किया जाना चाहिए न कि जनरल मेक आर्थर द्वारा स्थापित न्यायालय में। कोई भी व्यक्ति एक विजेता राष्ट्र पर उन समस्त दुष्कर्मों के तथाकथित अपराधकर्मियों के प्रति गलत दयाशीलता का आरोप नहीं लगा सकता। लेकिन वर्तमान दोषारोपित व्यक्तियों को दोषी भी नहीं ठहराया जा सकता।

जस्टिस पाल का तात्पर्य यह था कि उस न्यायालय का कार्य यह पता लगाना है कि क्या संबद्ध व्यक्तियों में से जिन पर युद्ध अपराधों का आरोप था किसी ने क्रूरता अथवा अमानवीयता का कोई ऐसा काम किया था जो युद्ध अपराध की

सीमा रेखा के भीतर माना जा सकता था। उनका मत यह था कि जिन नेताओं पर यह आरोप था उनमें से कोई भी निजी या औपचारिक हैसियत से ऐसे किसी अपराध का दोषी था। जापानी सेना के सैनिक या अधिकारियों के जिन्होंने अग्रिम मोर्चों पर ऐसे अत्याचारपूर्ण काम किये होंगे, मुकदमों का संगत स्थानीय अदालतों द्वारा या विजयी मित्र देशों की सेना की कमानों द्वारा या तो पहले ही फैसला किया जा चुका था या किया जा रहा है। तोक्यो के इस न्यायालय से यह अपेक्षा की जा रही है कि वे सुगामो जेल में बंदी बनाये गये विशेष व्यक्तियों के अपराधों के संबंध में (यदि कुछ किये गये होंगे तो) कानूनी कारवाई करें।

जस्टिस पाल को उन पर लगाये गये आरोपों का कोई प्रमाण न मिला। अपनी मूल आपत्ति का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा, "युद्ध का कोई भी प्रकार, अंतर्राष्ट्रीय जीवन में, अपराधपूर्ण या अवैध नहीं बना है। एक सरकार का बनानेवाले उसके सदस्य और उसका काम चलानेवाले एजेन्टों ने, तथाकथित अपराध कार्यों के संदर्भ में, अंतर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि में, कोई अपराधपूर्ण कारवाई नहीं की है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय अभी उस स्थिति में नहीं पहुँचा है जिसमें राज्यों, देशों या व्यक्तियों को दोषी ठहराने या दंडित करने के लिए न्यायिक कारवाई करनी आवश्यक हो"। जस्टिस पाल ने अपनी विसम्मति के दौरान यह भी कहा कि ऐसा कोई प्रमाण विद्यमान नहीं है कि अभियुक्तों में से किसी ने भी किसी क्रूर ढंग से युद्ध आरंभ करने की इच्छा प्रकट की हो। उनके द्वारा किसी क्रूर नीति को अपनाने का भी कोई प्रमाण नहीं है। यदि इससे मिलती-जुलती कोई बात थी भी तो वह थी मित्र शक्तियों का अणुबम के प्रयोग का निर्णय।

उस महान भारतीय विधिवेत्ता के अति भव्य और प्रभावशाली फैसले का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग इस प्रकार था—

'भावी पीढ़ियाँ इस भयानक फैसले का निर्णय करेंगी। इतिहास बतायेगा कि इस प्रकार के एक नव अस्त्र के उपयोग के प्रति आम जनता का विरोध तर्कहीन और मात्र भावुकतापूर्ण ही था या कि युद्ध जारी रखने की एक समस्त देश की इच्छा शक्ति को कुचल कर विजय प्राप्त करने के लिए इस प्रकार का अंधाधुंध हत्याकांड वध तथा कानूनी तौर पर सही था"।

न्यायालय के संविधान के कुछ असाधारण नियमों के अनुसार विसम्मतिपूर्ण

कोई फसला अदालत मे नही सुनाया जा सकता था।[1] जस्टिस पाल चाहते थ कि कम से कम उनके फसले का सारांश तो अदालत म सुनवाया ही जाये, जिससे सभी को उनके विचारो की जानकारी प्राप्त हो सके किन्तु आस्ट्रेलियाइ चेयरमन द्वारा य बात नही मानी गयी। कोई 1300 पष्ठो स भी अधिक लबा ये ऐतिहासिक फैसला जहा तक मेरी जानकारी है, औपचारिक स्तर पर पूण रूप स प्रकाशित भी नही किया गया था। लेकिन यह सही है कि अभियुक्त व्यक्ति जानते थे कि जस्टिस पाल ने अपने सहकर्मियो से असहमति दर्शायी थी और समाचार तत्र न इस सदभ मे काफी बडे स्तर की प्रचार प्रसार क्रिया अपनायी थी। समस्त जापानी जनता ने जस्टिस पाल की विश्वास शक्ति को गहन सम्मान की दष्टि स देखा था।

जनरल सेइशिरो इतागाकी, जो मरे अच्छे मित्र थे और जिनके विषय म पहले भी लिख चुका हूँ, अभियुक्ता म से एक थे और बहुमत के फसले के अनुसार उन्हे मृत्यु दड दिया गया था। जब उन्हे जस्टिस पाल के मत की जानकारी मिली तो वे प्रसन्न हुए कि कम से-कम एक विधि शास्त्री तो ऐसा था जिसने उन्हे और उनके सहबदियो को निर्दोष ठहराया था। एक रिपोट के अनुसार उन्होंने यह टिप्पणी की थी कि डॉ० पाल अधकार के बादलो स ढँके विश्व मे एक प्रकाश किरण के समान थ।

यह रोचक बात है कि कालान्तर म जस्टिस पाल के रवये को एक प्रमुख प्रसिद्ध ब्रिटिश विधिवेत्ता लाड हान्के का समथन मिला था।

न्यायालय की कारवाई की समाप्ति के शीघ्र बाद जस्टिस पाल भारत लौट गये। लेकिन यह मेरा सौभाग्य ही था कि उनके लौट जान के बाद भी उनके साथ सम्पक बनाये रख सका।

बाद म तीन अवसरो पर जस्टिस पाल जापान पधारे। पहली बार वे सन 1952 म विश्व महासघो के एशिया सम्मेलन मे भाग लेने के लिए आये। डा० पाल ने जिन अनेक केन्द्रो मे भाषण दिय थे उनम सर्वाधिक प्रमुख थे तोक्यो विश्व

[1] बहुमत वाले फसले के अनुसार निम्न चर्चित जिन सात व्यक्तियो को 23 दिसम्बर 1948 को फांसी दे दी गई थी, वे थे—

(1) 64 वर्षीय भतपूर्व प्रधान मत्री जनरल हिदेकी तोजो।

(2) 65 वर्षीय जनरल कजि दोइहरा जो मंचूरिया के गुप्तचर विभाग के भूतपूव अध्यक्ष थे।

(3) क्वानतुग सेना के भूतपूव कमाडर जनरल सेइशिरो इतगाकि।

(4) 60 वर्षीय जनरल हेइतारो किमुरा जो तोजो मत्रीमडल मे उप युद्ध मत्री थे।

(5) 56 वर्षीय अकिरा मतो जो 1939 स 1942 तक सनिक मामलो के अध्यक्ष और फिलिपाइन मे ले० जनरल यामाशिता के सेनाध्यक्ष थे।

(6) 70 वर्षीय इवाने मत्सुई जो नानकिंग मे जापानी सेना के भूतपूव कमांडर थे और

(7) भूतपूव प्रधानमत्री कोकी हिरोता जो 70 वष के थे।

विद्यालय, वासदा विश्वविद्यालय, हिरोशिमा विश्वविद्यालय तथा फुकुओका विश्वविद्यालय। उनके भाषणो के विषय विभिन्न और व्यापक थे, जिनमे अतर्राष्ट्रीय विधि शास्त्र से लेकर कोरियाई युद्ध से सलग्न मामले तक थे। उन्हे इस बात से बहुत क्लेश होता था कि अमरीका ने कोरिया पर बमवर्षा के लिए जापान का एक अड्डे की भाति उपयोग किया था। वे भारतीय दर्शन व भारत जापान सबधो के विषय मे भी सक्रिय थे और उन्होने उस रूपरेखा का प्रतिपादन भी किया जिसके अनुसार, इन दोनो महत्वपूर्ण एशियाई देशो के आपसी लाभ के लिए इन सबधो का विकास किया जा सकता था। उन्होने वेदान्त, संस्कृत साहित्य तथा भारत व जापान के बीच के युगो पुराने सम्पर्क आदि पर भी विचार व्यक्त किये।

कानून के लिए डाक्टर की उपाधि प्राप्त करने की दिशा मे जस्टिस पाल के शोध प्रबध का विषय था, वेदान्त मे विधिशास्त्र यानी एक ऐसा विषय जिस पर मेरे विचार मे कोई भी व्यक्ति उनके समान प्रभावकारी ढग मे काम नही कर पाया है।

क्रमश सन् 1953 और फिर सन 1966 मे, उनकी जापान यात्राएँ जापान की उन महत्वपूर्ण सस्थाओ के तत्वावधान मे सपन्न की गयी जो भारत व जापान के बीच आपसी समझ बूझ तथा सद्भाव के प्रवर्तन मे ईमानदारी से रुचि रखती है। महान सज्जन यासाबुरो शिमोनाका सन 1953 मे उनके प्रमुख समर्थक और सलाहकार थे। सन 1966 मे जापान के सम्राट ने उन्हे 'फर्स्ट आर्डर आफ मेरिट आफ दि सेक्रेड हार्ट' से विभूषित किया था। इससे पूर्व सन् 1959 मे भारत के राष्ट्रपति ने उन्हे भारत के द्वितीय सर्वोच्च सम्मान 'पद्म विभूषण' से सम्मानित किया था।

मेरे लिए यह विशेष सम्मान की बात थी कि उनकी जापान यात्रा के दौरान मैं हमेशा उनके साथ रहा। उनका औपचारिक अनुवादक और दुभाषिया होना तो और भी सम्मान की बात थी। मुझे सदा उनके साथ मच पर स्थान दिया जाता था ताकि मैं उनके भाषणो की जानकारी उनके जापानी श्रोताओ को सही सही और पक्षपात रहित ढग से दे सकू। मैं स्वीकार करना चाहता हू कि डॉ० पाल की भाषा आदि इतनी उच्च शैली की थी कि मुझे जापानी भाषा के अपने ज्ञान का पूर्ण रूप से और कडा श्रम करके उपयोग करना होता था जिससे कि मैं उनके भाषणो का सही रूपातर प्रस्तुत कर सकू। मैं यह नि सकोच कहना चाहूँगा कि युद्धोत्तर काल के दौरान भारत मे, रवीन्द्रनाथ ठाकुर के स्तर के केवल दो ही भारतीय दार्शनिक थे और वे थे डॉ० राधाकृष्णन और डॉ० राधा विनोद पाल।

भारतीय दर्शन के विषय को छोडकर उनके समस्त भाषणो का अनुवाद तो मैं प्रस्तुत करता था और उनके दर्शनपूर्ण विषयक भाषणो व प्रवचनो की व्याख्या तोक्यो विश्वविद्यालय के प्रो० नाकामुरा किया करते थे, जो दर्शनशास्त्र

के पडित थे और निश्चित रूप से भारतीय दशनशास्त्र की उच्च, अमूत गूढ व दुर्बोध विचारधाराओ के रूपातर की प्रस्तुती म मुझस कही अधिक योग्य।

मेरे लिए सन 1957 की सुखकर स्मतियो म म एक यह थी कि जब मेरा बडा बेटा वासुदेवन नायर भारत सबधी जानकारी आदि पान के लिए भारत गया था तब वह लगभग एक मास तक, कलकत्ता म जस्टिस पाल के साथ उनके घर पर ठहरा और भारत तथा उसकी सस्कृति के विषय म इतना कुछ सीख पान म सफल हुआ जो ज्ञान किसी और स्थल पर, इसी विषय का एक वष का अध्ययन भी उसे न दे सकता था। वह अभी भी उस सहृदयता और दया की याद करता है जो जस्टिस पाल न उसके प्रति दर्शायी थी। उसे 'वासु' कहकर पुकारा जाता था, मानो वह परिवार का ही एक सदस्य हो। डॉ० पाल इस बात पर बल दिया करत थे कि उनका 'वासु' उन्ही के साथ भोजन करे और यथासभव समय उन्ही क साथ समय बिताये तथा भारत और विश्व स सबद्ध विभिन्न विषयो पर उनकी बातें सुन। जब भी मेरा पुत्र मनीला स जहाँ वह एशिया विकास बक म एक वरिष्ठ अधिकारी है, तोक्यो आता है तो इस विषय म अवश्य चर्चा करता है।

जाग कि उक्त काय के लिए मुझे ही क्या चुना गया था सो उन्होंने अपने निणय की घोषणा नही की। मानव प्रकृति की चचलता और ढुलमुलपन को देखते हुए यह बुद्धिमत्तापूण निणय ही था कि अनावश्यक अटकलबाजी और बेकार की कुढन से बचा जाये। उन्होंने उचित ढग से मुझे आवश्यक सूचना आदि दी और हर किसी को यही आभास दिलाते रहे कि मेरी उनके साथ भेंट आदि निजी और अनौपचारिक ही थी जबकि वास्तव म वे अधिकतर औपचारिक ही होती थी।

एस० सी० ए० पी० शासन काल के दौरान अधिकाश मिशनो के प्रमुख अपने कायक्लाप को विजेता देशो के प्रतिनिधियो तथा सहकर्मियो के सीमित दायरे म सम्पन्न करके सतुष्ट रहते थे और आम तौर पर उनका अस्तित्व मेक आथर के मुख्यालय के नीचे के धरातल पर ही था। इन सबके लिए स्थानीय सहायता की आवश्यकता नही के बराबर थी। अधीनस्थ सेनाएँ मित्र देशो के प्रतिनिधियो को मुफ्त ही, चाहे दफ्तर हो या मकान आदि, समस्त सुविधाए सुलभ करा देती थी। किन्तु श्री चेत्तूर चाहते थे कि इन सब नकली और बहुत से सदर्भों म सतही वातावरण से दूर निकल सकें। वे गहराई से यह जानने समझने म अत्यधिक रुचि रखते थे कि विजेता और पराजित पक्षो के बीच जो अपरिहाय बाधा-सी आ गयी थी उसे काटकर पता लगाया जाय कि जापानी समाज के उन्नत वग के भीतरी हल्को मे क्या हो रहा था।

समय असामान्य था। जापानी नेतागण दबे रहना पसन्द करते थे और बहुत मुखर न थे। बात समझ म आने योग्य भी थी क्योकि मेक आथर के आदेशानुसार राजनीतिक तथा आर्थिक रूप से लोगो की छँटनी की जा रही थी। उन्हे चुन चुनकर अलग किया जा रहा था या दडित किया जा रहा था। सो, जहा तक सभव था कोई नही चाहता था कि उसका नाम काली सूची म आये। हर व्यक्ति अतिरिक्त सतकता के साथ चुप्पी साधे रहने का प्रयास करता था। किन्तु यह अथ कदापि नही है कि वे बेपरवाह या निष्क्रिय थे। अपने अपने क्षेत्र म पारगत अति विद्वान व योग्य अनेक जापानी ऐसे थे जो बिना किसी प्रदशन के परोक्ष रूप से इस तक-सगत अनुमान अथवा कल्पना के आधार पर कि देर सबेर जापान पुन प्रभुसत्ता सम्पन्न देश बन जायेगा अपने देश के भविष्य के निमाण म सलग्न थे। किन्तु जिस किसी म उन्हे पूरा विश्वास था उसके अतिरिक्त वे अन्य किसी के साथ इस विषय मे बातचीत नही करते थे।

श्री चेत्तूर का लक्ष्य यह था कि न केवल जापान पर मित्र राष्ट्रो की सेनाओ के आधिपत्य के दौरान बल्कि शाति-सधि के बाद के काल के लिए भी भारत जापान के भावी सबधो की दिशा की रूपरेखा तयार की जाय। तत्कालीन समस्याओ का समाधान करना निश्चित रूप से ही दनिक कायक्लाप का एक अग था और वास्तव म महत्वपूण भी था। किन्तु उनकी नजर भविष्य म होनेवाली

घटनाआ की ओर लगी थी। एक टिकाऊ और दीघकालिक मैत्री का आधार तयार किया जाना था और तत्कालीन प्रत्येक गतिविधि को एक वृहत्तर परिप्रेक्ष्य म समजित किया जाना था। राजनीतिज्ञो उद्योगपतियो, शिक्षा शास्त्रिया व अय प्रबुद्ध जना के भीतरी हल्को तथा समाचार-जगत आदि स पूरी सूचना पान के बाद ही उचित योजना बनायी जा सकती थी। श्री चेत्तूर चाहते थे कि इसी क्षेत्र विशेष म मैं उनकी सहायता करूँ।

मेरा काम मूलत द्विपक्षी था। एक, जो काफी श्रम साध्य था यह था कि दनिक आधार पर जापानी दैनिक समाचार-पत्रा, पत्रिकाओ व अय माध्यमो से और रेडियो तोक्यो से प्रसारित होने वाली सूचना तथा समस्त महत्वपूण समाचारो और समाचार समीक्षाओ का साराश तैयार किया जाये। स्वाभाविक रूप स भारत से सम्बद्ध सूचना या समाचार पर विशेष ध्यान देना होता था। इन सबके साथ मेरा मूल्याकन टिप्पणी आदि भी शामिल था जिसका उपयोग श्री चेत्तूर अपनी धारणा कायम करने म करते थे।

दूसरा कही अधिक महत्वपूण काम यह था कि सावजनिक गतिविधिया म सलग्न जापानी नताआ के साथ कभी-कभी एकल रूप म और कभी छाटे समूहो म श्री चेत्तूर की भेट आदि का प्रबध किया जाये। कुछ कारणा स, जिनकी चर्चा मैं पहल भी कर चुका हूँ आधिपत्य काल का वातावरण उनके साथ मुक्त आचरण कर पान के लिए बहुत अनुकूल नही था। किन्तु श्री चेत्तूर यथासभव सख्या म जापानी विशिष्ट वर्गो को, चाहे वे रूढिवादी हा या उदार समाजवादी या कम्यु निस्ट, अच्छी तरह जानने म गहरी रुचि रखते थे। कहने की आवश्यकता नही कि यह काम जितना कठिन और नाजुक था उतना ही रोमाचकारी भी क्याकि कदाचित कुछेक विदेशिया और निश्चित रूप स भारतीयो मे से मैं ही एसा व्यक्ति था जो लगभग उन सब व्यक्तियो को जानता था जिनसे श्री चेत्तूर मिलना व बातचीत करना चाहत थे। मैं बडे उत्साहपूवक अपना काम करता रहा क्याकि मुझ विश्वास था कि वह सब भारत व जापान—दोनो ही देशो के हित मे था।

ऐसी सभी बठको के दौरान मैं दुभाषिये की भूमिका निभाता था। श्री चेत्तूर का मस्तिष्क बहुत तेज था और उनके प्रश्न प्राय बहुत पने होते थे। यह उनकी स्वाभाविक गरिमा, परिष्कृत शिष्टता जापान के प्रति वास्तविक आतिथ्य भावना और मत्री भाव का प्रताप ही था कि जिस किसी के साथ भी मैन उन्हे मिलवाया उहान उनके सानिध्य मे एकदम मुक्तता का अनुभव किया और सच्चाई स अपने विचारो, भावनाआ का उनके साथ आदान प्रदान किया। व भी चाहत थे कि उनकी आवरण रहित विचारधारा और मत आदि उन्ह ज्ञात हा।

ये बठक प्राय शाम के समय होती थीं। स्थिति की माँग के अनुरूप उनके घर या दफ्तर क अलावा अनेक अवसरो पर रात भर अपन निवास स्थान पर जागकर

भी मैं उन बैठकों में हुई बातचीत आदि के नोटस तैयार करता, अपनी टिप्पणी उनके साथ जोड़ता जिससे वह सब सामग्री सुबह होते ही श्री चेत्तूर के समक्ष प्रस्तुत की जा सके।

यह विचार विमर्श गैर सरकारी वर्ग तक ही सीमित न था। उन दिनों चंद अधिकारीगण ही विदेशी कूटनीतिज्ञों के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक मिलते जुलते थे, किन्तु मेरे निजी सम्पर्कों के कारण श्री चेत्तूर उच्चतर नौकरशाही वर्ग के अनेक सदस्यों से भी भेंट कर सके। गोल्फ का मैदान, जहाँ भारतीय मिशन के अध्यक्ष देखे जा सकते थे व्यायाम और बातचीत आदि के लिए काफी सुखकर स्थल होता था। आतिथ्यमय श्री व श्रीमती चेत्तूर का निवास स्थान, जो बड़ा प्यारा और सुरुचिपूर्ण बनाकर रखा जाता था इन सभाओं के लिए एक अन्य उपयुक्त स्थल था। जापानी अधिकारी वर्ग के बीच जो लोग मनीपूर्ण और स्पष्टवादी थे और कभी कभी कठिनाई भी पेश करते थे, उनमें उल्लेखनीय थे श्री बमबोको ओनो जो संसद के स्पीकर होने के साथ साथ अपनी निजी हैसियत से एक प्रमुख व्यक्ति थे और श्री शिगरू योशिदा जो कि प्रधानमन्त्री थे।

उन दिनों, श्री शिंतारो यू० असाही शिमबुन नामक समाचार पत्र के प्रमुख सम्पादकीय लेखक थे। बाद में वे उसके प्रबन्ध निदेशक बन गये थे। वे गूढ ज्ञान के स्वामी थे। उनसे अनेक वर्षों से मेरा निकट परिचय था। बाद में वे श्री चेत्तूर के निकट के मित्र बन गये और वे दोनों विभिन्न व्यापक विषयों पर विचार विमर्श के लिए प्राय मिला करते थे। दोमेई समाचार एजेन्सी में भी अनेक ऐसे मित्र थे जिनके मौज से हम अन्य बहुत से लोगों की तुलना में कहीं जल्दी राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समाचार सूचनाएँ प्राप्त हो जाती थी। प्रसिद्ध अर्थ शास्त्री तानसान इशिबाशी, जो मैक आर्थर द्वारा निष्कासित नेताओं में से एक थे, (किन्तु शांति सधि के बाद के काल में जापान के प्रधान मन्त्री बन गये थे) मेरे अभिन्न मित्र थे और श्री चेत्तूर ने उसके साथ अनेक बार भेंट की। तत्कालीन मामलों पर विचारों का आदान प्रदान करते उन दो बुद्धिमान दृढ निश्चयी प्रबुद्ध व्यक्तियों को देखना सुनना बहुत रोचक होता था।

मिलने के लिए आनेवाले अन्य लोगों में थे हिताची तथा निस्सान उद्योग समूहों के संस्थापक, श्री फुसानोसुका कुहारा, श्री कत्सुमाता, श्री मसाबुरो सुजुकी और श्री असानुमा (जो समाजवादी थे), श्री अकिरा कसामी जो राजकुमार कोनो के युद्ध पूर्व मन्त्रिमडल के प्रमुख सचिव थे, विख्यात उद्योगपति श्री अयिचिरो फुजिवारा जो राजनीति में रुचि लेने लगे थे, और अनेक वर्षों तक विदेश मन्त्री के पद पर आसीन रहे थे और दिवंगत श्री इनुकाई, जो बाद में न्याय मन्त्री बने। उन सज्जनों में से अधिकांश का नाम एस० सी० ए० पी० की अपमानित कर निकाले जाने योग्य' व्यक्तियों की सूची में था और इसीलिए हम सतर्क रहना होता था।

जब जान फास्टर डलस ने सन् 1950 म तोक्यो की यात्रा की तो तथाकथित सान फ्रांसिस्को शांति संधि की तैयारी के आसार दिखायी देने लगे थे। मित्रा के एक निकट-वग के माध्यम स मैं उनके और प्रधानमंत्री शिगेरु योशिदा के बीच होने वाले विचार विमश की मोटी माटी प्रवत्तियों की जानकारी पाने मे सफल हो जाता था। योशिदा के मन मे अमरीका द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावो को लेकर अनेक मतभेद विद्यमान थे किन्तु डलस उन्हें अमरीका की शर्तें जबरन मनवाने मे सफल हो गय।

योशिदा अपन कायकाल के आरम्भ म पेशेवर राजनयिक थे और उन्हें पीला अंग्रेज' कहकर सबोधित किया जाता था। वे ब्रिटिश जन के अतिप्रशसक थे और उनकी नकल करने का प्रयास भी किया करत थ। वे चर्चिल की भाँति ही सिगार पिया करते थे और उनकी आम चाल ढाल व प्रवत्ति पाश्चात्य रग म रँगी थी। डलस द्वारा जापान पर संधि का जो दबाव डाला जा रहा था उसक कुछ खडवाक्यों के बारे म वे प्राय ऐसा रूप ल लेते थे जो कि जापानी पक्ष को बहुत अनुकूल प्रतीत नही होता था। उदाहरण के लिए, संधि के बाद भी जापान म मित्र देशो की सेनाओ के बने रहने की बात उन्होंने स्वीकार कर ली थी किन्तु यह बात माननी ही होगी कि योशिदा की स्थिति भी कोई फूलो की सेज नही थी। अनुनय की उनकी अगाध क्षमता के प्रति हम उदार होना पडेगा। आधिपत्य की स्थिति का यथाशीघ्र समाप्त करने की उनकी हार्दिक आकांक्षा का गलत नही माना जा सकता।

अमरीकी विदेश मत्रालय, एस० सी० ए० पी० तथा जापान सरकार के प्रतिनिधियो के बीच अमरीका तथा ब्रिटेन द्वारा प्रस्तावित संधि के प्रारूप पर विचार विमश के दौरान म श्री चेत्तूर को बातचीत की प्रगति सबधी एकदम ताजी रिपोर्ट दिया करता था। मुझे बताया गया कि भारत सरकार को इस विषय पर वाशिंगटन की तुलना म तोक्यो स कही अधिक सामग्री प्राप्त हुई थी। उन्हें यह सूचना अपेक्षतया जल्दी भी मिलती थी। मेरे माध्यम से उन्हें जो सूचना सामग्री प्राप्त होती थी उस विपुल सामग्री मे से छाटकर फिर विभिन्न माध्यमों के साथ विचार विमश के परिणामस्वरूप निजी रूप से प्राप्त की गयी सूचना आदि को, जिसम कभी कभी जनरल मेक आथर के साथ किया गया विचार विमश भी होता था मिलाकर श्री चेत्तूर इस सावधानीपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत को सयुक्त संधि म भागीदार नही बनना चाहिए बल्कि एक अलग द्विपक्षी संधि करनी चाहिए।

जब अमरीका की सरकार ने सान फ्रान्सिस्को संधि के प्रारूप के विषय म, भारत सरकार की सहमति मागी तो पडित नेहरू तथा उनके मत्रिमडल के पास निर्णय लेने के लिए समस्त सामग्री मौजूद थी। अमरीका के विदेश मत्रालय के नाम

23 अगस्त, 1951 का भेजे गय एक नाट म भारत सरकार न सयुक्त प्रारूप का स्वीकार करने म अपनी असमर्थता पर खेद प्रकट किया।

इस निणय के आधार थी चेत्तूर की सिफ़ारिश ही थी। मुख्यत ये दा मूल आधारो पर प्रस्तुत किये गय थ (1) सधि एक एसी शत स बँधी थी कि जब तक जापानी अपनी प्रतिरक्षा की पूरी जिम्मेदारी नही सँभाल लेत तब तक अमरीकी सेनाएँ जापान म बनी रहगी और अमरीका की अनुमति के बिना जापान किसी तीसरी शक्ति स सहायता की माग नही कर सकता। य शर्तें पूण प्रभुसत्ता के सिद्धात के विरुद्ध थी। इस शत के पक्ष म, अमरीका की दलील यह थी कि क्याकि जापान असुरक्षित रहना नही चाहता था इसलिए यह शत स्वय जापान के अनुरोध पर शामिल की गयी थी। किन्तु तोक्यो म हम सूचना मिल चुकी थी कि य केवल दिखावा भर था। तथ्य यह था कि अमरीका सोवियत सघ स सभाव्य खतर स बचाव की दृष्टि से जापान म सनिक अड्डे बनाय रखना चाहता था। यह उन खड वाक्या या शर्तो म स एक थी जिस डलस ने ज़ोर डालकर याषीदा स मनवा लिया था। (2) जिस प्रकार समय का इतना अनिश्चित रख बिना फारमासा चीन को लौटा दिया जाना था, उसी प्रकार रियूक्यु तथा बोनिन द्वीप अमरीका क अधिदेश शासन म रख जान के बजाय तुरन्त ही जापान को लौटा दिये जान चाहिए। य द्वीप, एतिहासिक रूप से जापान के अग थ और किसी भी समय आक्रमण के माध्यम स हथियाये नही गये थे। अमरीका की दलील यह थी कि पाटसडाम घाषणा पत्र म यह माग की गयी थी कि जापानी लोग चार स्वदशी मुख्य द्वीपो म ही सीमित रहग और एसे छोटे द्वीपा के बारे म आत्मसमपण की घोषणा का निणय मान्य होगा। वास्तव म भारत का मत यह था कि इस सदभ म पाटसडाम घाषणा पत्र उचित व न्यायसगत नहीं था।

27 अगस्त 1951 को भारतीय ससद मे पडित नेहरू ने इन कारणो की घोषणा की थी। उसी समय उन्हाने यह घोषणा भी की थी कि भारत जापान से कोई हर्जाना नही माँगना चाहता। 30 अगस्त, 1951 को भारत सरकार द्वारा एक श्वेत-पत्र जारी किया गया जिसम 'जिस सधि के विषय मे भारत पूरी तरह सतुष्ट न था, उस पर हस्ताक्षर न करन के उसके सहज स्वाभाविक और निर्विवाद अधिकार' पर बल दिया गया था।

लेकिन राजनयिक औचित्य की सीमाओ के कारण एक सूचना ऐसी थी जिसकी पडित नेहरू घोषणा नही कर सकत थे। उन्हाने वास्तव म, एक अमरीका जापान द्विपक्षी सुरक्षा-सधि का प्रारूप दख लिया था जिस पर अमरीका जापान से उसी दिन हस्ताक्षर करवाना चाहता था जिस दिन सान फ्रासिस्को सधि पर हस्ताक्षर किये जान थ। चूकि सुरक्षा सधि की विषय वस्तु तब तक प्रकाशित नहीं की गयी थी और अभी वह एक गुप्त बात थी, इसलिए स्वाभाविक रूप स पडित नेहरू

उमकी घोपणा नही कर सकत थे।

कदाचित इस बात म कोई सदेह न था कि बहुत स देशो को यह ज्ञात था कि अमरीका तथा जापान के बीच भावी द्विपक्षी सुरक्षा सधि होनवाली थी और कम-से-कम कुछ को तो यह भी ज्ञात था कि सधि पर हस्ताक्षर 8 सितम्बर 1951 को किये जाने थे। किन्तु मेरा विचार है कि भारत को छोड केवल कुछेक देश ही ऐसे थे जिनके पास उस सधि की विषय-वस्तु की प्रति घटना के पूर्व ही विद्यमान थी। सौभाग्य ही कहूँगा कि पूणतया सामान्य साधना स ही मै उसकी एक प्रति श्री चेत्तूर को सुलभ करान म सफल हो सका था।

तोक्यो स्थित मन्त्रिमडल ने प्रेस क्लब को सरकार द्वारा गुप्त रूप से सुरक्षा सधि के बारे म बता दिया गया था और निश्चित तिथि से कुछ ही पूर्व उस आलेख की प्रतिया भी दे दी गयी थी, कि तु यह आदेश दिया गया था कि सान फ्रासिस्को सधि की विषय-वस्तु के साथ ही उसे प्रकाशित करे एक दिन भी पहले नही। मेरे एक निकट के पत्रकार मित्र का इस विषय मे अपना ही विचार था और उसन निणय किया कि इस सधि के विषय म कुछ भी गुप्त न था कम स कम जहा तक उसका और मेरा प्रश्न था। इसलिए उसने मुझे एक प्रति द दी जो मैन ले जाकर श्री चत्तूर को थमा दी और नहरू जी को समय रहत वह प्रति प्राप्त हो गयी, जिसस व उस पढकर जान सके कि सान फासिस्को सधि की आड म अमरीका इस बात पर जार दन जा रहा था कि जापान अमरीका के शक्ति गुट का ही अग बना रहे। ऐसी स्थिति भारत को सिद्धातत अमान्य थी क्योकि इसस जापान को 'राष्ट्रो की समिति म पूण सम्मान, बराबरी और सतोष का स्थान' नही दिया जा रहा था। हाँ, यदि जापान एक पूण प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र बन जान के बाद लघु या दीघ अवधि के लिए विदेशी सनाओ को जापान मे रखन का स्वय अपनी इच्छा स और सावधानीपूवक सोचकर निणय करता तो बात और होती, लेकिन यह सही न था कि स्वतत्रता प्राप्ति वास्तव म एक शत के अनुसार की जाय जाकि एक देश विशेष—इस सदभ मे अमरीका—के पक्ष हा। मेरा विचार है कि सुरक्षा-सधि के मसौदे का पढा जाना ही भारत द्वारा सान फ्रासिस्को सधि म शामिल न होन के निणय की मजबूत और अमिट मुहर का रूप ले सका।

49 देशो द्वारा, जिनमे जापान भी शामिल था, सम्पन्न की गयी सयुक्त शाति सधि 28 अप्रल 1952 को लागू की गयी। इस सान फ्रासिस्को सम्मेलन म 52 देशा न भाग लिया था। चिर स्थायी शाति व मत्री की अलग स की गयी भारत जापान द्विपक्षी सधि 9 जून, 1952 को सम्पन्न हुई। भारत की ओर स उस पर श्री के० के० चेत्तूर ने और जापान की ओर स श्री कातसुवो आकाज़াকी न, जो उस समय विदेश मत्री थे, हस्ताक्षर किये। उसी दिन जारी किय गय एक प्रम

वक्तव्य म उन्होंने कहा था—

'जापान के प्रति भारत की मत्री व मदभावना समस्त सधि म परिलक्षित है। इसका विशेष प्रमाण उन अनुच्छेदा म मिलता है जिनम हर्जाने म सभी दावा क प्रति आग्रह नही किया गया है और भारत म स्थित सभी जापानी सम्पत्ति लोटान की वात कही गई है।"

सधि की विषय-वस्तु चौथे परिशिष्ट म प्रस्तुत की गयी है। यह छोटा तथा सीधा सच्चा मसौदा प्रत्यक्षत एक सादा और सरल काय का-सा आभास भल ही दिलाता हो किन्तु कहने की आवश्यकता नही कि उस तयार करने म काफी अरस तक दीघ विचार और श्रम किया गया था।

किन्तु वडी विचित्र वात है कि प्रत्यक गभीर स्थिति का भी एक हल्का पहलू होता है। वतमान सदभ म एक अजीव प्रकार का सयाग सामने आया जिसस प्रमाणित हो गया कि वास्तविकता कल्पना स अधिक विचित्र हा सकती है। मैं नौकरशाही की गतिविधिया म पारगत नही हुआ हूँ। किन्तु भारतीय मिशन प्रमुख के परामशदाता के अपन कायकाल म मैं नयी दिल्ली की सरकार की तथा कथित निणय प्रक्रिया' के विषय म जा कुछ जान सका कि (मैं सोचता हूँ कि आवश्यक परिवतना सहित, समस्त लोकतन्त्री सरकारा म यही सब किया जाता होगा) निणय सामूहिक रूप स किय जात है यह कुछ-कुछ अस्पष्ट व्याख्या है। सान फ्रासिस्को सधि तथा भारत जापान सधि पर विचार विमश के सदभ म मुझे बताया गया कि प्रक्रिया इस प्रकार सम्पन्न हुई कि पडित नेहरू तथा उनके मत्रि मडल के सम्मुख आदेश प्राप्ति के लिए प्रत्यक समस्या का प्रस्तुत किये जान से पूव, सात वरिष्ठ अधिकारियो द्वारा उन पर विचार किया जाना होता था और उनकी टिप्पणिया साथ लगायी जानी होती थी।

वे सात महानुभाव थे—(1) तोक्यो स्थित भारतीय मिशन के प्रमुख और अधिकाश पत्राचार क सृजक श्री के०के० चेत्तूर, (2) उनके परामशदाता ए० एम० नायर (3) नयी दिल्ली स्थित विदश मत्रालय के महासचिव एन० आर० पिल्ल (जो विदेश मत्रालय म श्री नेहरू के बाद ही द्वितीय स्थान पर थे) (4) के०पी०एस० मनन जो उस समय विदेशी मामला के सचिव थ और (बाद मे उन्ह मास्को म भारतीय राजदूत बनाकर भेज दिया गया था जहा से अनेक वर्षो के अति प्रतिष्ठित काय-काल के बाद वे रिटायर हुए थे) (5) स्वतत्रता प्राप्ति के बाद, लदन मे भारत के हाइ कमिश्नर तथा कुछ काल के लिये श्री नेहरू के विशेष प्रतिनिधि और उनके मत्रिमडल मे शामिल होने से कुछ ही पूव, उनके राजदूत वी०के० कृष्णमेनन (6) पेरिस मे भारत के राजदूत एन० राघवन और (7) चीन मे भारत के राजदूत सरदार के० एम० पणिक्कर।

ये सभी सात सज्जन केरल के थे और एक अन्य सयोग यह भी था कि हर

जब उन्होंने सर्वप्रथम अपना परामर्शदाता बनने के लिए मुझसे कहा था, न तो तब और न उनके साथ काम करते समय कभी किसी प्रकार के पारिश्रमिक अथवा पुरस्कार का विचार मेरे मन में कभी आया था। मैं बिना किसी मेहनताने के या किसी बिल की अदायगी के विचार से अपना काम करते रहने में खुश था। मैं धनी तो न था किन्तु बिना कठिनाई के अपना गुजारा करने की स्थिति में था। मैंने भारतीय मिशन के लिए किये गये अपने काम को आय का एक अतिरिक्त साधन कभी नहीं समझा था। किन्तु तभी एक दिन एक विचित्र अनुभव हुआ। श्री चेत्तूर ने मुझे बताया कि उनके प्रति और उनके माध्यम से नयी दिल्ली के कार्यालय के लिए की गयी सेवाओं के एवज में भारत सरकार की ओर से मुझे कुछ धन देना निश्चित हुआ था। इसीलिए उन्होंने अपने कार्यालय को आदेश दिया था कि वह धनराशि मुझे दे दी जाए। उस समय के मानकों को देखते हुए यह राशि काफी बड़ी थी। मुझे परेशानी तथा उलझन का अनुभव हुआ और मैंने श्री चेत्तूर से कहा कि मैं कोई भी धन लेना अस्वीकार करूँगा, क्योंकि उस समस्त कार्यकलाप में अपने योगदान को मैंने अपने देश और भारत तथा जापान के बीच निकट व मैत्रीपूर्ण संबंधों की स्थापना में, जिनके लिए मैंने अपना अधिकांश जीवन और प्रयास अर्पित किये थे अपने कर्तव्य के रूप में देखा है। मैं ब्रिटेन विरोधी गतिविधियों के बीच बड़ा हुआ था और मेरा लक्ष्य था भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष। मैंने वह सब 'अनासक्त कर्म' की भावना से किया था। मुझे अपने छात्र काल में ही रासबिहारी बोस की गतिविधियों का परिचय पाकर उनकी विचार धारा का संबल मिल गया था। सुदूर-पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व एशिया में, भारतीय स्वतंत्रता लीग के काल में, उनके साथ मेरी निकट सहयोगिता ने उस भावना को और भी सुदृढ़ बना दिया था। मैं श्री चेत्तूर तथा भारत सरकार द्वारा दर्शाये गये इस सम्मान के प्रति कृतज्ञ हूँ किन्तु मुझे माफ़ किया जाए क्योंकि मैं कोई धनराशि स्वीकार नहीं करना चाहता हूँ। उस दिन जब हम एक-दूसरे से अलग हुए हम दोनों ही कुछ उलझन में थे कुछ कुछ परेशान थे। मैंने सुना श्री चेत्तूर धीमे स्वर में कह रहे थे, अब मेरे सम्मुख लेखे जोखे की समस्या उठ खड़ी होगी।"

कुछ समय तक इस विशेष प्रश्न के बारे में कोई चर्चा नहीं की गयी। किन्तु श्री चेत्तूर इसे भूले न थे। वे बड़े सुलझे हुए व्यक्ति थे और ऐसे नहीं जो कुछ वे करना चाहते थे उस विचार को आसानी से त्याग देते। उन्होंने एक योजना तैयार की जो भारत सरकार की स्थिति और मेरी विचारधारा के बीच एक समझौता या मध्य मार्ग हो सकती थी।

उन्होंने एक दिन मुझे बुलाया और कहा भारत सरकार चाहती है कि मेरे बच्चों के लिए, जो उन दिनों अध्ययन कर रहे थे शैक्षिक सहायता के रूप में एक

उपहार भेंट किया जाए। शीघ्र ही उनका अताशे एक चेक और मेरे हस्ताक्षर के लिए एक रसीद लेकर मेरे पास आ गया। जबकि श्री चेत्तूर इस विषय मे व्याख्यान दे रहे थे कि शिक्षा कितनी महत्वपूर्ण होती है और उसे पाने मे कितना खर्च वांछित है आदि, उनके अताशे ने मुझसे गिडगिडाकर कहा कि मैं अवश्य वह चेक ले लू और रसीद पर दस्तखत कर दू जिससे कि वह अपना लेखा-जोखा बैठाकर काम समाप्त कर सके। जीवन मे प्रथम बार 'अपने देश के प्रति सेवा के एवज मे' मैंने भारत सरकार से मेहनताना स्वीकार किया।

श्री चेत्तूर के चले जाने के बाद मुझे अनुभव हुआ कि मैंने लगभग वह काम सम्पन्न कर लिया था, जो मैंने जापान के राजनीतिक क्षेत्र मे करना तय किया था। मैंने अपनी जीवनधारा बदल ली और एक व्यापारिक ठेकेदार की भूमिका अपना ली। मेरे मित्र हँसी मजाक मे मेरे धंधे की तुलना एक 'सामुराई' स गिरकर 'रोनिन' बनने और उससे भी नीचे हटकर 'मात्र व्यापारी' बन जाने से किया करते थे। किन्तु मैंने अनुभव किया कि मेरे राजनीतिक प्रयासो का दायिरा शांति संधि के बाद उत्पन्न होने वाली परिस्थितियो मे लगभग महत्वहीन रह गया था। मैंने भारतीय समुदाय के साथ अपना सम्पर्क बनाये रखा और यथा आवश्यकता अपनी सहायता प्रस्तुत करता रहा। समाज सेवा के कार्यों का कोई अभाव न था। जापानी मित्रो के अपने व्यापक क्षेत्र मे निकटतर सम्पर्क बनाये रखने के अवसर भी बढ गये। किन्तु मेरा अधिकांश समय तथा प्रयास अपने व्यापार की ओर ही होने लगा।

अक्तूबर 1962 मे जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया था, उस समय भारत मे और अन्य सभी देशो मे स्थित भारतीय मिशन-कार्यालयो मे बहुत कुछ कार्यकलाप हो रहा था और उसी दौरान एक छोटी सी अप्रिय घटना के अलावा मेरे देश के राजदूतावास और मेरे बीच के सम्बन्धो को सदा ही पूर्ण समझ-बूझ, सौहार्द और आपसी सम्मान का प्रतीक माना जाना चाहिए।

यह वह काल था, जब चीन के साथ भारत के सम्बन्धो को लेकर कुछ उलझन विद्यमान थी। चीन ने, जो भारत के साथ एक भाई के से संबंधो का दम भरता आ रहा था, भारत की पीठ मे छुरा भोंका था। दलाई लामा और उनके साथ सीमा पार कर भारी संख्या मे भारत मे आनेवाले तिब्बतियो को शरण देकर भारत ने झगडे का जो 'संभाव्य' कारण प्रस्तुत किया था उसे चीन द्वारा आक्रमण का एक संतोषजनक व मान्य बहाना नही माना जा सकता था। दूसरी ओर भारत भी उस सीमा क्षेत्र मे अपनी प्रतिरक्षा व्यवस्था की अवहेलना और गुप्तचरी-कार्यों मे भारी असफलता के दोष से बच नही सकता। प्राप्त नितांत गलत सूचना के आधार पर प्रधानमंत्री नेहरू ने भारतीय सशस्त्र सेना को आदेश दिया कि 'चीनियो को खदेड बाहर करे'। सीमा के दूसरी ओर चीनियो की अति भारी शक्ति का अनुमान न था और न ही यह ज्ञान था कि भारतीय पक्ष की तैयारी कितनी कम

थी। हम लज्जाजनक पराजय का सामना करना पडा।

इस विषय पर कुछ भारतीय मित्रो के साथ बातचीत के दौरान मैंने अपना स्पष्ट मत प्रकट किया कि यह सीमा-युद्ध एक बहुत बडी गलती थी। स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति ने मेरी आलोचनात्मक टिप्पणी भारतीय राजदूत तक पहुचा दी, जिन्होने यह अनुमान लगा लिया कि ए० एम० नायर भारत विरोधी भावनाएँ पेश कर रहा है। कदाचित उन्ही के अनुरोध पर तत्कालीन द्वितीय सचिव ऐलन नाजरथ अगले दिन मेरे पास आये और भारत के विषय मे विशेष कर, चीनी आक्रमण को लेकर, हमारे बीच दीर्घ व मैत्रीपूर्ण बातचीत हुई। मैंने उनसे भी वही कहा जो मैं अपने मित्रो से कह चुका था कि प्रधान मन्त्री के प्रति पूर सम्मान के साथ मेरा विचार यह था कि उन्हे बुरी तरह से भ्रम मे रखा गया था और निराश किया गया था। जब पराजय नितान्त निश्चित हो तो युद्ध करना गलत बात होती है। सीमा के किसी भी क्षेत्र मे उसके पार स्थित चीनियो की क्षमता हमारी तुलना मे कदाचित 20 गुना थी।

श्री नाजरेथ मेरी बात समझ गये। उन्होने हमारे वार्तालाप का साराश अवश्य ही राजदूत को कह सुनाया होगा। अगले ही दिन मुझे राजदूत के साथ बातचीत के लिए राजदूतावास मे आमन्त्रित किया गया। वे कदाचित यह आश्वासन पाना चाहते थे कि मेरे विचार उन तक सही-सही पहुँच गये हैं। वार्ता का विषय वही था और मेरा मत भी वही था जो मैंने नाजरेथ को बताया था। मैंने राजदूत को य सलाह दी कि नई दिल्ली को सलाह दी जाए कि युद्ध को आगे न बढाए वल्कि बात चीत के माध्यम से उसका निपटारा करने के प्रयास करे। जबकि हमारे पास पूरा साज-सामान न था उस समय चीनियो के साथ एक निष्फल युद्ध करने के बजाय हमारे लिए बेहतर था कि हम आर्थिक रूप से अपने देश का विकास करने पर अधिक ध्यान दे। राजदूतावास के चद युवा अधिकारीगणो मे से कुछ 'परछाइयो से मुक्कामुक्की' करना पसन्द करते थे और वे इसी मत पर अडिग रहे कि भारत को चाहिए कि जमकर युद्ध करे। उनमे कुछ ने मुझे नापसद करना आरभ कर दिया क्योकि मैंने उनसे यह कहा था कि युद्ध तथा शाति के बारे मे उन्हे अभी बहुत कुछ सीखना है।

कुछ दिन बाद मेरा पुराना मित्र चमनलाल अचानक तोक्यो मे प्रकट हो गया और मुझसे पूछने लगा कि क्या मैं भारत व चीन के बीच मध्यस्थता करने का काम स्वीकार कर सकता हूँ? उन्होने कहा कि यदि मै इसे स्वीकार करता हूँ तो वे श्री नेहरू को यह सूचना दे देंगे जो उसके बाद कदाचित मुझसे कहेगे कि मैं चीनी नेताओ के साथ बातचीत के लिए पीकिंग जाऊँ। ये सब मुझे कोई बहुत स्पष्ट प्रतीत नही हुआ (और मेरा विचार था कि स्वय चमनलाल को भी सब कुछ स्पष्ट ज्ञात न था) कि मुझसे किस प्रकार की मध्यस्थता की अपेक्षा की जा रही थी। किसी

गिद खडे प्रत्यक व्यक्ति न उस क्षण की तीव्र भावना का अनुभव किया। इस घटना का समाचार उसी दिन एन० एच० के० के समस्त प्रसारणा मे शामिल किया गया।[1]

इसी प्रसग म मैं थाडा विषयातर करने की अनुमति चाहता हू। अनेक वर्षों तक एन० एच० के० द्वारा इतिहास म प्रथम बार हुई अणु बम वर्षा के कारण हिराशिमा म हुए त्रासदीपूण विनाश की स्मृति मे एक विशेष कायक्रम प्रस्तुत किया जाता था। डॉ० आर० बी० पाल की वह टिप्पणी, जिसकी चर्चा मैं अन्यत्र कर चुका हूँ, प्रसारण कायक्रमो का अग बन गयी थी। अब देखता हूँ कि इधर हाल म रेडियो तोक्यो 6 अगस्त के दिन काई विशेष कायक्रम प्रसारित नही कर रहा है। मेरी आशा है कि यह तात्कालिक स्थगन ही है और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओ की स्मृति को, जिनसे हर किसी को बहुत लाभ पहुँच सकता है, जनता की सेवा के रूप म पुन प्रसारण जगत द्वारा जीवित किया जाएगा। मेरी यह भी आशा है कि भारत के साथ जापान की शाति व मत्री की सधि को भी स्मृति म स्थान मिलता रहेगा जो परिस्थिति को देखते हुए दो देशा के बीच सर्वाधिक द्विपक्षी समझौता है।

---

1 डॉ० राधा विनोद पाल तथा श्री मासाकूरो शिमोमाका के सक्षिप्त जीवन वृत्त के लिए कृपया परिशिष्ट तीन देखें।

उपसहार

यह कहना एक फशन सा बन गया है कि जापान एक देश नही रहा बल्कि एक प्रतिभा है जो एक आर्थिक अचभ का रूप ल चुका है। एक विदेशी भारतीय के नात जिसन अपन जावन के 80 वर्षों का लगभग दो तिहाई भाग जापान म या उसके इद गिद बिताया है मैं इस आलकारिक मान्यता से इकार नही करता। मुख्यत तो यह सब सही है। द्वितीय विश्व युद्ध स पूव के दशक तक 'जापान' शब्द लोगा के मानस म 'नकली वस्तुआ', 'फुजि पवत', 'चेरी पुष्पो' और 'गेइशा' आदि का ही चित्र प्रस्तुत करता था। बाहर वालो के लिए इस देश के प्रति आम धारणा यही थी कि यदि जापान म निर्मित' कोइ वस्तु दिखायी देती तो तुरत ही यह मान लिया जाता था कि वह सबसे सस्ती होगी। इसी सिद्धा त के मनोविज्ञान के अनुसार इन वस्तुओ को 'घटिया स्तर की' भी माना जाता था। मगर आज जापान का ख्याति पूणतया भिन्न स्तर की है।

सन् 1928 म मैं सवप्रथम शाही क्योतो विश्वविद्यालय मे सिविल इजीनियरी का अध्ययन करन के लिए इस देश म आया था। उसी वष जापान के वतमान सम्राट हिरोहितो का राज्याभिषेक भी हुआ था। उसी वष 10 नवम्बर के दिन क्योतो म पूरे अनुष्ठान सहित उन्ह राजसिंहासन पर बिठाया गया था। उस समय उन्होन घोषणा की थी—

"हमारा सकल्प है कि देश म हमारी जनता की शिक्षा व्यवस्था के प्रवतन और उनकी नतिक तथा भौतिक बेहतरी के प्रयास किये जाएँ जिससे कि उनके बीच सामजस्य और सतोष हा और समस्त देश शक्ति-सम्पन्न व समृद्ध बन और देश के बाहर, सभी देशा के साथ मैत्रीपूण सबधो की स्थापना हो आदि।"

उस समय उनकी आयु 27 वष की थी और अपने बाल्यकाल मे घर पर ही जनरल मरे सुके नोगी मे उन्ह शिक्षा प्राप्त हुई थी और बाद म उन्होने फ्रास, बल्जियम, इग्लड व अय पश्चिमी दशो की यात्रा की थी। लेकिन उनका दवत्व पूणतया अखड था और उनके सिंहासनारोहण के समारोह मे मात्र शाही वश के

ताकि व्यापारिक पात आने-जाने लगे, दीर्घ काल तक एक साधारण वस्तु यानी नमक तक नसीब न हुआ था। लोग शीत से ठिठुरते रहते और डिब्बे मे बंद सार्डीन मछली की भांति भीड़ भरी रेलगाड़ियों मे सफर करते रहे।

किन्तु उनके धैर्य और सहनशक्ति का स्तर आश्चर्यजनक था। स्वयं अपने ऊपर जो मुसीबत उन्होंने ओढ़ी थी उसके बारे में वे बड़ी लज्जा का अनुभव करते थे। लेकिन जो बीत चुका था उस पर अफसोस करने या अपने नसीब को दोषी ठहराने जैसी कोई बात परिलक्षित नही होती थी। लोगों ने असह्य को सहा और बहुत धैर्यपूर्वक विदेशी आधिपत्य का सदमा बर्दाश्त करते रहे। 'विदेशी आधिपत्य' की अपरिहार्य वास्तविकताओं के प्रति एक व्यवहार्य रुख अपनाने में उन्हें अपने पारंपरिक सामाजिक मूल्यों को भी गिराना पड़ता था। जिस प्रकार का मिलना-जुलना आदि अमरीकी सैनिकों के बीच होता था उसे देखकर यह बात सिद्ध होती थी। लेकिन इतना तो सही है कि यह एक अस्थाई स्थिति ही थी और संभवतया ऐसा तभी तक ही किया जाता था जब तक कि आधिपत्य की स्थिति की यथाशीघ्र समाप्ति न हो और वह भी इस व्यावहारिक सिद्धांत के अनुसार कि 'यदि तुम शत्रु को हरा नही सकते तो उसके साथ जा मिलो'। फिर प्रभुसत्ता की पुनः प्राप्ति के 6 वर्ष से भी कम कालावधि में जापान राख के ढेर से उबरकर 'अमर पक्षी' की भांति उठ खड़ा हुआ। आज जापान एक अति सम्पन्न देश का रूप ले चुका है।

अन्यत्र तथा इस देश में मेरे दीर्घ प्रवास के दौरान मैंने काफी मात्रा में विश्व नाटक देखा है। एक ओर तो यह देखा कि विदेशी कब्जे के अधीन देशों में सामाजिक पतन कितना गहरा होता है और दूसरी ओर मैंने यह भी देखा है कि साहस, धैर्य और अनुशासित श्रम के बल पर एक देश कितना ऊंचा उठ सकता है। दोनों ही सन्दर्भों में एशिया में बड़ी भूमिका जापान द्वारा ही प्रस्तुत की गयी थी।

40 वर्ष जब पूर्व जापान की पूर्ण पराजय और आत्मसमर्पण के साथ विश्व युद्ध समाप्त हुआ उस समय एक औसत जापानी की आय एक औसत भारतीय की आय से कुछ अधिक थी। भारत के महाराष्ट्र राज्य के लगभग बराबर (372000 वर्ग किलोमीटर) आकार के जापानी द्वीप समूह में महाराष्ट्र की तुलना में लगभग दुगुनी आबादी (यानी 11 करोड़ 50 लाख) है। लेकिन जो देश 1945 में लगभग अपनी समस्त सम्पदा खो बैठा था और जिसके पास निजी कच्चे माल का नितान्त अभाव है (सिवाय भारी मात्रा में बिजली और थोड़ी मात्रा में कोयले के) आज आर्थिक रूप से विश्व का दूसरा (अमरीका के बाद) सबसे समृद्ध देश बन गया है। वर्तमान विकास दर के अनुसार अनुमान लगाया जा रहा है कि शताब्दी की समाप्ति तक वह विश्व में प्रथम स्थान ले लेगा।

वास्तविक अर्थ में जापान का कुल राष्ट्रीय उत्पादन हर आठ वर्षों में लगभग

दुगुना होता जा रहा है। प्रगति की यह दर विश्व क आर्थिक इतिहास म पहल कभी नही देखी गयी है। विशेषज्ञो का अनुमान है कि प्रगति की वतमान दर क अनुसार 1980 के दशक म जापान म प्रति व्यक्ति की आय, औसत अमरीकी की आय से एक प्रतिशत अधिक हो जायगी। और यदि यह प्रवत्ति जारी रहती है तो 1990 के दशक म एक जापानी की आय एक अमरीकी की तुलना म दुगुनी हो जाएगी। औद्योगिक शक्ति के क्षेत्र म जापान न 1979 80 म विश्व का चौथा स्थान पा लिया था। विश्वास किया जा रहा है कि अब तक यानी 1985 तक यह पश्चिम जमनी और सोवियत सघ को पीछे छोड गया है और केवल अमरीका से ही पीछे है। अनेक सूत्रो द्वारा यह भविष्यवाणी की जाती रही है कि जापान की अथव्यवस्था मूलत नाजुक है और वह अपने वतमान विशाल अनुपात को इसलिए पहुँच सकी है कि प्रतिरक्षा की मद म जापान का खच बहुत ही कम होता है। यह कहा जाता है कि इस 1940 क कारियाई युद्ध और उसक बाद के वियतनाम युद्ध के कारण बहुत आर्थिक लाभ हुआ है।

कुछ लोगा का यह भी दावा है कि यदि दोनो बडी शक्तियाँ (अमरीका तथा सोवियत सघ) बल परीक्षा पर उतर आती हैं या पश्चिम एशियाइ दश तल का उत्पादन न करने वाले देशो को तेल सप्लाइ बद कर दते हैं तो जापान का सब काम-काज ठप्प हो जाएगा और जापानी भूखा मर जाएँगे। ऐसी बात बहुत बढा-चढाकर की जाती है। जापान कच्चे माल की प्राप्ति के लिए अन्य दशा पर अत्यधिक निभर करता अवश्य है किन्तु और बहुत से देश भी दूसरे देशा पर आयात से निभर करते है जिनम पश्चिम जमनी भी शामिल है। जापान जस दश के लिए जिसक पास कामचलाऊ व्यवस्था कर लेन की भारी क्षमता है इस प्रकार की विपत्तियाँ, जिनका कुछ लागा को भय है कदाचित पैदा ही न होगी। हाँ यह सही है कि दो बडी शक्तियो के बीच यदि परमाणु बल परीक्षा होती ह तो शायद कही भी कुछ भी बचा न रहेगा और उस स्थिति म यह प्रश्न उठगा ही नही कि कौन प्रथम है और कौन अन्तिम। उस स्थिति म सम्भावना यही होगी कि सब कुछ एक वृहदाकार शून्य का रूप ले लगा।

आखिर ऐसा क्या है जो जापान को जीवित बनाय हुए है ?' यह एक एसा प्रश्न है जा लगभग पिष्टोक्ति का रूप ले चुका है। प्रश्न के उत्तर बहुत लम्बे हो सकत है किन्तु उनकी एक लघु सूची भी तयार की जा सकती है। इस सूची म मुख्य है जापान की सगठनात्मक दक्षता और साथ साथ उद्योग व वित्त के क्षेत्र म उसका सामूहिक अनुशासन। यह बात समझ पाना उन लागा के लिए कुछ कठिन है जिहान जापान की पारपरिक मनोवैज्ञानिकता को ठीक स समझने की कोशिश नही की है। मैं इस सन्दभ म जो कुछ कहने जा रहा हू उसकी भूमिका भी मुझ इस अवधानपूर्ण टिप्पणी के साथ प्रस्तुत करनी चाहिए कि किन्ही विशेष परि

किसी तरह कम नही है, कि तु अफसास की वात है कि जव राष्ट्र प्रगति क लिए सामूहिक प्रयासा की आवश्यकता हाती है तब हम उम प्रकार का जीवत आचरण नही कर पात जसाकि जापानी करत हैं। हमम उस शली क आत्मानुशासन का अभाव प्रतीत होता है जो एक राष्ट्रीय अनुशासन का रूप लकर एक दश का आधुनिक अथ म वस्तुत महान बना सकता है। उदाहरण क लिए हमार औद्योगिक मार्चे का ही दखा जा सकता है।

हम हडतालो, धीमी गति स काम करन और अ य एस ही कामा म अधिक मात्रा म शक्ति का क्षय करत है जिमस उत्पादन म रुकावट आती है, प्रगति म बाधा पडती ह और इस प्रकार स्वय सुधार तथा प्रगति क साधना का ही नकार दिया जाता है। मैं यह नही कहता कि हडताल करन की छूट नही हानी चाहिए, और न ही यह कि जापान म हडतालें या श्रम क्षत्र सम्बन्धी अन्य समस्याएँ नहा हाती। म कहना यह चाहता हूँ कि एक ता वहाँ एसी समस्याएँ कम है क्याकि चाह वे सरकारी क्षेत्र हा या गर-सरकारी वहाँ का प्रशासक वग हमारी तुलना म कही वेहतर योजना बनाता ह और एसी स्थितिया स बचन का चष्टा करता ह जिनकी उपस्थिति का तकसगत दष्टि स पूवानुमान लगाया जा सकता हा और जिनस बचा जा सकता हा। उदाहरण के लिए क्या कारण ह कि भारत म एक राष्ट्रीय महनताना नीति नही है, जिसक कारण कम स कम लगभग पूण स्तरीय हद तक, असमानता के आधार पर हडतालो का एक वध कारण सुलभ करान स बचा जा सकता है। दूसरी बात यह कि यदि वास्तव म काम म रुकावट आ जाती है ता जापान म राजगारदाताआ और कमचारियो के लिए एस तरीक हैं जो साधारण तया बिना अवाछनीय विलब क और सुलह सफाई स समस्या को निपटान म सहायक होत ह।

कुछ अ य बात जो ध्यान आकृष्ट करती है, व ह (क) काम-काज रोक दिए जाने के समय सामा यत काई भी कमचारी किसी वस्तु या उपकरण आदि का तोडता फोडता नही क्याकि उत्पादन म सहायक सुविधाआ की रक्षा व बचाव झगडे की समस्या के समाधान के बाद सामा य उत्पादन की स्थिति क लिए अनिवाय शत होती है, (ख) जस ही एक मतभेद या झगडे का सतापपूण निणय कर लिया जाता है बस ही सब कुछ पूववत चलने लगता है जैसाकि झगडे से पूव स्थिति मे होता है आर लगभग अनिवाय रूप से ही व्यथ बरबाद इस समय को भी अतिरिक्त काम करके पूरा कर लिया जाता है (ग) जापान म धीमी गति से काम करन की प्रवत्ति' तो लगभग एक अनजानी बात ही है (घ) काम काज क समय म वक्त की सख्त पाब दी का पालन किया जाता है और किसी भी कार्यालय मे कोई फालतू और बेकार की बात नही की जाती (ङ) सभी स्तरो पर श्रम की गरिमा की एक सावभौम भावना विद्यमान होती है (च) कागज एक स दूसरा जगह तक पहुचने

मानते है क्योकि यदि ऐसी प्रवृत्तिया का दमन न किया जाए तो वह एक केंसर की भाति उनकी मज्जा तक गहरी घुस जाएँगी। फिर अन्त म भारी शल्यक्रिया अर्थात उस अग को काट फकना ही मात्र विकल्प रह जाएगा। वास्तव म, दड प्रक्रिया का माद्दा स्वय राष्ट्र के जीवन या लोकाचार म निहित होता है। जिहोने दीघकाल तक बढिया व सही आचरण कर राष्ट्र-स्तर पर एक गव की भावना को विकसित किया है, व यदि अपनी मर्यादा खो बठते ह तो उनके लिए घारतम दण्ड होना चाहिए।

जापान म बहुत से लोगा पर विभिन्न प्रकार के आरोप लगाए जा चुके हैं। पूरी कायकुशलता के साथ आरोप की छानबीन करन के बाद दाप सिद्ध अपराधी को उचित दण्ड भी दिया जा चुका है। भारत म, क्या हम गभीरतापूवक उन बड बडे अपराधिया को पकडन की चेष्टा करत हैं जिनके विरुद्ध तकसगत सन्देह विद्यमान होत हैं या हम जान-बूझकर आखे मूद लेत है? समस्त नताओ को चाहिए कि वे ईमानदारीपूवक ऐस प्रश्न स्वय स पूछे। वे इतना ता निश्चित रूप से समझ ले कि जैसा आचरण व करते है, उनके अधीनस्थ अधिकारी भी वसा ही करेग। एक भारतीय कहावत है कि यदि बाड ही खेत को चरने लगे तो मवेशियो पर दोप कसा?'

जिस शली के राष्ट्रीय लोकाचार का सकेत मैंने दिया है, उसे राता रात मूत रूप नही दिया जा सकता। भारत म तो यह प्रक्रिया और भी अधिक जटिल बन गयी है क्योकि हमारे दश को लम्बी उपनिवेशवादी बेडिया की विपली विरासत मिली है। उस स्थिति के कुप्रभावो को मिटाने और सही माग पर आने मे बहुत समय लग सकता है। लकिन लगभग 35 वप पूव ही गुलामी की बडिया तोडन के बाद क्या हम एसे रचनापरक युग मे प्रवेश कर सक है? यदि नही तो आइय, कम से-कम अब तो यह सदकाय शुरू करे जिससे कि खोया हुआ समय आगे बढकर पुन पा सके।

इस मौके पर में भारत व जापान के बीच के राजनीतिक व आर्थिक सहयोग की स्थिति की सक्षिप्त चर्चा करन की अनुमति चाहता हूँ।, युद्ध से पूव तथा उसकी समाप्ति के बाद और जब मैं भारत व जापान के बीच सधि की दिशा म भारत सरकार के साथ कायशील था उस समय भी मैने एक निश्चित काय-क्लाप की कल्पना की थी। लेकिन आज जो कुछ मैं देखता हूँ वह सब एकदम भिन्न हैं। मेर विचार म, यह भारत का दायित्व है कि वह जापान के समक्ष स्वीकार करे कि बहत्तर पूव एशिया युद्ध से, जो जापान ने आरभ किया था भारत को तथा अन्य एशियाई (और अफ्रीकी व कुछ और) देशो को, जा औपनिवेशिक दासता के चगुल म कसमसा रह थे, शीघ्र आजादी पान म सहायता मिली थी। वस्तुत भारत इस बात को भी नही भूला, जसाकि इस पुस्तक म, इस विषय पर समाविष्ट सामग्री से

प्रमाणित है कि शाति व मत्री सवधी यानी भारत-जापान द्विपक्षी सधि क अवसर पर भारत न जापान के प्रति वडा गरिमापूण आचरण दर्शाया था। उस समय के जापानी नता जा लगभग मेरी पीढी क हैं, इस वात म भलीभाति परिचित थ और भारत की उदारता के प्रति आभारी थे।

लेकिन कदाचित कुछ कारणा से जिनके लिए जापानी व भारतीय दोनो ही पक्ष जिम्मेवार है मैं यह अनुभव किये विना नही रह सकता कि लगातार आपसी सहयोग की आरभिक प्रत्याशाएँ आशानुकूल साकार नही हो सकी हैं। जापान विशेषकर अपनी असाधारण आर्थिक प्रगति के वाद स व्यापार तकनीक व अय क्षेत्रा म दोनो देशा के समान लाभ की दृष्टि से सहयोगात्मक गतिविधिया पर अमल करन के विषय मे बहुत सक्रिय प्रतीत नही होता है। मेरा विचार है कि अमरीका की छन छाया म रहने की जैसी दिलचस्पी जापान की रही थी, कदाचित उसने वाछित स्तर तक, भारत जापान सवधो के उचित विकास म कुछ वाधा खडी कर दी है। जापान एसियन' के सदस्य दशा के मामला म ता पर्याप्त रुचि लेता है किन्तु भारत की ओर स दह की दृष्टि स देखता है। मै दाप ढूढन का प्रयास नही कर रहा हूँ। यह भी सभव है कि शाति सधि के अवसर पर, श्री के० क० चेत्तूर ने जो सु दर आधार प्रस्तुत किया था, उस पर दीवार उठाने की प्रक्रिया की दिशा म असफलता के लिए भारत भी कुछ हद तक जिम्मेवार है।

इसम कोई स देह नही है कि दोनो दशा की विदेश नीतिया म भिन्नता है। जापान स्पष्ट रूप स पश्चिमी गुट का सदस्य दश है जिसका नता अमरीका है, जवकि भारत अन्य एक सौ दशा के समान एक गुटनिरपेक्ष दश है। अत, जापान को भारत की विदेश नीति म हस्तक्षेप का अधिकार नही ठीक उसी प्रकार भारत को भी स्पष्टतया जापान की नीतियो के निर्धारण का कोई अधिकार नही है। कि तु मुझ चद घटनाओ का स्मरण हा आता है जव जापान भारत के सन्दभ म एक ऐसी नीति अपना सकता था जो उसके द्वारा वास्तव म अपनायी गयी नीति स भि न होती। जहा तक मुझे याद है सन 1962 म, जब चीन न भारत पर हमला किया था, ता मरे विचार म जापान न उतनी चिता नही दर्शाई थी जितनी भारत के अन्य मित्र दशा न। जापान द्वारा भारत की मित्रता की स्मृति इतनी धुधली न मानी जाती तो वहतर हाता। इसी प्रकार जब राष्ट्रपति निक्सन न परमाणु शक्ति चालक, अमरीकी विमानवाहक एटरप्राइज को (यह अफ़वाह भी गम थी कि वह पोत जापानी जल प्रागण याकोसुका स भेजा गया था और उसम एक अणु बम भी मौजूद था) भारत-पकिस्तान युद्ध के दौरान भारतीया को डरान क उद्देश्य स वगाल की खाडी म ला खडा किया था तव भी भारत के लाग यह दखकर आश्चयचकित रह गय थ कि जापान की ओर स कोई विरोध प्रस्तुत नही किया गया था।

इधर हाल ही म, सन् 1980 म अपना भारत यात्रा के दौरान जापान क विदश मत्री इतो ने नई दिल्ली में कुछ एसा कहा था कि जापान कपूचिया क विषय म भारत के पक्ष म नही है। यह सही है कि जापान को किसी भी प्रश्न के बार म भारत स असहमत होने का अधिकार है। किन्तु मैं नही साचता कि भारत की विदेश नीति के सबध म जो कुछ श्री इतो द्वारा नई दिल्ली म कहा गया उसकी कोई आवश्यकता थी। कदाचित, उन पर किसी और पक्ष का दबाव था या फिर कदाचित एशिया और समस्त विश्व म जापान की बढती आर्थिक शक्ति के प्रदशन का ही एक प्रयास था। एक तटस्थ स्थिति उचित रहती और आलाचनादि ता सवथा अवाछनीय ही थी। इस पुस्तक के लखन क समय अमरीका द्वारा पाकिस्तान को अस्त्रों स लैस किये जाने की खबरें बहुत गम्म ह। आशा है कि जापान इस विषय म ऐसा पक्ष नही अपनाएगा जो भारत के लिए हानिकर सिद्ध हा।

औद्योगिक महयोग और भागीदारी की दिशा म भारत सरकार का जापान के प्रति और जापान का भारत क प्रति रख भा बहुत सताषप्रद नही है। य दा महान एशियाई दश है। जापान तकनीकी सन्दभ म अत्यधिक विकसित है, किन्तु उसके पास कच्चा माल आदि नहीं है। उधर भारत विशाल प्राकृतिक ससाधनों का स्वामी है, जो जापान स औद्योगिक-तकनीकी जानकारी प्राप्त करक उस स्वय अपनी क्षमताओ म समाविष्ट कर सकता है। इसम बडी बडी सभावनाएँ हैं और इसस दोनो ही लाभान्वित हा सकते है। किन्तु जान क्या बात ठीक नही बैठ रही है। भारत म मेरे मित्र मुझे बताते है कि आपसी सहयोग का अभाव काफी हद तक तकनीक सबधी जानकारी सुलभ करान की जापानियों की अनिच्छा के कारण है। जसा कि जापान ने ब्राजील मक्सिको और यहाँ तक कि अमरीका व अन्य कुछ देशो मे किया है, भारत म भी वह अपने सयन्त्र ही स्थापित करना चाहता है।

मेरा विचार है कि जापान को याद रखना चाहिए कि भारत एक विकासोन्मुख देश है जो स्वदेश की उत्पादन व्यवस्थाओ म विदशी नियन्त्रण को प्रश्रय नही दे सकता। इस प्रकार क नियन्त्रण की माग पर यदि जापान बल नही देगा तो उसकी कोई विशष हानि नही होगी। यदि उसके प्रयासो क बदले उचित प्रतिफल उसे मिलता रहे ता उस सतुष्ट हो जाना चाहिए था।

मुझे बताया गया है कि जब भी जापान द्वारा भारत को केवल तकनीकी जानकारी वचन का प्रश्न उठता है तो ऊँचे दाम माग जात हैं। मेरी आशा है कि यह बात असत्य है क्योकि यदि यह सत्य है तो जापान सहयाग की उस भावना के अनुकूल आचरण नही कर रहा जिसकी आशा की गयी थी।

अनेक बार मैने सोचा है कि क्या भारत भी अनजान ही, उस प्रकार के गहन और सयुक्त विचार विमश करन और योजना बनान म असफल नही रहा है, जो भारत जापान सहयाग को निरन्तर और आपसी तौर पर लाभकर बनान के लिए

महत्वपूण घटक है। एड इडिया क सोर्टियम या अय एस ही सूत्रा के माध्यम से जापानी वित्तीय अनुदान अथवा ऋण प्राप्त कर लेना पर्याप्त नही है। वह सब भारत व जापान क बीच बढिया सबधा या सहयाग की योजना के स्तर पर सही नही बठता और उम टिकाऊ नही माना जा सकता। रुक रुक कर किय जान वाले तदथ और थाडा थोडा करके किय गय काय कलापा के बजाय हम कुछ ठोस करना चाहिए।

मुझे आशा है कि जापान और भारत अभी भी एक अच्छा समझौता और काय शैली स्थापित करन म सफल हाग जा उनक बीच के सबधा को आपसी लाभ क लिए अनुकूल व बराबरी क धरातल पर ला सकेगा, जिसकी श्री क० के० चेत्तूर, डाक्टर राधा विनोद पाल श्री शितारो यू श्री यासाबुरो शिमोनाका तथा अय महान विभूतिया न कल्पना की थी। निश्चय ही दोनो ही पक्षो म प्रतिभा तथा सद भाव सम्पन्न एस लाग हैं जा इस बात का ध्यान रखेंगे कि दोना देशो के बीच ऐसी काइ अप्रिय घटना न हो जिससे कि जिन महान नताआ की मैंने चर्चा की है उनकी आत्मा अशान्त हा। यही मरी हार्दिक अभिलाषा है।

व्याख्यात्मक विवरण

बुशिदो

सादा शब्दो म, बुशिदो का अर्थ है 'एक योद्धा का आचरण'। यह आचरण की एक संहिता होती है जिसक मुख्य अग हैं (1) निजी सम्मान और शौय या क्षात्र धर्म की उच्च भावना, (2) देश के प्रति अगाध प्रेम, जिसके लिए व्यक्ति कोई भी बलिदान कर सकता है, जिसम आवश्यकता पडन पर अपन जीवन का बलिदान भी शामिल होता है, (3) किसी भी पाप के लिए जान पर पश्चाताप और वही गलती फिर न दोहराये जाने का सकल्प और यदि पाप बहुत गभीर हो तो, आत्म दड यहाँ तक की अनुष्ठानिक शैली म, 'हारा कीरी' यानी स्वय अपन पेट म तलवार भोक कर आत्महत्या, (4) अपन स्वामी के प्रति अटूट स्वामिभक्ति और निस्सदेह सम्राट के प्रति भी।

यही बुशिदो की उक्त भावना जापानी समाज म सदियो स गहरी बठाई जाती रही है और वह भी बाल्यकाल से ही। इसके परिणाम म समाज में एक प्रकार का कठोर अनुशासन आ गया है। वह अच्छी बात है या बुरी, यह कहना कठिन है। उसके दोनो ही पहलू है। इस प्रथा क परिणाम म समाज म जो कठोर अनुशासन आया, उसके बल पर दश का आधुनिक स्तर पर, विशेषकर उन्नीसवी सदी के उत्तराद्ध म 'मइजी पुनजागरण' के आरभ स तीव्र विकास सभव हो सका। दूसरी ओर इस सैन्यवाद को बल दिलानवाला एक निहित दोष माना जाता है, जिसन जापान को युद्ध पिपासु बना दिया है। इस प्रथा से युद्धकारिता और विस्तार वाद की मिली जुली भावना का जन्म हुआ था। इस भावना न निजी वयक्तिक सोच विचार और क्रिया शक्ति की भावना पर विजय पायी और अन्तत सन् 1945 म जापान को भारी पराजय का मुह देखना पडा।

रोणिन

रोणिन का अर्थ आम तौर पर एक सामुराइ (योद्धा) होता है, जिसका कि

चर्चित काल म कोई विशेष स्वामी नही होता। ऐतिहासिक रूप से इस विचार-धारा का सबध एक प्रसिद्ध घटना से है जो एदो युग म हुई थी विशेषकर उस काल म जब तोकुगावा शोगुनेत (1600-1867) का बोलबाला था और विभिन्न प्रान्तीय सामती योद्धाओ पर उसका एकछत्र नियत्रण था जो उससे पहले तक अपने-अपने क्षेत्र मे कमोवेश स्वायत्त शासन चला रह थ। (शोगुन का अथ है जनरल सिमा यानी रण नेता अर्थात् प्रधान सेनापति) जापान मे लगभग समस्त तोकुगावा काल म राजनीतिक स्थायित्व विद्यमान था जो लगभग दो सौ वष से अधिक समय तक चलता रहा। किन्तु सन 1701 1703 मे एक सनसनीखेज घटना हुई जिस आम तौर पर 'सैंतालीस रोणिन' की घटना के नाम से जाना जाता है।

क्योतो से कुछ सरदार, एदो (जोकि तोक्यो का पुराना नाम था) म शोगुन से भट करने के लिए आये थे। तीन दाइम्यो को, जोकि क्षेत्रीय सामत थे, उनकी दख भाल व आवभगत का काम सौपा गया था। इन दाइम्यो म से एक, आको के आसानो नगानोरी का शोगुनेत के एक वरिष्ठ अधिकारी द्वारा अपमान किया गया। गुस्से म, आसानो न योशिनाका कीरा नामक उस अधिकारी पर तलवार स आक्रमण किया और उस ज़ख्मी कर दिया, हालाकि उसे वह मार न सका जसीकि उसकी शायद मशा रही होगी।

क्रोध का कुछ कारण रहा होगा या नही, आसानो का एदो दुग के अहाते म अपनी तलवार खीचना एक भयकर अपराध था। इसीलिए शोगुन न आसानो की जागीर जब्त कर ली और उसे आत्महत्या करन का आदेश दिया।

आदेश के अनुसार आसानो ने 'सेप्पुकु' यानी हाराकीरी अर्थात् स्वय अपना पेट चीरकर आत्महत्या कर ली। किन्तु जब यह समाचार आको पहुँचा तो आसानो के सामुराई (योद्धा) परिचर क्रोध से आग-बबूला हो गये और उन्होने अपने पूवकालीन स्वामी की मृत्यु का प्रतिकार लेने की ठानी। शुरू म तो उन्होने आसानो की जागीर तथा निवास स्थान के जब्त किये जान के आदेश का विरोध किया किन्तु अन्त म अपने नेता ओइशी योशियो की सलाह मानकर शोगुन के आदश का पालन होन दिया। लेकिन योशियो ने आसानो की मृत्यु और अपन-अपन दश भाइया के सामुराई के सम्मानपूण पद से गिरकर मात्र रोणिन यानी बिना स्वामी क योद्धा रह जाने के अपमान की हानि का बदला लेन की युक्ति सोची।

कीरा स प्रतिशोध लेने की गुप्त प्रतिज्ञा करके ये पूवकालीन सामुराई एदो म आकर रहने लगे। कीरा और शोगुन के अन्य एजेन्टो को सन्देह न हो, इसलिए ओइशी न दो वष तक प्रतीक्षा की और जानबूझकर एक विलासी लम्पट का जीवन बिताता रहा जिससे कि ऊपरी तौर पर ये आभास दिलाया जाए कि व और उसके पुराने साथी कोई प्रतिकारात्मक कारवाई करन मे रुचि नही रखत। किन्तु वास्तव म वह केवल शोगुन के गुप्तचरो तथा अन्य परिचरो की आँखो म धूल ही

झोकल रह थे। जनवरी 1703 म समस्त सतालीस राणिनो न कीरा क आवास पर अचानक हमला कर दिया और उस तथा उसके बहुत स सामुराइयो का मौत क घाट उतार दिया।

उन सतालीस रोणिना न एदो क प्रभुत्व के विरुद्ध आचरण किया था कि तु साथ ही अपन दिवगत स्वामी आसानो के प्रति उनकी स्वामिभक्ति और उनकी बलिदान भावना का जापानियो पर गहन प्रभाव पडा। अत वे उ ह वीर नायक मानन लगे। आरभ म तो शोगुन भी बहुत क्रुद्ध हुए लकिन अन्तत उ होन भी सहानुभूतिपूण रुख दशाया। तत्कालीन परिस्थितियो म उनका निणय यह था कि सभी सतालीस व्यक्तियो को हाराकीरी क सम्मानपूण माध्यम स अपन जीवन का अत करक अपन अपराध का प्रायश्चित करन की अनुमति दी जाए। इस आदेश क अनुसार उ होने स्वय अपनी जाने ल ली।

उन सतालीस प्रसिद्ध राणिना की अति नारकीय कहानी असख्य गाथा गीतो और अनक महान जापानी लखको द्वारा रचित साहित्य का विषय है। इनम स सवाधिक विख्यात है अठारहवी शताब्दी के आरभ मे इजामी की लिखी रचना चूशिगुरा।

उन सतालीस रोणिना की समाधियाँ तोक्यो क एक मदिर के अहात म स्थित है। आज भी राष्ट्रीय नायको की भाँति उ हे सम्मानित किया जाता है।

सोवियत समाजवादी गणतंत्र संघ
सोवियत समाजवादी गणतंत्र संघ
मंगोलिया
मनचौली
मंचूको
भीतरी मंगोलिया
हार्बिन
चांगचुन
(सिंकिंग)
मुकदेन
दायरेन
कोरिया
जापान
हामी
सिंकियांग
पाई-लिंग-म्याओ
पश्चिमी सुनीत
डोलोनोर
जेहोल
पीकिंग
तिएन्त्सिन
कल्गन
पाव टाऊ
रेगिस्तान
चीन
नानकिंग
फारमोसा
N
मंगोलिया और सिंकियांग में लेखक के यात्रा मार्ग को इस नक्शे में बिंदु रेखा (   ) से दिखाया गया है।

बैंगकॉक कांफ्रेन्स मे सभापति पद से रासविहारी बोस का उद्घाटन भाषण

15 जून, 1942

इस कुर्सी पर बठने और इस ऐतिहासिक सम्मेलन की कारवाई का सचालन करने का निमन्त्रण देकर आपने जो सम्मान मुझे दिया है उसके लिए मैं हृदय से आपका आभारी हूँ। अपने प्रति आपके प्रेम व स्नेह की अभिव्यक्ति का गहन आदर करते हुए मैं इस तथ्य से भी अनभिज्ञ नही हूँ कि इसी सम्मान के साथ साथ आपने इस सम्मेलन का सभापति चुनकर मेरे कधो पर एक भारी जिम्मदारी भी डाल दी है। लेकिन यदि मैंने आपके आदेश का पालन किया है और इस सम्मेलन के सम्मुख उपस्थित होनेवाली समस्याओ की जटिलता जानत हुए इस पद को स्वीकार किया है तो उसकी प्रेरणा मुझ आपकी सहयोग भावना और इस आस्था क बल पर ही मिली है कि आप लोग अनावश्यक बहस मुबाहसे मे अपना समय बर्बाद किए बिना सम्मिलित रूप से विचार-विमर्श करेंगे और उपयोगी निणयो पर पहुँचेग। मुझे विश्वास है कि इस सम्मेलन का सचालन सफलतापूवक सम्पन्न करने की दिशा मे मैं आपकी पूण सहायता और सहयोग पर निभर कर सकता हूँ।

आज जब मैं यहाँ खडा हूँ तो मेरा ध्यान गत माच की दुर्भाग्यपूण विमान दुघटना की ओर जाता है जिसमे हमारे चार अति मूल्यवान और महत्वपूण साथियो की—स्वामी सत्यानद पुरी और ज्ञानी प्रीतम सिंह जी (जो दोनो बैंगकाक से थे) और मलाया के कप्तान अकरम तथा नीलकठ अय्यर की मत्यु हो गयी जो हमारे इस सम्मलन के लिए तोक्यो आ रहे थे।

हमारे सघर्ष के एसे महत्वपूण काल म हमारे लक्ष्य को जो भारी हानि पहुँची है हम उसका एहसास है और हम सबको उसका बेहद दुख है। तो भी, मेरे भाइयो, हम इस विपत्ति को अपरिहाय मानकर स्वीकार करना होगा। हम उन मतकाकी

आत्मा की शाति के लिए प्राथना करनी चाहिए। ब्रिटिश साम्राज्यशाही क विरुद्ध अपने कठोर अतिम सघप म हम बहुत वडे-वडे वलिदान करन हुगे। भारत के स्वतत्र होन स पूव हमम से बहुता को अपन प्राणा की आहुति भी दनी पड सकती है। य अवश्य कहा जा सकता है कि हमारे इन चार साथियो न हमारा नतत्व किया है और हम माग दिखाया है जिस पर थाईलण्ड और मलाया के हमारे देश भाई गव अनुभव कर सक्त हैं।

सन् 1857 म और उसके वाद स जव हमने सवप्रथम भारत म ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध विद्रोह की आवाज उठाई थी हमारे प्रिय दशभाइया म स हजारा लाखा न अपनी मातभूमि को स्वतत्रता दिलाने क उद्देश्य से अपन प्राणो की बलि दी है। हम इस तथ्य को नही भूल सकत कि उ्हान अपन रक्त स स्वराज' के बीजा को सीचा है और उनके पावन वलिदाना का ही परिणाम है कि आज हम अपने लक्ष्य के इतन निकट पहुँच सके है और अब हम वडे विश्वास के साथ आशा कर सकत है कि निकट भविष्य म देश को आजाद करा पाएँग। विश्व का ब्रिटिश साम्राज्यवाद क भारतीय पीडितो की लबी सूची के एक छाटे से भाग के वारे मे ही जानकारी है। आइये, ज्ञात और अज्ञात उन असख्य देशभाइया की स्मृति के प्रति हम आदर व्यक्त करे। आज हमारी जो स्थिति है उस देखते हुए हम इसस अधिक और कुछ नही कर सकते। कि्तु वह समय दूर नही है जब भारत के प्रत्येक नगर और कस्बे म हम उनकी स्मृति मे एक उचित स्मारक खडा देखेंग और हम भारतीय उ्हे अपनी श्रद्धाजलिया अर्पित करेगे और गव स सिर उठाकर उनकी ओर देखेंग।

उन सम्मानित नेताओ कायकर्ताओ तथा सस्थाओ-सगठनो के प्रति भी हमे श्रद्धाजलि अर्पित करनी चाहिए जिन्हाने हमार देश को दासता की वेडियो से मुक्ति दिलाने के लिए सन् 1857 स ही विभिन्न रूपा म अथक प्रयास किये हैं। उनकी सूची न तो छोटी है और न उनका योगदान किसी प्रकार महत्वहीन। आइय हम भारत की महानतम जीवित विभूति महात्मा गाधी को आदर समर्पित करे जिन्हाने अपन चमत्कारी आह्वान से सदिया की नीद स भार-तीय जन-समाज को जगाया है और उनम आत्मविश्वास की भावना का सचार किया है। हमे इस वात मे कोई सदेह नही होना चाहिए कि जब भारत का नवीन और सच्चा इतिहास लिखा जाएगा तो महात्मा गाधी का नाम भारत के उद्धारक व मुक्तिदाता की भाति लिखा जाएगा।

सन् 1857 से अब तक के भारत के स्वतत्रता सघप का ब्योरेवार वणन करके मैं आपका बहुत समय नही लेना चाहता। केवल इतना कहना ही पर्याप्त है कि सन 1857 की हमारी क्रान्ति की असफलता हालाकि राष्ट्र के लिए एक बडा सदमा थी और हालाकि सारे दश का एक निराशा न जकड लिया था

ता भी ब्रिटिश शासन की जडें उखाड फेंकने के हमारे प्रयास कभी नही रुके। तत्कालीन परिस्थितियो के अनुसार सभी गतिविधिया छिपकर सम्पन्न की जाती होती थी और उनका दायिरा भी सीमित ही रखा जाता था। जब कभी अवसर मिलता एक विद्रोह खडा कर दिया जाता। छोटी मोटी आरभिक स्थितियो को छोडकर बडे पमान पर हमारा पहला प्रयास तब किया गया था जब सन 1914 1918 का युद्ध आरम्भ हुआ था। हमारे कायकर्ता हर कही बहुत सक्रिय थे। भारतीय सेना विद्रोह मे शामिल होने को तयार थी। सेना के एक अग ने तो वास्तव म समयपूव विद्रोह कर भी दिया था। हमारा विचार था कि हम सफल होगे। दुर्भाग्यवश उस अवसर पर हमे सफलता नही मिली। हजारो भारतीयो को अडमान तथा माडले भेज दिया गया और उनम से सैकडो अभी भी जेलो और बदी शिविरो मे पडे सड रहे है।

सन 1914 1918 के युद्ध के दौरान ब्रिटिश अधिकारी झूठ बोलकर और झूठे वादे करके भारत का समथन और सहयोग प्राप्त करन म आशिक रूप से सफल हुए थे। चतुर ब्रिटिश कूटनीतिज्ञो की मोहक वाक्य रचनाओ के कारण हमारे लोग भ्रमित हो गये थे। उन्होने युद्ध के बाद हमे स्वतन्त्रता देने का वादा किया था जो वे इस वतमान युद्ध के दौरान भी कह रहे है। किन्तु उस युद्ध की समाप्ति के तुरत बाद ये पता चल गया कि उनकी अपने वादो को पूरा करने की कोई योजना नही है, बल्कि वे निश्चित रूप से उन सब नागरिक सुविधाओ और स्वतन्त्रताओ को भी छीन लेना चाहते थे जो भारतीयो को युद्ध से पहले सुलभ थी। जब भारतीयो ने इसके खिलाफ विरोध किया तो ब्रिटिश पक्ष की ओर से इसका उत्तर बमो गोलियो और मशीनगनो के रूप मे दिया गया। कहने की आवश्यकता नही कि अप्रल 1919 मे अमृतसर म जलियावाला बाग की त्रासदी की याद हमम से प्रत्येक के मन मे अभी भी ताजी है और जख्म भरा नही है। वह जख्म तब तक भर भी नही सकता जब तक कि हम उस शक्ति का जो हमारे लोगो के अपमान और निरादर का कारण रही है, पूणतया नाश नही कर देते।

लेकिन प्रत्येक त्रासदी से एक शिक्षा प्राप्त की जा सकती है और जलियांवाला बाग की त्रासदी के विषय म भी यही बात सच है। एक हजार से भी अधिक बेगुनाह शहीदो का खून जिनम हमारे बच्चे व नारियाँ भी शामिल थे, बिना रग लाये नही रह सकता। देश को एक छोर से दूसरे छोर तक झकझोर कर रख देने वाली भयानक उथल पुथल और सन 1919 से भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस द्वारा चलाये जानेवाले असहयोग तथा नागरिक अवज्ञा के भारी अभियान ने भारत के जन-जन को राजनीतिक सघष के लिए अत्यन्त कारगर ढग म एकजुट कर दिया। यह नि सदेह जलियाँवाला बाग के हत्याकाड का सीधा परिणाम था।

हम सबको चाहिए कि श्रद्धा स अपना सिर झुकाकर अपने उन बहन भाइया के प्रति आभार व्यक्त करें जिन्होन जलियाँवाला वाग म अपन प्राण देकर भारत के लिए नया जीवन रचा है। जैसा कि हम जानते हैं आज भारत के करोडा लोग अपनी मातभूमि के लिए पीडा सहने और अपना सब कुछ बलिदान करने के लिए तयार और कृतसकल्प हैं। जब सन 1939 म यूरोप म युद्ध आरम्भ हुआ था उस समय भारत से सहयोग तथा सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य स ब्रिटेन न पुन शब्दजाल फैलाने का प्रयास किया था। किन्तु हम सब क लिए यह बडे हप का विषय है कि आज तक भारत के राष्ट्र प्रेमी ता भ्रमित हाने स वचत रहे हैं और भारत को युद्ध म घसीटने के समस्त ब्रिटिश प्रयासा का विरोध करत रहे है। महात्मा गाधी, जिन्होने सर्वाधिक श्लाघ्य तरीके से स्वदेश को युद्ध म फँसने के सभी खतरा से बचाये रखने के प्रयास किय हैं हमार आदर व सम्मान के पात्र है।

भारत की इस प्रमुख पप्ठभूमि मे 8 दिसम्बर, 1941 के दिन बहत्तर पूव एशिया युद्ध की घोषणा की गयी। चाहे वह विश्व के किसी भी भाग म रहता हो, जापान के प्रति उसका कसा भी रुख क्या न हो, मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि एक भी सच्चा भारतीय देशप्रेमी ऐसा हागा जिसके दिल म खुशी और सतोप का उदय न हुआ होगा, जब एग्लो-सक्सन जाति के विरुद्ध जापान द्वारा युद्ध की घोषणा का समाचार उसके कानो तक पहुँचा होगा। मैं यह नही मान सकता कि कोई ऐसा भारतीय होगा उसका पेशा या धारणा व विश्वास आदि कुछ भी क्या न हो, जिसे जब जापान की शक्तिशाली शाही फौजो ने धरती पर या समुद्र म या फिर आकाश से एशिया मे साम्राज्यवाद के विरुद्ध दिन प्रतिदिन बुरी मार लगायी और इस क्षेत्र मे ब्रिटेन की साम्राज्यशाही के अडडे, ताश के पत्तो क समान एक-एक कर ढहने लग तो उस समय उसे वेहद खुशी न हुई हो। क्याकि क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो मानवता और शाति के सबसे बडे शत्रु और सदियो से सबस बडे आक्रामक का विनाश होते देखकर हप के आसू रोके रह सके? हममे स जिन लोगो को जापान मे रहन और काम करने का अवसर मिला था, उन्ह तो इस सर्वाधिक शुभ घटना को लेकर अति हर्षित होने का और भी विशेप कारण मिला था।

हम दशको स जापान मे कायरत हैं और हम दलित एशियाइयो के समथन म खडे होने और एशिया को मुक्ति दिलाने की स्थिति को पहचान सकते हैं। हम उस दिन की उत्सुकता से प्रतीक्षा है जब जापान एक स्वतत्र और एकीकृत एशिया के सृजन के महान लक्ष्य को पूणतया प्राप्त कर लेगा और आश्वस्त होगा कि यदि शेप विश्व के लिए नही, केवल बाकी एशिया क लिए बल्कि जापान के लिए भी यह बात हितकर होगी कि पूर्वी क्षेत्र म एग्लो-सक्सन साम्राज्यशाही के

जबदस्त चगुल का समूल नष्ट कर दिया जाए। हम सब को पूरा यकीन है कि मात्र जापान ही यह महान काय सम्पन्न कर सकता है। इसलिए जब सर्वाधिक शुभ दिन, यानी भगवान बुद्ध की निर्वाण प्राप्ति के दिवस की सुबह को, हम दोनो दशो के यानी भारत व जापान के शत्रु के विरुद्ध युद्ध की जापानी घोषणा जोकि एक सर्वाधिक शुभ समाचार के समान थी, हमे सुनने को मिली तो हम विश्वास हो गया कि जापान मे हमारा लक्ष्य सफल हो गया था। हम यह विश्वास भी हो गया कि भारत की स्वतत्रता की प्राप्ति का आश्वासन निश्चित हो गया है। दशको तक जापान मे रहने के कारण मुझे अच्छी तरह ज्ञात है कि जापान जब तक अपन बल व शक्ति की जाच न कर लेगा और अपनी सफलता के प्रति आश्वस्त न होगा, कोई गभीर कदम नही उठाएगा। इसलिए मैं उन लोगो से सहमत न था जो ऐसा सोचत थे कि चीन मे अपनी लगातार सनिक गतिविधियो के कारण जापान, ऐग्लो-सैक्सन शक्तिशाली शत्रु को चुनौती देन के योग्य नही रह गया है। शत्रु को उन दिनो तथाकथित सयुक्त सेनाएँ कहा जाता था। मैं उन लोगा मे से एक था जिन्हे लेशमात्र भी सदेह न था कि चीन मे युद्ध उस शत्रु के विरुद्ध वास्तविक युद्ध की प्रस्तावना के समान था जो चीन व जापान के बीच लगातार भ्रातघातक सघष के लिए वास्तव मे जिम्मेदार था। गत दस या उससे अधिक वर्षों के दौरान अतर्राष्ट्रीय शतरज की बिसात पर होनेवाली घटनाएँ यह आभास दिलाती रही हैं कि ऐसी विश्वव्यापी लडाई तो अपरिहाय ही थी। यह बात भी स्पष्ट थी कि जब जापान, ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध शस्त्र लेकर खडा होगा तभी भारत की स्वतत्रता के प्रश्न का सफल समाधान प्राप्त किया जा सकेगा।

अब जबकि जापान तथा थाईलड न हम सबके शत्रु के विरुद्ध हथियार उठा लिये हैं तो हमारे सम्मानित मित्रो के सयुक्त प्रयासा से ब्रिटिश साम्राज्य के विनाश का आश्वासन मिलता है और हमारी पूण विजय निश्चित है।

हमारे शत्रु का विनाश करने के लिए मित्र मोर्चों पर ऐसे प्रभावकारी प्रयास हम एक समान लक्ष्य की दिशा म एक समान प्रयासा सम्बन्धी अपन कतव्य तथा जिम्मेदारी का स्मरण कराते हैं। हम स्वय से यह प्रश्न करना चाहिए कि इस महान उद्देश्य के लिए हमने क्या किया है और आगे हम क्या करन जा रहे हैं। केवल जापान, जमनी तथा इटली की प्रशसा भर करना हम उस स्थिति के योग्य नही बनाता जिसकी हमे चाह है। हम अपना छोटे-स छोटा योगदान भी अवश्य करना चाहिए और जो कर सकत हैं उन्हे बडे-बडे बलिदान भी करना चाहिए। तभी हम अपन महान मित्रो के आदर व स्नेह का पात्र बन सकेंगे और केवल तभी हम भावी अतर्राष्ट्रीय समाज मे अपन महान देश को उचित स्थान दिये जाने का दावा भी कर सकेंगे।

इस अति महत्वपूण तथ्य का पहचानते हुए और इस अति महत्वपूण घडी म अपनी मातभूमि के प्रति अपन कतव्य को पहचानते हुए तोक्यो म हम 8 दिसम्बर, 1941 के दिन 'रेनबो ग्रिल' म एकत्र हुए और एक कायक्रम निर्धारित किया। मेरे देशभाइयो ने एक समिति की स्थापना की और उस अभियान का नेतत्व करन के लिए मुझसे अनुरोध किया। मैंने सहष उनके निणय के अनुरूप आचरण करना स्वीकार कर लिया। सवप्रथम हमने बाहर स एक निश्चित लडाई के समथन म पूर्वी एशिया के भारतीयो का मत एकत्र करने का काम आरभ किया। जापान म विभिन्न स्थलो पर सभाएँ की गयी और हमारे देशभाइयो की एकता ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विनाश करके भारत की स्वतनता की घोषणा की भारी आवश्यकता और अपने काम म आस्था प्रकट करने पर बल देनेवाले प्रस्ताव पारित किये गये।

26 दिसम्बर, 1941 के दिन जापान म रहन वाले भारतीयो के इतिहास मे पहली बार कोबे, ओसाका, योकोहामा और तोक्यो इन चार नगरो के भारतीय निवासियो के लगभग पचास प्रतिनिधियो का एक सम्मलन हुआ। इसका स्थान था तोक्यो म रेलव होटल। इस सम्मेलन म समस्याओ पर विचार विमश किया गया। भारतीयो का आह्वान करते हुए यह प्रस्ताव पारित किया गया कि भविष्य म स्थिति की गभीरता और खतरो को पहचानें। प्रस्ताव का रूप निम्नलिखित था—

चूकि यूरोप और अफ्रीका म ब्रिटिश शासको व उनके मित्र देशो की लगातार पराजय के कारण यूरोप मे ब्रिटिश साम्राज्यशाही का भाग्य सूय डूब गया है

चूकि, पूर्वी क्षेत्र मे जापान द्वारा ब्रिटेन की समुद्री व थल सनाओ के सर्वाधिक निणायक विनाश के कारण एशिया म ब्रिटिश साम्राज्यवाद की शक्ति व प्रतिष्ठा का घातक आघात लगा है

चूकि युद्ध तीव्र गति स भारत के, जो ब्रिटेन का एक गढ जसा है तटो व सीमाओ की ओर बढ रहा है इसलिए सभव है कि 'अक्सिस' शक्तियाँ ब्रिटेन की युद्धक शक्ति के प्रमुख स्रोत को मिटाने के लिए भारत पर आक्रमण करे,

चूकि, ऐस किसी आक्रमण स नगरो, कस्बो व गाँवो मे करोडो बेगुनाह और बेसहारा लोगो को अकल्पनीय और चरम स्तर की कठिनाइयो व पीडा का सामना करना पड सकता है और

चूकि, इस सर्वाधिक दुखदायी स्थिति स बचे रहने का एक मात्र उपाय है ब्रिटिश शासन से भारत की पूण स्वतन्त्रता की घोषणा और ब्रिटिश साम्राज्यशाही के साथ सभी सम्भव सबधो का तत्काल विच्छेद।

इसलिए जापान म रहनेवाले भारतीय राष्ट्रिक, जो इस सम्मलन म भाग ले

रह है सर्वाधिक गभीरतापूवक और निष्ठा से भारतीय राष्ट्रीय काग्रस और भारत के लोगो से अपील करत है कि तुरन्त ही भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा की जाय और भारत म *ब्रिटिश शासको के समस्त शक्ति छीन ली जाय, ब्रिटिश साम्राज्यशाही* युद्ध की दिशा म भारतीय सहायता के प्रत्येक स्रोत को नष्ट करने के तुरन्त प्रभाव कारी प्रयास किये जाएँ और जनता की ओर से घोषणा की जाय कि भारत की इस झगडे म पडन की कतई कोई इच्छा नही है और वह ब्रिटेन की सहायता करन का कभी इच्छुक नही रहा है।

हमारे प्रतिनिधियो को शघाई भेजा गया और इसी वष की 26 जनवरी को शघाई के भारतीय निवासियो की बडी-सी सभा 'यगमन्स एसोसियेशन के भवन म हुई जब तोक्यो म पारित प्रस्तावा के समान प्रस्तावो को उत्साहपूवक पारित किया गया और हमारे अभियान को सवसम्मत समथन मिला।

इसी बीच हमन जापान की सनिक तथा गैर-सनिक हाई कमानो के साथ सम्पक स्थापित किया और उन पर भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के सघष मे भार तीयो की सहायता की आवश्यकता पर बल दिये जाने की बात कही। और ये सब उसी महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किया जाना था जिसके लिए जापान ने ब्रिटेन व अमरीका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की थी। हमने उन्हे यह बात स्पष्ट बताई कि जब तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद का भारत मे बोलवाला था तब तक जापान युद्ध म अतिम विजय की प्रत्याशा नही रख सकता था। अन्तत हम उन्हे अपनी बात मनवान म सफल हुए और जापान क प्रधान मत्री जनरल तोजो ने शाही ससद के सामने खुले रूप से घोषणा की कि उनकी सरकार लम्बी दासता स अपने दश को मुक्त करान के लिए भारतीयो के प्रयासो मे सहायक बनन को तयार थी। सिंगापुर को पराजय के बाद शाही ससद के सम्मुख अपनी घोषणा म उन्होने कहा —

यह भारत के लिए जो कई हजार वष के इतिहास और सास्कृतिक परम्पराओ वाला दश है एक स्वर्णिम अवसर है कि वह ब्रिटेन की क्रूर तानाशाही से स्वय का मुक्त कराये और वहत्तर पूव एशिया सह समद्धि क्षेत्र की स्थापना मे योगदान करे। *जापान को आशा है कि भारत भारतीयो के लिए उचित प्रतिष्ठा की* स्थापना करेगा और भारतीयो के देशप्रेमपूण प्रयासो को सहायता दिलाने मे कजूसी नही बरतेगा। यदि भारत, अपन इतिहास व परम्पराओ को भूलकर अपन लक्ष्य की दिशा म जागत नही होता और अतीत की भाति ही ब्रिटेन की फुसलाहट और चालाकी से ठगा जाना जारी रखता है और उसके इशारो पर नाचता रहता है तो मुझे डर है कि भारतीय लोगो के नव जागरण का अवसर सदा-सदा के लिए खो जायेगा'।

इस घोषणा से हम बहुत प्रोत्साहन मिला और हम विश्वास हो गया कि पूव

एशिया युद्ध की समाप्ति स पूव ही भारत निशक होकर यह आशा कर सकता था कि वह स्वतत्रता प्राप्त कर लेगा। जनरल तोजो के वचनो पर भरासा करत हुए हमने सन्नो होटल म अपना मुख्यालय स्थापित किया और पूरी निष्ठा व लगन से अपना कायकलाप और तैयारी आरम्भ कर दी। हमने निणय किया कि पूव एशिया के विभिन्न भागो की भारतीय सस्थाओ के प्रतिनिधियो का एक सम्मेलन किया जाय जिससे भविष्य मे अपनी गतिविधिया सम्बधी विचारो का विनिमय किया जा सके। सनिक अधिकारियो की सहायता से सारा प्रबध आसानी से कर लिया गया और मलाया, हागकाग, शघाई तथा तोक्यो म रहने वाले हमारे देशभाइयो के प्रतिनिधि एक तीन दिवसीय सम्मेलन मे मिले और अपन अभियान के कायकलाप और प्रगति के सम्बध म एक आरम्भिक रूपरेखा तयार की। विदेश से आये जिन मित्रो ने तोक्यो सम्मेलन म भाग लिया, उह तोक्यो स्थित जापानी सेना के जिम्मेदार सदस्या के सम्पक म आन का अवसर मिला और हमार अभियान की स्थिति की अधिकाधिक जानकारी प्राप्त हुई। ताक्यो सम्मेलन म होने वाला विचार विमश विविध प्रकार का था और हमन एक ठोस आधार प्रस्तुत करने का यथासम्भव प्रयास किया जिस पर हम भविष्य म अपनी गतिविधियो की योजना बना सकत थे। हम सभी जानते हैं कि तोक्यो सम्मेलन एक ऐस समय मे आयोजित किया गया था जब आज की तुलना म कही अधिक गडबडी व्याप्त थी। इस्ट इण्डीस से हमारे मित्र नही आ सके थे। पूव चर्चित दुर्भाग्यपूण दुघटना के कारण थाईलण्ड के अपने देशभाइया की अमूल्य सहायता व परामश आदि से भी हम वचित रह गय थे। बर्मा तथा अण्डमान पर अभी भी शत्रु का ही अधिकार था। इसलिए हम एक ऐसे निष्कष पर पहुचने म असफल रहे थे जिसे समस्त पूव एशिया के हमारे देशभाइयो के मत का प्रतीक माना जा सकता था। इसलिए हमन कालान्तर मे एक बडे और अपेक्षतया अधिक प्रतिनिधि सम्मेलन के आयोजन का निणय किया, जिसम तोक्यो म लिय गय निणयो का अनुमोदन किया जाना था। आज जिस सभा म हम भाग ले रहे है, यह उसी निणय का परिणाम है।

इस सम्मेलन के आयाजन की जिम्मेदारी मेरे क धा पर डाली गयी थी और मुझसे कहा गया था कि सम्मेलन इसी नगर मे किया जाना चाहिए। मुझे खेद है कि सम्मेलन के आयोजन मे कुछ सप्ताह का विलम्ब हुआ। हमारी आशा थी कि हम यहा कुछ पहले पहुच जाएँगे कितु आजकल की असाधारण परिस्थितिया के कारण सब कुछ यथा प्रत्याशा नही किया जा सकता और हमे परिस्थिति के साथ समझौता करना ही होता है।

मैं जानता हू कि गत छह मास की घटनाओ व गतिविधियो का ब्यौरा देकर मै आपको उबा चुका हूँ। कितु यह आवश्यक है कि जो कुछ हुआ और

हमने जो भी प्रगति की उस सब की जानकारी इस सम्मेलन का कार्य आरम्भ करने और दूर भविष्य के लिए निर्णय आदि लिये जाने से पूर्व आपको अवश्य कराई जाए।

मित्रो, हम सब स्थिति की गंभीरता को और साथ ही इस तथ्य को भी कि हम भारत के इतिहास के सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल से गुजर रहे हैं, भली भाँति जानते हैं। मैं लम्बे लम्बे भाषण करके समय नष्ट करना नहीं चाहता। गत पाँच दशकों से भी अधिक समय मे वह सब बहुत हो चुका है। निरर्थक बातो मे या बहसो मे हम अपना समय बर्बाद नही कर सकते। जो लोग, वास्तव मे अपनी मातृभूमि की सेवा करना चाहते है उनके पास बाते करने का समय नही हुआ करता। यदि हम किसी ठोस निर्णय पर पहुँचे बिना केवल बाते ही करते रहेगे तो समय हमारी प्रतीक्षा नही करेगा और हम अपनी पिछली मूर्खता पर केवल आसू ही बहाते रह जाएँगे और फिर भूल सुधार का समय नही बच रहेगा। मैं जानता हूँ कि अति कठिन समस्याएँ हैं जिन पर आपको विचार विमर्श करना होगा और आपके सावधानीपूर्ण सोच विचार करने की आवश्यकता होगी। मैं यह भी जानता हूँ कि आपको बहुत अधिक मनन चिन्तन करना होगा और कोई भी निर्णय लेने से पूर्व अपने भीतर की बहुत सी शंकाओ से निपटना होगा। लेकिन यदि आप एक सकारात्मक ठोस और वास्तव मे उपयोगी योजना के निर्धारण का संकल्प लेकर आये है तो आप शीघ्र निर्णय ले सकेंगे। आइये, हम सब अपनी मातृभूमि के प्रति अपने दायित्वो को पूरी तरह पहचाने और यह ठीक ठीक समझे कि हमारा कुचला हुआ देश इस सुनहरे अवसर को जोकि सदियो मे कभी एक बार ही सामने आता है खोने की गलती न करे। सैंकडो हजारो की संख्या मे हमारे भाई-बहनो ने अपने जीवन का बलिदान किया है और एक शताब्दी से भी अधिक समय तक दुख तथा यातनाएँ भोगी है ताकि हमारा देश पुनः स्वतन्त्र हो सके। आइये, हम स्थिति के अनुरूप उठ खडे हो और उनके प्रयासो को सफलता दिलाएँ जिससे कि स्वर्ग मे शहीदो की आत्माओ को शान्ति प्राप्त हो और वे प्रसन्न हो। आइए हम सब मिलकर ऐसा कार्य करें, जिससे कि गत दो दशको से भी अधिक काल मे महात्मा गांधी ने जो महान तैयारियाँ की है वे फलवती हो और भविष्य मे हमारी संतान एक स्वतन्त्र राष्ट्र के सदस्यो के रूप मे हमे गर्व और सम्मान से याद करे।

मैं जानता हूँ कि आप मे से बहुत से लोग हमारी गतिविधियो के परिणाम मे हमारे देश का अन्त मे क्या भाग्य होगा इस विषय मे शंकाएँ व सन्देह लेकर आये हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मै आपकी इन भावनाओ और सुरक्षा सम्बन्धी आपकी इच्छाओ को अच्छी तरह समझता हू। फिर भी मेरा विचार है कि ये मिथ्या आधार पर खडी है। सदियो पुराना साम्राज्यशाही

शोषण का कटुतम अनुभव होने के कारण हम अपने सच्चे मित्रों पर भी सन्देह करने लग हैं और यदि हम इसी प्रवृत्ति पर चलते रहेंगे तो दुनिया आगे बढ़ती रहेगी और हम मलाल करते रह जाएंगे।

मैं यहाँ एक चेतावनी भी देना चाहता हूँ। हमारे शत्रु हमें विभक्त रखने और ऐसे अवसरों पर हमारे दिलों में गलत धारणाएँ जगा पाने में सदा सफल रहे है। अतीत में बहुत से अवसरों पर झूठे ब्रिटिश प्रचार के कारण हम अपने देश को स्वतंत्र कराने के अवसरों को खोते रहे हैं। मैं केवल यही आशा कर सकता हूँ कि हम वह गलती फिर नहीं दोहराएंगे। हमारी शंकाओं व सन्देहों के लिए काफ़ी हद तक जिम्मेदार है हमारे प्रयासों को बेकार करने के उद्देश्य से हमारे शत्रु की धूर्ततापूर्ण और सुविचारित योजनाएँ। हम में से वे लोग जो समाप्त रूप से बुद्धिमान हैं और जो तथ्यों व वास्तविक घटनाओं से अनभिज्ञ नहीं हैं और अपना मार्ग साफ देख व पहचान सकते है।

हम जापान जर्मनी थाईलैण्ड तथा इटली की सरकारों के प्रति जिन्होंने हमारी लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में सर्वाधिक मैत्रीपूर्ण रुख दर्शाया है आभारी होना चाहिए। हम जापान के प्रति विशेष आभार प्रकट करना चाहिए जिसने हमारे पवित्र लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में सहायता का सर्वाधिक आशापूर्ण और सुनिश्चित वचन दिया।

हम प० जवाहरलाल नेहरू के ये शब्द कभी नहीं भूलने चाहिए कि 'सफलता प्राय उन्हीं के हाथ आती है जो साहस के साथ प्रयास करते है वह डरपोक व कायरों के हाथ कभी नहीं लगती।"

दोस्तो, मैं आपसे दिली अपील करता हूँ कि यहाँ के सत्र के समापन पर आपके पास भारत को स्वतंत्रता दिलाने की एक सर्वाधिक व्यवहार्य और कारगर योजना होगी जिससे कि हम सम्मेलन के तुरन्त बाद अपना काम शुरू कर सकेंगे और आगे बढ़ सकेंगे। हमारा सौभाग्य है कि हमें अपनी भारतीय सेना की सर्वाधिक अमूल्य सहायता प्राप्त है। भारत के शत्रुओं की सेवा करना अस्वीकार करके उसके द्वारा हमारे लक्ष्य की दिशा में पहले ही महान सेवा की जा चुकी है जिसके लिए वह हमारे गहन सम्मान की पात्र है। किन्तु उनकी महानतर सेवा हमारे निर्णय की प्रतीक्षा में है। एक नेक न्यायसंगत उद्देश्य के लिए, न्यायसंगत लड़ाई में, हमारे सैनिकों के साहस और वीरता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। उन भारतीय सैनिकों के परिवारों तथा मित्रों के लिए हम सहानुभूति प्रकट करते हैं जिन्होंने भूल से यह सोच लिया था कि वे सही लक्ष्य के लिए युद्धरत थे और यूरोप तथा एशिया में जिन्होंने अपने प्राणों की बलि दी है। वे भी ब्रिटेन के उस झूठे प्रचार के शिकार हुए थे जो हममें से इतने अधिक लोगों के मन में निराधार सन्देहों का कारण है। मैं अपने बहादुर सैनिकों की वीरता के आगे नत मस्तक हूँ। हम

इस बात म कोई स देह् नही होनी चाहिए कि उनके हार्दिक सहयोग के बल पर ही हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपनी अ तिम लडाई म विजयी होग । आइये हम क धे स क धा मिलाकर खड हा आर एक दूसरे का हाथ थामकर सफलता की ओर बढे। हम याद रखना चाहिए कि हमारा एक देश है भारत एक शत्रु है इग्लण्ड और हमारा एक ही लक्ष्य है---पूण स्वतत्रता ।

सूत्र श्री रासबिहारी बोस का नखागार जा उनकी पुत्री श्रीमती तेत्सु हिगुचि के अधिकार म ह । श्रीमती हिगुचि क सौज य से प्राप्त व प्रस्तुत ।

जस्टिस डॉ० राधा विनोद पाल और श्री यासावुरो शिरोनाका के संक्षिप्त जीवन-वृत्त

जस्टिस डा० राधा विनोद पाल दिवगत विपिन विहारी पाल के सुपुत्र, पश्चिम बगाल के नादिया जिले म सलीमपुर म 27 जनवरी, 1886 को पैदा हुए थे। कलकत्ता के प्रेसिडेन्सी कॉलेज स गणितशास्त्र मे विशिष्ट शिक्षा पाकर सन् 1907 म बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। फिर सन 1908 म विज्ञान म एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। उसके बाद विधिशास्त्र का अध्ययन किया और सन 1911 मे बी० एल० की उपाधि प्राप्त की। गणित के प्रोफेसर की भाँति काय आरभ किया किन्तु विधिशास्त्र की डिग्री प्राप्त कर लेने के बाद, एक एडवोकेट की हैसियत से कलकत्ता हाई कोट के वकील समुदाय म शामिल हो गये। सन् 1920 म अपनी कक्षा म सर्वोच्च अक प्राप्त कर, विधिशास्त्र मे एम० ए० की डिग्री हासिल की। सन 1923 मे कलकत्ता विश्वविद्यालय के विधि कॉलेज म विधि के प्रोफ़ेसर के पद पर नियुक्त किये गय और सन 1936 तक उसी पद पर कायरत रहे। सन् 1924 मे कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा उन्हे डाक्टर आफ ला की डिग्री से सम्मानित किया गया, इस उपाधि के लिए उनके शोध प्रबध का विषय था— 'मनु-पूव सहिता वेद और परवर्ती वेद काल म हिन्दू दशन' (सक्षेप मे कहें तो, 'वेदात म विधि शास्त्र')।

सन् 1925 फिर सन् 1930 और उसके बाद सन 1938 मे कलकत्ता विश्वविद्यालय मे विधि के टगोर ममोरियल प्रोफेसर के रूप मे नियुक्त किये जाने वाले व एक मात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हे तीन बार ऐसे सम्मान का पात्र माना गया। सन् 1927 से लेकर सन् 1941 तक भारत सरकार के न्यायिक परामशदाता रह। सापेक्ष विधि की अतर्राष्ट्रीय अकादमी के सयुक्त प्रेसिडेट और सन् 1937 मे ब्रिटेन की अन्तर्राष्ट्रीय विधि एसोसियेशन के सदस्य बने। उसी वष विश्व विधि समाजो के सम्मेलन म प्रेसिडेट समूह म स एक की भूमिका निभाई।

सन 1941 से 1943 तक कलकत्ता हाई कोट के जज रहे। सन् 1944 स 1946 तक कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति रहे सन 1946 स 1948 तक तोक्यो म सुदूरपूर्व के लिए अ तर्राष्ट्रीय सैनिक अदालत मे जज के पद पर कायरत रहे जहा उन्होंने अपना प्रसिद्ध विसम्मत फैसला सुनाया कि तथाकथित जापानी युद्ध अपराधी अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि मे निर्दोप थे।

सन 1952 से 1967 तक अ तर्राष्ट्रीय विधि सबधी राष्ट्रसघ आयोग के सदस्य रहे (बाद म सन 1958 और फिर सन् 1962 मे उसके प्रधान पद पर आसीन रहे।)

विश्व महा सघ के विपय पर एशियाई सम्मेलन म भाग लेने के उद्देश्य से सन 1952 म जापान पधारे और भारत-जापान मत्री सघ के तत्वावधान मे अनेक भापण यात्राएँ की। हइबोशा नामक प्रकाशन सस्था के सस्थापक और भारत के एक सच्चे मित्र श्री यासाबुरो शिमोनाका के साथ चिरस्थायी भ्रातृ स्नेह और आदर का सबध स्थापित किया। उनके निमत्रण पर डा० पाल सन 1953 म पुन जापान पधार और दश के विभिन्न भागो मे प्रबुद्ध श्रोतागणो के सम्मुख अनेक भापण दिये।

सन 1959 म भारत मे विधिशास्त्र के अ तर्राष्टीय प्रोफेसर के सम्मान से विभूपित किये गये। सन 1960 म विश्व यायालय के जज चुने गये।

26 जनवरी, 1959 को उ हे भारत के राष्ट्रपति द्वारा देश के दूसरे सर्वोच्च सम्मान पदमविभूपण से अलकृत किया गया।

सन 1966 म चौथी बार जापान यात्रा की और जापान के सम्राट के करकमलो से फस्ट आडर ऑफ मेरिट ऑफ दि सेक्रेड हाट' का सम्मान प्राप्त किया।

विधि के विपय पर विशेपकर हिन्दू विधि के विपय पर जिसके बारे म उ ह कदाचित सर्वोच्च विशेपज्ञ माना जाता है, अनेक पुस्तके लिखी।

10 जनवरी सन् 1967 को कलकत्ता मे उनकी इहलीला समाप्त हो गयी। उनके चार पुत्र और छह पुत्रिया है।

श्री यासाबुरो शिमोनाका

ह्योगो प्रिफेक्चर के ताकिगुन मे कादा मुरा मे, शिमाताचिकुई मे 12 जून, 1878 को जन्म हुआ। सन 1897 से 1898 तक कोबे म उचु प्राइमरी स्कूल मे अध्ययन किया। सन् 1902 म, तोक्यो म, जिदो शिबुन के साथ सलग्न हुए जो बच्चो का समाचार पत्र था। सन् 1911 से 1918 तक सैतामा प्रिफेक्चर के नामल स्कूल म अध्यापन काय किया।

सन् 1914 म हेइबाशा प्रकाशन कपनी की स्थापना की। "पाकेट कोमन

या-कोरेवा चे-री दी', यानी 'ए प्रोक्टेड ऑल-राउण्ड हैण्डी बुक' नाम से एक अति उपयोगी पुस्तक प्रकाशित की।

सन 1919 म, शिक्षकों की एक सुधारवादी सस्था 'केइमेई-काय' का गठन किया और सन् 1925 म कृपको की स्वायत्त सस्था यानी नामिन जिचि काय का। सन 1932 मे नव जापान राष्ट्रीय लीग यानी पिन निहोण कोकुमिन दामे की स्थापना की और उसकी प्रशासनिक समिति के अध्यक्ष पद पर सुशोभित हुए।

सन 1933 म दाइआजिया क्याकाइ अर्थात् बहत्तर एशिया सघ की और जापान के गाधी सघ की स्थापना को प्रोत्साहन दिलाया।

सन 1938 मे पीकिंग म, पिनमिन इनपोकान यानी नव पीपल्ज प्रकाशन कपनी की स्थापना की और उसके उप प्रधान चुन गये।

सन 1947 के जनवरी मास म, सुदूर पूव के लिए, अतर्राष्ट्रीय युद्ध अपराधो की अदालत म, सुनवाई के दौरान इवाने मात्सुइ की सफाई म गवाही दी। उसी वष अगस्त म तोक्यो इशाकान मुद्रण कपनी लिमिटेड की स्थापना की।

तोयाहिको कागावा के साथ मिलकर नवम्बर 1951 म एक विश्व महासघ की स्थापना सबधी अभियान आरभ किया।

अक्तूबर 1942 म जस्टिस डॉ० राधा विनोद पाल का आमन्त्रित किया और उनो न देश भर की यात्रा की तथा देश के विभिन्न स्थलो पर महत्वपूण विषयो पर भाषण किये।

उसी वष नवम्बर म उन्होने हिरोशिमा मे विश्व महासघ के एशियाई सम्मेलन का आयोजन किया जिसमे हिरोशिमा घोषणा-पत्र पारित किया गया।

पुन सितम्बर 1953 म जस्टिस डॉ० राधा विनोद पाल को आमत्रित किया और प्रबुद्ध श्रोताओ के लाभ तथा भारत-जापान मैत्री के लिए उनकी भाषण यात्राओ का आयोजन किया।

सन 1955 म सेकाई रेनपो केनसेत्सु दामे यानी एक विश्व महासघ के निर्माण परिसघ के प्रधान चुने गये। उसी वष नवम्बर म विश्व शाति के प्रवतन के लिए सात सदस्यो की समिति का गठन किया और उसका काय कलाप आरभ कर दिया।

भारत के प्रधान मत्री पडित जवाहरलाल नेहरू की अक्तूबर 1957 म जापान यात्रा के दौरान उनके स्वागत के लिए गठित राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष चुने गये।

अगस्त सन् 1959 म विश्व महासघ के नवे विश्व सम्मेलन मे जापान के प्रमुख प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया।

सन 1961 म अमरीकी राष्ट्रपति जे० एफ० केनेडी के साथ परिचय स्थापित किया।

भारत और जापान के बीच स्थायी शाति एव मैत्री की द्विपक्षीय मधि, 9 जून, 1952

जबकि भारत की सरकार न 9 जून 1952 को जारी की गई एक सार्वजनिक अधिसूचना के द्वारा भारत और जापान के बीच युद्ध की स्थिति समाप्त कर दी है,

और जबकि भारत की सरकार और जापान की सरकार अपनी-अपनी जनता क सामा य कल्याण के लिए परस्पर म त्रीपूण सहयोग की इच्छुक है तथा सयुक्त राष्ट्र चाटर के अनुरूप अतर्राष्ट्रीय शाति और सुरक्षा को कायम रखना चाहती है,

इसलिए भारत की सरकार और जापान की सरकार न यह शाति सधि सम्पन्न करने का निश्चय किया है और इस काम के लिए अपने पूर्णाधिकारी नियुक्त किए है

भारत की सरकार

और

जापान की सरकार

जिन्होंने एक-दूसरे को अपनी-अपनी पूण शक्तियो का सकेत दे दिया है और जिन्होने इन शक्तियो को सही और उचित पाया है, नीचे लिखे अनुच्छेदा पर सहमत हुई हैं

अनुच्छेद एक

भारत और जापान की सरकारो के बीच और दोनो देशो के लोगो के बीच दढ और स्थायी शाति एव मत्री होगी।

अनुच्छेद दो

(क) दोनो सविदाकारी पक्ष इस बात पर सहमत हैं कि वे अपने व्यापार, समुद्री, वमानिकी तथा अ य वाणिज्यिक सबधो को एक स्थायी और मत्रीपूण

आधार प्रदान करने के उद्देश्य से सधिया और करार सम्पन्न करने के लिए आपस म वातचीत शुरू करेंगे ।

(ख) इस प्रकार की सधि अथवा करार सम्पन्न होने तक, भारत सरकार द्वारा भारत और जापान के बीच युद्ध की स्थिति समाप्त करने से सम्बद्ध अधिसूचना जारी करने की तारीख से चार वष की अवधि म—

1 दोना सविदाकारी पक्ष एक-दूसरे के साथ अति-अनुग्रहीत राष्ट्र का व्यवहार करेंगे जो वैमानिकी यातायात अधिकार और विशेषाधिकार के सम्बन्ध मे भी लागू होगा,

2 दोनो सविदाकारी पक्ष एक दूसरे को सीमा-शुल्क तथा माल के आयात-निर्यात से सम्बन्धित किसी भी प्रकार के प्रभारा और प्रतिवधा तथा अन्य विनियमा के सम्बन्ध मे अथवा आयात-निर्यात की अदायगिया के अतर्राष्ट्रीय हस्तातरण के सम्बन्ध म तथा इस प्रकार के शुल्क और प्रभार लगाने के तरीके के सम्बन्ध मे तथा आयात और निर्यात से सम्बद्ध सभी नियमा तथा औपचारिकताओ और सीमा शुल्क सम्बन्धी अन्य सभी प्रभारा के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार का व्यवहार करेंगे, तथा कोई भी लाभ, अनुकूल व्यवहार, विशेषाधिकार अथवा उन्मुक्ति, जो किसी अन्य देश के उत्पाद को अथवा किसी अन्य देश को भेजे जाने वाले उत्पाद को दोनो मे से किसी सविदाकारी पक्ष द्वारा दी जायगी, वही लाभ, अनुकूल व्यवहार, विशेषाधिकार, उन्मुक्ति तत्काल और बिना शत दूसरे सविदाकारी पक्ष के प्रदेश म तयार होने वाले अथवा उसके यहाँ भेजे जाने वाले वैसे ही उत्पादा को भी दी जायेगी,

3 जापान भारत के साथ जहाजरानी, नौवहन और आयातित माल के सम्बन्ध म तथा प्राकृतिक और न्यायिक व्यक्तिया के तथा उनके हितो के सम्बन्ध म उस सीमा तक राष्ट्रीय व्यवहार करेगा जिस सीमा तक भारत ऐसा व्यवहार करे—इस प्रकार के व्यवहार म कर लगाने तथा वसूल करने, न्यायालयो तक पहुँच, सविदाएँ सम्पन्न करने और उन्हे लागू करन, सपत्ति पर (चल और अचल) अधिकार, जापानी कानून के अन्तगत गठित इकाइया म भागीदारी, तथा हर प्रकार का व्यापार एव व्यवसाय करन से सबद्ध सभी मामले शामिल होगे।

लेकिन इस अनुच्छेद के अनुरूप व्यवहार करते समय राष्ट्रीय अथवा अति अनुग्रहीत राष्ट्र के समान व्यवहार की प्रतिष्ठा कम करने के लिए किसी भेदभावपूर्ण तरीके से काम नही लिया जाएगा बशर्ते कि यह तरीका किसी ऐसे अपवाद पर आधारित हो जो इस व्यवहार म लाने वाले पक्ष की वाणिज्यिक सधिया म आमतौर से निहित रहता हो अथवा उस पक्ष की

बाहरी वित्तीय स्थिति और/अथवा अदायगी सतुलन की सुरक्षा के लिए आवश्यक हो अथवा उसके अनिवाय सुरक्षा हितो को बनाये रखने के लिए आवश्यक हो और साथ ही उसमे यह भी व्यवस्था की जाती है कि इस प्रकार का कोई तरीका परिस्थितियो के अनुरूप न हो और इसे किसी मनमान अथवा अनुचित ढग से लागू न किया जाये।

यहाँ यह भी व्यवस्था की जाती है कि उप परा (2) म जो कुछ भी दिया गया है वह एसी वरीयताओ और लाभा पर लागू नही होगा जो 15 अगस्त, 1947 के पहले से अस्तित्व मे रहे हो और जो भारत द्वारा अपने निकटवर्ती पडोसी देशो को दिए जाते हो।

(ग) इस अनुच्छेद की किसी भी व्यवस्था को इस रूप म ग्रहण नही किया जायेगा कि उससे जापान द्वारा इस सधि के अनुच्छेद पाँच के अन्तगत दी गई वचनबद्धताएँ सीमित होती हा।

अनुच्छेद-तीन

जापान इस बात पर सहमत है कि जब भी भारत चाहेगा वह खुले समुद्र मे मछली पकडने तथा मत्स्यालयो के सरक्षण और विकास के नियमन अथवा परिसीमन से सम्बद्ध करार सम्पन्न करने के लिए भारत के साथ बातचीत करने के लिए तत्पर रहेगा।

अनुच्छेद चार

लडाई शुरू होने के समय भारत मे जापान अथवा उसके राष्ट्रिको की जो भी चल या अचल सम्पत्ति और अधिकार अथवा हित थे और जो इस सधि के लागू होने के समय भारत सरकार के नियत्रण मे है उन्हे भारत या तो वापस कर देगा या उन्ह उनके वतमान रूप म कायम रखेगा, लेकिन इस प्रकार की सम्पत्ति के परिरक्षण और प्रशासन पर जो खच आया हागा, उसकी अदायगी जापान अथवा उसके सम्बद्ध राष्ट्रिक करेंगे। अगर इस प्रकार की किसी सम्पत्ति का निपटान कर दिया गया है तो उससे प्राप्त धन को, उपयुक्त खच काटकर, वापस कर दिया जायेगा।

अनुच्छेद पांच

इस सधि के लागू होने के बाद 9 महीने की अवधि के अदर जो आवेदन पत्र प्राप्त हागे उन्ह जापान आवेदन पत्र प्राप्त होने की तारीख से 6 महीने के भीतर चल या अचल सम्पत्ति और जापान अथवा भारत अथवा उनके राष्ट्रिको के सभी प्रकार के अधिकार अथवा हिता को लौटा देगा जो 7 दिसम्बर, 1941 और 2

सितम्बर, 1945 के बीच जापान म रहे हो जब तक कि उस सम्पत्ति के मालिक ने स्वय किसी दवाव अथवा धोखाधडी म न आकर अपनी मर्जी से उस बेच न दिया हो।

ऐसी सम्पत्ति उन सभी ऋणा और प्रभारो से मुक्त करके वापस की जायगी जो इस पर युद्ध की वजह से लगाये गये हो और इसकी वापसी के लिए भी कोई प्रभार नही लिया जायेगा।

निर्धारित अवधि के भीतर अगर किसी सम्पत्ति की वापसी के लिए उसके स्वामी के द्वारा अथवा उसकी ओर से अथवा भारत सरकार के द्वारा वापसी का आवदन नही दिया जाता तो जापान की सरकार अपने विवेक से उसका निपटान कर सकती है।

अगर ऐसी कोई सम्पत्ति 7 दिसम्बर, 1941 को जापान के पास रही हो और वापस न की जा सकती हो अथवा युद्ध के कारण उसको कोई क्षति या नुकसान पहुँचा हो तो उसके लिए मुआवजा दिया जायेगा और यह मुआवजा जापान के मित्र राष्ट्र सम्पत्ति, क्षति पूर्ति कानून (कानून सख्या 164, 1951) म निर्धारित शर्तों से कम अनुकूल नही होगा।

अनुच्छेद छह

(क) भारत जापान के विरुद्ध अपने सभी मरम्मत/क्षति पूर्ति के दावो को निरस्त करता है।

(ख) इस सधि मे जब तक अयथा उल्लेख न हो, भारत अपन और अपने राष्ट्रिका के उन सभी दावा को निरस्त करता है जो युद्ध के दौरान जापान अथवा उसके राष्ट्रिका द्वारा की गई कारवाई के कारण बनते हो और भारत के उन दावो को भी जो इस तथ्य के कारण बनते हो कि उसने जापान के अधिग्रहण मे भाग लिया है।

अनुच्छेद सात

जापान इस प्रकार के आवश्यक कदम उठाने पर सहमत है ताकि भारतीय राष्ट्रिका को यह मौका मिले कि इस सधि के लागू होने की एक वष की अवधि के भीतर भीतर व समुचित जापानी प्राधिकारियो के समक्ष यदि किसी जापानी न्यायालय द्वारा 7 दिसम्बर, 1941 और इसके लागू होने के बीच की अवधि म काई ऐसा फैसला दिया गया हो कि जिसकी कायवाही मे फसला किसी ऐस भारतीय राष्ट्रिक के खिलाफ हो, चाहे वह मुद्दई के रूप म रहा अथवा मुद्दालय के रूप म, अपने मामले की परवी समुचित रूप से न कर पाया हो तो उस इस पर पुर्नविचार करने की अर्जी देने का हक होगा।

जापान इस बात पर भी सहमत है कि अगर किसी भारतीय राष्ट्रिक को एम किसी फसले की वजह म नुकसान हुआ हो तो उस उसी स्थिति म लाया जाएगा जिसम वह इस फसले स पहले था अथवा उस विशेष मामले की परिस्थितिया म उसे समुचित और न्यायोचित राहत प्रदान की जाएगी।

अनुच्छेद-आठ

(क) दोना सविदाकारी पक्ष इस बात को स्वीकार करत हैं कि युद्ध की स्थिति के हस्तक्षेप से उन ऋणो को अदा करने के दायित्व पर कोई दुष्प्रभाव नही पडा है जो पहले के दायित्वा और सविदाओ के अन्तर्गत (जिनम बाड भी शामिल हैं) देय थे या उन अधिकारा के अन्तगत दय थे जो युद्ध की स्थिति स पहल की स्थिति म अर्जित किए गए थे और जा जापान की सरकार अथवा उसके राष्ट्रिको द्वारा भारत की सरकार अथवा उसक राष्ट्रिका को अथवा भारत की सरकार अथवा उसके राष्ट्रिका द्वारा जापान की सरकार अथवा उसके राष्ट्रिको का देय थ युद्ध की स्थिति बीच म आ जान की वजह स उन दावा पर उनके गुण-दोष क आधार पर विचार किए जाने के दायित्व पर भी कोई दुष्प्रभाव नही पडता जो *युद्ध की स्थिति की अवधि म किसी की सम्पत्ति की क्षति के लिए अथवा व्यक्तिगत* क्षति अथवा व्यक्ति की मृत्यु के लिए दायर किए गए हा और जो भारत की सरकार द्वारा जापान की सरकार को अथवा जापान की सरकार द्वारा भारत की सरकार को प्रस्तुत अथवा पुन प्रस्तुत किए गए हो।

(ख) जापान युद्ध से पूव के जापान राज्य की सभी बाहरी दयताओ की तथा निगमित निकाया के ऋणा की देनदारी की पुष्टि करता है, जिन्ह बाद म जापान राज्य की देनदारियाँ घोषित कर दिया गया हो तथा अपनी यह इच्छा प्रकट करता है कि वह अपने देनदारा के साथ इन ऋणा की अदायगी पुन शुरू करने के बारे मे शीघ्र बातचीत शुरू करना चाहता है।

(ग) सविदाकारी पक्ष युद्ध पूव के दावा और दायित्वो के सम्बन्ध म बातचीत को प्रोत्साहन देंगे और तदनुसार राशिया के हस्तान्तरण को सुविधाजनक बनायेंगे।

अनुच्छेद नौ

(क) जापान भारत और उसके राष्ट्रिको के प्रति अपने उन सभी दावो को छोडता है जो युद्ध के कारण अथवा युद्ध की स्थिति के अस्तित्व के कारण की गई कारवाइयो स बनते हो तथा इस सधि के लागू होन स पहले जापान के प्रदेश म भारत की सनाओ अथवा प्राधिकारियो की उपस्थिति, उनके सचालनो अथवा कार्यों के कारण बनते हा।

(ख) ऊपर जिन दावो का छोडा गया है, उनमे ये दावे भी शामिल हैं जो 1 सितम्बर, 1939 और इस सधि के लागू होने के बीच की अवधि मे जापानी जहाजो के सिलसिले मे भारत द्वारा की गई कारवाइयो के कारण बनत हो, इसमे वे दावे और ऋण भी शामिल है जो भारत के हाथो जापानी युद्धबन्दियो और असनिक नजरबन्दो के सिलसिले म बनत हो किन्तु इनमे जापान के वे दावे शामिल नही हैं जो 2 सितम्बर, 1945 से लागू भारत के नियमो मे विशेष रूप स स्वीकार किए गए हो।

(ग) जापान अधिकार करने वाले प्राधिकारियो के कब्जे की अवधि म अथवा उनके निदेशो क परिणामस्वरूप की गई तथा उस समय के जापानी कानून द्वारा प्राधिकृत तमाम कारवाइयो और त्रुटियो की वधता को स्वीकार करता है तथा वह इस प्रकार की कारवाइयो अथवा त्रुटियो के लिए भारतीय राष्ट्रिको पर नागरिक अथवा आपराधिक दायित्व के अतगत कोई कारवाई नही करगा।

अनुच्छेद दस

इस सधि अथवा इसके एक या उसस अधिक अनुच्छेदो की व्याख्या अथवा व्यवहार को लेकर अगर कोई विवाद खडा होता है तो पहले तो इसे बातचीत के द्वारा निपटाया जाएगा और इस बातचीत के शुरू होने के बाद छह महीने की अवधि म अगर कोई समाधान नही निकलता तो फिर इस पच निणय से इस तरह निपटाया जाएगा जिसके सम्बध म दोनो सविदाकारी पक्षो के बीच किसी सामान्य अथवा विशेष करार करके इसके बाद फैसला किया जाए।

अनुच्छेद ग्यारह

इस सधि का अनुसमथन किया जाएगा और अनुसमथन के दस्तावेजो के आदान प्रदान की तारीख स यह लागू हो जाएगी, दस्तावेजो का यह आदान-प्रदान नई दिल्ली म (अथवा तोक्यो मे) यथाशीघ्र किया जाएगा।

उपरोक्त क साक्ष्य म निम्नहस्ताक्षरकर्ता पूर्णाधिकारियो ने इस सधि पर हस्ताक्षर किए है। यह सधि आज ईसवी सन् एक हजार नौ सौ बावन के जून मास के नवें दिन दो प्रतियो म सम्पन्न हुई। इस सधि के हिन्दी और जापानी पाठो का आज की तारीख से एक महीने के भीतर भीतर दोनो सरकारो के बीच आदान-प्रदान किया जाएगा।

जापान की ओर से	भारत की ओर से
(कात्सुओ ओकाजाकी)	(के० के० चेत्तूर)

इस सधि का पाठ जारी करते समय जापान क विदेशमत्री की घोषणा का पाठ —

"जापान के प्रति भारत की मत्री और सद्भाव की भावना इस सधि म सवत्र दखी जा सकती है। इसका विशिष्ट उदाहरण वे प्रावधान हैं जिनमे भारत ने सभी मुआवजा और दावा को छोड दिया है और भारत म स्थित जापानी सम्पत्ति लौटा दी है।"

ह०/

9 जून 1952

कात्सुओ ओकाजाकी
जापान के विदेशमत्री

□□

जनरुचि की दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक का सुभाषचन्द्र से सबधित अध्याय सर्वाधिक महत्त्वपूण है। सुभाषच द्र बोस को 'नेताजी' के नाम से पहली बार उस समय सम्बोधित किया गया था जब वे जमनी स जापान आ रह थे। उनके नेतृत्व और व्यक्तित्व पर प्रकाश डालत हुए श्री नायर ने लिखा है कि उनके नेतत्व म अदभुत क्षमता थी और उनका व्यक्तित्व अत्यत प्रभावशाली था। आम तौर पर यह विश्वास किया जाता है कि आजाद हि द फौज की स्थापना सुभाष च द्र बोस ने की थी लेकिन श्री नायर का कहना है कि जब वे जमनी से जापान आए थे उस समय उ हे भारतीय स्वतन्त्रता लीग और उसके अतगत आजाद हि द फौज एक *सुस्थापित सस्था के रूप के उन्हे प्राप्त हुई थी।*

सुभाषच द्र बोस के व्यक्तित्व की चर्चा करत हुए श्री नायर ने लिखा है कि वे एक महान देशभक्त थे किन्तु उनकी काय-पद्धति लोकतात्रिक नही थी, वह वही करते थे जो करना चाहते थे, जिसकी चरम परिणति इम्फाल की त्रासदी मे हुई जो सम्भवत इतिहास की एक घोरमय त्रासदी और सुभाषच द्र बोस की भयकर भूल थी।

सुभाषच द्र बोस के लापता होने के विवादास्पद विषय की चर्चा करते हुए श्री नायर ने कहा है कि वे विमान दुघटना मे उनकी मृत्यु की कहानी पर विश्वास नही करते। इससे सम्बद्ध तथ्यो की जाँच के लिए बाद म जो कमीशन *नियुक्त किए गए उन्होने भी तथ्यो की जाँच क लिए* कोई कारगर काय नही किया। वे मानो इस पूव धारणा की पुष्टि पर ही जोर देत रहे कि विमान दुघटना म उनकी मृत्यु हो गयी। इसे नकारते हुए श्री नायर ने अपनी पुस्तक मे कई सभावनाओ का जिक्र किया है, जिन पर काम होना चाहिए था।

वस्तुत यह पुस्तक आद्योपात विचारोत्तक है और पाठक के समक्ष दक्षिण-पूव एशिया म भारत की आजादी की कहानी के अध्याय को उजागर करती है। आशा है पाठको को इस पुस्तक म कुछ अनछुए प्रसग मिलेगे और उ हे इसकी गहराइयो को जानने-समझने के लिए प्रेरणा मिलेगी।

श्री नायर के ये सस्मरण जापानी, अग्रेजी, बगला, तमिल, तेलुगु और मलयालम मे पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं। जापानी भाषा मे तो इसका आठवाँ सस्करण आ चुका है जो इस पुस्तक की अतर्राष्ट्रीय लोकप्रियता का एक बड़ा प्रमाण है।